आधुनिक गद्य साहित्य–1

Paper Code – 20HND21C2

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक–124 001

Printed at: MDU Press

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

परिचय

प्रस्तुत पुस्तक 'आधुनिक गद्य साहित्य (अ) विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम0 ए0 हिंदी (प्रथम सेमेस्टर) के नवीनतम् पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है। इसमें हिंदी साहित्य के दो प्रसिद्ध उपन्यासों का, एक संस्मरणात्मक रेखाचित्र (अतीत के चलचित्र) एवं एक कहानी संग्रह का समावेश हुआ है। विभिन्न लेखकों की कथ्य–विधा, भाषा–शैली, संवाद–योजना आदि के अध्ययन से आधुनिक गद्य साहित्य की बहुरंगी छटा को भली–भाँति समझा जा सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक चार इकाईयों में विभक्त है। पहली इकाई प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचंद 'गोदान' है गोदान में प्रेमचंद ने भारतीय कृषक जीवन के अतिरिक्त नारी समस्या, वर्ग वैमनस्यता, आर्थिक संघर्ष, पाश्चात्य संस्कृति तथा संयुक्त परिवार आदि कई ज्वलंत मुद्दों पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। इकाई के अध्ययन के पश्चात् ही प्रेमचंद की आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी विचारधारा ज्ञात होती है। दूसरी इकाई में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' है। इसमें संस्कृत के प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट की जीवन–यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। तीसरी इकाई में महादेवी वर्मा का संस्मरणात्मक–रेखाचित्र संग्रह है। चौथी इकाई में 'कहानी–संग्रह' को लिया गया, जिसमें विभिन्न कहानीकारों की सात कहानियाँ संकलित हैं।

सरल एवं प्रवाहमयी भाषा के द्वारा प्रस्तुत यह सामग्री छात्रों के लिए निश्चित रूप से उपयोगी एवं ज्ञानवर्द्धक सिद्ध होगी।

आधुनिक गद्य साहित्य (अ)

इकाई–1 गोदान (मुंशी प्रेमचन्द) **3–68**

'गोदान–व्याख्या खंड, गोदान में अभिव्यक्त आदर्श और यथार्थ का चित्रण; महाकाव्यात्मक कसौटी पर गोदान; गोदान की पात्र योजना (चरित्रचित्रण); गोदान में आधुनिकता का दिग्दर्शन; गोदान में नारी मुक्ति की भावना; गोदान का भाषा शिल्प।

इकाई–2 बाणभट्ट की आत्मकथा (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी) **69–118**

बाणभट्ट की आत्मकथा – व्याख्या खण्ड; मूल संवेदना, प्रेमदर्शन; बाणभट्ट की आत्मकथा में आधुनिकता बोध; स्त्री–पात्र

इकाई–3 'अतीत के चलचित्र' (महादेवी वर्मा) **119–177**

'अतीत के चलचित्र– व्याख्या खण्ड, महादेवी वर्मा की संवेदना, सामाजिक समस्याओं का निरूपण, रचना–शिल्प, चरित्र–चित्रण।

इकाई–4 कहानी संग्रह **178–285**

पाठ्यक्रम में निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना और शिल्प

इकाई 1 गोदान (मुंशी प्रेमचंद)

इकाई की रूपरेखा

1.0 परिचय

1.1 इकाई के उद्देश्य

1.2 गोदान – व्याख्या खंड

1.3 गोदान में अभिव्यक्त आदर्श और यथार्थ का चित्रण

1.4 महाकाव्यात्मक कसौटी पर गोदान

1.5 गोदान की पात्र योजना (चरित्र चित्रण)

1.6 गोदान में आधुनिकता का दिग्दर्शन

1.7 गोदान में नारी मुक्ति की भावना

1.8 गोदान का भाषा शिल्प

1.9 प्रेमचन्द्र के साहित्य में गोदान का स्थान

1.10 सारांश

1.11 मुख्य शब्दावली

1.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1.13 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.0 परिचय

गोदान उपन्यास का व्याख्या खंड एक समाज के विविध रूपों का विश्लेषणात्मक वर्णन है, जिसमें सोहाग का मजबूत आधार, कृषक जीवन, जमींदारी वास्तविक स्वरूप, सामाजिक व्यवस्था, आत्म चिंतन, दाम्पत्य जीवन, पुरुष की स्वार्थी प्रवृत्ति का चित्रण, नारी चेतना, धार्मिक विकृतियों का दर्शन, भविष्य की आशंका, कर्त्तव्यों का निर्वाहन, वर्गीय भेदभाव का दुष्प्रभाव बौद्धिकता की प्रधानता, विवाह संस्कार, लोकतंत्र का विकृत स्वरूप, आर्थिक अभाव, नारी के आदर्श गुणों का बखान, पाश्चात्य संस्कृति का दुष्प्रभाव, वंशानुगत गुणों का प्रभाव, कवि की सहृदयता वर्तमान की उपादेयता, आधुनिक युगबोध का दिग्दर्शन, संयुक्त परिवार का लाभ, सेवा भाव का पालन करना जैसे ज्वलंत मुद्दों

पर व्याख्यात्मक रूप से वर्णन किया गया है। गोदान के वयाख्यात्मक विस्तार के बाद उपन्यास में अभिव्यक्त आदर्श और यथार्थ का चित्रण किया गया है। मानव जीवन आदर्श और यथार्थ के प्रांगण में फलीभूत होता है। आदर्शवाद समाज के भयावह विकराल यथार्थ को मनोरम स्वरूप प्रदान कर सर्वग्राह्य बनाता है और यथार्थ धरातल मनुष्य की चिंतन शैली को विकसित करता है।

गोदान को महाकाव्य माना जाए या न माना जाए इस विषय पर एक मत होने से पहले इकाई के इस भाग में महाकाव्य की प्रमुख विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है और इस आधार पर गोदान उपन्यास को महाकाव्य की कसौटी पर परखने का प्रयास किया गया है।

प्रेमचंद ने उपन्यास को मानव जीवन चरित्र का चित्र कह कर पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण को प्रमुखता दी है। गोदान उपन्यास में चरित्र चित्रण द्वारा प्रेमचंद के वैयक्तिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया गया है।

गोदान की आधुनिकता के संदर्भ में हम अगर बात करें तो गोदान केवल सामाजिक जीवन का ही प्रतिबिंब नहीं अपितु युगीन संदर्भों, ज्वलंत मुद्दों, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक संरचना जैसे पक्षों को प्रस्तुत करने में भी सक्षम है। गोदान आधुनिक संदर्भों की सफल प्रस्तुती के कारण युग युगीन एवं प्रासंगिक है।

1.1 इकाई के उद्देश्य

- उपन्यास के व्याख्यात्मक खंड के द्वारा सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक संरचना के विभिन्न स्वरूपों को;
- गोदान में अभिव्यक्त आदर्श और यथार्थ के चित्रण को;
- महाकाव्यात्मक कसौटी पर गोदान उपन्यास को;
- गोदान की पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण को;
- गोदान में आधुनिकता के दिग्दर्शन को।

1.2 गोदान–व्याख्या खंड

- विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों में यथार्थ के निकट होने पर भी मानो झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा, बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदनाशक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दुख होता है, वह क्या दो आंखों वाले आदमी को हो सकता है?

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है। आर्थिक विपन्नता के फलस्वरूप होरी और धनिया के जीवन में समय–समय पर कलह प्रारंभ हो गया था। जिस अवस्था में व्यक्ति प्रौढ़ता को प्राप्त करता है, होरी उस स्थिति में पहुंचकर निराशा के गर्त में गिरता जा रहा था। होरी ने असहाय स्थिति में दुर्गति होने से पूर्व परमात्मा के पास जाने की इच्छा व्यक्त की। होरी के इन वचनों को सुनकर धनिया के पैरों की जमीन खिसकने लगी। धनिया का आंतरिक हृदय पति (होरी) के प्रति समर्पण भाव से ओतप्रोत था। धनिया के हृदय में होने वाली अमंगल की आशंका का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने कहा –

व्याख्या – धनिया के वैवाहिक जीवन का प्रारंभ आर्थिक विपन्नता से हुआ। (पति) को प्राप्त कर धनिया इस निर्धनता में भी प्रसन्न थी, क्योंकि उसका जीवन साथी उसकी आंखों के सामने था। किंतु आज पति की भविष्यवाणी को सुनकर धनिया आंतरिक रूप से टूट चुकी थी। भविष्य की अनहोनी से चिंतित होकर धनिया (पति) होरी को खोना नहीं चाहती थी, क्योंकि उसका पति ही इस विषम स्थिति में उसके जीवन का सहारा था। सोहाग को लेकर जो धनिया आश्वस्त थी, वही आज भविष्य को लेकर चिंतित है। होरी के इन शब्दों ने उसके भविष्य का सहारा भी छीन

लगना चाहा है। धनिया व्यवहार कुशल थी, यथार्थ को अवश्यंभावी मानकर वेदना के आवरण में भी प्रसन्न थी। धनिया ने अपनी अभिव्यक्ति को स्पष्ट करते हुए कहा कि जिस प्रकार काने व्यक्ति को काना कहने से पीड़ा होती है वही पीड़ा आज धनिया को हो रही थी, वह यथार्थ से परिचित थी, लेकिन भयभीत न थी। दो आंखों वाला व्यक्ति कभी दुःखी नहीं होता। यही उक्ति धनिया के जीवन पर भी लागू हो रही थी।

विशेष :–

- कृषक जीवन की त्रासदी एवं वास्तविकता का वर्णन है।
- धनिया का अंर्तद्वंद्व एवं भविष्य की आशंका से त्रस्त मनःस्थिति का वर्णन है।
- यह यथार्थ है कि आर्थिक विपन्नता के प्रभाव स्वरूप व्यक्ति असमय बूढ़ा हो जाता है।
- पति परमेश्वर होता है जिसके बिना पत्नी का जीवन सारहीन हो जाता है।
- सोहाग विवाहित जीवन की प्रसन्नता, खुशहाली का प्रतीक है।
- शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- सोहाग ही वह तृण था, उत्प्रेक्षा अलंकार तथा विपन्नता के अथाह सागर में रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है।
- यह अवतरण होरी की आर्थिक विपन्नता का बोध कराता है।
- किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें संदेह नहीं। उसकी गांठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं। भाव–ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक–एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घंटों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाए वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका संपूर्ण जीवन प्रकृति के स्थायी सहयोग से है। वृक्षों में फल आता है, गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान? होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग – भोला की असहाय स्थिति का लाभ उठाना होरी ने नहीं सीखा था। भूसे के लिए गाय को बेचने की दुविधा से दुःखी होकर होरी भोला को साहस दिलाता है। कृषक जीवन की सादगी व संवेदना का वर्णन करते हुए प्रेमचंद ने कहा –

व्याख्या – प्रेमचंद का मानना है कि किसान भोला, मूर्ख सरल एवं सीधा नहीं होता, उसमें भी परिस्थितिवश निर्णय लेने की क्षमता होती है। भोला अहीर की असमर्थता को देखकर होरी अपनी सांत्वना व्यक्त करता है। स्वार्थहित वह व्यवहार में परिवर्तन करना भी जानता है। वह कष्ट सहकर भी रिश्वत का एक पैसा देने को उत्सुक नहीं होता। अपनी वस्तु को बेचते समय कई बार मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन भी करता है। आश्वस्त होकर निर्णय करता है। कोई उसको अपने जाल में नहीं फंसा सकता। किसान का जीवन प्रकृति की खुली किताब होता है। प्राकृतिक आपदा को भाग्य मानकर सहन भी कर लेता है। किसान की प्रवृत्तियों का वर्णन करते हुए प्रेमचंद कहते हैं कि किसान परमार्थ के लिए अपने जीवन का होम करता है जिस प्रकार वृक्ष अपने फल स्वयं न खाकर दूसरों को प्रदान करते हैं उसी प्रकार किसान के खेत में उत्पन्न अनाज भी औरों के काम आता है। गाय अपना मधुर दूध अपने बच्चे के साथ दूसरों को प्रदान करती है। बादलों से होने वाली वर्षा से समस्त वसुंधरा हरी–भरी होकर तृप्त होती है।

जब प्रकृति में कोई स्वार्थ नहीं है, फिर किसान के जीवन में होना संभव नहीं क्योंकि होरी भी किसान था उसका जीवन भी परोपकार को समर्पित था। इसलिए स्वार्थवश भोला अहीर की असमर्थता का लाभ उठाना उसे शोभा नहीं देता।

विशेष :

- कृषक जीवन की सादगी, सहजता, निस्वार्थ भावना का वर्णन किया गया है।
- होरी की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख है।
- होरी के माध्यम से किसानों की विशेषताओं को चित्रित किया गया है।
- मानव और प्रकृति का संबंध अटूट होता है यही प्रकृति मानव को निस्वार्थ भावना की शिक्षा देती है।
- परोपकार की भावना का चित्रण वृक्ष, गाय, खेत एवं बादलों द्वारा किया गया है।
- प्रकृति की कोख से अनेक साहित्यकारों ने अपनी साहत्यि साधना की प्रेरक पृष्ठभूमि प्राप्त की। छायावादी कवि सुमत्रानन्दन पंत का जीवन इसका प्रमाण है।
- प्रवाहपूर्ण भाषा का चित्रण है।
- विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
- संपत्ति और सहृदयता से बैर है। हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं, लेकिन जानते हो क्यों? केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है, विशुद्ध अहंकार। हम में से किसी पर डिग्री हो जाए, कुर्की आ जाए, बकाया मालगुजारी की इल्लत में हवालात हो जाए, किसी का जवान बेटा मर जाए, किसी की विधवा बहू निकल जाए, किसी के घर में आग लग जाए, कोई किसी वेश्या के हाथों उल्लू बन जाए, या अपने आसामियों के हाथों पिट जाए, तो उसके और सगे भाई उस पर हसेंगे, बगलें बजाएंगे, मानो सारे संसार की संपदा मिल गई है और मिलेंगे तो इतने प्रेम से, जैसे हमारे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार हैं।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग : जेठ के दशहरे पर धनुष यज्ञ की तैयारी चल रही थी। होरी को राजा जनक की भूमिका निभाने का आदेश मिला। ठाकुर राय साहब अमरपाल सिंह के घनिष्ठतम व्यक्तियों में होरी का नाम भी आता था। अपने मन का बोझ हल्का करने के लिए होरी से एकांत में वार्तालाप करता है। बड़े व्यक्तियों के व्यवहार का वर्णन करते हुए अमरपाल सिंह कहते हैं।

व्याख्या – राय साहब होरी से अपने मन की व्यथा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि धनवान व्यक्ति में संवेदना का लेशमात्र भी अंश नहीं होता, उनकी संवेदना में कुत्सित प्रवृत्ति का बोध होता है। धनाड्य व्यक्ति का दान दिखाने के लिए होता है। धार्मिक कार्यों से सभी को शुभचिंतक एवं उदार बनाना चाहता है। जिसके पास धन होगा उसमें दया, ममता का नामोनिशान नहीं होता। यह यथार्थ है कि संपत्ति व सहृदयता एक दूसरे की प्रतिरोधी हैं। अपने को बराबर वालों में श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए ही हम व्यर्थ का ढोंग करते हैं। हमारे कार्यों में भी अहंकार की भावना प्रदर्शित होती है। अगर हमारे साथी की कुर्की हो जाए या डिग्री हो जाए तो हमें आनंद का अनुभव होता है। कोई अगर हवालात में बंद हो जाए तो हमारे हर्ष का ठिकाना नहीं रहता। दुर्भाग्यवश किसी का बेटा मर जाए, तो हम मुदित होते हैं कि उसका सहारा छिन गया। आपसी विवाद से किसी की बहू घर से निकले तो हम उस पर कीचड़ उछालकर खुश होते हैं। कोई किसी वेश्या द्वारा मूर्ख बना दिया जाए तो उसकी हंसी उड़ाते हैं। दुर्व्यवहार के

फलस्वरूप अगर कोई आसामियों द्वारा पीटा जाता है तो उसकी दुर्गति होने पर हमें अच्छा लगता है। भाई–भाई का नहीं होता है। हमारे सभी संबंध स्वार्थ के होते हैं। हमारी कथनी और करनी में अंतर पाया जाता है। हम जो करते हैं उसे अमल से दूर रखते हैं। हमारी मित्रता भी स्वार्थ से खाली नहीं होती। हम जब मिलते हैं तो दिल खोलकर रख देते हैं जब बिछड़ते हैं तो खाल खींचकर ही शांत होते हैं। हमारी मित्रता में कृत्रिमता झलकती है।

विशेष :

- राय साहब द्वारा बड़े व्यक्तियों की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया गया है।
- राय साहब द्वारा जमींदारों की कथनी और करनी में अंतर दिखाया गया है।
- उपन्यास में वर्गीय पात्रों का वर्णन है। राय साहब जमींदार वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- रायसाहब की अभिव्यक्ति में शोषक की गंध आती है।
- यह अवतरण परतंत्र भारत में किसानों की दयनीय स्थिति का वर्णन करने में सक्षम है।
- होरी रायसाहब का विश्वसनीय पात्र है।
- मुहावरे प्रधान भाषा–उल्लू बनाना, बंगले झांकना आदि का सुन्दर प्रयोग है।
- भाषा में लाक्षणिकता के दर्शन होते हैं।
- संपत्ति और सहृदयता में बैर है– सूक्ति का प्रयोग किया गया है।
- मानो सारे संसार की संपत्ति मिल गई हो–उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया गया है।
- गरीबों में अगर ईर्ष्या या बैर है तो स्वार्थ के लिए पेट के लिए। ऐसी ईर्ष्या और बैर को मैं क्षम्य समझता हूँ। हमारे मुंह की रोटी कोई छीन ले तो उसके गले में उंगली डालकर निकालना हमारा धर्म हो जाता है। अगर हम छोड़ दे तो देवता हैं। बड़े आदमियों को ईर्ष्या या बैर केवल आनंद के लिए है। हम इतने बड़े आदमी हो गए हैं कि हमें नीचता और कुटिलता में भी निःस्वार्थ और परम आनंद मिलता है। हम देवतापन के उस दर्जे पर पहुँच गए हैं, जब हम दूसरों के रोने पर हंसी आती है, उसे तुम छोटी साधना मत समझो।

संदर्भ – प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग – दशहरे के अवसर पर होरी ने सेमरी गांव पहुंचकर रायसाहब अमरपाल सिंह के यहाँ हाजिरी दी। सभी अपने–अपने उत्तरदायित्व का पालन करने में व्यस्त हैं। होरी को गांव वालों द्वारा सगुन भेजने की जिम्मेदारी मिली। होरी ने ठाकुर अमरपाल सिंह से कहा हम तो आपको बड़ा आदमी समझते थे पर आज पता चला कि बड़े आदमियों में भी ईर्ष्या, द्वेष की भावना पाई जाती है। स्वयं की प्रशंसा सुनकर ठाकुर अमर पाल ने कहा –

व्याख्या – अमरपाल ने होरी की जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा कि हम बड़े व्यक्ति केवल नाम के होते हैं। हमारे नामानुसार कार्य नहीं होते। हमारे लिए ईर्ष्या द्वेष केवल आनंद के लिए होते हैं जबकि गरीबों में ईर्ष्या का होना स्वाभाविक है। उनके पेट की भूख उनमें ऐसा करने को बाध्य करती है। पेट के लिए किया गया व्यवहार क्षमा के योग्य है। शत्रुता को सही ठहराता है। अगर कोई हमारा नुकसान पहुंचाना चाहे तो उससे बदला लिए बिना हमारी आत्मा शांत नहीं होती, उसको त्रस्त करना हमारा मौलिक कर्त्तव्य हो जाता है। यही हमारा धर्म है। अगर हम

अपने धर्म का पालन न करें तो बराबर वाले हमें असमर्थ व असहाय समझते हैं। अगर हम ऐसा न करें तो हमें देवता मान लिया जाता है। बड़े व्यक्तियों में ईर्ष्या एवं बैर आनंद का बोध कराता है। हमें नीचता एवं कुत्सित कार्यों में बड़प्पन का आभास होता है। परम आनंद की प्राप्ति होती है। हमें दूसरों के रोने में आनंद मिलता है। हमारा यह व्यवहार किसी देवता से कम नहीं है। हमारी आत्मा मर चुकी है। हम सहृदयता से कोसों दूर हैं। दुःखी व्यक्ति का उपहास उड़ाना हम नैतिक उत्तरदायित्व समझते हैं।

विशेष :

- मुंशी प्रेमचंद ने रायसाहब अमरपाल सिंह द्वारा जमींदार वर्ग की विशेषताओं का उल्लेख करवाया है।
- बड़े व्यक्तियों की चारित्रिक दुर्बलता का वर्णन किया गया है।
- यह अवतरण प्रेमचंद के अनुभवी जीवन का बोध कराता है।
- मुहावरे प्रधान भाषा का प्रयोग हुआ है, जैसे–नाम बड़े दर्शन छोटे।
- लाक्षणिकता की झांकी–देवतापन, विपरीत विशेषताओं, तुम्छता, नीचता में मिलती है।
- रायसाहब की कथनी और करनी का अंतर स्पष्ट दिखाई देता है।
- दुनिया समझती है हम बड़े सुखी हैं। हमारे पास इलाके, महल, सवारियाँ, नौकर–चाकर, कर्ज, वेश्याएँ क्या नहीं है। लेकिन जिसकी आत्मा में बल नहीं, अभिमान नहीं, वह और चाहे कुछ हो, आदमी नहीं है। जिसे दुश्मन के भय के मारे रात को नींद न आती हो, जिसके दुख पर सब हंसें और रोने वाला कोई न हो, जिसकी चोटी दूसरों के पैरों तले दबी हो, जो भोग–विलास के नशे में अपने को बिल्कुल भूल गया हो, जो हुक्काम के तलवे चाटता हो और अपने अधीनों का मन चुराता हो, उसे मैं सुखी नहीं कहता।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग : अपने दुर्गुणों पर प्रकाश डालते हुए ठाकुर अमरपाल सिंह अपनी मनोव्यथा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हम बड़े लोगों में चारित्रिक पतन का होना स्वाभाविक है। अपने स्वार्थ के लिए हम पुलिस, हुक्काम द्वारा भी पीछे नहीं हटते। हमारी अंतरात्मा अंदर से दुःखी है, हमारी कृत्रिम हंसी में हमारी कथनी और करनी का प्रतिबिंब झलकता है। हमें शोषण करने में आत्मसंतुष्टि होती है। बड़े व्यक्तियों पर प्रकाश डालते हुए अमरपाल सिंह कहते हैं।

व्याख्या : ठाकुर अमरपाल सिंह अपने दुर्गुणों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि दुनिया की दृष्टि में हमें बड़ा माना जाता है, हमारी सुख–सुविधाओं से हमारी प्रसन्नता का अनुमान लगाया जाता है। हमारे पास बड़े–बड़े इलाके हैं, विशाल महल हैं, आने जाने को निजी सवारियाँ हैं, हमारे आगे–पीछे नौकर घूमते हैं। इतना होने के बावजूद हम दुःखी हैं। हमारा यह सब वैभव दिखावा मात्र है। जिस व्यक्ति में आत्मबल नहीं है। स्वाभिमान की भावना नहीं है वह व्यक्ति मनुष्यता का अधिकारी नहीं है। हम शोषण के दल–दल में डूबे हुए हैं जिसमें, मानवता कोसों दूर हो गई है। अपनी तथा जमींदारों की वैयक्तिक जीवन शैली का वर्णन करते हुए अमरपाल सिंह ने कहा कि, वह व्यक्ति किसी भी रूप में सुखी नहीं है, जो निश्चिंत होकर सो नहीं सकता। जिसके हृदय में संवेदना का जन्म न हो, जो असहाय स्थिति का फायदा उठाने के लिए तत्पर न होता हो उससे बड़प्पन की गंध नहीं आती। किसी का खून चूसना महानता नहीं कहलाती। जिसे भोग विलास में जीवन का चरमोत्कर्ष दिखाई देता हो वह किसी भी रूप में बड़ा नहीं हो सकता।

विशेष :

- जमींदारों के दुर्गुणों पर प्रकाश डाला गया है।
- अमरपाल सिंह के उद्‌गारों में हृदय की निश्छलता झलकती है।
- सुखी जीवन के अनुभव का अनुमान आत्मिक सुख से लगाया जा सकता है।
- शोषण की प्रवृत्ति का वर्णन है।
- बड़े व्यक्तियों की चारित्रिक दुर्बलताओं का उल्लेख है।
- मुहावरेदार भाषा का प्रयोग–तलवे चाटना, खून चूसना द्वारा हुआ है।
- अरबी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, जैसे–हुक्काम।
- आत्मकथात्मक शैली का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है।
- लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है। मैं उस दिन का स्वागत करने को तैयार बैठा हूँ। ईश्वर वह दिन जल्द लाए। वह हमारे उद्धार का दिन होगा। हम परिस्थितियों के शिकर बने हुए हैं। यह परिस्थिति ही हमारा सर्वनाश कर रही हैं, और जब तक संपत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी, तब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मंडराता रहेगा, हम मानवता का वह पद न पा सकेंगे, जिस पर पहुँचना ही जीवन का अंतिम लक्ष्य है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : रायसाहब भविष्य में होने वाले परिवर्तनों से अवगत हैं कि जमींदारी प्रथा का खात्मा होने वाला है तथा जमींदारों की आलसी प्रवृत्ति तभी दूर होगी। सरकार भी भविष्य में होने वाले बदलाव का संकेत दे रही है।

व्याख्या : रायसाहब अमरपाल सिंह स्वयं जमींदार हैं। इलाके में उनका आतंक है। वे बदलती परिस्थितियों से भली–भाँति अवगत हैं। इसलिए होरी से अपने मनोभाव व्यक्त करते हुए कहते हैं कि अब समय बदल रहा है। समयानुकूल मनोवृत्ति को भी बदलना पड़ेगा। जमींदारी प्रथा समाप्त होने वाली है। मेरी भी इच्छा यही है कि यह प्रथा जितनी जल्दी समाप्त हो जाए उतना ही श्रेयस्कर है। मैं उस दिन की प्रतीक्षा करने को उत्सुक हूँ। ईश्वर भी यही चाह रहा है। वह दिन हमारे पुनरुद्धार का होगा। हम परिस्थितियों के आगे विवश थे जिसके कारण हम अकर्मण्य हो गए हैं। हमारी संपत्ति ही हमारी सबसे बड़ी शत्रु है क्योंकि अपने धन के कारण ही हम स्वेच्छाचारी हो गए हैं। हमारा मानवता से कोई संबंध नहीं रहा, जिस मानवता के लिए मनुष्य व्यथित होता है वह प्राप्त नहीं कर सकता। उसके बिना जीवन की सार्थकता व्यर्थ है, हमने मानव विरूद्ध कार्य करके अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है।

विशेष :

- जमींदारी प्रथा की समाप्ति का संकेत मिलता है।
- प्रेमचंद का मानना है कि जमींदारी प्रथा से समाज का विकास संभव नहीं है।
- जमींदारों से त्रस्त कृषक–जीवन की त्रासदी का अनुमान लगाया जा सकता है।

- रायसाहब के दोहरे व्यक्तित्व का दिग्दर्शन है एक ओर वह शोषण के प्रतीक हैं दूसरी ओर होरी से संवेदना व्यक्त करके सहानुभूति दिखाना चाहते हैं।
- प्रेमचंद के विचारानुसार प्रगतिवादी चेतना का समर्थन करना ही संपन्न युग की मांग थी
- प्रवाहमयी सहज भाषा का प्रयोग हुआ है।
- प्रेमचंद की भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि का चित्रण देखने को मिलता है।
- यह यथार्थ है कि धूर्त, मक्कार व्यक्ति के व्यक्तित्त्व में भी मानवता के दर्शन होते हैं।
- रायसाहब अमरपाल सिंह द्वारा प्रेमचंद ने मानवतावादी भावना को प्रमुखता प्रदान की है।
- यह यथार्थ है कि धन के आवरण में लिप्त व्यक्ति में स्वच्छंदता, कुप्रवृत्तियाँ स्वतः आ जाती हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. धनिया का तिनके का सहारा कौन था?
2. किसानों की दुर्दशा का कारण क्या था?
3. रायसाहब अमरपाल के अनुसार दान धर्म का मूल उत्स क्या था?
4. अमीरों का स्वभाव कैसा होता है?
5. अमरपाल सिंह के अनुसार सुख का आधार क्या है?
6. मनुष्य के पतन का क्या कारण है?

यह सब कहने की बात हैं। हम लोग दाने–दाने को मोहताज हैं, देह पर साबित कपड़े नहीं हैं, चोटी का पसीना एड़ी तक आता है, तब भी गुजर नहीं होता। उन्हें क्या, मजे से गद्दी–मसनद लगाए बैठे हैं, सैंकड़ों नौकर–चाकर हैं, हजारों आदमियों पर हुकूमत है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : रायसाहब अमरपाल सिंह से मिलने के पश्चात् होरी अपने घर वापस आया। धनिया उत्सुकतावश पूछती है कि ठाकुर साहब से क्या बातें हुई, तो होरी बड़े आदमियों की विवशता पर प्रकाश डालता है कि बड़े व्यक्ति भी पीड़ित और व्यथित हैं। उन्हें भी हजारों चिंताएँ घेरे रहती हैं। गोबर होरी की इन बातों का खंडन करता है।

व्याख्या : होरी द्वारा जमींदारों के दुःखी होने की बात सुनकर प्रतिकार स्वरूप कहता है। यह सब दिखावा है केवल कहने भर को है। इसमें लेशमात्र भी सच्चाई नहीं है। दुःख तो गरीबों को होता है, उन्हें एक वक्त की रोटी के लिए बड़ी मशक्कत करनी पड़ती है। एक–एक आने को मोहताज रहते हैं। तन ढकने को कपड़ा नहीं मिलता। अथक परिश्रम करने पर भी गुजर नहीं हो पाती। जमींदार तो मजे से रहते हैं। मोटे–मोटे गद्दों पर निश्चिंत होकर सोते हैं। सैंकड़ों नौकर देखभाल में लगे रहते हैं। हजारों आदमियों पर अपना एक छत्र शासन करते हैं। उनकी धनलिप्सा कभी पूर्ण नहीं होती। धन के द्वारा सभी सुख–सुविधाओं को प्राप्त किया जा सकता है। धन के बिना जीवन की सार्थकता व्यर्थ ही रहती है।

विशेष :

- गोबर आधुनिक युवा वर्ग का प्रतीक है।
- गोबर द्वारा प्रेमचंद ने भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का उल्लेख किया है।

- गोबर द्वारा युवा वर्ग का आक्रोश मुखरित हुआ है।
- होरी की भाग्यवादिता का वर्णन किया गया है।
- यह यथार्थ है कि जमींदारों की कथनी और करनी में अंतर होता है।
- यह अवतरण जमींदारों की दोहरी मानसिकता को दर्शाता है।
- गरीब किसान की दृष्टि में धन सभी सुखों का मूल होता है।
- मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया गया है।
- उर्दू शब्दों का प्रयोग–मुहताज, साबित, गुजर, हुकूमत आदि के रूप में हुआ है।
- गोबर के प्रतिकार में होरी की पारिवारिक स्थिति का चित्रण किया गया है।
- कौन कहता है कि तुम आदमी हो। इसमें आदमियत कहाँ? आदमी वह है जिसके पास धन है, इख्तियार है, इलम है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं। उस पर कोई एक दूसरे को देख नहीं सकता। एक का नाम नहीं। एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े तो कोई जाफा कैसे करे, प्रेम तो संसार से उठ गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : होरी भोला अहौर से मिलकर उसकी सदाशयता की प्रशंसा करता है। भूसा देकर अपनी व्यवहार कुशलता का परिचय देता है। रास्ते में होरी और भोला युग के परिप्रेक्ष्य पर विहंगम दृष्टि से चिंतन करते हैं। होरी का मानना है कि गरीबों का जनम दूसरों की सेवा करने के लिए हुआ है। बड़े आदमियों पर कोई अंकुश नहीं है छोटे आदमियों पर तरह–तरह के प्रतिबंध हैं। भोला का मानना है कि हम छोटे आदमी कभी भी बड़े आदमियों की बराबरी नहीं कर सकते, क्योंकि हमें आदमी नहीं माना जाता।

व्याख्या : भोला कहता है कि कौन कहता है कि हम भी आदमी हैं। आज आदमी की परिभाषा बदल गई है। आदमी की पहचान का पैमाना संपत्ति माना जाता है। जिसके पास अधिकार जमाने की शक्ति है, जिसके पास उचित–अनुचित का निर्णय करने की क्षमता है। मनुष्यों को सोचने पर विवश करने की बहस का माद्दा है, वही बड़ा आदमी माना जाता है। छोटे व्यक्तियों को आदमी न मानकर बैल माना जाने लगा है। लगता है ईश्वर ने हमारा जन्म इनकी सेवा करने के लिए किया है। दिन रात बैल की तरह परिश्रम करते रहें। हमारी इस स्थिति के लिए हमारी आपसी फूट और विद्वेष की भावना उत्तरदायी है। हम आपस में लड़ते झगड़ते हैं। एक होकर रहना नहीं सीखा। हमारी आपसी वैमनस्य की प्रवृत्ति के कारण ही जमींदार अत्याचार करता आया है और हम मूक होकर सहन करते रहते हैं। एक किसान का खेत दूसरा किसान सहर्ष अपना लेता है। प्रेम का भाव समाप्त हो गया है। जब तक किसान संगठित होकर अपने लिए संघर्ष नहीं करेंगे तब तक उनको शोषण से मुक्ति संभव नहीं है।

विशेष :

- भोला का अनुभवी जीवनोद्‌गार व्यक्त हुआ है।
- आर्थिक विपन्नता का प्रभाव मनुष्य की जीवन शैली को बदल देता है।
- मनुष्यता की पहचान इंसानियत से न होकर धन दौलत, शक्ति ज्ञान एवं अहंकार से की जाने लगी।
- संगठन में शक्ति होती है। भोला के अनुसार आपसी वैमनस्य ही किसानों की दुर्दशा का मूल कारण है। पारस्परिक मतभेद के बीच प्रेम का परिपक्व होना असंभव है।

- बैल होने से तात्पर्य मंदबुद्धि से है।
- विदेशी भाषा के शब्दों को प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है, जैसे–आदमी, इख्तियार, इलम, आदमियत आदि।
- वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्याह का प्रखर ताप आता है, क्षण–क्षण पर बगुले उठते हैं और पृथ्वी कांपने लगती है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय संध्या आती है शीतल और शांत, जब हम थके हुए पथिक की भांति दिनभर यात्रा का वृतांत कहते और सुनते हैं तटस्थ भाव से, मानो हम किसी ऊंचे शिखर पर जा बैठे हैं जहाँ नीचे का जानवर हम तक नहीं पहुँचता।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : दमड़ी बसोर को सस्ते दाम में बेच देने के कारण पुन्नी हीरा से झगड़ती है। परिणाम स्वरूप पिटती है लेकिन तत्क्षण पति के साथ खेत पर भी चली जाती है। होरी पुन्नी की प्रशंसा करता है तो धनिया हीरा की। उसे (पति) होरी की सज्जनता पर क्रोध आता है। होरी और धनिया के वैवाहिक जीवन का वर्णन दिन से तुलना करते हुए लेखक कहता है।

व्याख्या : लेखक के अनुसार वैवाहिक जीवन का प्रारंभ उषाकाल के समान अनेक प्रकार के सुख का संचार शांति लेकर आता है। जिस प्रकार प्रातःकाल की बेला मनुष्यों में नवीन स्फूर्ति का संचार करती है, समस्त अंधकारमय वातावरण को तिरोहित कर देती है, चारों और सूर्य के प्रकाश से दिशाएँ जगमगा जाती हैं, उसी प्रकार वैवाहिक जीवन का आरंभ भी एक प्रकार से मस्ती भरा आनंदमय होता है। जीवन में हर्ष, उल्लास का वातावरण देखने को मिलता है। वर–वधू का हृदय रूपी आकाश गुलाबी मादकता से भरा होता है। नाना इच्छाओं का जन्म नवीन कल्पनाओं की सृष्टि करता है। युगल को यह विश्वास रहता है कि हमारे जीवन में सदैव ऐसी ही आनंदमय छटा छाई रहेगी। प्रेमयुक्त हृदय जब मिलते हैं तो समस्त चिंताएँ भोग आनंद के सामने तुच्छ सी लगती हैं। जिस प्रकार प्रातःकाल का सूर्य दोपहर के समय अपने चरमोत्कर्ष पर आग उगलता है, तो वातावरण तापमय हो जाता है। प्रातःकाल की रंगीन किरणें अग्निवाणों की वर्षा करती हैं। लू चलने लगती हैं। चारों ओर धूल भरी तेज हवाएँ भी चलने लगती हैं। प्रातःकाल की लालिमा छट जाती है। गृहस्थ जीवन में पड़कर उत्तरदायित्व का बोध बढ़ने लगता है। मानव आनंदमयी बेला को त्यागकर जीवन के संघर्ष युक्त वातावरण में कूद पड़ता है। तब उसका सामना संघर्षों की बेला से होता है। अथक परिश्रम ही उसकी प्रगति का मूलाधार होता है। जीवन की वास्तविकता सामने आकर खड़ी हो जाती है। कभी–कभी तेज गर्मी के समान नव दंपत्ति का जीवन भी डगमगाने लगता है। वैवाहिक जीवन का तीसरा चरण विश्राममय संध्या से शुरु होता है। ऐसे समय में क्लांत पथिक की भांति विश्राम करने को उत्सुक होता है। उसके जीवन का तीसरा चरण विश्रामयमी संध्या के रूप में सामने आता है। संघर्ष का चरण समाप्त हो जाता है। अपने विगत जीवन की गतिविधियों पर परिचर्चा करने में व्यस्त हो जाता है। किस प्रकार उसने बाधाओं पर विजय प्राप्त की। पुरानी बातें उसमें आनंद का संचार करती हैं। वह उस व्यक्ति के समान होता है जो पर्वत के ऊंचे शिखर पर बैठकर नीचे घटित होने वाली घटनाओं को देख रहा हो।

विशेष :

- दाम्पत्य जीवन का चित्रण दिन के सांगरूपक द्वारा चित्रित किया गया है।
- वैवाहिक जीवन के मधुर एवं कटु दोनों अनुभवों का संयोग दर्शाया गया है।

- अप्रत्यक्ष रूप से होरी के जीवन का तीसरा चरण व्यक्त हुआ है।
- व्याख्यात्मक एवं तत्सम प्रधान भाषा का प्रयोग हुआ है।
- संगरूपक अलंकार एवं उत्प्रेक्षा अलंकार का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।
- भावात्मक शैली एवं अलंकारिक शैली प्रयुक्त हुई है।
- छायावादी शैली का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।
- सूर्य को जीवन के संघर्ष का प्रतीक माना गया है।
- द्वेष का मायाजाल बड़ी–बड़ी मछलियों को ही फंसाता है। छोटी मछलियाँ या तो उसमें फंसती ही नहीं या तुरंत निकल जाती हैं। उनके लिए यह घातक जाल क्रीड़ा की वस्तु है, भय की नहीं। भाइयों से होरी की बोलचाल बंद थी, पर रूपा दोनों घरों में आती–जाती थी। बच्चों से क्या बैर।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरा अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : होरी के घर गाय आई तो सारा गांव गाय देखने आया। होरी के भाई हीरा और शोभा नहीं आए। धनिया कहने लगी कि तुम्हारे भाई बैर रखते हैं। धनिया के हटने पर होरी ने छोटी बेटी रूपा को भाइयों के घर भेजा कि शोभा और हीरा को उंगली पकड़कर ले आए। रूपा उछलती कूदती चली गई। उसके हृदय में कोई द्वेष की भावना न थी। बच्चे का हृदय निर्मल होता है।

व्याख्या : प्रेमचंद्र ने बड़े मनुष्यों और बच्चों के स्वभाव चरित्र का अंतर स्पष्ट करते हुए कहा है कि बड़े मनुष्यों में द्वेष, प्रतिकार की भावना अधिक पाई जाती है। छोटे बच्चे इन दुर्गुणों से मुक्त रहते हैं। जिस प्रकार जाल से बड़ी मछलियाँ ही फंसती हैं छोटी नहीं फंसती, ठीक उसी प्रकार बड़े मनुष्यों में ईर्ष्या होती है। छोटे बच्चे निर्मल आत्मा के होते हैं। उन पर इसका क्षणिक प्रभाव पड़ता है। उनके लिए यह व्यवहार खेल की वस्तु है। होरी के भाईयों में पारस्परिक मनमुटाव था। धनिया भी झगड़ती थी। किन्तु रूपा तो छोटी बच्ची थी, वह अपने परिवार में आती जाती थी। हीरा और शोभा से कोई द्वेष न था। रास्ते में धनिया के मिलने पर रूपा को वापस आना पड़ा।

विशेष :

- ईर्ष्या, द्वेष का प्रभा बड़ों पर होता है छोटे बच्चों पर नहीं।
- यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह दूसरे के सुख से दुःखी होता है। शोभा और हीरा भी इसी प्रवृत्ति के शिकार थे।
- यहाँ पर धनिया की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया है, जो प्रतिकार एवं स्वाभिमान स्वरूप रूपा को रास्ते से वापस ले आती है।
- इस अवतरण से होरी के पारिवारिक विघटन का पता चलता है।
- ईर्ष्या द्वेष विकार है, इसीलिए प्रेमचंद ने इन्हें मायाजाल कहा है।
- शुद्ध हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- अलंकारिक शैली एवं प्रतीकात्मक शैली प्रयुक्त की गई है।

- रूपक अलंकार का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत हुआ है।
- उनकी दृष्टि में अभी उसके योवन में केवल फूल लगे थे। जब तक फल न लग जाए, उन पर ढेले फेंकना व्यर्थ की बात थी ओर किसी ओर से प्रोत्साहन पाकर उसका कौमार्य उसके गले मं चिपटा हुआ था। झुनिया का वंचित मन, जिसे भाभियों के व्यंग्य और ह्रास–विलास ने और भी लालूप बना दिया था। उसके कौमार्य ही पर ललचा उठा। और उस कुमार में भी पत्ता खड़कते ही किसी सोये हुए शिकारी की तरह यौवन जाग उठा।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : गोबर सोलह–सत्तरह वर्ष का युवक था। गांव की प्रथानुसार वह लड़कियों को बहन मानता था, कोई उससे छेड़–छाड़ भी नहीं कर पाता था। भाभियों की दृष्टि में वह अभी छोटा ही था। जब से भोला अहीर के यहाँ गाय के संदर्भ में गोबर को जाने का अवसर मिला तो झुनिया से ह्रदय की बातें हुई, फलस्वरूप गोबर के ह्रदय में सहज अनुराग का जन्म होने लगा।

व्याख्या : मुंशी प्रेमचंद, इसी विषय का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि बागवान तब तक प्रतीक्षा करता है जब तक कि फूल झड़कर फल न बन जाएँ। उसी प्रकार गांव की भाभियाँ भी गोबर को नासमझ समझती थीं क्योंकि गोबर में परिपक्वता के लक्षण नहीं थे। नारी वर्ग से मिलने वाली उपेक्षा से गोबर का मन भी अनासक्त भाव रखता था। इसीलिए वह कुंवारा ही था जबकि दसरी और झुनिया इस आनंद सागर में डुबकी लगा चुकी थी। समय–समय पर भाभियों द्वारा छेड़खानी करने पर आनंद का अनुभव करती थी। उसने गोबर के कौमार्य से आकृष्ट होकर उसे अपने जाल में फंसाना चाहा, वह सफल भी रही। गोबर के सूने ह्रदय में भी प्रेम का सागर हिलोरे मारने लगा। जिस प्रकार शिकारी जानवर पत्ता खड़कते ही जाग जाता है उसी प्रकार गोबर ने शिकारी जानवर की भांति झुनिया के आमंत्रण को स्वीकार कर लिया।

विशेष :

- गोबर झुनिया के पारस्परिक आकर्षण का चित्रण है।
- स्वस्थ्य शरीर प्रथम सुख होता है। झुनिया भी गोबर के कौमार्य पर रीझकर अपने जाल में फंसा लेती है।
- प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया है।
- मुहावरेदार सरल हिन्दी का प्रयोग है।
- जीवन के दिन सुन्दर होते हं उसमें अनेक कल्पनाओं एवं उद्‌भावनाओं का जन्म लेना स्वाभाविक है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. गोबर के अनुसार सुख का आधार क्या है?
2. मनुष्य की पहचान का आधार क्या है?
3. वैवाहिक जीवन की तुलना किससे की गयी है?
4. द्वेष का मायाजाल किसको फंसाता है?
5. मनुष्य की तुलना किससे की गई है?
6. मातादीन धर्म की दुहाई देकर किसे फंसाना चाहता है?

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग : रायसाहब अमरपाल सिंह, मि. तन्खा, और पं0 ओंकारनाथ में पारस्परिक वार्तालाप चल रहा है। अमरपाल सिंह की कथनी और करनी में अंतर है। बाहरी रूप से किसानों के साथ व्यवहारिकता का परिचय देकर प्रशंसा बटोरना चाहते हैं वहीं दूसरी ओर किसानी का शोषण करने मे जरा भी हिचक का अनुभव नहीं होता। प्रो0 मेहता रायसाहब अमरपाल सिंह के इस दोगले व्यवहार से खिन्न है, अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए कहते हैं।

व्याख्या : मि. तन्खा रायसाहब अमरपाल सिंह की प्रशंसा करते हैं उन्हें साम्यवादी बताकर कहते हैं जबकि प्रो0 मेहता की दृष्टि में यह उचित नहीं है। प्रो0 मेहता रायसाहब की दिखावे की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए कहते हैं कि किसानों का शोषण करना और पीठ पीछे उनसे सहानुभूति प्रदर्शित करना मनुष्य के दोगले व्यक्तित्व का द्योतक है। उनका मानना है कि साम्यवाद और रइसी एक दूसरे के विपरीत हैं। दोनों का एक साथ पालन करना संभव नहीं है। हमें अपने आचरण को सिद्धांतानुसार ढालना चाहिए। बाहरी दिखावा ढोंग मात्र है। उदाहरण देकर समझाते हैं कि मांस भक्षण बुरा नहीं है, हाँ खाकर उसे बुरा कहना उससे अधिक घातक है। जीवन में पारदर्शिता अपनानी चाहिए। अच्छा समझकर छिपकर खाना श्रेयस्कर नहीं। ऐसा करना कायरता का सूचक है, साथ ही मक्कारी एवं धूतर्तता का सूचक भी है।

विशेष :

- प्रेमचंद का जीवन दर्शन व्यक्त हुआ है।
- साम्यवादी व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है।
- प्रो0 मेहता की चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण किया गया है।
- रायसाहब अमरपाल सिंह के दोहरे व्यक्तित्व का चित्रण किया गया है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- मुहावरेदार भाषा का प्रयोग हुआ है।
- साम्यवाद के लिए विचारों एवं करनी में एकरूपता का होना आवश्यक है।
- मैं स्वीकार करता हूँ कि किसी को भी दूसरे के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नहीं है। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। कर्म करना प्राणी मात्र का धर्म है। समाज को ऐसी व्यवस्था जिसमें कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसें और खपें, कभी सुखद नहीं हो सकती। पूंजी और शिक्षा जिसे मैं पूंजी का ही एक रूप समझता हूँ। इनका किला जितनी जल्दी टूट जाए, उतना ही अच्छा है। जिन्हें पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उनके अफसर और नियोजक दस–दस, पाँच–पाँच हजार फटकारें। यह हास्यास्पद और लज्जास्पद भी है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : रायसाहब अमरपाल सिंह अपने व्यक्तित्व निर्माण की पृष्ठभूमि में अपने पारिवारिक प्रभाव को महत्वपूर्ण मानते हैं। अपने पिता के व्यवहार का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि मेरे पिता किसानों के देवता कहलाते थे। प्रजा का पालन करना सर्वोपरि समझते थे। इसके साथ ही अधिकार के नाम पर एक कौड़ी भी किसानों पर छोड़ना पाप समझते थे। इसका प्रभाव मेरे जीवन पर भी पड़ा है। लेकिन किसानों की खुशहाली के लिए उन्हें अधिकार प्रदान

करने पड़ेंगे। सद्भावना के आधार पर उनकी दशा सुधरने वाली नहीं। कानून के द्वारा ही हम मानवीय आचरण करने को बाध्य होंगे।

व्याख्या : अमरपाल सिंह अपनी मनोदशा को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए कर्म करना आवश्यक है। दूसरे के श्रम पर जीवन जीना सार्थक नहीं है। उपजीवी जीवन जीना शर्म एवं संकोच का प्रतीक है। यह धरती कर्मप्रधान है। कर्मानुसार फल का मिलना स्वाभाविक है। कर्मानुसार फल का मिलना स्वाभाविक है। परिश्रम द्वारा अर्जित संपत्ति में आनंद का अनुभव होता है। आत्मिक शांति मिलती है। समाज में स्थापित व्यवस्था में परिवर्तन अपेक्षित है तभी प्रत्येक व्यक्ति आत्मबंधन के लिए विवश होगा। चंद मुट्ठी भर लोग परिश्रम करें और बड़ा वर्ग उन पर आश्रित होकर अपनी मौज मस्ती में व्यस्त रहे यह श्रेयस्कर नहीं है। इस व्यवस्था को पल्लवित करने में पूंजी और शिक्षा की अल्प भूमिका रही है। पूंजी ने वर्गीय भावना को पैदा किया है, शिक्षा बौद्धिक स्तर पर भेद को पैदा करने में सक्रिय रही है। इनका किला जितनी जल्दी समाप्त/टूट जाए तो उतना ही श्रेयस्कर है। एक ओर परिश्रम करने वाला वर्ग दो–दो दानों की मोहताज रहे और दूसरा उसी वर्ग के सहारे दस–दस, पाँच–पाँच हजार रुपयों को डकार जाए। यह स्थिति जितनी हास्यास्पद है उतनी ही लज्जायुक्त भी है।

विशेष :

- अमरपाल सिंह की भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि का वर्णन किया गया है।
- दर्शाया गया है कि परिश्रम करना प्राणीमात्र का धर्म है।
- समाज में पल्लवित पूंजी व्यवस्था एवं शिक्षात्मक व्यवस्था का चित्रण किया गया है।
- पूंजीवादी व्यवस्था की समाप्ति के लक्षणों का वर्णन है।
- वर्गीय भावना के दुष्प्रभावों का वर्णन किया गया है।
- रायसाहब की वैचारिकता, व्यवहारिकता का सजीव वर्णन है।
- प्रेमचंद के माउथपीस के रूप में अमरपाल सिंह को चित्रित किया गया है।
- आत्मनिर्भरता सम्मानित जीवन जीने के लिए आवश्यक है।
- गीता में भी कर्म की महत्ता प्रतिपादित की गई है।
- रामचरितमानस में कर्म की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है–

  कर्म प्रधान विश्व रचि राका
- सामान्य व्यवहार में भी कर्म की उपयोगिता प्रतिपादित की गई है–

  कर्मों की खेती है जगती, जैसी जिसने बोई

  देवों का भी कर्म नियन्ता एक और गत होई।
- परिनिष्ठित हिंदी प्रयोग की गई है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

- धन को आप बराबर फैला सकते हैं लेकिन बुद्धि को, चरित्र को, और रूप को प्रतिभा को और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति के बाहर है। छोटे–बड़े का भेद केवल धन से ही तो नहीं होता। मैंने बड़े–बड़े धन कुबेरों को भिक्षुकों के सामने घुटने टेकते देखा है और आपने भी देखा होगा। रूप की चौखट पर बड़े–बड़े महीप नाक रगड़ते हैं। क्या यह सामाजिक विषमता नहीं? आप रूस की मिसाल देंगे। वहाँ इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राज कर्मचारियों का रूप ले लिया है। बुद्धि तब भी राज करती थी अब भी करती है ओर हमेशा करेगी।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अकर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : प्रो0 मेहता और संपादक ओंकारनाथ में युगीन व्यवस्था पर विचार–विमर्श चल रहा है। प्रो0 मेहता का मानना है कि छोटे–बड़े हमेशा रहेंगे, जबकि ओंकारनाथ इस व्यवस्था के विरोधी हैं, उनका मानना है कि बीसवीं सदी में ऊंच–नीच की भावना का समर्थन करनायुगानुरूप नहीं है।

व्याख्या : प्रो0 मेहता का मानना है कि समाज में एक रूपता का होना संभव नहीं है। ऊँच नीच की भावना हमेशा से रही है और रहेगी। प्रयत्न करने पर भी इस व्यवस्था में परिवर्तन संभव नहीं है। संपत्ति का विभाजन तो संभव है, लेकिन विचारों का सम्मान होना संभव नहीं। बुद्धि का समान वितरण संभव नहीं है। चरित्र को समानता प्रदान करना दुष्कर है। रूप, प्रतिभा और शक्ति की समानता का होना असंभव है। केवल धन के आधार पर एकरूपता नहीं की जा सकती। बड़े–बड़े कुबेर भिक्षुओं के सामने असहाय नज़र आते हैं, रूप का आकर्षण किसे विचलित नहीं करता। बड़े महात्मा, योगी का सत् भी रूप के सामने डगमगा जाता है। सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए विषमता अपेक्षित है। रूप का उदाहरण व्यर्थ है। यहाँ भी बौद्धिक चेतना की प्रधानता पाई जाती है। बुद्धि की समानता मनुष्य की सामर्थ्य से परे है।

विशेष :

- प्रेमचंद ने यहाँ पर साम्यवादी व्यवस्था पर प्रकाश डाला है।
- सभी वर्गों की समानता करना संभव नहीं है।
- मनुष्य की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख है।
- प्रो0 मेहता की दृष्टि में बौद्धिक चेतना सर्वोपरि है।
- सरल हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- विवेचनात्मक शैली प्रयोग में लाई गई है।
- बुद्धि अगर स्वार्थ से मुक्त हो, तो हमें उसकी प्रभुता मानने में कोई आपत्ति नहीं। समाजवाद का यही आदर्श है। हम साधु–महात्माओं के सामने इसीलिए सिर झुकाते हैं, कि उनमें त्याग का बल है। इसी तरह हम बुद्धि के हाथ में अधिकार भी देना चाहते हैं, सम्मान भी नेतृत्व भी लेकिन संपत्ति किसी तरह की नहीं। बुद्धि का अधिकार और सम्मान व्यक्ति के साथ चला जाता है। लेकिन उसकी संपत्ति विष बोने के लिए, उसके बाद और भी प्रबल हो जाती है। बुद्धि के बिना किसी समाज का संचालन नहीं हो सकता। हम केवल इस बिच्छू का डंक तोड़ देना चाहते हैं।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग : रायसाहब अमरपाल सिंह प्रो0 मेहता के आदर्शों से प्रसन्न नहीं है अपनी मनोदशा व्यक्त करते हुए अमरपाल सिंह कहते हैं।

व्याख्या : प्रो0 मेहता के विचारानुसार सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन संभव नहीं है, क्योंकि बुद्धि का विभाजन नहीं किया जा सकता। अमरपाल सिंह का मानना है कि बुद्धि अगर स्वार्थ से युक्त होती है तो विवेक का क्षय निश्चय है। समाजवाद भी बुद्धि का लोहा मानता है तभी उसका यथोचित लाभ संभव है अन्यथा नहीं। शोषण, बेइमानी, अत्याचार और भ्रष्टाचार में बुद्धि का प्रयोग होने लगता है तो बुद्धि स्वीकार्य नहीं। साधु संतों का सम्मान उनकी त्याग भावना एवं सदाशयता के कारण होता है। मानवता तभी जीवित रहती है जब तक कि उसमें त्याग प्रवृत्ति का अंश हो। मानव के दुर्गुणों का जन्म संपत्ति की कोख से होता है। उसका पतन भी इन्हीं कारणों से अवश्यंभावी है। बुद्धि सम्पन्न मानव का सम्मान होना स्वाभाविक है। उसका यह सम्मान उसके जीवन तक संभव है। जबकि धनवान व्यक्ति अपने साथ यश तो ले जाता है, लेकिन अपने पीछे विवाद छोड़ जाता है। पारस्परिक झगड़ों का जन्म स्वतः होने लगता है। इसलिए संपत्ति रूपी बिच्छू का डंक तोड़ना आवश्यक है। बुद्धि से ही समाज का संचालन संभव है।

विशेष :

- रायसाहब का बुद्धिचातुर्य दर्शाया गया है।
- ज्ञात होता है कि विपत्तियों का जन्म संपत्ति की नीड़ से होता है।
- संपत्ति का वर्चस्व समाप्त करने के पीछे लेखक की समाजवादी भावना की अभिव्यक्ति की गई है।
- व्यक्ति के लिए यश की प्राप्ति बुद्धि से अधिक प्रभावशाली होती है।
- व्यक्ति की मृत्यु के साथ उसका प्रभुत्व भी स्वतः समाप्त हो जाता है।
- मनवता का जन्म ईमानदारी, त्याग, सहानुभूति से होता है।
- पूंजीवाद की समाप्ति की भविष्यवाणी व्यक्त की गई है।
- रूपक अलंकार का धनरूपी बिच्छू के रूप में प्रयोग हुआ है।
- मुहावरेदार भाषा (सरल हिंदी) प्रयोग में लाई गई है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- गांधीवादी दर्शन की अभिव्यक्ति है।
- प्रेमचंद की प्रगतिशील विचारधारा का वर्णन किया गया है।
- कबीरदास ने माया को महाठगिनी कहकर संबोधित किया है।
- विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ, और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुषों को है और न ही स्त्री को। समझौता करने से पहले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : मनुष्य की पूर्णता नारी के संसर्ग से ही संभव है, यह संसर्ग विवाह संस्कार द्वारा ही प्राप्त होता है। प्रो0 मेहता विवाह को बंधन मानते हैं। मि0 खन्ना के विचार भी इसका समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि बंधन और निग्रह पुराने विषय हैं नए विषय उन्मुक्त विचरण का बोध कराते हैं। मालती प्रो0 मेहता से विवाह के विषय पर

विचार जानना चाहती है। उनका मानना है कि बंधन और निग्रह पुराने विषय हैं नए विषय उन्मुक्त विचरण का बोध कराते हैं। मालती प्रो0 मेहता से विवाह के विषय पर विचार जानना चाहती है।

व्याख्या : प्रो0 मेहता का मानना है कि विवाह समझौते का विकसित स्वरूप है। बिना सोचे समझे विवाह की परिणति अलगाव के रूप में देखने को मिलती है। पारस्परिक सहमति से किया गया विवाह सफल होता है। दोनों के लिए इस संस्कार का जीवनपर्यंत निर्वाह भी करना आवश्यक है। इसको तोड़ने (विच्छेद) का अधिकार किसी को नहीं है। स्वतंत्रता केवल समझौते से पूर्व ही होती है तत्पश्चात् उसका पालन करना आवश्यक है।

विशेष :

- प्रो0 मेहता संस्कारी जीवन में विश्वास करते हैं, इसीलिए विवाह संस्कार का पालन करना अपेक्षित समझते हैं।
- समझौते से मुस्लिम विवाह का समर्थन करते हैं।
- विवाह 8 प्रकार के माने गए हैं।
- विवाह के लिए पूर्व सहमति का होना समाज की आधारशिला का सूचक है।
- लेखक के अनुसार विवाह विच्छेद करना सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से त्याज्य है।
- इस स्वच्छंद जीवन से उनके मन में अनुराग उत्पन्न हुआ। सामने की पर्वतमाला दर्शन तत्त्व की भांति अगम्प और अत्यंत फैली हुई, मानों ज्ञान का विस्तार कर रही हो, मानों आत्मा उस ज्ञान को, उस प्रकाश को, उस अगम्यता को, उसके प्रत्यक्ष विराट रूप में देख हरी हो। दूर के एक बहुत ऊंचे शिखर पर एक छोटा सा मंदिर था जो उस अगम्यता में बुद्धि की भांति ऊंचा, पर खोया हुआ सा खड़ा था। मानों वहाँ तक पर मारकर पक्षी विश्राम लेना चाहता है और कहीं स्थान नहीं पाता।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : शिकार खेलते समय प्रो0 मेहता का परिचय एक ग्रामीण युवती से हुआ, जिसकी स्वच्छंता, भोला स्वभाव उसे प्रभावित कर गया। उस ग्रामीण युवती की निर्भीकता एवं निश्छलता मन को भा गई। अपने उन्मुक्त प्रवृत्ति का परिचय देते हुए प्रो0 मेहता कहते हैं–

व्याख्या : प्रो0 मेहता पीपल वृक्ष के नीचे निश्चिंत होकर अपने आंतरिक पक्ष पर दृष्टिपात करने लगे। उनके खाली जीवन में अनुराग का उदय होने लगा। उसके सम्मुख विशाल पर्वतों की चोटियाँ किसी दार्शनक की भांति गंभीरता का बोध करा रही थी, ऐसा लगता था मानो वह ज्ञान का विस्तार कर रही हों। उसकी अंतरात्मका उस ज्ञान को आत्मसात करने को उत्सुक थी। उस अलौकिक प्रकाश का आनंद ले रही थी। गंभीरता अपने प्रत्यक्ष रूप में सामने व्यक्त हो रही थी। दूरी पर स्थित ऊंचे शिखर पर बना मंदिर आकर्षण का केंद्र था, जिससे बुद्धि का प्रकाश चहुँ ओर फैला हुआ था। प्रो0 मेहता की स्थिति उस थके पक्षी के समान थी जो विश्राम के लिए व्यग्र था, क्योंकि उसको अन्यत्र जाना दुष्कर था।

विशेष :

- प्रो0 मेहता का दार्शनिक व्यक्तित्त्व मुखरित हुआ है।
- कथात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है।

- उपमा, रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
- दर्शन का क्षेत्र व्यापकता की अपेक्षा रखता है।
- प्रो0 मेहता ने अपनी तुलना पक्षी से की है।
- अलंकारिक शैली की प्रधानता है।
- धनिया का यह मातृ स्नेह उस अंधेरे में भी जैसे दीपक के समान उसको चिंता–जर्जर आकृति की शोभा प्रदान करने लगा। दोनों ही के हृदय में जैसे अतीत यौवन सचेत हो उठा। गोरी को इस बीते–योवन में भी वहीं कोमल हृदय बालिका नजर आई, जिसने पच्चीस साल पहले उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस आलिंग्न में कितना अथाह वात्सल्य था जो सारे कलंक सारी बाधाओं और सारी मूलबद्ध परंपराओं को अपने अंदर समेट लेता है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : गोबर भोला अहीर की पुत्री झुनिया को गर्भवती बनाकर घर से निकल जाता है। होरी और धनिया पुत्र गोबर की हरकतों से दुःखी है। उनकी सामाजिक मर्यादा भंग हो गई। अवशेष इज्जत भी समाप्त हो चली थी। धनिया होरी (पति) को झुनिया के प्रति विनम्र व्यवहार करने की सलाह देती है कि तुम झुनिया पर कभी हाथ न उठाना। उसका भाग्य ही खोटा है।

व्याख्या : धनिया की स्नेहमयी वाणी को सुनकर होरी का हृदय बदल गया। उफनता क्रोध विलुप्त होने लगा था। धनिया की मृदुल मुस्कान ने होरी को पच्चीस वर्ष पूर्व के वैवाहिक क्षणों की स्मृतियों में पहुंचा दिया। स्वयं होरी भी उस अतीत की कल्पना में डूब गया। धनिया के स्नेह ने होरी के अंधेरे जीवन में आशा का संचार कर दिया। उसकी मृदुमयी सलाह ने दीपक के समान होरी को न्याय का रास्ता दिखाया। दोनों अपने अतीत की यादों में खो गए। होरी को झुनिया आज वही पच्चीस वर्ष पूर्व की बालिका नजर आ रही थी, जिसने उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस पूर्व आलिंग्न में अथाह वात्सल्य का सागर उमड़ रहा था, जिसके सामने समाज के सभी कलंक, सारी बाधाएँ तिरोहित होती नजर आ रही थीं।

विशेष :

- धनिया की नारी सुलभ जिज्ञासाओं का वर्णन है।
- धनिया की प्रेरणा ने होरी की मनःस्थिति को बदल दिया।
- धनिया का झुनिया की दशा को देखकर द्रवित होना स्वाभाविक है।
- वैवाहिक जीवन के क्षण मनुष्य को कभी न विस्मृत होने वाले क्षण होते हैं।
- यह यथार्थ है कि मनुष्य अतीत की मधुर स्मृतियों के सहारे वर्तमान को सुखद बताता है।
- गोबर की उत्तरदायित्वहीनता का वर्णन है।
- दीपक के समान–उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
- आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।
- शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. प्राणी मात्र का धर्म क्या है?
2. समाज के विकास का आधार क्या है?
3. सुखी वैवाहिक जीवन का आधार क्या है?
4. लोकतंत्र के पतन का क्या कारण है?
5. धनिया के क्रोध का आधार क्या था?
6. धनिया के मातृत्व की तुलना किससे की जाती है?

• मेहरिया रख लेना पाप नहीं है, हाँ राह में छोड़ देना पाप है। आदमी का बहुत सीधा होना भी बुरा है। उसके सीधेपन का फल यही होता है कि कुत्ते भी मुंह चाटने लगते हैं। आज उधर तुम्हारी वाह–वाह हो रही होगी, कि बिरादरी की कैसी मरजाद रा ली। मेरे भाग्य फूट गए थे कि तुम जैसे मर्द से पाला पड़ा था। कभी सुख की रोटी न मिली।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : होरी को घर आने में देर हो गई तो धनिया देरी का कारण पूछती है, होरी इस विपत्ति का उत्तरदायी गोबर को मानता है। पंचायत ने दंड देकर मेरा हुक्का पानी बंद कर दिया है तो धनिया कहती है कि हुक्का–पानी न पीते तो क्या दुबल हो जाते? होरी धनिया को बिरादरी के दुष्परिणामों से अवगत कराता है कि बिरादरी के आगे किसी की नहीं चलती।

व्याख्या : धनिया (पति) होरी की सदाशयता एवं भोलेपन से दुःखी उसका मानना है कि जब कोई चोरी नहीं की तो कैसा डरना? किसी का माल नहीं उड़ाया। मेहरिया को रख लेना पुण्य का कार्य है। उसे छोड़कर मैं पाप की भागीदार नहीं बनना चाहती। लेकिन यह पंचों की नीचता है कि मेहरिया को घर में रखने पर दंड लगाने पर अमादा हैं। तुम सीधे हो, आदमी का सीधापन उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता है, इसीलिए हमें भी तुम्हारे सीधेपन का दुष्परिणाम झेलना पड़ रहा है। अधिक सीधा होने पर कुत्ता भी मुंह चाटता है। तुम्हें कर्ज में डुबोकर प्रशंसा कर रहे हैं, कि होरी ईमानदार है, वफादार है, मेरे भाग्य में ही ऐसा लिखा था कि मेरा तुम्हारे साथ विवाह लिखा था, आज तक कभी सुख एक रोटी भी न मिली।

विशेष :

- धनिया के उद्‌गार होरी की आर्थिक स्थिति का चित्रण करते हैं।
- धनिया का स्वाभिमान अभिव्यक्त किया गया है।
- होरी की निर्मल आत्मा एवं स्वभाव का वर्णन है।
- मेहरिया से आशय (पत्नी) से है।
- यह अवतरण शोषण को सचित्र उपस्थित करता है।
- मुहावरेदार भाषा का प्रयोग हुआ है, जैसे–मुंह चाटना, भाग फुटना आदि।
- मर्द, मरजाद, आदमी आदि उर्दू शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

- आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।

झुनिया किसी वियोगी पक्षी की भांति अपने छोटे से घोंसले में एकांत जीवन काट रही थी। वहाँ नर का मस्त आग्रह न था, न उद्दीप्त उल्लास, न शावकों की मीठी आवाजें मगर बेहलिया का जाल और छल भी तो वहाँ न था। गोबर ने उसके एकांत घोंसले में जाकर उसे कुछ आनंद पहुंचाया या नहीं कौन जाने पर उसे विपत्ति में तो डाल ही दिया। वह संभल गया। भागता हुआ सिपाही मानो अपने साथी का बढ़ावा सुनकर पीछे लौट पड़ा।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : गोबर ने झुनिया के गर्भवती होने पर उसे अपने घर ले जाकर छोड़ दिया। माँ–बाप के डर से छिपकर देखा कि झुनिया को घर प्रवेश मिल गया है तो स्वयं शहर भाग गया। झुनिया के साथ बिताया समय उसकी आंखों के सामने आने लगा। उपन्यासकार ने गोबर की इसी मनःस्थिति का वर्णन करते हुए कहा –

व्याख्या : गोबर को झुनिया के साथ बिताए क्षण रह–रहकर आंखों के सामने आने लगे। उसने झुनिया से प्रेम और विवाह की जो कसमें खाई थी, सब याद आने लगीं। वह उस मिलन की घड़ी में अपने प्राणों का उत्सर्ग करने को भी तैयार रहता था अर्थात् पूर्ण समर्पण व्यक्त करता था। इधर झुनिया ने वैधव्य जीवन में बिताए पल वियोगी पक्षी की भांति व्यतीत किए थे। उसके जीवन में मनुष्य का आग्रहपूर्ण व्यवहार न था। चारों ओर वीरानी दिखाई देती थी। प्रसन्नता के नाम पर पक्षियों का चहचहाट भी न था, न कोई उल्लास व उमंग थी। यहाँ तब बहेलिया का यह कपटपूर्ण व्यवहार भी न था। ऐसे वियोगी जीवन में कुछ समय के लिए आनंदमय वातावरण की सृष्टि की, वह भी क्षणिक थी पर उस क्षणिक आनंद में विपत्ति के अथाह सागर में अवश्य गिरा दिया था जहाँ से निकलना दुष्कर था। गोबर को अपने किए पर पछताप था वह उसे विपत्ति की घड़ी से निकालने को उत्सुक था। वह उसे भोला के भाइयों के दुर्व्यवहार से बचाकर ले आया था। वह सिपाही की भांति वापस आकर छिपकर झुनिया की स्थिति को देखना चाहता था। पूर्ण आश्वस्त होने पर ही वह शहर गया था।

विशेष :

- गोबर के अंर्तद्वन्द्व का चित्रण है।
- गोबर का पश्चाताप दृष्टव्य है।
- गोबर आधुनिक वर्ग का प्रतीक है इसीलिए उसने विधवा झुनिया को आश्रय प्रदान कर परोपकार के साथ सुधारवादी दृष्टिकोण भी व्यक्त किया है।
- शृंगार रस का सफल चित्रण किया गया है।
- वियोगी पक्षी की भांति–उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
- भागता हुआ सिपाही मानों–उत्प्रेक्षा अलंकार प्रयुक्त हुआ है।
- शुद्ध साहित्यिक सरल हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

मेरे जहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपने बेजुबानी से, अपनी कुर्बानी से अपने को बिल्कुल गिराकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है, पर आत्मा स्त्री की होती है। आप कहेंगे, मर्द अपने को क्यों नहीं मिटाता? औरत से ही क्यों इसकी आशा करता है? मर्द में वह सामर्थ्य ही नहीं है।

वह अपने को मिटाएगा, तो शून्य हो जाएगा। वह किसी खोह में जा बैठेगा, और सर्वात्मा में मिल जाने का स्वप्न देखेगा। वह तेज प्रधान जीव है और अंधकार में यह समझकर कि ज्ञान का पुतला है, सीधा ईश्वर में लीन होने की कल्पना किया करता है। स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान है, शांति सम्पन्न है, सहिष्णु है, पुरुष नारी में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बुद्ध बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाएँ तो वह कुलटा हो जाती है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : मिर्जा खुर्शीद द्वारा आयोजित कबड्डी आयोजन में प्रो0 मेहता और मिस मालती भी आते हैं। दोनों की निकटता को देखकर मिर्जा खुर्शीद बोले कि मेहता जी मालती से विवाह कब करने वाले हैं। प्रो. मेहता ने अपना मत स्पष्ट करते हुए कहा कि मैंने नारी के लिए जिन गुणों की कल्पना की है उनमें से मालती में एक भी गुण नहीं हैं। मगर मेरी कल्पनानुसार स्त्री मिलेगी तभी विवाह करूंगा। अपनी इसी मनोवृत्ति का परिचय देते हुए प्रो. मेहता ने कहा–

व्याख्या : प्रो॰ मेहता अपने मनोनुकूल नारी की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि औरत के व्यक्तित्व में वफादारी, त्याग का होना आवश्यक है। वही उसका सौन्दर्य है। उसके जीवन की सार्थकता त्याग, सेवा द्वारा ही सिद्ध होती है। स्वयं को मिटाकर पुरुष को पूर्ण बनाना ही उसके जीवन का उद्देश्य है। पति पत्नी का संबंध इतना घनिष्ठ है कि एक के बिना दूसरे का जीवन निरर्थक ही रहता है। शरीर भले ही पुरुष का है लेकिन आत्मा स्त्री की होती है, अर्थात् पत्नी त्याग सेवाभाव से ही पति पर पूर्ण अधिकार पाने में सफल होती है। पुरुष से इन विशेषताओं की आकांक्षा करना व्यर्थ ही है क्योंकि पुरुष अगर ऐसा करता है तो यह शून्यता का वरण करता है। अर्थात् पुरुष से त्याग, सेवा की उम्मीद करना ही अनुचित है। उसमें तेज का गुण विद्यमान होता है जो उसे क्रियाशीलता प्रदान करता है। ज्ञान के आधार पर किसी खोह में तप कर ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, अर्थात् अपनी आत्मा का परमात्मा में विलय कर देता है। स्त्री, पुरुष के विपरीत स्वभाव वाली होती है, उसमें तेज की अपेक्षा धैर्य का गुण पाया जाता है। शांतिप्रियता भी स्त्री की विशेषता होती है। पुरुष इन गुणों को धारण करने पर महात्मा बन जाता है जबकि स्त्री पुरुष के गुणों से सुसज्जित होने पर कुलटा कहलाने लगती है। पुरुष स्त्रीत्व गुणों से प्रभावित होकर ही आकृष्ट होता है।

विशेष :

- प्रो॰ मेहता का मालती के प्रति अनाकर्षण का कारण उसका पुरुष स्वभाव है।
- स्त्री के गुणों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है।
- स्त्री जीवन को सार्थकता स्वयं को मिटाकर पति (पुरुष) को पूर्ण बनाने में निहित है।
- वैवाहिक जीवन के लिए स्त्री पुरुष का पारस्परिक आकर्षण अपेक्षित है।
- प्रो॰ मेहता के द्वारा प्रेमचंद के विचार व्यक्त हुए हैं।
- आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
- संन्यासी जीवन पर प्रकाश डाला गया है।
- कुलटा उस स्त्री को कहते हैं जिसने तीन से अधिक पुरुषों से सम्बन्ध स्थापित किये हों।
- तत्सम शब्द युक्त साहित्यिक हिंदी प्रयोग में लाई गई है।

- नारी गुणों से युक्त मनुष्य को स्त्रैण भी कहा जाता है।

स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अंधेरे से। मनुष्य के लिए छाया और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्च आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म, आध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुंचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है पर सफल नहीं हो सकता है। मैं कहता हूँ उसका सारा आध्यात्म और योग एक तरफ और नारी का त्याग एक तरफ।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : प्रो॰ मेहता के विचार उन लोगों से नहीं मिलते जो स्त्री और पुरुषों की समानता के पक्षपाती हैं। स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है जितना कि प्रकाश अंधेरे से। स्त्री प्रकाश है तो पुरुष अंधकार। प्रत्येक मानव का मानवीय गुणों से युक्त होना आवश्यक है मानव इसी प्रयास में लिप्त है लेकिन सफलता अभी कोसों दूर है। क्षमा, त्याग, अहिंसा आदि गुणों से ही मनुष्य मानव कहलाने का अधिकारी है, जबकि स्त्री को यह गुण उसे माँ की छत्रछाया से प्राप्त होते हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है ये जन्मजात गुण हैं जो नारी में स्वतः पल्लवित होते हैं। पुरुष स्त्री की अपेक्षा अधिक क्रोधी, अहंकारी, स्वार्थी और अहिंसक है। यह कभी धर्म के सानिध्य में तो कभी आध्यात्म की आड़ में इन तत्त्वों को खोजने का प्रयास करते हैं। उसकी वर्षों की तपस्या भी इसमें कारगर सिद्ध न हुई। प्रो॰ मेहता का मानना है कि नारी का त्याग ही उसकी महानता का सूचक है। पुरुषों का धर्म एवं आध्यात्म उसके सामने तुच्छ ही रहते हैं। इन्हीं गुणों के कारण नारी पुरुषों से श्रेष्ठ है। मैं दोनों को समान मानने का विरोध करता हूँ।

विशेष :

- प्रेमचंद ने प्रो॰ मेहता के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति दी है।
- त्याग, क्षमा एवं अहिंसा नारियों के स्त्रियोचित्त गुण हैं।
- प्रेमचंद का आदर्शवादी पक्ष व्यक्त हुआ है।
- मानवतावादी भावना का दिग्दर्शन किया गया है।
- विवेचनात्मक शैली की छटा दृष्टव्य है।
- सहज एवं प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग किया गया है।
- उपमा अलंकार प्रयुक्त हुआ है।
- आदर्शवाद को धर्म एवं आध्यात्म के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।
- प्रेमचंद ने नारी को पुरुषों से श्रेष्ठ बताकर नारी के प्रति सम्मान व्यक्त किया है।
- प्रो॰ मेहता की बहुज्ञता एवं स्पष्टता का वर्णन है।

मैं आपसे पूछता हूँ, क्या बाज को चिड़ियों का शिकार करते देखकर हंस को यह शोभा देगा, कि वह मानसरोवर की आनंदमयी शांति को छोड़कर चिड़ियों का शिकार करने लगे? और वह शिकार करने लगे तो क्या आप उसे बधाई देंगी? हंस के पास उतनी तेज चोंच नहीं है, उतनी तेज आंखें नहीं हैं, उतने तेज पंख नहीं हैं, उतनी तेज रक्त की प्यास नहीं है। उन अस्त्रों का संचय करने में उसे सदियों लग जाएंगी, फिर भी वह बाज बन सकेगा या नहीं इसमें संदेह है, मगर बाज बने या न बने, वह हंस न रहेगा, वह हंस जो मोती चुगता है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : वीमेंस लीग में प्रो॰ मेहता का भाषण चल रहा है। उन्होंने नारी को पुरुषों से उतना ही श्रेष्ठ माना, जितना कि प्रकाश अंधेरे से। उनकी दृष्टि में स्त्री पुरुष से हमेशा श्रेष्ठ है, क्योंकि वह गुण उसे स्वतः प्राप्त होते हैं जबकि पुरुष को धर्म एवं आध्यात्म का भी सहारा लेना पड़ता है। रायसाहब, संपादक जी और मिस्टर खन्ना को प्रो. मेहता का भाषण कोरा सिद्धांतहीन लगता है।

व्याख्या : प्रो॰ मेहता का मानना है कि वर्तमान संस्कृति में पुरुष प्रधानता का वर्चस्व है। वैज्ञानिकों, आविष्कारकों, प्रर्वतकों एवं महात्माओं ने ध्वंसात्मक मूल्यों को जन्म दिया है। उन्होंने नारी को हंस और पुरुष को बाज माना। हंस नारी के समान सात्विक प्रवृत्ति का है, जबकि बाज हिंसक प्रवृत्ति का। हंस कभी भी चिड़ियों का शिकार करने की इच्छा प्रकट नहीं करता। क्योंकि वह मानसरोवर की शांतिप्रिय आनंददायिनी जीवन शैली को छोड़कर जाना पसंद नहीं करता। अगर वह ऐसा करता है, तो उसे बाज के समान गुणों से युक्त होना पड़ेगा। तेज पंजे, नुकीली चोंच, बंकिम दृष्टि एवं हिंसक प्रवृत्ति को धारण करना आवश्यक है। जबकि उसके अंग प्रत्यंग निस्तेज हैं। इनका संचय करने में उसे लंबे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, साथ ही न तो यह हंस रहेगा और न बाज।

ईश्वर ने स्त्री को पुरुष से गुणों के आधार पर अलग बनाया है। यदि वह पुरुष का अनुसरण करेगी तो अपनी शांति को खोना पड़ेगा। उसे समाज में वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होगी। पुरुष की तामसिक वृत्ति स्त्री में नहीं समा सकती, इसीलिए स्त्रियों को पुरुषों की नकल न करके अपने मार्ग का अनुसरण करना ही श्रेयस्कर होगा।

विशेष :

- प्रेमचंद के नारी विषयक उद्‌गारों की अभिव्यक्ति की गई है।
- भारतीय नारी का आदर्श उसके स्त्रियोचित गुण ही हैं।
- प्रो॰ मेहता की नारी के प्रति सहानुभूति प्रकट हुई है।
- पाश्चात्य संस्कृति के दुष्प्रभावों की ओर संकेत किया है।
- लोकोक्ति–कौवा चले हंस की चाल, भूल गया अपनी भी चाल का सुंदर प्रयोग हुआ है।
- प्रतीकात्मक शैली अपनाई गई है।
- प्रसादगुण युक्त सरल हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- वोट नए युग का माया जाल है, मरीचिका है, कलंक है, धोखा है। उसके चक्कर में पड़कर आप न इधर के होंगे न उधर के। कौन कहता है आपका क्षेत्र संकुचित है और उसमें आपको अभिव्यक्ति अवकाश नहीं मिलता। हम सभी पहले मनुष्य हैं पीछे और कुछ। हमारा जीवन हमारा घर है, वहीं हमारा पालन होता है, वहीं जीवन के सारे व्यापार होते हैं। अगर वह क्षेत्र परिमित है, तो अपरिमित कौन सा क्षेत्र है? किस कारखाने में मनुष्य और उसका भाग्य बनता है, उसे छोड़कर आप उन कारखानों में जाना चाहती हैं, जहाँ मनुष्य पीसा जाता है, जहाँ रक्त निकाला जाता है।

व्याख्या :

1. धनिया अपना आक्रोश किस पर व्यक्त करती है?
2. धनिया के जीवन का आधार क्या था?

3. झुनिया को वैध्यव जीवन में किसने आश्रय प्रदान किया?

4. प्रो॰ मेहता के अनुसार स्त्री की विशेषताएँ कौन सी हैं?

5. स्त्री को पुरुष से क्यों श्रेष्ठ माना गया है?

6. प्रो. मेहता ने नारी की तुलना किससे की है?

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : प्रो0 मेहता वीमेंस लीग में भाषण दे रहे हैं, वहीं मालती की बहन सरोज तथा अन्य युवतियाँ अपने अधिकारों की वकालत करती हैं, वोट देने का अधिकार प्राप्त करना चाहती हैं। मालती उनको शांत करती हैं, तो मेहता साहब वोट की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं –

व्याख्या : प्रो॰ मेहता का मानना है कि वोट नए युग का प्रतीक है यह ऐसा माया जाल है, जिसमें फंसकर निकलना दुष्कर है। वोट का अधिकार प्राप्त होने से समस्याओ को हल नहीं किया जा सकता। समस्याओं का जाल और अधिक सुदृढ़ होता जा रहा है। वोट को नए युग का कलंक कहा जाए तो तर्क संगत होगा, वह लालायित मरीचिका है जिसके होते समस्याओं को नहीं सुलझाया जा सकता। सभी अधिकार को प्राप्त करने के रास्ते बंद होते जा रहे हैं। अगर नारियाँ भी इस दल–दल में फंस गई तो वह कहीं की नहीं रहेंगी। वह घर और बाहर की दुनिया से वंचित हो जाएंगी। मताधिकार को प्राप्त करके गृहिणी का पद भी खतरे में पड़ जाएगा। परिवार की सबसे छोटी इकाई है। हमारे सभी संस्कार क्रियाकलाप, घर की चार दीवारी में ही संपन्न होते हैं। घर को सीमित मानना संकुचित मनोवृत्ति का परिचायक है। अर्थात् परिवार का दायरा विस्तृत है। संघर्षरत जीवन की झलक, संगठन शक्ति का श्रेष्ठ उदाहरण परिवार ही है। जिस परिवार में व्यक्ति अपनी रोजी–रोटी कमाता है अपने भाग्य को सुनिश्चित सा कर लेता है, उसको त्याग कर अन्यत्र जाना खतरे से खाली नहीं है क्योंकि लोकतंत्र में सीधे, ईमानदार व्यक्तियों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। तिल–तिलकर जीने को बाध्य होना पड़ता है।

विशेष :

- प्रो0 मेहता की भविष्योन्मुखी विचारधारा की अभिव्यक्ति है।
- अप्रत्यक्ष रूप से इस अवतरण में लोकतंत्र का उपहास किया गया है।
- यह उपहास ही नहीं यथार्थ स्थिति का आकलन भी है।
- नारी की अधिकारों के प्रति जागरूकता का वर्णन है।
- प्रेमचंद के अनुसार नारी के लिए उपयुक्त स्थान घर ही है। वही परिवार की संचालिका है।
- वर्तमान मंत्रिकरण का विरोध किया गया है।
- मानवतावादी भावना को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।
- वर्तमान व्यवस्था का दुष्परिणाम पुरुष को अपना रक्त बहाने पर, तिल–तिलकर जीने को बाध्य होने के रूप में देखने को मिलता है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- सरल प्रवाहित हिंदी का प्रयोग हुआ है।

- संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं, और वह आपको मिले हुए हैं। उन अधिकारों के सामने वोट कोई चीज नहीं। मुझे खेद है कि हमारी बहनें पश्चिम का आदर्श ले रही हैं, जहाँ नारी ने अपना पद खो दिया है और स्वामिनी से बढ़कर विलास की वस्तु बन गई है। पश्चिम की स्त्री स्वतंत्र होना चाहती है, इसीलिए कि वह अधिक से अधिक विलास कर सकें। हमारी माताओं का आदर्श कभी विलास नहीं रहा। उन्होंने केवल सेवा के अधिकार से सदैव गृहस्थी का संचालन किया है। पश्चिम में जो चीजें हैं वह उनसे लीजिए। संस्कृति में सदैव आदान–प्रदान होता आया है। लेकिन अंधी नकल तो मानसिक दुर्बलता का ही लक्षण है। पश्चिम की स्त्री आज गृह–स्वामिनी रहना नहीं चाहती। भोग की विदग्ध लालसा ने उसे उच्छृंखल बना दिया है। वह अपनी लज्जा और गरिमा को, जो उसकी सबसे बड़ी विभूति थी, चंचलता और आमोद–प्रमोद पर होम कर रही है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : मालती स्त्रियों को अधिकार दिलाने के लिए प्रयत्नशील है, क्योंकि पुरुषों के शोषण से नारी को तभी मुक्त किया जा सकता है, जबकि उसे अधिकार प्राप्त हों। इसके लिए वह वोट का अधिकार सर्वोपरि मानती है, क्योंकि अपनी सहमति वह संघर्ष, प्रतिकार से नहीं दे सकती, इसीलिए वोट उसकी मनःस्थिति के अनुकूल ही है। प्रो0 मेहता वोट के अधिकार को स्वच्छंदता का प्रतीक मानते हैं क्योंकि नारी का स्थान घर है, त्याग, सेवा के भाव ही उसको सुशोभित कर सकते हैं। पश्चिम का अंधानुकरण उसे अपने रास्ते से विचलित कर देगा।

व्याख्या : प्रो0 मेहता का मानना है कि संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग द्वारा ही प्राप्त किए जा सकते हैं, जो नारी को परिवार की शिक्षा से प्राप्त है। त्याग और सेवा के सामने संसार की सभी चेष्टताएँ व्यर्थ ही हैं। यही नारी के आभूषण तो हैं ही चारित्रिक विशेषताएँ भी यही हैं। वोट का अधिकार उसके सामने छोटा अधिकार है। फिर क्यों बहुमूल्य को त्यागकर व्यर्थ की माथा–पच्ची कर रही है। हमारी बहनें पश्चिमीकरण के प्रभाव से ग्रसित हैं जिन्हें यह आदर्श मानकर ग्रहण करना चाहती हैं, वह केवल स्वच्छंद होने का माध्यम मात्र ही है। पश्चिम में नारियों ने अपने आदर्श को खो दिया है। उनका स्थान गृहिणी से गिरकर प्रेमिका तक सीमित हो गया है, इसीलिए माँ की उपयोगिता समाप्त होती जा रही है जबकि हमारे यहाँ माँ का स्थान सर्वोपरि है। स्त्रियों की प्रसन्नता से देवता भी गद्‌गद् रहते हैं। बिना गृहिणी के घर, घर न होकर भूतों का डेरा होता है। पश्चिम की नारी भोग विलास का प्रतीक बन गई हैं, उसके जीवन का चरम लक्ष्य विलासमय जीवन जीना ही है। हमारी माताओं का आदर्श विलास की अपेक्षा सेवा और त्याग ही रहा है। उन्होंने परिवार की कल्पना को साकार किया है। संयुक्त परिवार का वर्चस्व स्थापित किया है।

प्रो0 मेहता संस्कृति की विशेषता का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि संस्कृति हस्तांतरित होती है। एक देश की संस्कृति का दूसरे देश की संस्कृति से आदान–प्रदान अवश्य हो, लेकिन अपने आदर्शों को खोकर नहीं। जो समाज और पारिवारिक दृष्टि से उपयुक्त हो वही ग्रहण किया जाए। अनर्गल तथ्यों का ग्रहण हमारे मार्ग में अवरोध उत्पन्न करेगा। माँ की गरिमा का वर्णन पश्चिमी संस्कृति में विलुप्त हो गया है। वह इतनी स्वतंत्र हो गई है कि उसे लज्जा और गरिमा का पालन करना व्यर्थ प्रतीत होता है। चंचलता और आमोद–प्रमोद से ग्रसित नारी को लज्जा का भय नहीं लगता। उसके जीवन का लक्ष्य मौज–मस्ती करना ही है।

विशेष :

- प्रेमचंद ने प्रो0 मेहता द्वारा पाश्चात्य संस्कृति के दुर्गुणों पर प्रकाश डाला है।
- समाज की क्रमबद्धता सुनिश्चित करने के लिए संस्कृति का आदान–प्रदान आवश्यक है।

- प्रेमचंद ने भारतीयों में पनप रही कुप्रवृत्तियों का पर्दाफाश किया है।
- नारियोचित गुणों की महत्ता प्रतिपादित की गई है।
- प्रो0 मेहता अप्रत्यक्ष रूप से नारियों की बढ़ती शक्ति से भयभीत हैं।
- प्रेमचंद ने वोट के प्रति नारियों की जागरूकता को आधुनिकता का परिचायक माना है।
- मालती द्वारा वोट के अधिकार के प्रति सचेत करना नारी जागृति का मार्ग प्रशस्त करता है।
- पाश्चात्य समाज में परिवार की संरचना कल्पना मात्र ही है।
- नारी को परिवार की संचालिका मानकर नारी की महिमा का गुणगान किया गया है।
- संस्कृति से ही संस्कारों का सफल निर्वाह संभव होता है जिससे जीवन में क्रमबद्धता आती है।
- नारी को भोग की वस्तु समझना पुरुष की संकीर्ण मानसिकता का सूचक है।
- प्रेमचंद भारतीय नारियों की बदलती मनःस्थिति से व्यथित दिखाई दे रहे हैं।
- तत्सम शब्दावली युक्त सरल हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- जिसे तुम प्रेम कहती हो, वह धोखा है, उद्दीप्त लालसा का विकृत रूप, उसी तरह जैसे संन्यासी केवल भीख मांगने का संस्कृत रूप है। वह प्रेम अगर वैवाहिक जीवन में कम है, तो मुक्त विलास में बिल्कुल नहीं है। सच्चा आनंद, सच्ची शांति केवल सेवाव्रत में ही है। वह आदर्श का स्रोत है। शक्ति का उद्‌गम है। सेवा ही वह सीमेंट है जो दंपत्ति की जीवन पर्यन्त स्नेह और साहचर्य में जोड़े रख सकता है। जिस पर बड़े–बड़े आघातों का भी कोई असर नहीं होता। जहाँ सेवा का अभाव है, वहीं विवाह विच्छेद है, परित्याग है, अविश्वास है, और आपके ऊपर पुरुष जीवन को नौका का कर्णधार होने के कारण जिम्मेदारी ज्यादा है। आप चाहें तो नौका को आंधी और तुफानों में पार लगा सकी हैं और आपने असावधानी की तो नौका डूब जाएगी, और उसके साथ आप भी डूब जाएंगी।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : प्रो0 मेहता का मानना है कि पश्चिम में नारी को बराबरी का अधिकार प्रदान कर अप्रत्यक्ष रूप से नारी–शोषण का मार्ग प्रशस्त किया है। तितलियाँ बनकर वे पुरुषों को आकर्षित करें। सरोज का मानना है कि हम विवाह में बंधना नहीं चाहतीं। हम अगर विवाह करेंगी तो उसका आधार प्रेम ही होगा क्योंकि जब पुरुष स्वतंत्र है तो नारी भी स्वतंत्र है।

व्याख्या : उपस्थित जन समूह जब सरोज के विचारों का स्वागत करता है तो प्रो0 मेहता अपना विरोध प्रकट करना नहीं चूकते। प्रो0 मेहता के अनुसार जिसे तुम प्रेम कहती हो स्वप्लिन धोखा है, अतृप्त आकांक्षा का प्रतीक है। विकृत मानसिकता का सूचक है। उसी तरह जिस प्रकार संन्यासी भीख मांगने का संस्कृत रूप है। नारी को आत्मिक शांति तभी मिलेगी जब वह वैवाहिक बंधन में बंधेगी अन्यथा अतृप्ति की शिकार ही रहेगी। उसे वैवाहिक बेला में ही सच्च प्रेम प्राप्त हो सकेगा। अगर यहाँ भी प्रेम से परे है तो विलासयुक्त जीवन में संभव ही नहीं है। अगर तुम्हें सच्चा आनंद प्राप्त करना है, सच्ची शांति की इच्छुक हैं, तो सेवा का क्षेत्र ही चुनना पड़ेगा, क्योंकि हमारी संस्कृति सेवाभाव को प्रमुखता प्रदान करती है। सेवा द्वारा ही नारी सभी अधिकारों को प्राप्त कर सकती है। इसी के द्वारा सामर्थ्य युक्त हो सकती है।

प्रो0 मेहता सेवा की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि सेवा सीमेंट के समान अटूट होती है जिसके आधार पर दंपत्ति रूपी महल का निर्माण होता है। जीवन पर्यन्त तक स्नेह और साहचर्य की रक्षा सेवा द्वारा ही फलीभूत होती है। जीवन की अन्य आपदाएँ इस का कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं। वैवाहिक जीवन की सफलता का आधार सेवा भाव ही है। वैवाहिक विघटन की भीड़ में सेवाभाव की रिक्तता ही देखी जाती है। नारी जीवन पर पुरुष जीवन की नौका का दायित्व टिका है वह चाहे तो उसका सफल निर्वाह भी कर सकती है और उसको बीच मझधार में डुबो भी सकती है।

विशेष :

- लेखकीय व्यक्तव्य से नारियों की प्रेम के नाम पर वासना में डूबने की इच्छा प्रतिबिम्बित होती है।
- सुखद परिवार की नींव सेवाभाव पर टिकी होती है।
- यह यथार्थ है कि प्रेम के बिना वैवाहिक जीवन का पालन करना दुष्कर ही है।
- विवाह विच्छेद के मूल में सेवा की भावना का अभाव रेखांकित किया है।
- प्रो0 मेहता द्वारा नारी महिमा का गुणगान किया गया है।
- सेवा का प्रतिफल सदैव सुखद ही होता है।
- प्रो0 मेहता का मानना है कि पारिवारिक जीवन में अगर सेवाभाव है, तो युगीन संघात, विवाह–विच्छेद, जिसकी सीमा में परिवार समाज, तथा राष्ट्र का स्वरूप समाहित हो जाता है।
- सेवाभाव की तुलना सीमेंट से की गई है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- सरल साहित्यिक हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है।

सात पुश्तों से जिस वातावरण में पला हूँ उससे अब निकल नहीं सकता। घास छीलना मेरे लिए असंभव है। आपके पास जमीन नहीं जायदाद नहीं, मर्यादा का झमेला नहीं, आप निर्भीक हो सकते हैं। लेकिन आप भी दुम दबाए बैठे रहते हैं। आपको कुछ खबर है, अदालतों में कितनी रिश्वतें चल रही हैं, कितने गरीबों का खून हो रहा है, कितनी देवियाँ भ्रष्ट हो रही हैं। है बूता लिखने का? सामग्री में देता हूँ प्रमाण सहित।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : संपादक ओंकारनाथ की दृष्टि में न्याय का पालन, सत्य की रक्षा एवं रिश्वतखोरी का विरोध करना मानव का कर्त्तव्य है। रायसाहब स्वयं पर किए कटाक्ष का प्रतिकार करते हुए कहते है। –

व्याख्या : रायसाहब ओंकारनाथ के विचारों से असहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं कि मैंने विपत्ति की घड़ी में तुम्हारी सहायता की है। प्रत्येक पर्व, उत्सव के अवसर पर उपहार भेजता हूँ, वर्ष में अनेक बार दावत करता हूँ रिश्वत और कर्त्तव्य का पालन करना एक साथ संभव नहीं हो सकता। जब तुम्हें स्वदेशी आंदोलन की स्थिति में विदेशी दवाओं व वस्तुओं का विज्ञापन करने में कर्त्तव्य का बोध नहीं होता। अपनी व्यस्त दिनचर्या का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–मनुष्य का होना स्वाभाविक ही है। मेरी कथनी और करनी पर वंश का प्रभाव है उसको त्यागना असंभव है। मनुष्य एक बार जिस दल–दल में फंस जाए तो उसका निकलना कठिन होता है। हाथ पर हाथ रखकर

बैठना मेरा स्वभाव नहीं है, मैं समाज का तुच्छ कार्य भी नहीं कर सकता। मेरे पास जमीन है, संपत्ति है, इसकी रक्षा स्वतः नहीं होती, हाथ पैर चलाने पड़ते हैं। मर्यादा का भय हमें भयभीत करता है, इसीलिए युगानुरूप कार्य करना हमारी विवशता है।

रायसाहब उत्तरदायित्व का बोध कराते हुए ओंकारनाथ से कहते हैं कि तुमने भी अपने कर्त्तव्य का सफल निर्वाह नहीं किया। प्रत्येक दफ्तर, विभाग में रिश्वत का बोलबाला है। जो गरीब हैं उनका कोई हितैषी नहीं है उनका शोषण किया जा रहा है। समाज में आए दिन देवियों (कन्याओं) का अपमान किया जा रहा है उनकी अस्मिता से खेला जा रहा है। इनका प्रतिकार करने की शक्ति आप में नहीं है। आपकी दृष्टि से यह सब कैसे ओझल हो रहे हैं। अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करने का साहस पैदा कीजिए। प्रमाण सहित तथ्यों की उपलब्धि मेरी जिम्मेदारी है।

विशेष :

- रायसाहब अमरपाल सिंह का आक्रोश व्यक्त हुआ है।
- रायसाहब युगीन वातावरण एवं परिस्थितियों से भीलीभांति परिचित हैं।
- रायसाहब के उद्‌गारों में वंशानुगत शोषण की झलक दिखाई देती है।
- व्यक्तित्त्व निर्माण में वंश परंपरा का प्रभाव देखने को मिलता है।
- यह अवतरण समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करता है।
- रायसाहब अमरपाल सिंह की मनःस्थिति का चित्रण है।
- घास छीलना–मुहावरा प्रयुक्त हुआ है।
- अरबी/फारसी शब्दों का प्रयोग–पुश्तों, जमीन, जायदाद, गरीबों, खबर आदि द्वारा हुआ है।
- बूता से आशय सामर्थ्य से है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

तुम जैसा धाकड़ आदमी भगवान ने क्यों रचा, कहीं मिलते तो उनसे पूछती। तुम्हारे साथ सारी जिन्दगी तल्ख हो गई। भगवान मौत भी नहीं देते कि जंजाल से जान छूटे। उठाकर सारे रुपये बहनोइयों को दे दिये। अब और कौन आमदनी है, जिससे गोई आयेगी? हल में क्या मुझे जोतेगो? मैं कहती हूँ तुम बूढ़े हुए, तुम्हें इतनी अक्ल भी नहीं आई कि गोई भर के लिए रुपये तो निकाल लेते। कोई तुम्हारे हाथ से छीन थोड़े लेता। पूस की यह ठण्ड, और किसी की देह पर लता नहीं। ले जाओ सब को नदी में डुबो दो। सिसक–सिसक रात काटेंगे, और पुआल में घुसे भी तो पुआल खाकर रहा तो नहीं जायेगा। तुम्हारी इच्छा हो, घास ही खाओ, हमसे तो घास न खायी जायेगी –

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : लाला पटेश्वरी अपना पैसा वसूल करने के लिए शोषण करना भी उचित समझते थे। पटेश्वरी बाल बच्चों के लिए जमा की गई राशि को देने को कहता है। झिंगुरी सिंह होरी से पैसे हड़पकर विवशता के कगार पर पहुंचा देता है। हताश होरी जब घर आया तो उसका मन चाहता था कि ऐसे लज्जित जीवन से आत्महत्या करना बेहतर है। होरी को उदास देखकर धनिया पूछती है। होरी की खामोशी किसी विपत्ति से कम न थी।

व्याख्या : होरी द्वारा दिये गये उत्तर को सुनकर धनिया के बदन में आग लग गई। एक बार उसे विचार आया कि अपना मुंह नोच ले। अपनी प्रतिक्रिया को व्यक्त करती हुई कहती है कि उस विधाता ने तुम जैसा किंकर्त्तव्यविमूढ व्यक्ति को क्यों पैदा किया। यही प्रश्न मुझे बार–बार व्यथित कर रहा है। जब से मेरा तुम्हारे साथ संबंध जुड़ा है आज तक कभी सुख चैन नहीं मिला। सारी जिंदगी समाप्त होने को है। जी चाहता है कि जीवन से छुटकारा मिले लेकिन भगवान की मर्जी नहीं है। जो पैसे कमाये उन्हें अपने बहनोइयों को दे दिये। आगे आमदनी का कोई सहारा भी नहीं है। गाय की उम्मीद भी धूमिल हो गई है। खेत जुतने को पड़े हैं। बैलों का प्रबंध कहाँ से करोगे। अगर बैल न मिले तो मुझे ही जोत लेना। सामान्यतया उम्र के साथ बुद्धि भी बढ़ती जाती है लेकिन तुम्हारी उस के साथ बुद्धि घट रही है। किसी तरह गाय के लिए रुपये बचा लेते तो वह तुमसे छीन नहीं लेता। पूस माह में भी किसी के तन पर कपड़ा नहीं है, अगर प्रबंध नहीं कर सकते तो हमें लेकर जाकर किसी नदी में डुबो दो। खिचड़ कर मरने से एक दम मरना अधिक श्रेयस्कर है। अब तक तो पुआल से ठण्ड काट ली लेकिन पूस की ठण्डी रातें नहीं कटेंगी। पेट को भरने के लिए पुआल की बजाय भोजन की आवश्यकता है। घास से पेट की भूख शांत नहीं होगी। तुम्हें खानी है तो खाओ।

विशेष :

- धनिया का ओजस्वी स्वरूप मुखरित हुआ है।
- यह अवतरण कृषक जीवन की यथार्थ झांकी प्रस्तुत करता है।
- नारी चेतना का वर्णन है।
- होरी की असहाय स्थिति का चित्रण है।
- अकिंचन स्थिति में मनुष्य की बुद्धि का क्षय होने लगता है।
- पूस माह की शीतल रातें ठण्ड की पराकाष्ठा की सूचक है।
- यह अवतरण होरी की दयनीय स्थिति का चित्र प्रस्तुत करता है।
- मुहावरेदार सरल भाषा प्रयुक्त हुई है, जैसे–जिंदगी तल्ख होना, घास खाना।
- घाकड़ शब्द से आशय बुद्धिहीनता से है।
- असहाय स्थिति ही मनुष्य को आत्महत्या के लिए प्ररित करती है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- उम्र बढ़ने के साथ बुद्धि भी बढ़ने लगती है, जिससे विचारों में प्रौढ़ता आने लगती है।

जिसे संसार दुःख कहता है, वही कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य, रूप और बल विद्या और बुद्धि ये विभूतियाँ संसार को मोहित कर लें, कवि के लिए यहाँ जरा भी आकर्षण नहीं है। उसके मोह और आकर्षण की वस्तु तो बुझी आशाएँ और मिटी हुई स्मृतियाँ और टूटे हुए हृदय के आंसू हैं। जिस दिन इन विभूतियों में उसका प्रेम न रहेगा, उस दिन वह कवि न रहेगा। दर्शन–जीवन के इन रहस्यों से केवल विनोद करता है, कवि उनमें लय हो जाता है।

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : खन्ना और गोविंदी में नहीं पटती। खन्ना मालती की ओर आकर्षित है जबकि मालती मेहता की ओर। मेहता मालती को नारियोचित गुणों से रिक्त मानते हैं। उनका झुकाव गोविंदी की ओर है। उनकी दृष्टि में गोविंदी एक आदर्श गृहिणी के गुणों से युक्त है। गोविंदी अपनी प्रशंसा सुनकर गद्‌गद हो जाती है। उसे मेहता में रवि की झलक दिखाई पड़ती है। साथ ही रवि के वैयक्तिक जीवन के दुखों को सोचकर विचलित होने लगती है। मेहता समझाते हैं कि कवि का दृष्टिकोण संसार से भिन्न होता है।

व्याख्या : प्रो0 मेहता गोविंदी को कवि की दुनिया का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सामान्य मनुष्यों की भांति कवि का हृदय विलक्षणता से युक्त होता है। सामान्यतः मनुष्य धन–धौलत, रूप, विद्या, ऐश्वर्य वृद्धि तथा बल के पीछे दौड़ता है, किंतु कवि का मन इनसे आसक्त नहीं होता। वह द्रवित हृदय की आहट सुनता है, निराश मनुष्य की व्यथा सुनता है। अविस्मृत यादें उसे प्रिय लगती हैं। आंखों से गिरने वाले आंसुओं में उसे तृप्ति मिलती है। उसका जीवन करुणा एवं संवेदना से युक्त होता है। इसलिए उसका झुकाव मन, पीड़ित, उपेक्षित, निराश, दुःखी लोगों के हृदय में निवास करता है। इन्हीं को अपनी कविता में अभिव्यक्त भी करता है। अगर उसका यह आकर्षण समाप्त हो जाएगा तो वह कवित्व बोध से रिक्त हो जाएगा। दार्शनिक के लिए सुख, दुख, राग–विराग बहस की बातें हो सकती हैं, लेकिन कवि का जीवन इन्हीं के इर्द–गिर्द घूमता रहता है।

विशेष :

- कवि का संसार सामान्य जनों से पृथक होता है।
- दार्शनिक वैचारिक दृष्टिकोण तथा कवि भावात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है।
- साहित्य–सृजन के मूल में वेदना महती भूमिका निभाती है। पन्त जी के विचार भी वियोग को प्रमुखता प्रदान करते हैं।

  ''वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।

  निकलकर नयनों से चुपचाप वही होगी कविता अनजान''
- कवि में दार्शनिक प्रवृत्ति का होना भी आवश्यक है।
- इलियट के अनुसार बिना गंभीर दर्शन के बड़ा कवि नहीं बन सकता है।
- लाक्षणिकता से युक्त भाषा प्रयोग में लाई गई है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

मैं प्रकृति का पुजारी हूँ और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूँ। जो प्रसन्न होकर हंसता है, दुःखी होकर रोता है, और क्रोध में आकर मार डालता है। जो दुःख और सुख दोनों का दमन करते हैं, जो रोने को कमजोरी और हँसने को हलकापन समझते हैं, उनसे मेरा कोई मेल नहीं। जीवन मेरे लिए आनंदमय क्रीड़ा है सरल, स्वच्छन्द, जहाँ ईर्ष्या, कुत्सा और जलन के लिए कोई स्थान नहीं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. वोट देना कौन सा अधिकार है?
2. पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव सर्वाधिक किस पर पड़ता है?
3. प्रेम की पूर्णता का आधार क्या है?

4. अमरपाल सिंह के अनुसार संपादक का दायित्व क्या है?

5. धनिया ने होरी को किस नाम से संबोधित किया?

7. कवित्व का मूलाधार क्या है?

संदर्भ : प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत है।

प्रसंग : प्रो0 मेहता और गोविंदी में वार्तालाप चल रहा है। गोविंदी मेहता के द्वारा मालती से मुक्ति की कामना करती है। मेहता आश्वासन देकर शांत करते हैं। गोविंदी को लगता है कि खन्ना मालती की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। इसलिए गोविन्दी की उपेक्षा हो रही है। प्रो0 मेहता अपना वक्तव्य देते हुए कहते हैं, कि मैं किसी के बीच में हस्तक्षेप नहीं करता, कृत्रिमता से दूर स्वाभाविकता में मेरा विश्वास है। अपने विचारों से तुमने अपने हृदय का बोझ हल्का किया है।

व्याख्या : प्रो0 मेहता गोविंदी को सांत्वना प्रदान करते हुए कहते हैं कि मेरा व्यक्तित्व यथार्थ से निर्मित है। मैं प्रकृति का पुजारी हूँ जिस प्रकार प्रकृति अपने आगोश में स्वाभाविकता समेटे होती है, ठीक उसी प्रकार मेरा भी यही मानना है। कृत्रिमता में मेरा विश्वास नहीं है। मै चाहता हूँ कि मनुष्य अपने स्वाभाविक रूप में सामने आये, अपनी भावनाओं को छिपाने का प्रयत्न न करे। इसी प्रवृत्ति के कारण मनुष्य सुख में सुखी होता है और दुःख में दुःखी। क्रोध आने पर प्रहार भी कर सकता है। यही जीवन की वास्तविकता है। इन्हीं में जीवन की झलक देखने को मिलती है। इसके विपरीत अगर मनुष्य कृत्रिमता युक्त जीवन जीता है तो उसमें वास्तविकता विलुप्त हो जाती है।

मिस गाविंदी तुमने मेरे समक्ष अपनी भावना को व्यक्त करके कोई गलती नहीं की है। यथार्थ स्थिति को सामने रखा है। जीवन एक खेल है जिसमें व्यक्ति आनंद को ढूंढता है, उसे परिणाम की चिंता नहीं रहती। सुखी जीवन के लिए स्वच्छंदता, सरलता, शुचिता आवश्यक मानी जाती है। ईर्ष्या, जलन, कुत्सा युक्त व्यक्ति दूसरों के साथ अपनी भी हानि करता है। मेरा वर्तमान ही सबकुछ है। भूत हमें आलसी बनाता है तो भविष्य की चिंता हमारी खुशहाल जिंदगी में बेचैनी घोल देती है।

विशेष :

- प्रेमचंद ने गोविंदी को आदर्श स्त्री के रूप में स्थान दिया है।
- प्रो0 मेहता गोविंदी के स्वाभाविक व्यक्तित्व से प्रभावित है।
- प्रो0 मेहता द्वरा प्रेमचंद की वाणी व्यक्त हुई है।
- वर्तमान की उपयोगिता सिद्ध की गई है।
- गोविंदी का भविष्य के प्रति चिंतित होना स्वाभाविक है।
- गोविंदी खन्ना का मालती के प्रति आकर्षण जानकर अपने वैवाहिक जीवन को बचाना चाहती है।
- प्रकृति और मानव का अटूट संबंध रहा है। यह प्राकृतिक योगदान की अवहेलना नहीं कर सकता।
- छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत के लिए प्रकृति साहित्य सृजन का प्रेरक रही है।
- मनुष्य संकुचित मनोवृत्ति के फलस्वरूप ही दुःख प्राप्त करता है।
- सरल प्रवाह पूर्ण हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है।

- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

भविष्य की चिंता हमें कायर बना देती है। भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवन की शक्ति इतनी कम है, कि भूत और भविष्य में फैला देने से यह और भी क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर, रूढ़ियों और विश्वासों और इतिहासों के मलबे के नीचे बदे हैं, उठने का नाम नहीं लेते, वह सामर्थ्य ही नहीं जो शक्ति जो स्फुर्ति मानव धर्म को पूरा करने में लगानी चाहिए थी। सहयोग में, भाईचारे में यह पुरानी अदावतों का बदला लेने और बाप–दादा का कर्ज चुकाने में भेंट चढ़ जाती है और ये जो ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है। इस पर तो मुझे हंसी आती है। यह मोक्ष एवं उपासना अहंकार की पराकाष्ठा है, जो हमारे मानवता को नष्ट किये डालती है।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– गोविंदी अपने वैवाहिक बंधन को बचाने के लिए प्रो. मेहता से पति खन्ना का मालती से संबंध समाप्त करने का निवेदन करती है। मेहता ने सहमति प्रदान कर गोविंदी के पतिव्रत धर्म को सुइद करने की सांत्वना प्रदान की। गोविंदी स्वयं के प्रयत्न को हेय मानती है। मेहता ने उसे वर्तमान पर दृष्टिपात करने का सुझाव दिया।

व्याख्या– प्रो. मेहता कहते है कि गोविंदी, भविष्य की चिंता करना व्यर्थ है क्योंकि मनुष्य अनेक योजनाओं की काल्पनिक व्यूह रचना में ही अपना वर्तमान नष्ट कर देता है। इससे उसको दोनों रूपों में चिंता युक्त जीवन जीने को बाध्य होना पड़ता है। जब हम अतीत की चिंता करते हैं तो निष्क्रिय होने लगते हैं। हमारी जीवन शैली में शिथिलता आने लगती है। हम अतीत का रोना रोकर कुछ समय के लिए भले ही संतुष्टि प्राप्त कर लें लेकिन वर्तमान की हानि से मुंह नहीं मोड़ सकते। हम वर्तमान में व्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों से दबे हुए हैं उनसे निकल पाना दूभर हो रहा है।

प्रो. मेहता मनुष्य को निष्क्रियता से व्यथित होकर कहते हैं कि हमने अपनी शक्ति को पारस्परिक कटुता और विद्वेष की भावना को पल्लवित करने में क्षीण कर दिया है, जबकि इसका प्रयोग मानव कल्याण के लिए होना चाहिए था। देश प्रेम, विश्व बंधुत्व की भावना में लगाना चाहिए था। लेकिन हमारा दुर्भाग्य ही है कि हमने बहुमूल्य समय और शक्ति को पैतृक ऋण से मुक्ति पाने में लगा दिया। हमने अतीत के सामने वर्तमान में मानवता की उपेक्षा की है। ईश्वर प्राप्ति या मोक्ष की अवधारणा में मेरा बिल्कुल विश्वास नहीं है, इससे वर्तमान उपेक्षित हो जाता है और भविष्य की वेदना हमारी हरी–भरी दुनिया को उजाड़ने लगती है। भविष्य की अपेक्षा वर्तमान पर अधिक महत्व देना चाहिए, क्योंकि हम वर्तमान में जीते हैं।

विशेष –

- प्रो. मेहता के द्वारा प्रेमचंद ने अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की है।
- वर्तमान, भूत और अतीत की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है।
- प्रो. मेहता में मार्क्सवादी भावना को देखा जा सकता है।
- महाकवि जयशंकर प्रसाद ने भी चंद्रगुप्त नाटक में वर्तमान को महत्व प्रदान किया है।
- संसार के सभी धर्म मानवतावादी भावना को पल्लवित करते हैं।
- प्रो. मेहता की बौद्धिक क्षमता का दिग्दर्शन है।

- लाक्षणिकता की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है।
- मुहावरेदार भाषा जैसे कमर तोड़ देना आदि का प्रयोग हुआ है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

जहाँ जीवन है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है वहीं ईश्वर है और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना और मौक्ष है। ज्ञानी कहता है होठों पर मुस्कराहट न आये, आंखों में आंसू न आयें। मैं कहता हूँ कि अगर तुम हंस नहीं सकते और रो नहीं सकते, तो तुम मनुष्य नहीं हो पत्थर हो। वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले, ज्ञान नहीं, कोल्हू है।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– पति खन्ना के व्यवहार से दुःखी गोविंदी अपने बच्चे के साथ प्रो. मेहता से मिलती है। मालती के द्वारा उसके वैवाहिक जीवन में कटुता आ जाती है जिसे दूर करने के लिए मेहता से कहती है। मेहता आश्वासन देकर साहस बढ़ाते हैं। गोविंदी को लगता है कि उसने अपने पति (खन्ना) की शिकायत कर ठीक नहीं किया इससे मेहता कहते हैं कि मैं मनुष्य के आचरण से प्रभावित होता हूँ। कृत्रिमता से मुझे क्रोध आता है। क्योंकि मनुष्य की स्वाभाविकता सबसे उपयोगी है। विशुद्ध आचरण की महता प्रतिपादित करते हुए कहते है।

व्याख्या– प्रो. मेहता कहते हैं कि मनुष्य मानवीय गुणों के कारण की श्रेष्ठता का घोतक है। स्वाभाविक जीवन में सहानुभूति, त्याग, सेवा जैसे गुणों का विकास होता है। वास्तविक जीवन में पलायन करके मोक्ष, उपासना को प्राप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि गतिविधियों में युक्त जीवन ही स्वाभाविक होता है। प्रेम तभी पल्लवित होता है जब वास्तविकता हो। प्रसन्नता और क्रीड़ा को विकसित करने का अवसर जहां मिले वहीं श्रेष्ठ जीवन है। ईश्वर भी वास्तविकता के प्रांगण में प्रकट होकर अपनी लीला को दिखाता है। मानव अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए जो प्रयास करता है, वही सबसे बड़ी उपासना है और मुक्ति का माध्यम भी वही है। ज्ञानी, मनुष्य को समभाव रखने का उपदेश देता है जो व्यर्थ ही है क्योंकि पीड़ित व्यक्ति को देखकर जो द्रवित नहीं होगा वह पात्र कहलाने का अधिकारी नहीं है। प्रसन्नता को व्यक्त न करना मानवता के विपरीत है। मानव चेतनाशील प्राणी है उसकी उपेक्षा करना मानवता को कलंकित करना हैं। हाँ पत्थरों से यह आशा नहीं की जा सकती। हम ज्ञानी का उपदेश भले ही शिरोधार्य करें लेकिन अपने मनोनुकूल व्यवहार करें एवं आचरण करने को विवश हों। ज्ञानी की बातों में आकर स्वयं को कोल्हू के बैल स्वरूप न बनाए।

विषेष–

- संवेदनाहीन मनुष्य जड़वत् शून्यता का प्रतीक है।
- प्रेमचंद का अनुभवी जीवन मेहता द्वारा अभिव्यक्त हुआ है।
- ज्ञान का अर्थ विवेक को प्राप्त करना है, जिससे परिस्थिति अनुकूल व्यवहार किया जा सके।
- मानवता की भावना का चित्रण किया गया है।
- मुहावरा कोल्हू का बैल प्रयुक्त किया गया है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- मैं समझता हूँ कि नारी केवल माता है और उसके उपरांत कुछ भी नहीं, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र

है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विजय है। एक शब्द में उसे लय कहूंगा– जीवन का, व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– प्रेम खन्ना का मालती के प्रति आकर्षण को जानकर गोविंदी व्यथित रहने लगती है। प्रो. मेहता से मालती को समझाने का आग्रह करती है। मेहता आग्रह स्वीकार कर प्रयत्न की कहते हैं। गोविंदी को समझाते हुए कहते हैं कि मनुष्य को वर्तमान पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। कृत्रिमता से दूर स्वाभाविक जीवन जीना चाहिए क्योंकि सच्ची मानवता, ईश्वरीय दर्शन, प्रेम को भी प्राप्त किया जा सकता है। गोविंदी को अधिकार के प्रति सचेत करते हुए कहते हैं यह घर तुम्हारा है, तुम्हीं ने उसे पल्लवित किया है।

व्याख्या– प्रो. मेहता गोविंदी को समझाते हुए कहते हैं कि घर की कल्पना माता के बिना संभव नहीं है। मां ही वह शक्ति है जो समस्त सदस्यों को एकता के सूत्र में पिरोकर रख सकती है। अपनी मातृत्व भावना से सिंचित करती है। उसको अपमानित करने का अधिकार किसी को नहीं है। नारी जीवन को सार्थकता मातृत्व के बिना नहीं होती। मातृत्व सुख से वंचित नारी को हेय दृष्टि से देखा जाता है। पत्नी, बहन, बेटी, बहु के विभिन्न रूप मिलकर भी मां की गरिमा की बराबरी नहीं कर सकते। प्रो. मेहता जी कहते है कि संसार में अगर सबसे बड़ी तपस्या है तो वह मातृत्व भावना ही है। गौरव और गर्व के गुण इसी मातृत्व को रूपांतरित करते हैं। नारी अगर मां बनती है, तो उसके जीवन की सार्थकता पूर्ण हो जाती है। मातृत्व को संसार का सबसे बड़ा त्याग माना गया है। विजय का गौरव भी कहा जाता है। इसी पद को प्राप्त करने के लिए वह वैवाहिक बंधन में बंधती है। तत्पश्चात ही पत्नी, बहू का सम्मान प्राप्त करती है। इसके लिए वह जीवन, व्यक्तित्व और नारीत्व को भी अर्पित कर देती है। आपने सुंदर पुत्र को जन्म दिया है, उसकी सुरक्षा करना व पल्लवित करना आपका दायित्व है। आपको खन्ना द्वारा तिरस्कार तथा उपेक्षा को अनदेखा करके अपने घर को ही टूटने से बचाना है। गृह त्याग का विचार इस बच्चे के भविष्य को भी दांव पर लगा सकता है।

विशेष :

- नारी जीवन की पूर्णता मातृत्व के बिना संभव नहीं।
- गोविंदी की दुःखी मनः स्थिति का वर्णन किया गया है।
- प्रो. मेहता ने गोविंदी के घर को टूटने से बचाकर मानवतावादी भावना को व्यक्त किया है।
- राष्ट्र कवि दिनकर ने मातृत्व की महत्ता प्रति पादित करते हुए कहा– "माँ बनते ही त्रिया कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है।"
- गोविंदी के माध्यम से भारतीय नारी के आदर्श को चित्रित किया गया है।
- मातृत्व के सामने त्याग, तपस्या और विजय का आनंद भी श्रीहीन लगता है।
- भाषा में लाक्षणिकता की प्रधानता है।
- सहजता, सरलता और प्रवाहमयता का गुण विद्यमान है।
- विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

- यह अवतरण अप्रत्यक्ष रूप से गोविंदी के साथ खन्ना की स्वार्थलिप्सा, भोगवादी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालता है।

- उसकी वाणी में सत्य का बल था। डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूंगा हो जाता है। वही सीमेंट, जो ईंट पर चढ़कर पत्थर हो जाता है, मिट्टी पर चढ़ा दिया जाये तो मिट्टी हो जाएगा। गोबर की निर्भिक स्पष्टवादिता ने उस अनीति के बख्तर को भेद डाला, जिससे सज्जित होकर नोखेराम की दुर्बल आत्मा अपने को शक्तिमान समझ रही थी।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– शहर से वापस आकर गोबर को जब मां–बाप के शोषित होने का पता चला तो वह प्रतिकार करने लगा। होरी चाहता था कि गोबर किसी से कुछ न कहे क्योंकि समाज और बिरादरी के आगे किसी की नहीं चलती। गोबर (पिता) होरी की इच्छा के विरूद्ध था। वह जाति–पाति को दिखावा मात्र समझता है। शोषण करने का नया तरीका मानता है। नोखेराम की धूर्तता का पर्दाफाश करता है। शिक्षित गोबर से भयभीत होकर बातचीत करना मना कर देता है। गोबर नोखेराम को अदालत में घसीटने की धमकी देता है, साथ ही राय साहब अमरपाल सिंह से भयभीत भी नहीं होता। प्रेमचंद ने गोबर के इसी तेजस्वी स्वाभिमान का वर्णन करते हुए कहा–

व्याख्या– नोखेराम की मक्कारी और चालाकी को देखकर गोबर अदालत जाने की धमकी देता है। गंगा की सौगंध खिलाकर भयभीत भी करता है। लेखक कहता है कि आज उसकी वाणी में सत्य के दर्शन हो रहे थे। यर्थाथ सामने उपस्थित था। सत्य भी साहसी व्यक्ति का साथ देता है। डरपोक और कायर के साथ सत्य भी गूंगा हो जाता है। जिस प्रकार सीमेंट ईंट के साथ प्रयुक्त होने पर पत्थर का रूप धारण करता है, ठीक उसी प्रकार सत्य भी शक्ति व धैर्य के साथ मुखरित होने को उत्सुक रहता है। मिट्टी का सान्निध्य पाकर सीमेंट भी मिट्टी बन जाता है। गोबर की निर्भीकता में सत्यता, स्पष्टता के दर्शन है। उसने अपने सत्य से नोखेराम की उस अभेद शोषण की दीवार को भेद डाला जिसके आधार पर नोखेराम स्वयं को सर्वोपरि मान रहा था। उसकी दुर्बल आत्मा शोषण का आधार पाकर बलवती हो रही थी आज गोबर के सत्य के सामने नग्न रूप में सामने आ गई।

विशेष :

- प्रेमचंद ने गोबर के द्वारा युवा पीढ़ी के आक्रोश को व्यक्त किया है।
- नोखेराम जो शोषण करता था गोबर के सामने यथार्थ से भागने का प्रयत्न करने पर विवश हुआ।
- सत्य में अटूट शक्ति होती है जिसके सामने असत्य टिक नहीं पाता।
- सत्य की तुलना सीमेंट से की गई है।
- शोषकों को प्रतिकार करने से गोबर में आधुनिकता के दर्शन होते हैं।
- प्रेमचंद ने यह स्पष्ट किया है कि जमींदारी प्रथा का खात्मा होने वाला है।
- गोबर के साहसी एवं निर्भीक व्यक्तित्व का चित्रण है।
- जमींदारों के वर्चस्व की दीदार इतनी सुदृढ़ थी जिसको तोड़ना स्वयं को विपत्ति में डालना था।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

- शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- उसे तो अपनी काजल मिस्सी, मांग चोटी से ही छुट्टी नहीं मिलती। बच्चे की देखभाल क्या करेगी? बेचारा जमीन पर पड़ा सोता होगा। बिचारा एक दिन भी सुख से नहीं रहने पाता। कभी खांसी, कभी दस्त, कभी कुछ कभी कुछ। यह सोच–सोचकर उसे झुनिया पर क्रोध आता। गोबर के लिए अब भी उसके मन में वही ममता थी। इसी चुडैल ने उसे कुछ खिला–पिलाकर अपने वश में कर लिया। ऐसी मायाविनी न होती तो यह टोना ही क्यों करती। कोई बात न पूछता था। भौजाइयों की लातें खाती थी। यह झुग्गता मिल गया तो आज रानी हो गई।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– लखनऊ शहर से घर वापस आया गोबर पिता होरी की जड़ता और मूर्खता को देखकर दुःखी होता है। मातादीन का विरोध करने पर डांट पड़ती है इसलिए वह पुनः लखनऊ जाने की सोचता है, लेकिन पत्नी झुनिया को साथ लेकर। धनिया नहीं चाहती थी कि उसकी आंख का तारा पोता उसके सामने से ओझल हो जाए। पारस्परिक वैचारिक मतभेद स्वरूप गोबर झुनिया को भी साथ ले गया। अपने घर की खुशहाली को सूना होता देख धनिया टूट जाती है और व्यथा का वर्णन करती हुई कहती है।

व्याख्या– जब से गोबर झुनिया को लेकर शहर गया। धनिया को पोते का सूना खटोला देखकर बेचैनी होती। वह कवच जो उसका एकमात्र सहारा था वह भी दूर चला गया। उसे पुत्र गोबर से कोई शिकायत नहीं है वह झुनिया को इस प्रसंग की जड़ मानती है जो शहर जाकर अब स्वतंत्र हो गई। शहरों की औरतों की तरह वह भी मिस्सी–काजल लगाती होगी अपने साजश्रृंगार में बच्चे की अनदेखी करती होगी। बेचारा पृथ्वी पर पड़ा रहता होगा। एक दिन भी सुख से न रहने पाया। आये दिन बीमार रहता कभी खांसी, तो कभी दस्त होते होगें। झुनिया पर बार–बार क्रोध आ रहा था। गोबर के लिए अब भी वही ममता थी । धनिया को लगता था कि उसने उसके पुत्र को कुछ खिला–पिलाकर अपने वश में कर लिया होगा। झुनिया मायाविनी है उसने अपनी माया में बांध लिया होगा। जादू–टोना में यकीन रखती थी। एक समय था कि झुनिया को घर में भी कोई नहीं पूछता था। भाईयों तथा भाभियों की तिरस्कृत दृष्टि का शिकार थी। मैनें उसे अपने घर में सहारा देकर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली। मेरा भोला–भाला बेटा मिल गया, इसीलिए आज खुद को रानी से कम नहीं समझती।

विशेष :

- धनिया का अंर्तद्वंद्व व्यक्त है।
- धनिया का मातृ–स्नेह एवं झुनिया से प्रतिकार की भावना व्यक्त है।
- धनिया के अनुभवी जीवन की अभिव्यक्ति है।
- जादू–टोने का प्रसंग अंधविश्वास को रेखांकित करता है।
- वैधव्य जीवन की विवशता, लाचारी एवं यथार्थ का चित्रण है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- व्यवहार में भी देखा गया है कि मूल से सूद अधिक प्रिय होता है।

- झुग्गा, लात, भौजाइयों आदि स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया गया है।
- सिलिया अब उसकी निगाह में केवल काम करने की मशीन थी और कुछ नहीं। उसकी ममता को वह बड़े कौशल से बचाता रहता था। सिलिया ने आंख उठाकर देखा तो मातादीन वहां न था। बोली चिल्लाओ मत सहुआइन, यह ले लो, दो की जगह चार पैसे का अनाज। अब क्या जान लेगी? मैं मरी थोड़े ही जाती थी।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

संदर्भ– मातादीन सिलिया को आश्रय प्रदान कर उसके अस्तित्व से खिलवाड़ करता रहा लेकिन कभी पत्नीत्व की गरिमा प्रदान नहीं की। इसीलिए सिलिया भी दुखी रहती थी। सामाजिकता की परवाह न करता। उसका मानना था कि सिलिया जितना परिश्रम करती है उसमें अधिक ही पाती है। दुलारी सहुआइन अपना पैसा वसूलने के लिए सिलिया के पास आती है। मातादीन अलग हट जाता है। दुलारी सहुआइन को अनाज देने पर क्रोधित होकर डांटता है। मातादीन की मनः स्थिति एवं मनोवृति का चित्रण करते हुए कहा है–

व्याख्या– मातादीन स्वार्थी मनोवृत्ति से युक्त था, इसीलिए वह उसका शारीरिक शोषण करने से पीछे नहीं रहता। मातादीन के घर में सिलिया की स्थिति जडवत मशीन की तरह थी, जिससे केवल काम लिया जा सकता है। उस पर व्यय करने की आवश्यकता नहीं। उसकी ममता को अपने मनमाने ढंग से नचाता था। दुलारी सहुआइन को आता देख सामने से हट जाना उसकी स्वार्थी प्रवृत्ति को उजागर करता है। सिलिया को स्वयं पर विश्वास था इसीलिए अनाज देकर सहुआइन का मुंह बंद कर देती है।

विशेष :

- मातादीन की स्वार्थी भावना का चित्रण है।
- सिलिया को मशीन मानने में मातादीन की यंत्रीकरण की भावना को रेखांकित करता है।
- आंख उठाकर देखना–मुहावरे का प्रयोग हुआ है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- अनाज, सरक, मरी आदि तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है।
- उस चितवन में वेदना अधिक थी या भर्त्सना, यह कहना कठिन है। पर उसी पक्षी की भांति उसका मन फड़फड़ा रहा था जो ऊंची डालपर उन्मुक्त वायुमण्डल में उड़ने की शक्ति न पाकर उसी पिंजड़े में जा बैठना चाहता था, चाहे उसे बेदाना, बेपानी, पिंजड़े की तीलियों से सिर टकराकर मरना ही क्यों न पड़े। सिलिया सोच रही थी, अब उसके लिए दूसरा कौन सा ठौर है। वह ब्याहता न होकर भी संस्कार में और व्यवहार में और मनोभावना में ब्याहता थी और अब मातादीन चाहे उसे मारे या काटे, उसे दूसरा आश्रय नहीं हैं दूसरा अवलंब नहीं है।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– दुलारी ने सहुआइन को अनाज देकर मातादीन से क्रोध मोल ले लिया। सिलिया अपने अधिकार की बात करती है तो मातादीन उग्र हो जाता है और कहता है कि तुम काम करती हो तो खाती भी हो, पहनती भी हो। उसके अलावा तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। लेखक सिलिया की मनः स्थिति का वर्णन करते हुए कहते है।

व्याख्या– मातादीन से उपेक्षा पाकर सिलिया ह्रदय से टूट चुकी थी। उसकी स्थिति उस पक्षी की भांति थी जो चाहकर भी दूर उन्मुक्त गगन में नहीं उड़ सकती थी। आज मातादीन की निगाह में परिवर्तन देखा तो उसकी निगाह में वेदना की अधिकता थी। वह पिंजड़े में बंद पक्षी की भांति फड़फड़ा तो सकती थी लेकिन उससे बाहर निकलना संभव नहीं था। वह जानती थी कि मातादीन के अलावा कोई सहारा भी नहीं है। वह बिना दाना पानी के उस घर की चार दीवारी से सिर मारकर मर जाना श्रेष्ठ समझती थी। भले ही विधिवत विवाह नहीं हुआ था लेकिन संस्कार, व्यवहार एवं मनोवृत्ति के अनुसार वह मातादीन की पत्नी ही थी। मातादीन चाहे तो उसे घर से निकाल दे, या मारकर जीवन नष्ट कर दे, उसे कोई प्रतिकार नहीं था, लेकिन समाज के सामने उपेक्षा करना असहनीय था।

विशेष :

- सिलिया की दुःखी मनः स्थिति का वर्णन है।
- मातादीन की बदलती मनोवृति का चित्रण है।
- सिलिया की तुलना पिंजड़े में बंद पक्षी से की गई है।
- भारतीय नारी का आदर्श व्यक्त है।
- हिंदू धर्मानुसार पति ही परमेश्वर होता है। इसीलिए वह मातादीन का गृह छोड़ने को तैयार न थी।
- वैध वैवाहिक संबंध ही समाज द्वारा स्वीकार्य है।
- भारतीय नारी की इच्छा होती है कि वह पति के सान्निध्य में रहकर जीवन लीला समाप्त करे।
- संस्कार 16 होते हैं, उनमें विवाह संस्कार ही जीवन पूर्णता सिद्ध करता है।
- आत्म कथात्मक शैली, विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. ईश्वर के दर्शन कहाँ होते हैं?
2. नारी जीवन की पूर्णता का आधार क्या है?
3. गोबर किस वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है?
4. माँ–बाप का धर्म क्या है?
5. सिलिया किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है?
6. प्रेमचंद के अनुसार नारी का उचित स्थान कहाँ है?

- मार डालो दादा, सब जने मिलकर मार डालो। हाय अम्मां, तुम इतनी निर्दयी हो, इसीलिए दूध पिलाकर पाला था? सौर में ही क्यों न गला घोट दिया? हाय, मेरे पीछे पंडित को भी तुमने भ्रष्ट कर दिया। उसका धर्म लेकर तुम्हें क्या मिला? अब तो वह भी मुझे न पूछेगा। लेकिन पूछे न पूछे रहूंगी उसी के साथ। वह मुझे चाहे भूखों रखे, चाहे मार डाले, पर उसका साथ न छोडूगीं। उसकी सांसत कराके छोड़ दूँ? मर जाऊंगी, पर हरजाई न बनूंगी। एक बार जिसने बांह पकड़ ली उसकी रहूंगी।

संदर्भः प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– सिलिया की दुर्दशा देखकर और मातादीन की उदासीनता से ग्रसित होकर उसके मां–बाप घर चलने का आग्रह करते हैं लेकिन सिलिया मना कर देती है। भाइयों द्वारा मार खाकर भी मातादीन का साथ छोड़ना नहीं चाहती। सिलिया ने दीन होकर विनती की, लेकिन मां–बाप के हृदय में दया नहीं आयी। सिलिया के दृढ़ स्वभाव का वर्णन करते हुए लेखक ने कहा–

व्याख्या– अपने परिवार में अपनी दुर्गति देखकर सिलिया अपनी व्यथा व्यक्त करती हुई कहती है कि सब मेरे खिलाफ हो गये हो। सब मिलकर मुझे मार डालो। हे मां, तुमने तो मुझे दूध पिलाकर बड़ा किया तुम्हारे हृदय में भी दया नहीं आयी। मुझे पैदा होते ही क्यों न मार दिया। मेरे पीछे मेरे पंडित (पति) की दुर्दशा करने में जरा भी शर्म नहीं आयी। उसके धर्म के साथ विद्रोह करके तुम्हें क्या मिला? तुम्हारे दुर्व्यवहार के कारण ही अब मेरा भी वहां रहना दूभर लग रहा है। अपनी दृढ़ता व्यक्त करती हुई कहती है कि वह चाहे मुझे मारे या पीटे, मेरा वहीं रहना सार्थक है। मेरे जीवन की सार्थकता भी उन्हीं के घर सिद्ध होगी। उनके साथ रहकर मुझे अपने धर्म का निर्वाह करने में आसानी होगी। उनकी अंतिम क्रिया कर्म के बाद ही उस घर को त्याग सकती हूँ। उनके घर पर मरना मुझे अधिक श्रेष्ठ है। पति के जीते जी दूसरे का हाथ थामना मुझे अच्छा नहीं लगता। जिसने एक बार मेरे साथ रहने का निश्यच किया है, उसका साथ छोड़ना दूभर ही है। जब तक जीवित हूँ उन्हीं के साथ रहने में मेरी भलाई है।

विशेष :

- परिवार की उपेक्षा से दुःखी सिलिया की मनः स्थिति का वर्णन है।
- अभिभावकों के लिए सामाजिक मर्यादा का पालन करना अनिवार्य होता है, इसीलिए सिलिया से घर चलने का आग्रह किया जाता है।
- पति के प्रति समर्पण की भावना का वर्णन है।
- सिलिया द्वारा भारतीय नारी की महिमा का वर्णन किया गया है।
- हिंदूधर्मानुसार पति ही परमेश्वर होता है।
- आदर्श पत्नी का धर्म है, वह पति के साथ रहे उसमें ही उसकी सार्थकता है।
- मुहावरों का प्रयोग बाँह पकड़ना, भृष्ट करना के रूप में हुआ है।
- तद्भव शब्द– भ्रष्ट, धरम, सांसत आदि प्रयुक्त हुए है।
- आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।
- सरल प्रवाहित हिंदी का प्रयोग हुआ है।

नेकी न करना बदनामी की बात नहीं। अपनी इच्छा नहीं, या सामर्थ्य नहीं है। इसके लिए कोई हमें बुरा नहीं कह सकता। मगर जब हम नेकी करके अहसान जताने लगते हैं, तो वही जिसके साथ हमने नेकी की थी हमारा शत्रु हो जाता है और हमारे अहसान को मिटा देना चाहता है। वही नेकी अगर करने वालों के दिल में रहे तो नेकी है, बाहर निकल जाये तो बदी है।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– भोला की दूसरी पत्नी नोहरी के संबंध नोखेराम से हैं। होरी और धनिया को वह अपना समधी समधिन मानती है। सोना के विवाह पर रूपये देने को तैयार हो जाती है। उसकी इच्छा है कि सभी उसका अहसान माने, उसकी चर्चा करें। तो पूर्ण बदनामी से बचा जा सकता है। सोना के विवाह पश्चात नोहरी अपने व्यवहार की प्रशंसा करती है। होरी तो परिस्थितिवश सुन लेता है, लेकिन धनिया को यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता।

व्याख्या– धनिया नोहरी की आत्म प्रशंसा को सुनकर प्रतिक्रिया व्यक्त करती है कि नेकी करके उसका बखान करना उचित नहीं है। नोहरी ने होरी पर जो उपकार किया था उसका बखान करके स्वयं की उपयोगिता सिद्ध करना सार्थक नहीं है। नोहरी का ऐसा करना उसकी बदनामी का कारण बना। नेकी करके उसका बखान न करना ही महानता का लक्षण है। अगर नेकी न होगी तो बदी का अंत कैसे होगा? नेकी ही प्रतिकार को जन्म देती है। स्वाभिमान पर किया गया आघात ही बदले की भावना को जन्म देता है। नेकी करके उसको अपने तक सीमित रखने का विचार मित्रता का सूचक है। तभी नेकी यथावत रहेगी अन्यथा अपयश का कारण बनेगी।

विशेष :

- नोहरी की महत्वाकांक्षा का वर्णन है।
- उपकार का अर्थ बखान करना नहीं होता अपितु अपने तक सीमित रखना होता है।
- धनिया की कुशाग्र बुद्धि का चित्रण है।
- परोपकार का भावार्थ भी यही है कि उसका वर्णन न किया जाए।
- उर्दू शब्दों का प्रधानता है, जैसे– बदनामी, अहसान, नेकी, मगर आदि।
- धनिया की व्यवहारकुशलता का वर्णन है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- सरल हिंदी भाषा का प्रयोग किया गया है।
- सेवा और त्याग की देवी, जबान की तेज, पर मोम हृदय, पैसे–पैसे के लिए प्राण देने वाली, पर मर्यादा रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार। जवानी में वह कम रूपवती नहीं थी। नोहरी उसके लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार था। नोहरी उसके सामने क्या है? चलती थी तो रानी लगती थी। जो देखता था, देखता ही रह जाता था।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– होरी हल लेकर खेत पर जाता है। उसे भोला की दयनीय स्थिति को देखकर तरस आ रहा है। नोहरी ने भोला को सभी के सामने पीटा लेकिन लाचार भोला शांत रहा। उसकी आँखों के सामने नोहरी और सिलिया का चरित्र घूमने लगता है। सिलिया के पतिव्रत धर्म पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि वह मातादीन के यहां ही रहेगी चाहे वह उसे मारे या काटे। होरी धनिया की विशेषताओं से प्रभावित होकर कहता है।

व्याख्या– नोहरी और सिलिया के वृतांत के बीच धनिया की उपस्थिति ने होरी का ध्यान आकृष्ट कर लिया। होरी

धनिया के गुणों से प्रभावित था। उसने सेवा द्वारा सभी को आकृष्ट कर लिया था। परिवार के लिए धनिया का त्याग बहुमूल्य था। जिसके फलस्वरूप परिवार अपने सुचारू रूप से संचालित था। वह जबान की तो तेज थी, साथ ही मोम के समान कोमल हृदय भी रखती थी। एक–एक पैसा बचाने के लिए अपनी जान तक छिड़कती थी किन्तु मर्यादा का पालन करने से पीछे न थी। स्वयं को स्वाहा करके भी मर्यादा पर आंच नहीं आने देती थी।

धनिया के सौंदर्य की प्रशंसा करता हुआ होरी कहता है कि वह जवानी में अधिक रूपवती थी। नोहरी उसके सामने उन्नीस लगती थी। जब वह चलती थी, तो रानियों को पीछे छोड़ देती थी। जो एकबार धनिया को देख लेता, कभी नहीं भूला पाता था।

विशेष :

- होरी का तुलनात्मक दृष्टिकोण व्यक्त है।
- धनिया के गुणों की विवेचना की गई है।
- होरी की निगाह में धनिया नोहरी व सिलिया से अधिक गुणसंपन्न थी।
- धनिया के द्वारा प्रेमचंद ने आदर्श गृहिणी का स्वरूप स्पष्ट किया है।
- यह मनुष्य का स्वभाव है कि अतीत को स्मरण कर वर्तमान को सुखद बनाने की चेष्टा करता है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- शुद्ध साहित्यिक सरल हिंदी का प्रयोग किया गया है।
- प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच जो सेवा मार्ग है, चाहे उसे कर्म योग ही कहो, वही जीवन को सार्थक कर सकता है। वही जीवन को ऊंचा और पवित्र बना सकता है। किसी सर्वज्ञ ईश्वर में उनका विश्वास न था यद्यपि वह अपनी नास्तिकता को अपने लिए असंभव समझते थे; इसीलिए कि इस विषय में निश्चित रूप से कोई मत स्थिर करना वह अपने लिए असंभव समझते थे; पर यह धारणा उनके मन में दृढ़ हो गई थी। प्राणियों के जन्म–मरण, सुख–दुःख, पाप–पुण्य में कोई ईश्वरीय विधान नहीं है।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– प्रो. मेहता को अपने ज्ञान का घमंड था। उनकी दृष्टि में नारी केवल परिवार तक सीमित थी। मालती के सेवा भाव के सामने मेहता का घमंड काफूर हो गया। काफी विचार विमर्श के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि आध्यात्म और अनात्मवाद से भी श्रेष्ठ सेवा का मार्ग है। इसी मनोवृत्ति की विवेचना है।

व्याख्या– प्रो. मेहता यह सोचने पर विवश हुए कि संसार में सभी बातों से बढ़कर सेवा का भाव है, जो मनुष्य में मानवता को पल्लवित करता है। सेवा की प्रवृत्ति के मूल में चाहे कर्मप्रधानता की भावना ही क्यों न हो? सेवा द्वारा ही जीवन में विनम्रता का संचार होता है। मनुष्य का अहं समाप्त हो जाता है। जीवन की सार्थकता सेवा द्वारा ही पूर्ण मानी जाती हैं। सेवा द्वारा ही जीवन में ऊंचे आदर्शों का पालन करना संभव होता है। जीवन में पवित्रता की गंध आती है। मेहता का मानना था कि संसार में ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है। अपनी इस विचारधारा को दूसरों तक हस्तांतरित नहीं करते थे क्योंकि यह उनकी मौलिकता की उपज थी। उनका कहना था कि संसार में प्राणियों के पैदा होने और नष्ट होने में कार्य कारण का संबंध ही है। सुख–दुःख, पाप–पुण्य मनुष्य के वैयक्तिक जीवन के अंग है।

विशेष :

- प्रो. मेहता द्वारा मार्क्सवादी भावना को व्यक्त किया गया है।
- मालती की सेवा भावना के प्रभाव स्वरूप मेहता का बौद्धिक चितन परास्त होता है।
- सामान्य जीवन में भी सेवा का भाव देखा जाता है जिससे जीवन में क्रमबद्धता बनी रहती है।
- कर्मप्रधान संसार में अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए जागरूक होना आवश्यक है।
- कर्म करना प्राणिमान का धर्म है।
- प्रो. मेहता की बदलती मनः स्थिति का चित्रण है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- साहित्यिक सरल हिंदी प्रयोग में लाई गई है।
- अज्ञान की भांति ज्ञान भी निष्कपट और सुनहरे स्वप्न देखने वाला होता है। मानवता में उसका विश्वास इतना दृढ़, इतना सजीव होता है कि वह उसके विरूद्ध व्यवहार को अमानुषीय समझने लगता है। वह यह भूल जाता है कि भेड़ियों ने भेड़ों की निरीहता का जवाब सदैव पंजों और दांतों से दिया है। वह अपना एक आदर्श संसार बनाकर उसको आदर्श मानवता से आबाद करता है और उसी में मग्न रहता हैं। यर्थाथता कितनी अगम्य, कितनी दुर्बोध, कितनी अप्राकृतिक है उसकी ओर विचार करना उसके लिए मुश्किल हो जाता है।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– प्रो. मेहता की प्रेरणा से मालती की जीवन शैली में परिर्वतन आ गया। वह गांव–गांव जाकर स्त्रियों को, बच्चों को स्वास्थ्य की बातें बताया करती। एक बार मेहता के साथ गांव में जाकर बच्चों के स्वास्थ्य का परीक्षण करने लगी। मेहता जी गांव में कुश्ती को देखने लगे और सोचने लगे कि लोग भोले निरीह मनुष्यों के साथ निर्दयता का व्यवहार क्यों करते हैं।

व्याख्या– मेहता गाँव में कुश्ती का आयोजन देख रहे थे, उनकी दृष्टि गांव के भोले–भाले, सीधे और सच्चे मनुष्यों पर पड़ी। उनका मन व्यथित होकर कहने लगा कि मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन क्यों होता है? दूसरे को त्रस्त करने में क्या मिलता है? एक विवेचक तथा दार्शनिक की भांति सोचते हुए कहते हैं कि ज्ञानी और अज्ञानी व्यक्तियों की प्रकृत्तियों में अंतर क्यों होता है? दोनों के दृष्टिकोण में अंतर क्यों पाया जाता है? अज्ञानी व्यक्ति की दृष्टि यर्थाथ पर टिकी होती है जबकि ज्ञानी आदर्शवाद की आड़ में अपनी कुत्सित विचारों को त्रस्त करता है। आदर्श की रोशनी में यथार्थ धरातल भी उसके सामने ओझल हो जाता है। अपनी मनोवांछित प्रकृतियों के विपरीत आचरण करने वाले से रूष्ट हो जाता है। मानवता के शुभ पक्ष को देख पाता है तथा वह प्रकृति के यथार्थ स्वरूप की अवहेलना करने लगता है। वह अपनी शक्ति सामर्थ्य के सामने किसी को महत्व प्रदान नहीं करता।

ज्ञानी और अज्ञानी के अंतर को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि ज्ञानी मनुष्य भेड़िये के समान होता है और अज्ञानी भेड़। भेड़ का स्वभाव किसी के प्रति दुर्भावना युक्त नहीं होता फिर भी भेड़िया उसको अवसर आने पर अपने भोजन का शिकार बनाता है। उसके तेज और नुकीले दांत बेचारी भेड़ की जीवन लीला समाप्त कर देते है। ज्ञानी का जीवन यथार्थ से दूर कल्पना लोक में होता है जबकि अज्ञानी यथार्थ धरातल पर सरलता युक्त जीवन जीता है।

विशेष :

- जीवन की कठोर वास्तविकता कल्पना लोक को खंडित कर यथार्थ धरातल पर लाकर खड़ा कर देती है।
- प्रो. मेहता की विद्वता का वर्णन है।
- ज्ञान का मानवीकरण किया गया है।
- भेड़िया शोषक और भेड़ शोषित वर्ग का प्रतीक है।
- आदर्श और यथार्थ की विवेचना की गई है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- प्रो. मेहता का चिंतनशील पक्ष व्यक्त हुआ है।
- नारी परीक्षा नहीं चाहती प्रेम चाहती है। परीक्षा गुणों को अवगुण, सुंदर को असुंदर बनाने वाली चीज है। प्रेम अवगुण को गुण बनाता है, असुंदर को सुंदर। मैनें तुमसे प्रेम किया है, मैं कल्पना ही नहीं कर सकती, कि तुममें कोई बुराई भी है। मगर तुमने मेरी परीक्षा की, और तुम मुझे अस्थिर, चंचल और जाने क्या–क्या समझकर मुझसे दूर भागते रहे। मैं जो कुछ कहना चाहती हूँ, वह मुझे कह लेने दो। मैं क्यों अस्थिर और चंचल हूँ, इसीलिए कि मुझे वह प्रेम नहीं मिला जो मुझे स्थिर और अचंचल बनाता।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– प्रो. मेहता मालती के गुणों से प्रभावित होकर विवाह करने की इच्छा व्यक्त करते हैं। मालती मेहता की परीक्षणात्मक विचारधारा से व्यथित है, उसका मानना है कि तुमने सदैव परीक्षा की दृष्टि से मुझे परखना चाहा। नारी प्रेम की भूखी है। प्रेम और परीक्षा में अंतर होता है।

व्याख्या– मालती मेहता के व्यवहार से तंग आकर कहती है कि तुमने मुझे परीक्षक की दृष्टि से देखा है। कोई स्त्री परीक्षा को पसंद नहीं करती क्योंकि परीक्षा में अवगुणों का समावेश हो जाता है। नारी प्रेम की भूखी होती है उसको पल्लवित करने के लिए वह ललायित रहती है। प्रेमी की दृष्टि परीक्षक की दृष्टि से व्यापक होती है उसकी सीमा में परिवार, समाज और राष्ट्र समाहित हो जाता है। प्रेमी का विचार असुन्दर को सुन्दर बना देता है उसे अपनी प्रेमिका में अवगुण भी गुणों के रूप में नजर आते हैं। जबकि आपने मुझे परीक्षक की दृष्टि से देखकर गुणों को अनदेखा कर दिया है। इसीलिए मुझे अस्थिर, चंचल मानकर मुझसे दूर भागने का प्रयत्न कर रहे हैं जबकि मैं अस्थिर हूँ, चंचल हूँ, इसलिए कि मुझे प्रेम नहीं मिला जो मेरे अवगुणों को गुणों में परिवर्तित कर देता।

विशेष :

- प्रेमी एवं परीक्षक के दृष्टिकोण का अंतर बताया गया है।
- प्रेम शब्द व्यापकता की ओर संकेत करता है।
- प्रेमी को अवगुण भी गुणों के रूप में दिखाई देते हैं।
- मालती की बुद्धि कुशलता का चित्रण है।

- मालती की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया गया है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- सरल प्रवाह युक्त हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- हम जिनके लिए त्याग करते है, उनसे किसी बदले की आशा न रखकर भी उनके मन पर शासन करना चाहते है, चाहे वह शासन उन्हीं के हित के लिए हो। यद्यपि इस हित को हम इतना अपना लेते है, कि वह उनका न होकर हमारा हो जाता है। त्याग की मात्रा जितनी ही ज्यादा ही ज्यादा होती है, वह शासन भावना भी उतनी ही प्रबल होती है और सहसा हमें विद्रोह का सामना करना पड़ता है, तो हम क्षुब्ध हो उठते हैं, और त्याग जैसे प्रतिहिंसा का स्वरूप ले लेता है।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– राय साहब अमरपाल सिंह का पुत्र रूद्रपाल मालती की बहन सरोज से विवाह करने को इच्छुक है। बेटे की जिद के सामने अमरपाल सिंह व्यथित है। उन्हें अपना विधुर जीवन व्यथित करने लगता है कि इन बच्चों की परवरिश के लिए दूसरा विवाह नहीं किया, लेकिन बच्चे उनकी भावनाओं को अनदेखा कर देते हैं। राय साहब का बेटे के लिए दुःखी होना स्वाभाविक है।

व्याख्या– बेटे की जिद के सामने लाचार अमरपाल अपनी मनोदशा व्यक्त करते हुए कहते है कि हम जिनके लिए त्याग करते हैं, वह भले ही उसका अहसान न माने, किंतु हम अप्रत्यक्ष रूप से उस पर शासन करने के आकांक्षी होते हैं। वह विचार भले ही उसे व्यथित करता हो, उनके हित को ध्यान में रखकर ही हम ऐसी प्रवृत्ति का समर्थन करते हैं, ऐसी स्थिति में हमारा अपना प्रिय भी शत्रु हो जाता है। रायसाहब की भी यही स्थिति है। परिवार का पालन करने व परवरिश करने के लिए निजी सुखों को तिलांजलि दे दी। विधुर जीवन जीना श्रेष्ठ समझा। वह चाहते तो विवाह करके अपने विधुर जीवन को भोग विलास में डुबो सकते थे। लेकिन बच्चे उनके त्याग की कोई परवाह नहीं करते। रूद्रपाल ने अपने विवाह को लेकर जो अपमान किया वह असहनीय ही था। रूद्रपाल का कहना है कि मेरा विवाह तो सरोज से ही होगा, भले ही आपके बाद हो। यह वास्तव में राय साहब का अपमान ही था।

प्रेमचंद का मानना है कि जो व्यक्ति अपने बच्चों से जितना प्यार करता है उसकी आड़ में शासन करने की मनोवृत्ति भी स्वतः झलकने लगती है। बच्चे इसे प्रतिकार करके अपनी इच्छा प्रकट करते हैं। ऐसे स्थिति में बच्चों का क्षुब्ध होना स्वाभाविक ही है। प्रतिहिंसा के मूल में भी यही मनोवृत्ति उत्तरदायी होती है।

विशेष :

- रूद्रपाल में आधुनिक पीढ़ी के युवकों की झलक दिखाई देती है।
- राय साहब की दुःखी मनःस्थिति का चित्रण किया गया है।
- राय साहब द्वारा युगीन समाज की यर्थाथकता को रेखांकित किया गया है।
- प्रेमचंद ने रायसाहब के मनोविज्ञान का वर्णन किया है।
- उपकार के बदले प्रत्युपकार की भावना विलुप्त होती जा रही है।
- राय साहब के त्याग का वर्णन है।

- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- शुद्ध साहित्यिक हिंदी प्रयोग में लाई गई है।
- तुम मेरे पथप्रदर्शक हो, मेरे देवता हो, मेरे गुरू हो। तुम्हें मुझसे कुछ याचना करने की जरूरत नहीं, मुझे केवल संकेत कर देने की जरूरत है। जब मुझे तुम्हारे दर्शन न हुए थे, और मैनें तुम्हे पहचाना न था, योग और आत्म सेवा ही मेरे जीवन का ईष्ट था। तुमने आकर उसे प्रेरणा दी, स्थिरता दी। मैं तुम्हारे अहसान कभी नहीं भूल सकती।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– मालती के सेवाभाव से प्रभावित होकर प्रो. मेहता के जीवन की दिशा बदल गई। मेहता के प्रति समर्पण की भावना को व्यक्त करती हुई मालती कहती है।

व्याख्या – प्रो. मेहता के प्रति अपनी आत्मीयता व्यक्त करती हुई कहती है कि मैंने आपसे प्रेरणा ग्रहण की है, मेरे जीवन के प्ररेणास्पद स्तंभ आप ही हो। मैंने स्वयं को आपके लिए समर्पित कर दिया है। मेरे जीवन में आपका देवता के समान स्थान है। मुझे सही रास्ता बतलाने वाले गुरू हो। मैं आपसे हमेशा ग्रहण करना चाहती हूँ। मैं आपके संकेत मात्र से अपना जीवन समर्पित कर सकता हूँ। जब मैं आपको नहीं देख पाती तो मेरा अधीर हृदय व्यथित होने लगता है। मैंने आपको न पहचान कर बड़ी भूल की है। भोग और आत्म सेवा ही मेरे जीवन का उत्स है। मेरे जीवन को आपने ही गतिशीलता प्रदान की है। जीवन में स्थिरता का समावेश किया है। आपके मेरे ऊपर उपकार हैं उन को भूलना मेरे जीवन की सबसे बड़ी भूल होगी।

विशेष :

- मालती की मेहता के प्रति समर्पण की भावना का वर्णन है।
- मालती की सेवा भावना और समर्पण के मूल में मेहता की महती भूमिका रही है।
- मेहता की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख है।
- मालती द्वारा प्रेमचंद ने नारी जीवन का यथार्थ प्रस्तुत किया है।
- आत्म कथात्मक शैली अपनाई गई है।
- सरल प्रवाहित हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है।
- संसार में तुम जैसे साधकों को जरूरत है जो अपनेपन को इतना फैला दें कि सारा संसार अपना हो जाए। संसार में अन्याय की, आतंक की, भय की दुहाई मची हुई है। अंधविश्वास का, कपट धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त पुकार सुनी है? तुम भी न सुनोगे, तो सुनने वाले कहां से आएगें? और असत्य प्राणियों की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान नहीं बंद कर सकते। तुम्हें वह भोजन भार हो जायेगा। अपनी विद्या और बुद्धि को अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्साह और जोर के साथ उसी रास्ते पर ले जाओ।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– मालती की सेवा भावना एवं समर्पण के फलस्वरूप मेहता का हृदय परिवर्तन होने लगा। उनके विचारों में मालती के प्रति जो विचार थे अब निराधार प्रतीत होने लगे हैं। उन्हें अपना निजी व्यक्तित्व समाप्त होता प्रतीत होने लगा है। मालती मेहता को समाज प्रति उत्तरदायित्व की भावना का बोध कराती हुई कहती है।

व्याख्या– मालती मेहता से कहती है कि तुम्हारा स्वभाव सुधारक का है उसी का पालन करना आवश्यक है। समाज से कुरीतियों का निवारण होना आवश्यक है। संसार में चारों ओर अन्याय की मारा–मारी लगी है, अत्याचार का बोलबाला है। छलकपट अंधविश्वास का बोलबाला है। स्वार्थ ने अपने पंजे में जकड़ लिया है। जनता में त्राही–त्राही मची हुई है, उनकी पुकार को सुनने वाला कोई नहीं है। अगर तुम वह आर्त पुकार नहीं सुनोगे तो कौन सुनेगा? अगर मैं तुम्हें विवाह के बंधन में बांध लूँ, तो समाज के प्रति अन्याय ही होगा। हमारे निजी स्वार्थ के सामने समाज गौण हो जायेगा जो उचित नहीं है। मुझे यह स्वीकार्य नहीं है। तुम इसको अनदेखा कर दोगे तो कौन अपने कर्त्तव्य का पालन कर पाएगा? तुम्हें अपना जीवन भी भार स्वरूप लगेगा और पश्चाताप के अलावा कुछ हाथ नहीं लगेगा। अपनी विद्या, बुद्धि और उत्साह को पूर्व की भांति लोकसेवा में लगा दो।

विशेष :

- मालती की समाज सेवा का भाव दृष्टव्य है।
- मालती को चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन है।
- मालती के रूप में गांधीवादी प्रभाव की व्यंजना हुई है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- मानवतावादी भावना को पुष्ट करने के लिए बौद्धिक चिंतन आवश्यक है।
- विवाह एक बंधन है जो पति–पत्नी के पारस्परिक समर्पण पर टिका होता है।
- लोकसेवा सर्वोपरि है।
- धाराप्रवाह सरल हिंदी प्रयोग में लाई गई है।
- अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पाना होगा। कोई देवता, कोई गुणशक्ति, उसकी मदद करने न आयेगी और उसमें गहरी संवेदना सजग हो उठी हैं। अब उसमें पहले जैसी उद्दण्डता और गुरूर नहीं है। वह नम्र और उद्योगशील हो गया है। जिस दशा में पड़े हो उसे स्वार्थ और सोम के वश होकर और क्यों बिगाड़ते हो।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– शहर से वापस आने पर गोबर ने जब गांव की स्थिति देखी तो उसका हृदय दुःखी होने लगा। उसके स्वभाव में परिर्वतन आ गया था। पूर्व की स्थिति और वर्तमान की स्थिति में अंतर नजर आने लगा था एवं राजनैतिक जीवन में अस्थिरता नजर आने लगी थी।

व्याख्या– गोबर युगीन परिदृश्य पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि भाग्य के सहारे रहना अकर्मण्यता का सूचक है। हमें क्रियाशील होकर अपना भाग्य स्वयं बनाना है। हमें शक्तिसंपन्न होकर अत्याचारों का विरोध करना है। बुद्धि के आधार पर प्रत्येक समस्या का समाधान करना है। हमें आत्मनिर्भर होकर जीवन जीने की आदत डालनी हैं, न तो

देवता साथ दे सकता है और न कोई अदृश्य शक्ति। गोबर के व्यक्तित्व में परिर्वतन आ गया है। पहले जैसी उद्दण्डता और आक्रोश तिरोहित हो गये हैं। उसके जीवन में विनम्रता एवं संवेदना का समावेश हो गया है। अपनी इस दयनीय स्थिति को दूर करने के लिए हमें निष्क्रिय होकर अपना भविष्य अंधकारमय नहीं बनाना है।

विशेष :

- शोषकों से प्रतिकार करने के लिए एकता का होना आवश्यक है।
- गोबर का हृदय परिर्वतन दिखाया गया है।
- कर्म की महत्ता प्रतिपादित की गई है।
- गोबर की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन है।
- आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
- वातावरण की व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है यह दिखाया गया है।
- सरल प्रवाहयुक्त साहित्यिक भाषा का प्रयोग हुआ है।
- जैसे अपमान के अथाह गढ़ में गिर पड़ा है और गिरता चला जा रहा है। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है कि मानो उसको लंगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुख पर थूक देता है। वह चिल्ला–चिल्लाकर कह रहा है भाइयों, मैं दया का पात्र हूँ। मैंने नहीं जाना जेठ की लू कैसी होती है? और माघ की वर्षा कैसे होती है? उस देह को चीरकर देखो, इसमें कितना प्राण रह गया है, कितना जख्मों से चूर– कितना ठोकरों से कुचला हुआ। उससे पूछो कि तूने कभी विश्राम के दर्शन किये, कभी तू छांह में बैठा? उस पर यह अपमान! और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी अधम। उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अंधा हो गया था, मानों टूट–टूटकर उड़ गया है।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अगर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– सोना के विवाह के लिए जब होरी दातादीन के यहां उधार मांगने आया, तो उसका मन आत्मग्लानि से भर गया। रूपये लेते समय उसका हाथ कांप रहा था, मुंह से एक शब्द न निकला। प्रेमचंद ने होरी की इस लाचारी का वर्णन करते हुए कहा–

व्याख्या– होरी के व्यक्तित्व में स्वाभिमान कूट–कूटकर भरा हुआ था। उसने किसी के आगे हाथ नहीं फैलाये। स्वयं यातना सही, लेकिन आत्म सम्मान पर आंच नहीं आने दी। दातादीन से रूपये लेते समय होरी को अपमान लग रहा था। ऐसा लगता था मानों अपमान के गड्ढे में गिर गया हो। तीस वर्ष तक उसने जीवन में संघर्ष किया, लेकिन कभी हार स्वीकार नहीं की। आज मातादीन के सामने द्वार पर खड़े होकर आत्मग्लानि का अनुभव हो रहा था। वह बार–बार कह रहा था कि मैं दया का पात्र हूँ मुझे उपेक्षा से मत देखो। मैंने कभी गर्मी और बरसात की परवाह नहीं की। शारीरिक एवं मानसिक आघात भी सहे लेकिन कभी शांति से नहीं बैठा। क्रियाशील होने पर भी उसे अपमान का सामना करना पड़ा। वह स्वयं को कायर लोभी और अधम तक कहकर मन की वेदना शांत करना चाहता है। आज जीवनभर संचय किया गया विश्वास व्यर्थ हो गया है। खंड–खंड होकर आज समाप्त हो रहा है।

विशेष :

- होरी के स्वाभिमान का चित्रण है।
- होरी की कर्मठता का वर्णन है।
- होरी की निष्पक्षता व ईमानदारी का चित्रण है।
- मनोविश्लेषक शैली का प्रयोग किया गया है।
- मुहावरा मुँह पर थूकना।
- आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
- होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाए मानों उसके चरणों पर लोट रही थी, कौन कहता है जीवन संग्राम में यह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण है? उन्ही हारों में उसको विजय है उसके टूटे–फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएं है। उसको छाती फूल उठी है, मुख पर तेज आ गया है।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद को प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– मृत्यु शैय्या पर लेटा होरी प्रसन्न था, तभी शहर से गोबर आ जाता है और उसके पैरों पर लोट जाता है। घर से भागा हुआ हीरा भी आ जाता है। होरी को यह मिलन देखकर खुशी हो रही है।

व्याख्या– जीवन संघर्ष में कभी न परास्त होने वाला होरी मृत्यु शय्या पर लेटा हुआ भी आनन्द का अनुभव कर रहा है। उसके अतीत को सारी घटनाएं, संकट समाप्त हो गये है। ऐसा होरी आज स्वाभिमान को कैसे भूल सकता है? जीवन संग्राम टूट भले ही गया हो लेकिन हारा कभी नहीं। उसके पास सब कुछ है। घर त्याग कर गया हुआ हीरा आकर होरी से गले मिलता है। आज उसके पास सब कुछ है। बरसों के बिछड़े पुनः मिल गये हैं। आज सारे संकट उसके चरणों में परास्त हो गए हैं। उसके चेहरे को देखकर गर्व का अनुभव हो रहा है। उल्लास का वातावरण है। इसी हार में उसकी विजय की पताकाएं फहरा रही हैं। उसके फटेहाल वस्त्र उसकी विजय गाथा को पताकांए है। उसका सीना चौड़ा हो गया है। मुख पर गर्व का भाव झलक रहा है।

विशेष :

- सामान्यतया मनुष्य मृत्यु के सन्निकट पहुंचकर भयभीत हो जाता है किंतु होरी प्रसन्न है।
- मृत्यु के निकट संयुक्त परिवार का ढांचा व्यवस्थित होता दिखाया है जो प्रेमचंद के आदर्शवादी विचारों को व्यजिंत करता है।
- होरी द्वारा प्रेमचंद ने मानवीय यातना का व्यक्त किया है।
- भावात्मक शैली का प्रयोग है।
- उसकी आँखों में बहते हुए आँसू बतला रहे थे कि मोह का बंधन तोड़ना कितना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा। उसी के दुख का नाम तो मोह है। पाले हुए कर्त्तव्य और निपटाए हुए कामों का

क्या मोह! मोह तो उन अनाथों को छोड़ जाने में है जिनके साथ हम कर्त्तव्य न निभा सके, उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें हम न पूरा कर सके।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– मृत्यु शैय्या पर होरी लेटा है। धनिया समझ गई कि अब तक जिसके आधार पर टिका था। यह अब खिसक रहा है। फिर भी धैर्य रखे हुए है। होरी कार्य करते–करते बेहोश होकर गिरा, जिससे सारा गांव देखने आया। होरी की जबान बंद है आँखों से आँसू टपक रहे है। प्रेमचंद ने इसी क्षण का वर्णन किया है।

व्याख्या– अचेतावस्था में होरी का बोलना बंद हो गया। लेकिन आँखों से आँसू गिर रहे है जिनको देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सांसारिक मोह कितना प्रबल होता है, उसे तोड़ना अच्छा नहीं लगता। अपने प्रियजनों से बिछुड़ने का दुःख अवश्य होता है। जिस स्वार्थ का पालन कर चुके उनसे मोह नहीं होता। मोह वहां होता है जहां हम अपने कर्त्तव्य का पालन करने में असमर्थ होते हैं। हमारे जाने से जो बेसहारा हो जाते हैं उनका मोह अधिक प्रबल होता है। उसको त्यागना दुष्कर होता है। होरी की इच्छा थी गाय पालने की। वह मेहनत–मजदूरी करके गाय का जुगाड़ करना चाहता था। धनिया के प्रति अपने कर्त्तव्य को पूरा न करने का मलाल उसे व्यथित कर रहा है। इसीलिए आँसू आना स्वाभाविक है।

विशेष :

- मनुष्य भावी योजनाओं में जीता है उनको पूर्ण करने का प्रयत्न भी करता है। अवशेष को पूरा न कर पाने के कारण दुखी होता है।
- धनिया की कुशाग्र बुद्धि का दिग्दर्शन है।
- होरी द्वारा कृषक जीवन का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है।
- करूण रस का निष्पादन किया गया है।
- भावात्मक शैली अपनाई गई है।
- भावानुकूल भाषा प्रयोग में लाई गई है।
- धनिया यंत्र की भांति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठंडे हाथ पर रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली– महाराज, घर में गाय है न बछिया न पैसा यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

संदर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– होरी सड़क खुदाई करके मजदूर बनकर आठ आने रोज पर खुदाई करने लगा। तीव्र गर्मी के कारण होरी अचेत होकर गिर पड़ा। धनिया होरी का घर ले गयी। मृत्यु शय्या पर पड़ा होरी धनिया को बीच मझधार में छोड़कर जाने की तैयार है। गोबर आकर क्षमा मांगता है। हीरा भी होरी से गले मिलकर माफी मांगता है। हीरा धनिया से गोदान कराने को कहता है तथा उपस्थित जनसमूह की भी यही इच्छा थी।

व्याख्या– मृत्यु शय्या पर होरी लेटा है। परलोक को सुधारने के लिए तथा वैतरणी पार करने के लिए 'गोदान' की

परम्परा है। इसी परम्परा का निर्वाह करने के लिए मरते हुए व्यक्ति को गाय या बछिया की पूंछ पकड़वाकर ब्राह्मण को दी जाती है। होरी की अधूरी आस को पूर्ण करने के लिए गोदान कराने की मांग पूर्ण की जा रही है। धनिया एक यंत्र की भांति उठी और आज बेची गई सुतली के पैसे लेकर पंडित दातादीन से कहने लगी कि महाराज घर में गाय तो है नहीं, बछिया भी नहीं है जिससे गोदान करा सकूं। हाँ यह बीस आने पैसे इन्हें लेकर ही गौ का दान समझ लें। तत्पश्चात् धनिया भी अचेत होकर गिर पड़ी।

विशेष :

- गोदान कराने की परंपरा के प्रति क्षोभ व्यक्त किया गया है।
- होरी और धनिया के प्रति संवेदना का भाव पैदा हो जाता है।
- धार्मिक विकृत्तियों की ओर संकेत किया गया है।
- दान प्राप्त वस्तु का दिया जाता है अप्राप्त का नहीं।
- गोदान शीर्षक की सार्थकता व्यंजित है।
- भावात्मक शैली अपनाई गई है।
- धनिया की लाचारी का वर्णन है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

37. नेकी के वर्णन का दुष्प्रभाव क्या होता है?

38. भेड़िया किस वर्ग का प्रतीक है?

39. नारी के जीवन का आदर्श क्या है?

40. प्रेम को परिपक्वता प्रदान करने का आधार क्या है?

41. मालती ने अपना पथ प्रदर्शक किसे माना है?

42. मालती के अनुसार विवाह का क्या अर्थ है?

1.3 गोदान में अभिव्यक्त आदर्श और यथार्थ का चित्रण

'गोदान' उपन्यास को पढ़कर प्रेमचंद की आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी भावना को जाना जा सकता है। इस संबंध में तीन दृष्टिकोण देखने को मिलते हैं– प्रथम प्रेमचंद आदर्शवादी थे, दूसरा प्रेमचंद यथार्थवादी थे और विचारधाराओं का सफल निर्वाह किया है। स्वयं प्रेमचंद का इस संबंध में विचार था कि– वही उपन्यास उच्च कोटि के समझे जाते हैं जहां यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो। आप उसे आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है। 'सेवासदन' उपन्यास उनकी आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी भावना को व्यजिंत करता है। 'रंगभूमि' उपन्यास में राष्ट्रीय जागरण एवं राजनीतिक वातावरण का चित्रण किया गया है। 'गोदान' प्रेमचंद का वह महाकाव्यात्मक उपन्यास है जिसमें तीनों दृष्टिकोणों का यथासंभव निर्वाह किया गया है। गोदान में यथार्थ 'गोदान' उपन्यास में यथार्थ का मणिकंचन प्रयोग पात्रों को रंगशाला द्वारा चित्रित किया गया है। उनके मात्र आदर्श और यथार्थ का समन्वय बनाकर जीवन जीते हैं।

उनको यथार्थ योजना की पुष्टि के लिए होरी, धनिया, सिलिया तथा शोषक के रूप में दरोगा, अमरपाल सिंह, दातादीन, रामसेवक, गोबर भोला आदि पात्र यथार्थ को मुखरित करते हैं।

(अ) **कृषक जीवन का यथार्थ–** गोदान में होरी भारतीय कृषक का प्रतिनिधि पात्र है। वह किसानों की विशेषताओं से युक्त है। वह जहां एक ओर महाजन से ब्याज की एक कौड़ी छुटाने के लिए घंटों चिरौरी कर सकता है वहीं व्यवहार कुशल भी है। उसकी इच्छा होती है कि कभी उसके द्वारा किसी का अहित न हो, इसीलिए वह अंततः मजदूर बनकर भी संतुष्ट है क्योंकि उसने किसी का गला नहीं काटा, किसी को धोखा नहीं दिया फिर भी उसकी खून पसीने की कमाई को शोषक लूट–खसोट कर छीन लेना चाहते हैं। पुलिस के शोषण का चित्र देखकर शोषण की भयानकता का अनुमान लगाया जा सकता है– मैं पंद्रह मिनट का समय देता हूँ। **अगर इतनी देर में पूरे पचास रूपये न आए तो तुम चारों के घर तलाषी होगी और गंडा सिंह को जानते हो। उसका मारा पानी भी नहीं मांगता।** किसान का जीवन किन–किन झमेलों से जूझता है उसका आभास हम होरी के द्वारा भलीभांति जान सकते हैं। होरी की भाग्यवादिता में लाचारी है युगीन व्यवस्था एवं शोषण से त्रस्त दिल की पुकार सुनाई पड़ती है– **छोटे बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। संपत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है, उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किए हैं उनका आनंद भोग रहे हैं हमने कुछ नहीं सोचा तो भोगें क्या।** किसानों के शोषण का कारण उसकी रूढ़िवादी भावना, संस्कार एवं संगठन का अभाव है। पारस्परिक वैमनस्य है इसीलिए बैल बनकर जमीदारों के हल में जुटाते हैं भोला कहता है– **"कौन कहता है हम तुम आदमी है। हममें आदमियत कहां। आदमी वह है जिसके पास धन है, अख्तियार है, इल्म है। हम लोग तो बैल है और जुतने के लिए पैदा हुए है। उस पर एक दूसरे को देख नहीं सकते। एक का नाम नहीं।"** गोदान में शोषण का स्वरूप हमें स्थान–स्थान पर देखने को मिलता है। होरी का जीवन पर्यन्त संघर्ष, पारिवारिक विघटन व द्वेष, गाय की लालसा, जमींदारों, साहूकारों, महाजनों की शोषक प्रवृत्ति, मारपीट, दरोगा की धमकियां, रिश्वत, पंचायत, बिरादरी का आतंक, हुक्का पानी बंद होना, गोबर झुनिया की प्रेम योजना, शहर पलायन, गांव के प्रपंच, अंध–विश्वास, बेटियों के विवाह की चिंता, दाने–दाने का अभाव, कर्ज लेने की विवशता आदि स्वरूप कृषक जीवन की दास्तां का बखान करते हैं। बेचारा अभागा किसान भाग्य को विवशता मानकर सब सह लेता है मुँह से उफ तक नहीं करता। महाजन द्वारा रूपये उधार दिए जाने पर पहले हो पेशगी स्वरूप ब्याज में काट लिया जाता है। नजराना, तहरीर, कागज, दस्तूरी आदि माध्यमों से शोषक को जिंदा रखा जाता है। जला भुना किसान शेष रूपये भी वापस कर देता है कि एक रूपया छोटी ठकुराइन का नजराना है, एक रूपया बढ़ी ठकुराइन का। एक रूपया छोटी ठकुराइन के पान खाने को, एक बड़ी के पान खाने को। बाकी बचा एक, वह आपकी क्रिया करम के लिए। होली के अवसर पर किया गया स्वांग शोषण का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत कर देता है।

(ब) **नारी जीवन का यथार्थ–** वैवाहिक जीवन की सफलता का सूत्रधार नारी पर आश्रित होता है। इसीलिए नारी को पूजायोग्य मानकर गुणगान किया गया है। गोदान उपन्यास में नारी के विविध स्वरूप देखने को मिलते हैं। वह पुत्री, प्रेमिका, पत्नी, सेविका व रखैल आदि रूपों में पाठक के सामने आती है। होरी की रूपा और सोना दो पुत्रियां है। परिस्थितिवश रूपा का विवाह अधेड़ रामसेवक से करा दिया जाता है। जो निर्धनता का दुष्परिणाम है। गोबर भोला अहीर की विधवा पुत्री झुनिया का अपनाता है जिसका परिणाम गृह छोड़ने के रूप में सामने आता है। धनिया भी पुत्र को क्षमा कर देती है लेकिन झुनिया के प्रति ईर्ष्या रखकर नारी के प्रति विरोध को दर्शाती है जिससे वैधव्य जीवन के यथार्थ का बोध हो जाता है। मालती सेवा भाव द्वारा समाज में सभी के आर्कषण का केंद्र बिंदु बनती है। उसका मानना है कि वैवाहिक बंधन सेवाभाव को अवरूद कर देता है। प्रेमचंद ने सिलिया द्वारा नारी की स्थिति का आकलन किया है। मातादीन सिलिया को पत्नी का सम्मान

न देकर मशीन समझता है। नोहरी द्वारा अनाज दिए जाने पर मातादीन का क्रोध सिलिया की स्थिति का बोध करा देता है। प्रेमचंद ने इसी यथार्थ को इन शब्दों में व्यक्त किया है– "सिलिया अब उसकी निगाह में केवल काम करने की मशीन थी और कुछ नहीं। उसकी ममता को वह बड़े कौशल से नचाता रहता था। ब्राह्मण वर्ग की स्वार्थ भावना का चित्रण झुनिया और मातादीन के प्रसंग में देखने को मिलता है। झुनिया को अपनी हवस का शिकार बनाने के लिए धर्म का सहारा लेता है। भगवान पूछेंगे, मैंने तुम्हें इतना रूपधन दिया था, तुमने उससे एक ब्राह्मण का उपकार भी नहीं किया। प्रेमचंद ने स्पष्ट किया है कि नारी को केवल वासना का शिकार बनाना ब्राह्मण वर्ग की विकृति को दर्शाता है।

(स) **नगर जीवन का यथार्थ–** प्रेमचंद ने गोदान उपन्यास में ग्रामीण एवं नगर संस्कृति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। उपन्यास में समेरी और बेलारी गांव से समस्त ग्रामीण परिवेश साकार हो उठा है। गांव में किस प्रकार पारस्परिक झगड़े हैं, उससे अधिक नगरों में स्वार्थपरता, संकीर्णता के दर्शन होते हैं। नगरों में प्रत्येक तथ्य को पैसे से तोला जाता है। संबंधों का आधार भी पैसों की वास्तविकता पर टिका होता है। मित्रता का आधार भी पैसों पर टिका होता है। जब रायसाहब अमरपाल सिंह चुनाव के लिए मि. खन्ना से बैंक से पैसे निकालने को कहते हैं तो खन्ना अपने कमीशन का पहले वर्णन कर देता है– पहले आप कमीशन बतला दें क्योंकि बिजनेस इस बिजनेस। रायसाहब का मानना है कि असली राजा तो हमारे बैंकर हैं। आज संसार का शासन सूत्र बैंकरों के हाथ में है। सरकार भी इनके हाथ का खिलौना है।

(द) **दान धर्म का यथार्थ–** नगरों में दान धर्म का कार्य भी स्वार्थवश किया जाता है। भिखारी भीख मांगते थक जाता है लेकिन फूटी कौड़ी नहीं पाता जबकि लोग धर्मशालाओं, पाठशालाओं व व्यायामशालाओं में दान देकर अपना नाम व स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं। प्रेमचंद व्यायामशालाओं को उचित नहीं मानते क्योंकि इनके माध्यम से अनाचार व व्यभिचार की प्रवृत्ति पनपती है। इनके द्वारा लड़के व लड़कियों में दुराचारी भावना बढ़ने की संभावना रहती है। प्रेमचंद के शब्दों में– "यह व्यभिचारशाला है जो विश्वविद्यालय की लड़कियों को जमा करके विहार करने के लिए होगी।"

गोदान में चित्रित आदर्श

प्रेमचंद ने "सेवासदन" द्वारा जिस आदर्शवाद को पल्लवित किया वह आगे परिस्थितिवश भले ही क्षीण हो गया हो लेकिन समाप्त नहीं हुआ था। "गोदान" उपन्यास में प्रेमचंद का आदर्शवादी स्वरूप मुखरित हुआ है। उनका मानना है कि ज्ञान उपयोग रूढ़ियों, कुरीतियों और अंधविश्वासों को समाप्त करने में प्रयुक्त हो न कि कूपमंडूक बनकर ज्ञान को सीमित करने में। बाह्य आवरण आज भले ही पात्र को अपने परिवेश में विलय कर लें, लेकिन वे सत्य के आलोक से ओझल नहीं हो सकते। उन्होंने अपने आदर्शवाद को पल्लवित करने के लिए, मातृत्व, संवेदना, वैवाहिक जीवन, सेवाभाव तथा मृत्यु के क्षण को भी आदर्श के रंग में रंग डाला।

(अ) **नारी का आदर्श–** प्रेमचंद की दृष्टि में नारी का आदर्श त्याग, बलिदान सेवाभाव में समाहित है। नारी जीवन की सार्थकता मातृत्व के बिना पूर्ण नहीं होती उसकी सूनी कोख समाज में अपशकुन का प्रतीक मानी जाती है। धनिया में मातृत्व की गरिमा का भंडार समाहित है। गोबर का त्रुटि को स्वीकार कर झुनिया को घर में आश्रय प्रदान कर आदर्श माँ के स्वरूप का बखान करती है। गर्भवती झुनिया को देखकर धनिया केवल अपना क्रोध ही नहीं त्यागती अपितु होरी से भी विनम्र रहने को कहती है। उसी झुनिया के लिए समाज का तिरस्कार सहती है। पंचायत का दंड भी भरने को तैयार हो जाती है। दरोगा जब घर की तलाशी लेना चाहता है तो दरोगा को दो टूक शब्दों में कह देती है– "महरिया रख लेना पाप नहीं, रखकर छोड़ देना पाप है।" स्वयं

प्रेमचंद के शब्दों में– "मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और महान विजय है।"

(ब) **वैवाहिक जीवन का आदर्श–** वैवाहिक जीवन भी आदर्शवाद का सान्निध्य पाकर फलीभूत होता है। मातादीन स्वयं विवाहित होकर भी सिलिया को रखैल बनाकर रखता है। लेकिन पत्नी के दायित्व का निर्वाह करने की अनुमति नहीं देता, सिलिया शारीरिक यातना सहती है, पति की उपेक्षा सहती है लेकिन मातादीन का साथ छोड़ना नहीं चाहती, क्योंकि उसने मातादीन का हाथ पकड़ा है तो जीवनभर निभाने का प्रण भी किया है। सिलिया के इन वचनों में वैवाहिक जीवन का आदर्श छिपा है– वह चाहे मुझे भूखों रखे चाहे मार डाले, पर उसका साथ न छोडूंगी। उसकी सांसत कराके छोड़ दूँ? मर जाऊँ पर हरजाई न बनूँगी। एक बार जिसने बांह पकड़ ली, उसी की रहूँगी। प्रेमचंद सिलिया द्वारा यह सिद्ध करना चाहते हैं कि नारी का समर्पण किसी एक के लिए होता है, चाहे उसे सुख मिले या दुःख। इसमें वैवाहिक जीवन की पवित्रता एवं सुदृढ़ता का बोध होता है। साथ ही नारियों की स्वच्छंद प्रवृत्ति पर अंकुश लगता है। सिलिया अपनी इसी प्रतिज्ञा को परिपक्व करने के लिए माँ की निर्दयता सहती हैं, भाइयों द्वारा प्रताड़ित होती है। प्रेमचंद सिलिया के रूप में समस्त नारियों के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं कि वैवाहिक जीवन का सफल निर्वाह करना ही नारी जीवन का मूल उत्स है।

दुलारी सहुआइन जो शोषक की प्रतीक है, प्रेमचंद ने उसे भी सहृदयता, संवेदना जैसे गुणों से पूर्ण कर आदर्शवाद को सुदृढ़ किया है। होरी की विवशता को देखकर द्रवित हो जाती है और सोना के विवाह के लिए रूपया देने को तैयार हो जाती है।

भोला अहीर की पत्नी नोहरी स्वयं नोखेराम की रखैल होकर भी संवेदनाहीन नहीं है। जो कभी होरी को अपना शत्रु समझती थी उसके साथ समधी–समधन के रिश्तों को सफलतापूर्वक निभाती है। रूपा के विवाह के लिए सहायता करने को तैयार हो जाती है। मालती द्वारा अविवाहित रहकर सेवाभाव की भावना का पालन करना आदर्शवाद का प्रतीक है। उसका मानना है कि विवाह का बंधन सेवाभाव की भावना को अवरूद्ध कर देता है। प्रेमचंद ने होरी की मृत्यु को आदर्शवाद के रूप में प्रस्तुत कर दिखाया है कि पश्चाताप की भावना से मन का मैल समाप्त हो जाता है। मृत्यु के समय होरी को जो आत्मिक शांति प्राप्त हुई वह किंचित मनुष्यों को प्राप्त होती है। गोबर वापस आ जाता है। हीरा भाई के पैरों में पड़कर माफी मांग लेता है। होरी को मौत भी भयभीत न कर सकी। उसके चेहरे की खुशी प्रकट हो रही है। उसे जीते जी भले ही शांति न मिली, लेकिन मृत्यु के समय प्राप्त हो गई। संघर्षों से भले ही यह टूट गया हो? लेकिन मृत्यु पर उसने विजय प्राप्त कर ली। उसकी आँखों के सामने ही परिवार की आस्मता बच गई। जीवन की अधूरी साध पूर्ण हो गई। प्रो. मेहता द्वारा आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की गई। वे नारी को परंपरागत रूप में देखने के समर्थक हैं। गोविंदी उनकी आदर्शवादी भावना को पुष्ट करती है। प्रो. मेहता के कहने पर वह पुनः अपने घर वापस आ जाती है। अपने उजड़ते घर को देखकर पति को सही रास्ते पर लाकर न केवल अपने पतिव्रत धर्म का पालन करती है अपितु भारतीय नारियों के लिए आदर्श का स्वरूप प्रस्तुत करती है।

अपनी प्रगति जांचिए–

43. गोदान में किस वर्ग का चित्रण किया गया है?

44. नारी जीवन की सार्थकता को कौन चरितार्थ करती है?

45. आधुनिक नारी का प्रतीक पात्र कौन–सा है?

1.4 महाकाव्यात्मक कसौटी पर गोदान

गोदान उपन्यास को महाकाव्य के लक्षणों पर परखने से पूर्व महाकाव्य की विशेषताओं को जानना आवश्यक है। सामान्यतया महाकाव्य के लिए महान कथानक, श्रेष्ठ पात्रों का चयन, श्रृंगार वीर और शांत रस में से किसी एक की समग्रता तथा विशिष्ट उद्देश्य का होना आवश्यक है। उपन्यास कला के तत्वों में कथानक, पात्र एवं चरित्र चित्रण, संवाद, कथोपकथन, देशकाल, वातावरण, उद्देश्य को गिना जाता है। उपन्यास कला एवं महाकाव्य की विशेषताओं में वर्ग भेद की अपेक्षा साम्य अधिक दिखाई देता है। इन्हीं तत्वों के आधार पर गोदान उपन्यास को परखना आवश्यक है।

(क) **व्यापक कथानक–** गोदान उपन्यास का कथानक विस्तार की गरिमा पूर्ण है। गोदान की कथा में लगभग 80 प्रतिशत अंश ग्रामीण परिवेश में संबंधित है। होरी, धनिया, भोला अहीर, हीरा, दुलारी सहुआइन, मातादीन, दातादीन, झुनिया, पटेश्वरी, झिंगुरी सिंह, नोहरी, नोखेराम आदि के कथानक का भाग ग्रामीण परिवेश से सम्बन्धित है। मालती, मेहता, खन्ना तन्खा, खुर्शीद से संबंधित कथा नारी जीवन को चित्रार्थ करती है। इनके द्वारा प्रेम के स्वरूप का विवेचन, चुनाव तथा हड़ताल और भी जीवन से संबंधित है। रायसाहब अमरपाल सिंह ग्रामीण व शहरी जीवन की कड़ी के रूप में सामने आते हैं गोदान उपन्यास का कथानक व्यापक परिवेश को पत्र कलेवर में समेटे है। होरी समस्त कृषकों का प्रतिनिधि पात्र है। उसकी समस्याएँ केवल उसी की नहीं अपितु समस्त किसानों की समस्याएँ है।

(ख) **पात्र और चरित्र चित्रण–** पात्रों की अधिकता को देखकर गोदान उपन्यास की तुलना लियो टॉल्सटॉय के 'वार एंड पीस' से की जाती है। जिस प्रकार पाँच सौ पात्रों की संरचना के लिए 'वार एंड पीस' महाकाव्यात्मक उपन्यास कहा जाता है ठीक उसी प्रकार लगभग सौ पात्रों के विमोचन के फलस्वरूप गोदान को भी महाकाव्यात्मक उपन्यास कहा जाता है। गोदान में प्रयुक्त पात्र ग्रामीण, शहरी शोषक–शोषित जमीदार, किसान, साहूकार, कारकुन, दारोगा, पटवारी, मिल मालिक, संपादक आधुनिक शिक्षित, लड़कियाँ, प्रोफेसर आदि वर्ग अपनी–अपनी विशिष्टताओं के लिए विख्यात हैं। पात्रों में गतिशील व स्थिर दोनों वर्गों का प्रतिनिधित्व किया गया है। मुख्य पात्र और गौण पात्रों द्वारा कथानक को क्रमबद्धता प्रदान की गई है। होरी उपन्यास का मुख्य नायक और धनिया मुख्य नायिका के रूप में चित्रित है। होरी कृषक जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। धनिया भारतीय नारी का आदर्श रूप प्रस्तुत करती है। मालती आधुनिक नारी का प्रतीक है जो अविवाहित रहकर सेवाभाव द्वारा जीवन यापन करती है। दुलारी सहुआइन, नोहरी, रायसाहब अमरपाल सिंह, दरोगा, पटवारी आदि सभी शोषक के रूप में सामने आते हैं। प्रेमचंद ने अमरपाल सिंह द्वारा मनुष्य की कथनी और करनी का अंतर स्पष्ट किया है। गोदान में केवल किसान ही नहीं है। गाँधीवादी दर्शन भी यत्र–तत्र दिखाई देता है। गोदान में प्रयुक्त पात्र जीवतंता के प्रतीक हैं। वर्ग पात्रों की बहुलता दिखाई देती है।

(ग) **रस की व्यंजना–** रचना की प्रसिद्धि का मूल कारण प्रयुक्त रसों का व्यंजना से है। गोदान में सभी रसों का चित्रण देखने को मिलता है। महाकाव्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए श्रृंगार, वीर और शान्त में से किसी एक रस की व्यंजना आवश्यक है। गोदान में भी होरी–झुनिया, मातादीन–सिलिया, मालती–मेहता, नोहरी–नोखेराम के संबंधों में श्रृंगार रस का चित्रण देखने को मिलता है। धनिया, गोबर द्वारा रौद्र रस का प्रतिपादन किया गया है। होरी की मृत्यु करूण रस का वातावरण प्रस्तुत कर देती है। विभिन्न रसों द्वारा लेखक ने कथानक को क्रमबद्धता तथा घटना–विस्तार को जीवंतता प्रदान की है। धनिया द्वारा झुनिया के पुत्र के प्रति लगाव में वात्सल्य रस देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए हास्य रस का चित्रण देखा जा सकता है।

'तुम्हारे बाप का क्या नाम है?'

'मातादीन'

'और तुम्हारी माँ का?

'छिलिया'

'और दातादीन कौन है?

'वह अमाला छाला है।'

(घ) **युगबोध की अभिव्यक्ति–** रचना की जीवंतता युगबोध पर आश्रित होती है। गोदान उपन्यास का रचना काल 1936 का है। यह समय परतंत्र भारत का था। राजनैतिक क्षितिज पर अस्थिरता का वातावरण था। स्वदेश प्रेम की भावना का दौर था। जनसामान्य में शोषकों के प्रति आक्रोश का वातावरण था। युवावर्ग युगीन परिप्रेक्ष्य में विश्व घटनाक्रम से लाभान्वित हो रहा था। गोदान उपन्यास में वन, नगर और ग्राम की झांकी के दर्शन होते है। वन कन्या द्वारा आदिवासियों की सादगी का वर्णन किया गया है। समेरी और बेलारी गाँव से ग्रामीण परिवेश की दरिद्रता, सादगी, शोषण व दयनीयता दृष्टतव्य है। मालती, मेहता, खन्ना, मिर्जा, तन्खा आदि पात्रों द्वारा शहरी जीवन अभिव्यक्त हुआ है। उपन्यास में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक जीवन प्रतिबिम्बित हुआ है। गोबर द्वारा युवा वर्ग के आक्रोश को व्यक्त कर आधुनिकता का बोध कराया गया है।

(ड.) **महान उद्देश्य–** गोदान उद्देश्य परक रचना है। प्रेमचंद ने गोदान द्वारा कृषक जीवन का बिंब प्रस्तुत किया है। गोबर द्वारा संयुक्त परिवार के विघटन एवं एकांकी परिवार का महत्त्व प्रदानकर भविष्य बोध से युक्त किया है। गाँधीवादी की अपेक्षा समाजवाद को महत्त्व प्रदान किया गया है। रूढ़ियों, अंधविश्वासों का चित्रण कर भोली जनता की निःस्वार्थ भावना को दिखाया गया है। नारी जीवन की दयनीय स्थिति के साथ विद्रोह एवं क्रांति को प्रस्तुत किया गया है। वैवाहिक जीवन की सफलता के लिए प्रेम की अनिवार्यता पर बल प्रदान किया गया है। हिंसा का विरोध कर अहिंसा का पालन करके मानवतावादी भावना को व्यक्त किया गया है। साहित्यकार की दायित्व भावना का वर्णन किया गया है। गोदान में प्रेमचंद की व्यवहारिक भावना का चित्रण मिलता है। प्रेम, सेवा, परोपकार, त्याग, स्नेह एवं सहानुभूति के साथ मंगल कामना का प्रतिपादन करना ही गोदान उपन्यास का मूल उद्देश्य है। गोदान का उद्देश्य भारत के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जिस पर भारत की 80 प्रतिशत जनता निर्भर करती है।

अपनी प्रगति जांचिए–

46. 'गोदान' उपन्यास का प्रतिनिधि पात्र कौन है?

47. 'गोदान' उपन्यास में प्रयुक्त रस कौन–सा है?

48. युवा वर्ग का प्रतिनिधि पात्र कौन है?

1.5 गोदान की पात्र योजना (चरित्र चित्रण)

प्रेमचंद ने उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र कहकर पात्र योजना एवं चरित्र–चित्रण की भावना को प्रमुखता प्रदान की है। उनके पात्र अपनी वैयक्तिक विशेषताओं से ओत–प्रोत हैं। गोदान उपन्यास में प्रयुक्त पात्रों पर दृष्टिपात करें तो उनमें वर्गीय, गतिशील पात्रों का स्वरूप सामने आता है। प्रेमचंद की अवधारणा चरित्र–चित्रण की भावना को स्पष्ट कर देती है। श्रेष्ठ चरित्र के लिए वे पात्र का निर्दोष होना आवश्यक मानते हैं, साथ ही चारित्रिक त्रुटियों की ओर उपेक्षा करना बड़ी भूल मानते हैं। प्रेमचंद का मानना है कि मनुष्य परिस्थितिवश त्रुटियाँ करता है लेकिन उसका

पश्चाताप करना उससे भी अधिक श्रेष्ठता का परिचायक होता है। गोदान उपन्यास में स्वाभाविक व सजीव स्थिति उत्पन्न करने के लिए पात्र योजना को विशिष्टता से युक्त रखा है। उपन्यास में प्रयुक्त पात्र किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व कर युगीन परिस्थिति से अवगत कराता है। उन्होंने युगीन व्यवस्था, परंपरा, रूढ़ि को खलनायक के रूप में चित्रित कर चरित्र–चित्रण को उपेक्षा का शिकार नहीं होने दिया। गोदान उपन्यास में शहरी, ग्रामीण, स्थिर, गतिशील, पात्रों का प्रयोग कर चारित्रिक विशेषताओं का उद्‌घाटन किया गया है।

उद्देश्य– गोदान उपन्यास में चरित्र–चित्रण द्वारा प्रेमचंद ने वैयक्तिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया है। चरित्र–चित्रण ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, युगीन परिस्थितियों, चारित्रिक विशेषताओं, आदर्श की प्रतिष्ठा, यथार्थ की व्यंजना, सहानुभूति, संवेदना की व्यंजना, वर्गीय विशेषताओं, ग्रामीण परिवेश की प्रस्तुति, मानवतावादी दृष्टिकोण की प्रस्तुति, स्वस्थ समाज की संरचना द्वारा पात्र–योजना को महत्त्व प्रदान किया गया है।

गोदान उपन्यास में प्रयुक्त पात्रों में होरी, धनिया, गोबर, झुनिया, नोहरी–नोखेराम, मातादीन, सिलिया, मेहता, मालती, खन्ना, गोविंदी, ओंकारनाथ आदि पात्र अपनी विलक्षण प्रतिभाओं के कारण पाठक के मनमस्तिष्क पर अमिट प्रभाव छोड़ने में सक्षम हैं। इससे नगरी तथा ग्रामीण परिवेश मुखरित हो उठा है।

होरी

होरी गोदान उपन्यास का मुख्य पात्र ही नहीं नायक भी है। उपन्यास का प्रारंभ और अंत होरी के इर्द–गिर्द घूमता है। उपन्यास में प्रयुक्त अन्य पात्रों का चारित्रिक विकास भी होरी के बिना अपूर्व ही माना जाएगा। पात्र चयन में प्रेमचंद ने जन–जीवन की वास्तविकता निकटता तथा सूक्ष्मता को प्रमुखता प्रदान की। होरी की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन निम्नवत् है–

(अ) **कृषक जीवन का प्रतिनिधि पात्र–** होरी पहले किसान है बाद में कुछ और। किसान की सभी विशेषताएँ होरी के चरित्र में देखने को मिलती है। ऋण ग्रस्त, परिश्रमी, सहृदयशील, शोषित, संघर्षरत, निर्मल, मर्यादा प्रिय, धर्मशील भाग्यवादी आदि विशेषताएँ कृषक जीवन का प्रतिबिंब प्रस्तुत कर देती है। पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करते हुए होरी अपने प्राण त्यागता है लेकिन कर्त्तव्य से विमुख नहीं होता।

(ब) **परिश्रमी–** होरी के जीवन का लक्ष्य परिश्रम करना है। स्वयं निर्धन होकर भी परिवार का कुशल संचालन करता है। आर्थिक विषमता के सागर में धनिया के साथ गृहस्थी की नैया पार लगी है। किसी के आगे निष्कर्म रहकर हाथ फैलाना अच्छा नहीं समझता। खेती करता है, गाय पालता है अंत में परिश्रम करके पेट पालना चाहता है।

(स) **व्यावहारिक–** होरी ने व्यवहारपूर्वक जीवन जीना सीखा है। वह मानता है कि जमींदारों से मिलने का ही फल है कि बड़े–बड़े महतों उसकी इज्जत करते हैं। अपनी मृदुल वाणी एवं व्यवहारशीलता से वह भोला अहीर को सोचने पर विवश कर देता है। रूपये तो मेरे पास है नहीं। हाँ भूसा है। भूसे के लिए गाय बेचोगे। होरी भोला अहीर की कमजोरी को भांपकर गाय का प्रबंध कर लेता है।

(द) **भाग्यवादी–** निरंतर मिलती असफलता एवं लाचारी भाग्यवादिता को दर्शाती है। किसान भाग्यवादी होता है। होरी भी किसान है उसमें भी भाग्यवादिता के दर्शन स्वाभाविक है। उसकी निराशा छोटे–बड़े भगवान के यहाँ से आते हैं। उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किए थे उसका आनंद भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संजोया तो भोगे क्या? जैसे वाक्यों से प्रकट होती है।

(क) **मर्यादाशील–** होरी मर्यादाप्रिय है। परिवार की मर्यादा को बचाए रखने के लिए पंचायत का दंड सहता है, दरोगा की फटकार सहता है। पंचों के आगे विवश होता है। वह नहीं चाहता कि कोई उसके परिवार पर

उंगली उठाए, उस पर कीचड़ उछाले। दमड़ी बसोर द्वारा दुर्व्यवहार किए जाने पर कहता है– "तुम्हारी इतनी मजाल कि मेरी बहू पर हाथ उठाओ ...।" अलग है तो क्या, है तो एक ही खून।

(ख) संवेदनशील– होरी किसान है किसान का दिल संवेदना को युक्त होता है। पारस्परिक आदान–प्रदान कर अपना काम निकालने में चौकस रहता है। भाई हीरा और शोभा द्वारा उपेक्षित किए जाने पर भी प्रतिकार नहीं करता अपितु मर्यादा का पालन करने के लिए उनके प्रति सहृदयशील रहता है। गोबर द्वारा झुनिया को घर लाने पर समाज से पंगा लेता है। साहस का परिचय देकर अपने घर में शरण प्रदान करता है। झुनिया को समझता हुआ कहता है– "डर मत बेटी, डर मत। तेरा घर है तेरा द्वार है, तेरे हम हैं आराम से रह। जैसे तू भोला की बेटी है वैसे ही मेरी बेटी है।"

धनिया–

धनिया गोदान उपन्यास की मुख्य नायिका है। नायक के साथ नायिका के रूप में धनिया ही उपयुक्त ठहरती है। उपन्यास के प्रारंभ से लेकर अंत तक धनिया अपनी चारित्रिक विशेषताओं से आकर्षित करती है। धनिया होरी की पत्नी के साथ भारतीय कृषक की स्त्री भी है। भारतीय नारी का आदर्श रूप में हमें धनिया के रूप में देखने को मिलता है। तिल–तिलकर जीवन जीने को मजबूर है लेकिन पति (होरी) को बीच मझधार में छोड़कर चले जाना उसके जीवन का स्वभाव नहीं है। धनिया की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन निम्नवत् है–

(क) मुख्य पात्र– गोदान उपन्यास में मालती, गोविंदी, धनिया, झुनिया आदि स्त्री पात्रों में सर्वाधिक प्रभावित करने वाला स्त्री पात्र धनिया ही है। अन्य नारी पात्र धनिया के चरित्र को सुदृढ़ आधार प्रदान करते हैं। वह अंदर से त्रस्त विवश होने पर भी बाह्य रूप में तेजस्वी, अधिकारों के प्रति सजग नारी के रूप में सामने आती है।

(ख) आदर्श पत्नी– धनिया होरी की आदर्श पत्नी है। पतिव्रत धर्म का सफल निर्वाह करती है। सुखद स्थिति के साथ विषम परिस्थिति में भी साथ नहीं छोड़ती। अवसरानुकूल प्रतिकार को व्यक्त कर अपने दायित्व का परिचय देती है। पंचायत का दंड सहती है। परिवार से उपेक्षा सहती है। लेकिन कर्त्तव्य से विमुख नहीं होती। होरी की मृत्यु उपरांत धनिया का अचेत होकर गिरना आदर्श पत्नी के रूप को मुखरित करता है।

(ग) संवेदनायुक्त– धनिया ने नारी सुलभ ह्रदय भी पाया। किसी की कातर पुकार को सुनकर उनके जीवन में संवेदना झलकने लगती है। झुनिया को असहाय स्थिति में देखकर पति (होरी) से विनम्र रहने को कहती है, साथ ही घर में आश्रय प्रदान कर सहृदयशील का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

(घ) ममतामयी– धनिया ममतादयी भावना से ओत–प्रोत है। अपने परिवार के प्रति ममता से पूर्ण व्यवहार का परिचय देती है। उसे गोबर के किए पर पछतावा है, लेकिन (पोते) को पाकर गद्‌गद हो जाती है। उसकी मधुर स्मृतियाँ उसे रह–रहकर सताती है। उसका सूना खटोला देखकर व्यथित होती है।

(ड.) ओजस्वी व्यक्तित्व– धनिया के चरित्र में जहाँ एक ओर संवेदना एवं सहृदयशीलता का सागर उमड़ता है, वहीं समय–समय पर अपने ओजस्वी विचारों से प्रतिकार करती है। होरी की सदाशयता को देखकर कभी–कभी विरोध व्यक्त करती है। झुनिया को घर में पनाह देने के प्रसंग पर उसके ओजस्वी विचार देखने योग्य है– "पंचों गरीब को सताकर सुख न पाओगे।" दातादीन को फटकारती हुई कहती है– "बिगड़ेंगे तो एक रोटी–बेसी खा लेंगे और क्या करेंगे। कोई उनकी दबैल हूँ। "दातादीन द्वारा भिखारी कहे जाने पर अपना आक्रोश व्यक्त करती है– 'भीख माँगो तुम, जो भिखमंगो की जात हो। हम तो मजदूर ठहरे। वही काम करेंगे, चार पैसे पाएंगे।"

होरी, धनिया के अतिरिक्त रायसाहब अमरपाल सिंह, मालती, प्रो. मेहता गोदान उपन्यास में सहायक तथा

गौण पात्रों की भूमिका निभाते हैं। रायसाहब अमरपाल सिंह शहरी व ग्रामीण परिवेश को मुखरित करते हैं। उनके चरित्र में अवसरवादिता, चाटुकारिता, शोषण के समर्थक, भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि से युक्त, संतान के प्रति चिंतित, सामंती व्यवस्था के पोषक आदि विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। गोबर युवा वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। उसका आक्रोश युगीन परिवेश एवं वातावरण को चरितार्थ करता है। उस का स्पष्ट कथन पंचों की झूठी कलई खोलकर रख देता है। उसका गाँव छोड़कर शहर भाग जाने में शोषण को झलक मिलती हैं। आत्मनिर्भर प्रवृत्ति के गुण विद्यमान है। वह अधिकार के प्रति जागरूक, संवेदना से युक्त है। पिता को मरणासन्न अवस्था में पाकर पश्चाताप की भावना व्यक्त करता है। अपनी त्रुटि को स्वीकार करना गोबर के व्यक्तित्व को महानता का सूचक है। मालती का चरित्र आधुनिक नारी का प्रतीक है। वह विवाह को बंधन मानकर स्वचछंद रहना श्रेष्ठ समझती है उसका ऐसा करना नारी स्वतंत्रता का परिचायक है। वह शिक्षित वर्ग का प्रतीक है। अपनी बौद्धिक क्षमता से युगीन परिप्रेक्ष्य में अपने विचारों को अवगत कराती है। संपादक ओंकारनाथ को उनकी कथनी और करनी में अंतर का आभास कराकर चिंतन के लिए विवश करती है। अपनी सेवा भाव द्वारा पाठक के गले का हार बनती है। अपने परिवार का पालन–पोषण कर उत्तरदायित्व का बोध कराती है। वह पाश्चात्य गुणों से युक्त होने पर तितली नजर आती है। शराब पीना, रसिक पुरूषों के साथ रहना इसका प्रमाण है। मेहता का संपर्क उसके तितली स्वरूप को दर्शाता है।

अपनी प्रगति जांचिए–

49. गोदान उपन्यास में ओजस्वी व्यक्तित्व किस पात्र का है?

50. गोदान उपन्यास किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है?

51. गोदान उपन्यास में तितली और मधुमक्खी की उपमाएँ किसे गई?

1.6 गोदान में आधुनिकता का दिग्दर्शन

गोदान उपन्यास आधुनिक संदर्भो की सफल प्रस्तुति के कारण युग युगीन एवं प्रासगिक है। स्वयं प्रेमचंद प्रगतिशील विचारधारा के पोषक थे। उन्होंने गोदान में जन जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कर मौलिकता से अवगत कराया है। 'कला का लक्ष्य जीवन के लिए' सिद्धांत का समर्थन किया है। उनका मानना है कि वही साहित्य भविष्योन्मुखी होता है, जिसमें चिंतन, सौन्दर्य का सार एवं जीवन को निकटता के दर्शन कराता है तथा जो मनुष्यों को चेतनाशील, जागरूक एवं सकर्मक बनाता है। गोदान में आधुनिक संदर्भो का चित्रण निम्नवत् है–

(क) अनुभूति एवं संवेदनात्मक पक्ष की प्रस्तुति– गोदान उपन्यास में हृदय के आंतरिक पक्ष की प्रस्तुति भी यत्र–तत्र देखने को मिलती है। गोबर द्वारा झुनिया को गर्भवती बनाकर शहर भाग जाने पर संवेदना का स्त्रोत फूटने लगता है। जो पूर्व में पुत्र के कुकृत्यों से नाखुश था वहीं पत्नी धनिया की सलाह पर झुनिया को घर में पनाह देने पर सहमत हो जाता है। होरी के विचारों में संवेदना के सत्य देखे जा सकते है– 'डर मत बेटी, डर मत। तेरे पर है तेरा द्वार है, तेरे हम है। आराम से रह। जैसे तू भोला की बेटी है, वैसे ही मेरी बेटी है।" भोला को संकट में देखकर धर्मभीरू होरी कहता है– "भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे और मैं लूँगा। मेरे हाथ न कट जाएंगे।" इसे होरी की व्यवहारिता के साथ संवेदनात्मक पक्ष कह सकते हैं। गोबर पिता की दयनीय स्थिति एवं युगीन परिस्थितियों में द्रवित होकर स्वयं को धिक्कारता है। गोबर की पश्चाताप की भावना संवेदना एवं अनुभूति का द्वार खोलती है।

(ख) अवसरवादिता– रायसाहब अमरपाल सिंह के व्यक्तित्व में अवसरवादिता को देखा जा सकता है। एक ओर जमींदारी प्रथा के प्रति चिंतित दिखाई देते हैं। वहीं शोषण की कड़ी के भी जाने जाते हैं।

(ग) मानवतावादी भावना– सच पूछा जाए तो गोदान उपन्यास की रचना के मूल में मानवतावादी भावना देखने को

मिलती है। कृषक जीवन के प्रति संवेदना ही गोदान उपन्यास के अस्तित्व का मूल कारण है। अनुभूति, संवेदना एवं शोषण के पक्ष मानवतावादी भावना को पुष्ट करते हैं। होरी का झुनिया को घर में पनाह देना, नोहरी, दुलारी सहुआइन की सहृदयशीलता, मानवतावाद का पक्ष प्रस्तुत करती हैं। गोबर का पिता की दीनता को देखकर द्रवित होना मानवतावादी भावना का उदाहरण है।

(घ) **नारी जागृति का चित्रण–** प्रेमचंद की दूरदृष्टि से जीवन का कोई पक्ष अछूता न रहा। परतंत्र भारत में नारी को पुरूषों के समान अधिकार की वकालत करना उनके आधुनिक चिंतन को दर्शाता है। उनके नारी पात्रों में जहाँ एक और त्याग, सेवा, सहानुभूति, कर्त्तव्य परायणता जैसे गुण विद्यमान थे वहीं दूसरी ओर अस्तित्व की रक्षा के लिए कृत संकल्प भी रहती है। मानसिक यंत्रणा सहकर भी अपने अधिकार की वकालत करती है। धनिया इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। होरी का भाई हीरा की पत्नी की प्रशंसा करता है तो धनिया का प्रतिकार करना नारी जागृति का द्वार खोलता है। दरोगा को अपनी प्रतिक्रिया से अवगत कराती है। पंचों की धूर्तता को उजागर करती है। सिलिया का मातादीन के प्रति समर्पण की भावना में पत्नीत्व का भाव तो है ही साथ ही नारी अस्मिता के लक्षण भी दिखाई देते हैं।

(ड.) **भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि–** गोदान उपन्यास में रायसाहब अमरपाल सिंह का चिंतित होना सजग मनुष्य का बोध कराता है। उन्होंने भविष्य में होने वाले परिवर्तनों में स्वयं को ढालने पर अमादा कर लिया। समाजिक जन जागृति से प्रभावित होकर जमींदारी प्रथा की समाप्ति की भविष्यवाणी करते हैं– "बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है।"

(च) **स्वस्थ समाज की कल्पना–** प्रेमचंद ने गोदान उपन्यास में स्वस्थ समाज के संरचना का स्वपन देखा, उसे पूर्ण करने का प्रयत्न भी किया। उन्होंने संगठन की शक्ति पर बल दिया क्योंकि एकता द्वारा ही व्यक्ति एवं समाज की सोच बदल सकती है। भोला अहीर होरी से इसी संगठन की बात कहता है– "हमारा शोषण इसलिए होता है, क्योंकि हममें एकता नहीं है, हम एक दूसरे से ईर्ष्या करते हैं। प्रेम और भाई चारे की भावना समाप्त हो गई है।"

(छ) **आक्रोश की अभिव्यक्ति–** गोदान उपन्यास में प्रेमचंद ने गोबर एवं धनिया द्वारा आक्रोश को मुखरित किया है। इसी आक्रोश में आधुनिकता के चिह्न समाहित हैं क्योंकि पहले वैचारिक मतभेद ही भविष्य के लिए पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। धनिया अपने परिवार के प्रति लगाए गए आरोपों को निराधार बताती है। दरोगा के सामने भी स्वाभिमान के साथ अपना विरोध दर्शाती है। गोबर गाँव में सूदखोरों, महाजनों की मजम्मत बनाता है।

(ज) **लोक कल्याण की भावना–** गोदान उपन्यास में लोक कल्याण की भावना देखने को मिलती है। मनुष्य की पहचान उसके चारित्रिक गुणों से की जाती है। सिलिया भले ही मातादीन की निगाह में मशीन हो लेकिन सिलिया की दृढ़ प्रतिज्ञा के सामने मातादीन भी पश्चाताप करने पर बाध्य होता है। मालती का अविवाहित रहकर सेवा के दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह करना लोक कल्याण का श्रेष्ठ उदाहरण है। स्वयं प्रेमचंद का मानना था कि – सच्चा आन्नद, सच्ची शान्ति केवल सेवाव्रत में है। दाम्पत्य जीवन की सफलता का आधार स्त्रोत सेवाभाव ही होता है। समाज में व्याप्त अन्याय, आतंक और भय को समाप्त करने की प्रेरणा प्रदान कर बुद्धिजीवी वर्ग को उत्तरदायित्व के प्रति प्रेरित करता है।

(झ) **पलायन की प्रवृत्ति–** गोदान उपन्यास कृषकों की दीनता का वर्णन तो करता ही है तथा गाँवों का शहरों की ओर पलायन करना इस बात का प्रमाण है कि सुख सुविधाओं का अभाव इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। गोबर पिता होरी की जी–हुजूरी से तंग आकर और महाजनों की निर्मम जीवनशैली से त्रस्त होकर ही लखनऊ

भागना चाहता है।

(ञ) **लोकतंत्र के प्रति अनास्था–** प्रेमचंद युग दृष्टा थे। युगीन परिस्थितियों से भलीभाँति परिचित थे। उनका मानना था कि लोकतंत्र की स्थापना का उद्देश्य जनता की सेवा करता था लेकिन स्वार्थी मनुष्यों ने लोकतंत्र को भी कलंकित कर दिया इनके कारण जमीदारों, पूँजीपतियों, व्यापारियों का वर्चस्व रहता है। जनता का पक्ष उपेक्षित रहता है। इसीलिए उन्होंने लोकतंत्र को जनता की आँखों में धूल झोंकने का माध्यम स्वीकार किया।

(ट) **शिक्षा प्रणाली में सुधार की कामना–** प्रेमचंद ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित शिक्षा पद्धति के दुष्परिणाम से अवगत थे। उन्होंने शिक्षा और पूँजी को एक ही सिक्के के दो पहलू स्वीकार किए। उनका मानना था कि इस शिक्षा पद्धति से समाज में वर्गभेद की खाई बढ़ती जाएगी। मेहनत करने वाला मजदूर ही रहेगा जबकि शिक्षा द्वारा प्राप्त व्यक्ति बड़े औहदे और मोटी रकम पाने का अधिकारी हो जाएगा।

अपनी प्रगति जाँचिए–

52. गाँवों का शहरों की ओर पलायन क्यों होता है?

53. कोरी सैद्धांतिकता का समर्थन कौन–सा पात्र करता है?

54. नारी चेतना का सशक्त पात्र कौन–सा है?

55. युवा आक्रोश की सार्थक अभिव्यक्ति किसके द्वारा की गई है?

1.7 गोदान में नारी मुक्ति की भावना

गोदान में नारी के विविध दृष्टिकोणों को प्रस्तुत किया गया है। एक ओर नारी के परंपरागत रूप का चित्रण है तो दूसरी और आधुनिक स्वाभिमानी नारी का सजीव चित्रण है।

पारम्परिक नारी–

समाज का नारी के प्रति दृष्टिकोण वही है जो पुरूष–प्रधान समाज का रहा है। वे नारी को अपना जरखरीद गुलाम समझते हैं, उसे उस गाय की तरह मानते हैं जिसे किसी भी खूँटे से उसकी इच्छा के विरूद्ध बाँधा जा सकता है। होरी, धनिया जैसी उग्र स्वभाव तथा निर्भय स्त्री को भी दबाकर रखना चाहता है। भोला अधेड़ होकर भी दूसरा विवाह कर नवयुवती को दासी की तरह रखना चाहता है। बड़ी जाति का मातादीन चमार जाति को स्त्री सिलिया से यौन–संबंध तो स्थापित कर सकता है पर उसे पत्नी नहीं बनाना चाहता, केवल रखैल के रूप में रखना चाहता है। सोना का पति मथुरा विवाहित और घर में सुंदर पत्नी होते हुए भी सिलिया पर डोरे डालता है। उधर, नगर में खन्ना पत्नी होते हुए भी मालती से प्रेम करता है और गोविंदी के साथ उसका व्यवहार उपेक्षा, उदासीनता तथा क्रूरता का है। मीनाक्षी का पति शराबी, वेश्यागामी तथा विलासी है। अतः वह भी मीनाक्षी के साथ पति का धर्म नहीं निभाता।

इस प्रकार प्रेमचंद ने नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण कर नारी–जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। प्रेमचंद की विशेषता यह है कि उन्होंने धनिया, मीनाक्षी जैसी उग्र स्वभाव वाली स्त्रियों का चित्रण कर तथा 'वीमेन्स लीग' जैसी संस्था की स्थापना और वहाँ होने वाले कार्यक्रमों का परिचय देकर स्पष्ट संकेत दिया है कि नारी जाति में अधिकारों के प्रति बोध जाग्रत हो रहा था, वे पुरूष के अत्याचारों को मौन रहकर चुपचाप सहने की बजाए विद्रोह करने लगी थी।

आधुनिक नारी–

गोदान में आधुनिक विचारों से संपन्न नारी का रूप भी देखा गया है। आज भी अधिकांश विवाह माता–पिता के द्वारा तय किए जाते है और स्वच्छंद प्रेम को अच्छा नहीं समझा जाता। गोदान में स्वच्छंद प्रेम की परिणति दो प्रकार से दिखाई गई है– स्वच्छंद प्रेम की परिणति विवाह में झुनिया विधवा है, दूसरी जाति की है पर गोबर प्रथम दृष्टि में ही उसे प्रेम करने लगता है। दोनों के बीच यौन–संबंध भी हो जाता है। गोबर गाँव वालों, गाँव की पंचायत और माता–पिता सबसे डरता है, उसे आशंका है कि उनके विवाह को कोई स्वीकार न करेगा, फिर भी वह साहसपूर्वक झुनिया को घर ले आता है। धनिया की उदारता के कारण दोनों का विवाह हो जाता है, परंतु गाँव वाले, गाँव की पंचायत उसे स्वीकार नहीं करते और होरी को दंड स्वरूप सारा अनाज तथा नकद तीस रूपए देने पड़ते हैं, उन रूपयों के लिए घर गिरवी रखना पड़ता है।

गाँव में स्वच्छंद प्रेम का दूसरा उदाहरण मातादीन–सिलिया प्रसंग है। मातादीन ब्राह्मण है, सिलिया चमारिन। दोनों के बीच आकर्षण के बाद यौन–संबंध स्थापित हो जाता है। यहाँ भी जाति का भय है। मातादीन उतना साहसी नहीं है जितना गोबर। अतः वह सिलिया से विवाह करने को तैयार नहीं होता। गाँव के नवयुवकों द्वारा विवश किए जाने पर, उसके मुँह में हड्डी डालकर चमार बनाने के दुःसाहस के बाद ही यह सिलिया को पत्नी रूप में अपनाता है। नगर में स्वच्छंद प्रेम के उदाहरण है– सरोज तथा रायसाहब के बेटे रूद्रपाल का प्रणय–संबंध, मालती–मेहता का परस्पर प्रेम। रूद्रपाल पिता के तर्क–वितर्क, लाभ–हानि की बातों पर ध्यान न देकर सरोज से विवाह करने के दृढ़ संकल्प पर डटा रहता है। मालती–मेहता के मार्ग में कोई बाधा नहीं है, फिर भी प्रेमचंद की आदर्शवादिता उन्हें विवाह–बंधन में नहीं बंधने देती। मेहता के आलिंगन–पाश का सुख भोग कर, उनकी गृहस्थी का सारा बोझ संभालने के बाद भी वह विवाह नहीं करती।

1.8 गोदान का भाषा शिल्प

प्रेमचंद के उपन्यासों की भाषा यथार्थपरक, पात्रों के अनुकूल तथा देशकाल की स्थिति के अनुरूप है। उनकी भाषा कथा के प्रवाह, पात्रों की योजना तथा वातावरण की सृष्टि–सभी में पूरा योग देती है। संवादों की भाषा में तो देशकाल का रंग है, और पात्रों की रूपरेखा प्रस्तुत करने में भी लेखक की भाषा देशकाल से प्रभावित और परिवेश के वर्णन के सर्वथा अनुरूप है।

प्रेमचंद की भाषा में सजीवता और रोचकता तो है ही करारा व्यंग्य तथा तीखी चोट भी भाषा की विशेषता है। इनकी शैली विविधता लिए हुए है। कहीं तो विवरणात्मक है और कहीं विश्लेषणात्मक। जहाँ पर गहन चिंतन है, वहाँ पर तो भाषा गंभीर और तत्सम् शब्द–प्रधान है, लेकिन अन्यत्र स्वाभाविक सरल और हिंदी उर्दू मिश्रित है। 'गोदान' उपन्यास में भी प्रेमचंद जी की भाषागत विविधता दृष्टिगोचर होती है। इसमें गंभीर चिंतन के समय भाषा स्पष्टतः विचार प्रधान है, फिर भी वहाँ सरलता का गुण सहज ही विद्यमान है, यथा– "उनका मानव–प्रेम इस आधार पर अवलंबित न था कि प्राणी–मात्र में एक आत्मा का निवास है। द्वैत और अद्वैत का व्यापारिक महत्व के सिवा वह और कोई उपयोग न समझते थे और यह व्यापारिक महत्व उनके लिए मानव–जाति को एक–दूसरे के समीप लाना, आपस के भेद भाव को मिटाना और मातृ–भाव को दृढ़ करना ही था। यह एकता, यह अभिन्नता उनकी आत्मा में इस तरह जम गई थी कि उनके लिए किसी आध्यात्मिक आधार की सृष्टि उनकी दृष्टि में व्यर्थ थी। यश, लोभ या कर्त्तव्य पालन के भाव उनके मन में आते ही न थे। इसकी तुच्छता ही उन्हें इनसे बचाने के लिए काफी थी।"

उनके ग्रामीण पात्रों की भाषा में आंचलिकता का प्रभाव है तो मुसलमान पात्रों की भाषा में उर्दू की रवानगी है। पढ़े–लिखे पंडित की भाषा में तत्सम् शब्दों की बहुलता है। वहीं अंग्रेजी शब्दों की बहुलता प्रो. मेहता की भाषा में देखने को मिलती है। "मेहता, 'देवियों! मैं उन लोगों में नहीं हूँ जो कहते हैं स्त्री व पुरूष में समान शक्तियाँ हैं, समान प्रवृत्तियाँ है और उनमें कोई विषमता नहीं है। इससे भयंकर असत्य की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। यह वह असत्य है जो युग–युगांतर में संचित अनुभव को उसी तरह हक लेना चाहता है जैसे बादल का टुकड़ा सूर्य को

ढ़क लेता है।"

धनिया की भाषा का उदाहरण देखिए– "पंचों गरीब को सताकर सुख न पाओगें, इतना समझ लेना कौन जाने इस गाँव में रहें या न रहे लेकिन मेरा श्राप तुमको जरूर लगेगा। मुझसे इतना बड़ा जरीमाना इसलिए लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा।"

गोदान की शैली में विवधता है। प्रेमचंद की शैली की प्रमुख विशेषता मुहावरों का प्रयोग है। इससे भाषा में प्रवाह आ गया है। शैली को सशक्त और रोचक बनाने के लिए प्रेमचंद ने लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है। गोदान में होरी विधुर भोला से कहता है– 'पुरानी मिसाल झूठी थोड़े है– 'बिन घरनी भूत का डेरा'– सुक्तियों का प्रयोग भाषा शैली को और अधिक सुबोध एवं सशक्त बना देता है, जैसे 'संपत्ति और सहृदयता में बेर है।"

अलंकारों का प्रयोग भाषा के सौंदर्य को और अधिक बढ़ा देता है। गोदान में अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण, वीप्सा आदि अनेक अलंकारों का सुंदर प्रयोग हुआ है। प्रेमचंद जी साधारणतः छोटे–छोटे वाक्य पसंद करते थे। गोदान उपन्यास की भाषा में ग्रामीण कृषकों का जीवन साकार हो उठा है। कई स्थलों पर तो वह इतनी मार्मिक बन पड़ी है कि आँखें भर आती है। प्रेमचंद की भाषा की विशेषताओं के कारण उनके उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुए हैं।

1.9 प्रेमचंद हिंदी कथा साहित्य में स्थान

प्रेमचंद हिंदी तथा कथा–सम्राट तथा उपन्यास सम्राट की उपाधियों से विभूषित हिंदी कहानियों के महान कथा शिल्पी तथा कालजयी कथाकार रहे हैं। उन्होंने अपने जीवन में तीन सौ से अधिक कहानियों, जो मानसरोवर के आठ खंड़ो में संकलित हैं, तीन नाटकों– संग्राम, कर्बला व अनेक निंबधों व लेखों तथा सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, प्रतिज्ञा और गोदान आदि उपन्यासों का प्रणयन किया है। गोदान उनकी अंतिम तथा सर्वाधिक प्रौढ़ रचना मानी जाती है। इसके अतिरिक्त उनका उर्दू में लिखा साहित्य अलग रह जाता है।

'गोदान मुंशी प्रेमचंद का कालजयी उपन्यास है, यह कृषक जीवन का महाकाव्य माना जाता है। जहाँ तक उनके समस्त साहित्य में 'गोदान' के स्थान निर्धारण का प्रश्न है, कहना न होगा कि उनका यह उपन्यास उनके समस्त साहित्य का एकमुश्त व्यापक चित्र उपस्थित करने के कारण उनके समस्त साहित्य में सर्वोपरि स्थान का हकदार है। उन्होंने अपनी तमाम कहानियों, नाटकों और उपन्यासों में जिन सामाजिक समस्याओं को अलग–अलग करके उठाया है। ये सभी समस्याएँ उन्होंने अपनी इस प्रौढ़ रचना में एक साथ ही उठा दी हैं।

हिंदी कथा साहित्य को प्रेमचंद की देन अनेकमुखी है। प्रायमतः उन्होंने हिंदी कथा साहित्य को 'मनोरंजन' के स्तर से उठाकर जीवन के साथ–सार्थक रूप में जोड़ने का काम किया। चारों ओर फैले हुए जीवन और अनेक सामाजिक समस्याओं–पराधीनता, जमीदारों, पूँजीपतियों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसानों का शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, अंधविश्वास, दहेज की कुप्रथा, घर और समाज में नए की स्थिति, वैश्याओं की जिंदगी, अशिक्षा, अंधविश्वास, दहेज की कुप्रथा, घर और वैमनस्य, अस्पृश्यता, मध्यम वर्ग की कुण्ठाएँ आदि– ने उन्हें कथा लेखन के लिए प्रेरित किया था। प्रेमचंद ने एक–एक कर बड़ी बेसब्री से इन समस्याओं और जीवन के विभिन्न पहलुओं को अपनी कहानियों और उपन्यासों में स्थान दिया। 'सेवासदन' में उनका ध्यान मुख्यतः विवाह से जुड़ी समस्याओं– तिलक, दहेज की प्रथा, कुलीनता का प्रश्न, विवाह के बाद घर में पत्नी का स्थान आदि– और समाज में वैश्याओं की स्थिति पर रहा। 'निर्मला' में दहेज प्रथा और वृद्ध विवाह से होने वाले पारिवारिक विघटन तथा विनाश का चित्रण है। कृषक जीवन की समस्याओं के चित्रण का प्रथम प्रयास 'प्रेमाश्रम' में लक्षित हुआ और उसे पूर्णता प्राप्त हुई 'गोदान' में वैसे प्रेमचंद ने मान्य रूप से अपनी अनेक कहानियों और प्रायः सभी उपन्यासों में और विशेष रूप में रंगभूमि' और कर्मभूमि में ग्रामीणों की स्थिति का चित्रण पर 'गोदान' को तो ग्रामीण जीवन और कृषि–संस्कृति का महाकाव्य ही

कहा जा सकता है। ग्रामीण जीवन का इतना सच्चा, व्यापक और प्रभावशाली चित्रण हिंदी के किसी अन्य उपन्यास में नहीं हुआ है, सम्भवतः वह संसार के साहित्य में बेजोड़ है।

महात्मा गाँधी से प्रभावित होने के कारण ही नहीं, अपनी मानवतावादी दृष्टि के कारण भी देश ही भिन्न पहलुओं का साम्प्रदायिक समस्या प्रेमचंद की चिंता का मुख्य विषय थी। इस समस्या को 'सेवासदन' और विशेष रूप से कायाकल्प में प्रस्तुत किया गया है। 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'प्रतिज्ञा', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में अंतर्जातीय विवाह के प्रश्न को उठाया गया है। उच्चवर्गीय और मध्यवर्गीय समाज में नारी की स्थिति तथा अपने अधिकारों के प्रति उसकी क्रमशः उभरती गई जागरूकता तो प्रायः उनके सभी उपन्यासों में चित्रित है। विधवा विवाह का प्रश्न प्रतिज्ञा में उठाया गया है। मध्यम वर्ग की कुण्ठाओं का सबसे अच्छा चित्रण 'गबन' और 'निर्मला' में हैं, यद्यपि 'सेवासदन' और 'कर्मभूमि' में भी इसकी झलक देखी जा सकती है। समाज में हरिजनों की स्थिति और उनकी समस्याओं का चित्रण 'कर्मभूमि' में मिलता है। बड़े पैमाने पर फैलाने वाले उद्योग धंधों के फलस्वरूप ग्रामीण 'गबन' और 'कर्मभूमि' में स्थान–स्थान पर व्यक्त हुआ है। सामान्य जीवन की धड़कन तो उनकी सभी उपन्यासों में मिलती है। लेकिन उपरोक्त उपन्यासों में अलग–अलग रूप से चित्रित इन सभी सामाजिक समस्याओं का जिस एक ही उपन्यास में हृदयगम किया जा सकता है, वह उनका अंतिम उपन्यास गोदान ही है। उन्नसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में देवकीनंदन खन्नी ने कौतूहलोत्पादक चौंकाने वाली नयी–नयी घटनाओं की सृष्टि करके कथा में रोचकता पैदा की थी, जबकि प्रेमचंद ने सहज सामान्य मानवीय व्यापारों को मनोवैज्ञानिक स्थितियों में जोड़कर उनमें एक सहज तीव्र मानवीय रूचि पैदा कर दी। उनके आरम्भिक उपन्यासों में घटनाओं की सृष्टि का भी प्रयास लक्षित होता है, पर धीरे–धीरे वे इस पुराने रोग से मुक्त होते गये और 'गोदान' में पहुँचकर उन्होंने किस्सागोई की उस कला को प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की जो घटनाओं पर नहीं, मनोवैज्ञानिक स्थितियों में दीप्त सहज सामान्य मानवीय व्यापारों पर जीती है। उनका वैशिष्टय इस बात पर निहित है कि उन्होंने सामयिक सामाजिक समस्याओं को अपने उपन्यासों में समस्याओं और उनके आदर्शवादी समाधानों का महत्त्व उत्तरोतर कम होता गया और जीवनधारा की जाएगी तथा यथार्थता क्रमशः प्रमुख तथा व्यापक होती गयी। हालांकि अपने अंतिम उपन्यास 'गोदान' में भी वे आदर्शों से मुक्त नहीं हो सके है, पर 'गोदान' में सामान्य जीवनधारा की अत्यंत सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों में समाज के विभिन्न वर्गों का चित्रण किया है। इनमें सबसे प्रमुख वर्ग हैं– किसानों का, जो मुख्यतः गाँवों में रहता था और समूची आबादी का लगभग 14 प्रतिशत था। इसके बाद उन्होंने मध्यवर्ग को अपने उपन्यासों का विषय बनाया। अभिजात वर्ग और नागरिक जीवन का चित्रण उन्होंने बहुत कम किया है और जहाँ ऐसे स्थल आए हैं उनका मन रमा नहीं है। गोदान में नागरिक चित्रण की सम्भावनाएँ तो थीं, किंतु उसका प्रामणिक और पर्याप्त चित्रण वहाँ भी नहीं है। उपन्यास में कुछ नागरिक पात्रों के दर्शन अवश्य होते हैं पर वे किसी विशेष अर्थ में नागरिक जीवन का प्रतिनिधित्व नहीं करते। नगर जीवन की विशेषताओं, जैसे– कोलाहल, दौड़–धूप, तंगी, भीड़, घुटन, गंदगी, बेकारी, होटल, रेस्तरां, शुष्क औपचारिकता भयानक जीवन संघर्ष आदि का बहुत प्रामणिक चित्रण 'गोदान' में भी कहीं दिखायी नहीं देता। 'गोदान' की तथाकथित नगर कथा के पात्र प्रेमचंद के नारी विषयक, प्रेम विषयक और देश सेवा विषयक आदर्श के प्रतिपादन के निमित खड़े किए गए हैं, न कि व नगर जीवन के अंग है। लगभग यही बात उनके अन्य उपन्यासों में आये नागरिक पात्रों के विषय में भी कही जा सकती है। हाँ, उनके उपन्यासों में शोषक वर्ग का जमीदारों, साहूकारों, सहकारी कर्मचारियों (विशेषतः पुलिस विभाग) तथा पुराहितों का–यथार्थ और प्रमाणिक चित्रण हुआ है। इनमें जमीदार वर्ग के प्रति प्रेमचंद की सहानुभूति उन्हें उच्चकोटिका कलाकार ही नहीं, संतुलित दृष्टि सम्पन्न सामाजिक आलोचक भी सिद्ध करती है। तत्कालीन जमींदार एक ओर किसानों का शोषण करता था तो दूसरी ओर वह बैंकरों, दलालों और अंग्रेज सरकार के शोषण का शिकार भी था। तत्कालीन सामन्ती ढ़ांचा भव्य और डरावना दिखायी पड़ने पर भी भीतर बिल्कुल जीवन खोखला हो चुका था। प्रगतिवाद या साम्यवाद के प्रति दुराग्राही लेखकों की दृष्टि इस खोखलेपन की कहीं नहीं जा सकती,

किंतु 'गोदान' में प्रेमचंद ने अपनी सूक्ष्म अवलोकन क्षमता में न केवल इसे लक्ष्य किया, अपितु सहानुभूति के साथ इसे प्रस्तुत भी किया है।

प्रेमचंद यद्यपि राष्ट्रप्रेमी और देशभक्त लेखक थे, पर अपने उपन्यासों में वे राष्ट्रीय भावना को सशक्त अभिव्यक्ति न दे सके। जगह–जगह ऐसा लगता है कि वे इस ओर बढ़ना तो चाहते हैं पर उनकी व्यवाहारिक बुद्धि जैसे रास्ता रोक देती है। वे सामाजिक सुधारों तथा प्राकृतिक विपत्तियों में सहायता कार्य करने वाली सेवासमितियों के गठन और उनकी गतिविधियों का तो वर्णन करते हैं पर सत्याग्रह आंदोलन या स्वतंत्रता प्राप्ति के निमित किए गए आंदोलन के चित्रण से बचते हैं। यह बात 'प्रेमाश्रम', रंगभूमि', 'गबन' और 'कर्मभूमि' सबमें देखी जा सकती है। इसी प्रकार कतिपय सामाजिक समस्याओं को सही संदर्भ में उठाने पर भी वे उन्हें उचित तर्कसंगत परिणित नहीं दे पाये है। कई उपन्यासों में अंतर्जातीय विवाह की समस्या उठायी गई है। दो विभिन्न जातियों के युवक युवतियों में प्रेम संबंध स्थापित होता है, पर प्रेमचंद उस संबंध को विवाह में बदलने के पूर्व ही प्रेमी प्रेमिका को मृत्यु या किसी अन्य बहाने से एक दूसरे से अलग कर देते हैं। सोफिया विनय, अमरकान्त, सकीना, चक्रधर मनोरमा आदि प्रेमी युगलों की कहानी इसका प्रमाण है। इसी प्रकार 'प्रतिज्ञा' में विधवा विवाह की समस्या को उठाकर भी वे अमृतराय और पूर्णा का विवाह सम्पन्न नहीं करा पाते। केवल 'गोदान' में मातादीन और सिलिया का विवाह दिखाने की साहस उन्होंने किया है। अतः कहना न होगा कि गोदान में व्याप्त उनकी सामाजिक भावना न केवल अत्यंत विकसित हो चुकी थी, अपितु वे अपने विचारों को क्रांतिकारी ढंग से कहने में भी अधिक सक्षम हो गए थे।

शिल्प और भाषा की दृष्टि से भी प्रेमचंद ने हिंदी कथा साहित्य को विशिष्ट स्तर प्रदान किया। ये सुघटित और चारों ओर से दुरूरत कथानक गढ़ने का कौशल देवकीनंदन खत्री भी दिखा चुके थे पर चित्रणीय विषय के अनुरूप शिल्प के अन्वेषण का प्रयोग हिंदी उपन्यास में पहली बार प्रेमचंद ने अपने उपन्यास गोदान में ही किया उनकी विशेषता यह है कि उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए दृश्य अत्यंत सजीव, गतिमान और नाटकीय है। उनके उपन्यासों की भाषा की खूबी यह है कि शब्दों के चुनाव तथा वाक्य योजना की दृष्टि से उसे 'सरल' और 'बोलचाल की भाषा' कहा जा सकता है। पर भाषा की इस सरलता को निर्जीवता, एकरसता और अकाव्यात्मकता का पर्याप्त नहीं समझा जा सकता है। प्रेमचंद के उपन्यासों विशेषतः गोदान में भाषा का वैविध्य जितने स्तरों पर दिखायी पड़ता है वह हिंदी के उपन्यास साहित्य में अब तक दुर्लभ है। इतनी 'सरल' सरल भाषा को एक साथ इतने स्तरों पर काम में लाना प्रेमचंद जैसे उपन्यासकार द्वारा ही संभव था। भाषा के सटीक, सार्थक और व्यंजनापूर्ण प्रयोग में वे अपने समकालीन ही नहीं, बाद के उपन्यासकारों को भी पीछे छोड़ जाते हैं।

अतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रेमचंद के कथा साहित्य में उनके 'गोदान' का स्थान अन्यतम भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से निर्विवाद रूप में यह उनकी सर्वाधिक उत्कृष्ट व चर्चित रचना है।

सारांश :

गोदान उपन्यास में व्याख्याएँ कथानक का सार तत्व प्रस्तुत करती हैं जिसमें युग बोध की झांकी के साथ ग्रामीण परिवेश में कृषक जीवन, उनकी गरीबी, जमींदारों की कथनी और करनी का अंतर, आपसी वैमनस्य, व्यवस्था के प्रति आक्रोश, दाम्पत्य जीवन के विविध रूपों, पुरूषों और नारियों के अलग–अलग रूपी का चित्रण, वर्ग वैमनस्य, आर्थिक संघर्ष, पाश्चात्य संस्कृति, संयुक्त परिवार आदि कई ज्वलंतशील मुद्दों पर लेखक ने बहुत सहहृदयता से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं जो इस काल के सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक वातावरण से बहुत समानता रखते हैं। गोदान उपन्यास को पढ़ने के पश्चात् ही यह समझ में आता है कि प्रेमचंद आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी भावना को मनाने वाले हैं। जीवन के कटु यथार्थ को प्रस्तुत कर प्रेमचंद में बुद्धिजीवियों को चिंतन के लिए विवश किया है और आदर्शवाद का लाबादा ओढ़ कर कटु सत्य को सर्वग्राह्य बनाया। गोदान यथार्थ की पृष्ठभूमि पर लिखा गया कृषक जीवन का

महाकाव्य माना जाता है जिसमें सिसकते किसानों की आह सुनाई देती है और जिसमें शोषकों का क्रूर स्वरूप मुखरित होता है। गोदान उपन्यास महाकाव्यात्मक गरिमा से युक्त है। मरीत बेलारी की कथा समस्त भारतीय किसानों की व्यथा का चित्रण है। विभिन्न वर्गों में विभक्त कथानक व्यापकता का सूचक है। सामाजिक विसंगतियों का वर्णन है। रसों के सफल निष्पादन की झांकी है। विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति करने में सक्षम गोदान आधुनिक युग बोध को दर्शाता है। गोदान चरित्र चित्रण की दृष्टि से लॉय टॉलस्टॉय के 'वार एंड पीस' के समान साहित्यिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण कृति माना जाता है। उपन्यास में प्रयुक्त पात्रों में वर्गीय भावना, युगीन परिदृश्य, घटना चक्र, मनोवृत्तियों का सफल चित्रण देखने को मिलता है। होरी कृषक वर्ग का, धनिया भारतीय नारी के आदर्श का, गोबर युवा वर्ग के आक्रोश का तो मेहता आदर्श के साथ यथार्थ का और मालती संवेदना का मार्ग प्रशस्त करती है। पात्रों द्वारा समाज की झांकी देखने को मिलती है।

अंततः हम यह कह सकते हैं कि गोदान उपन्यास अपने सीमित कलेवर में संपूर्ण भारतीय कृषकों का बिंब तथा राजनैतिक घटनाक्रमों की झांकी प्रस्तुत करता है। शहरी और ग्रामीण संस्कृति का दिग्दर्शन कराता है और लोक कल्याण की भावना प्रस्तुत करता है। पश्चाताप की भावना के द्वारा मनुष्य के निर्मल व्यतिव का वर्णन करता है। कर्म की प्रधानता एवं प्रेमभाव का समर्थन करने के कारण ही गोदान आधुनिकता की विशेषताओं को चरितार्थ करने में सक्षम है। नारी, समाज का वह बिंदु है जिस पर परिवार के साथ समाज और राष्ट्र का अस्तित्व निर्भर करता है।

1.11 मुख्य शब्दावली

- लत्ता – कपड़ा
- जैजात – संपत्ति
- बख्तर – आवरण, कवच
- सांसत – क्रिया कर्म
- अधम – नीच
- साध – इच्छा
- इल्म – ज्ञान
- प्रबुद्ध – शिक्षित
- संचा – एकत्र किया
- दबैल – दबा हुआ
- अम्मादा – तैयार

1.12 अपनी प्रगति जाँचिए के उत्तर

1. होरी ही धनिया के लिए तिनके का सहारा था।
2. 'ऋणग्रस्तता' किसानों की दुर्दशा का कारण थी।
3. स्वयं को बड़ा सिद्ध करना, अमरपाल सिंह के अनुसार दान धर्म का मूल उत्स था।
4. शोषण करना अमीरों का स्वभाव होता है।
5. धन (सम्पत्ति) सुख का आधार है।

6. परिस्थितियाँ ही मनुष्य के पतन का मूल कारण है।
7. धन, दौलत गोबर के अनुसार सुख का आधार है।
8. मनवता ही मनुष्य की पहचान का मूल आधार है।
9. प्रभात से वैवाहिक जीवन की तुलना की जाती है।
10. बड़ी मच्छलियों को द्वेष का मायाजाल फँसाता है।
11. भौरे से मनुष्य की तुलना की जाती है।
12. झुनिया को धर्म की दुहाई देकर फँसाना चाहता है।
13. कर्म करना ही प्राणी मात्र का धर्म है।
14. बुद्धि ही सामाजिक विकास का आधार है।
15. पारस्परिक प्रेम ही सुखी वैवाहिक जीवन का आधार है।
16. भ्रष्टाचार ही लोकतंत्र के पतन का मूल कारण है।
17. होरी का सरल स्वभाव ही धनिया के क्रोध का कारण था।
18. अंधेरे से धनिया के मातृत्व की तुलना की जाती है।
19. पंचायत पर धनिया अपना आक्रोश व्यक्त करती है।
20. परिश्रम ही धनिया के जीवन का मूलाधार था।
21. धनिया ने वैधव्य जीवन में झुनिया को आश्रय प्रदान किया।
22. सेवा भाव व त्याग ही स्त्री की प्रमुख विशेषता है।
23. त्याग भावना के कारण स्त्री पुरूष से श्रेष्ठ है।
24. हंस से
25. वोट देना राजनीतिक अधिकार है।
26. नारी जाति पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ता है।
27. विवाह ही प्रेम की पूर्णता का मूलाधार है।
28. तटस्थ भाव से लिखना ही संपादक का दायित्व है।
29. धामड़ नाम से धनिया होरी को संबोधित करती है।
30. दुख ही कवित्व का आधार है।
31. जीवन क्रीड़ा चक्र में ही ईश्वर के दर्शन होते है।
32. माँ का रूप ही नारी जीवन की पूर्णता का आधार है।
33. आधुनिक युवा वर्ग का प्रतिनिधि गोबर ही है।
34. संतान का पालन पोषण करना ही माँ–बाप का धर्म है।

35. सिलिया शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है।

36. परिवार में ही नारी का उचित स्थान है।

37. शत्रु अपने मित्र बन जाते हैं।

38. शोषक वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है भेड़िया।

39. प्रेम ही नारी जीवन का आदर्श है।

40. आदान–प्रदान ही प्रेम को परिपक्व बनाता है।

41. प्रो. मेहता को

42. बंधन में बंध जाना ही विवाह को ध्वनित करता है।

43. गोदान में कृषक वर्ग कर चित्रण किया गया है।

44. नारी जीवन की सार्थकता को निपुणिका व्यंजित करती है।

45. मालती आधुनिक नारी का प्रतीक है।

46. गोदान उपन्यास का प्रतिनिधि पात्र होरी है।

47. गोदान उपन्यास में श्रृंगार रस को प्रमुखता है।

48. गोदान उपन्यास में युवा वर्ग का प्रतिनिधि पात्र गोबर है।

49. गोदान उपन्यास में धनिया का ओजस्वी व्यक्तित्व है।

50. गोदान उपन्यास कृषक जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।

51. गोदान उपन्यास में तितली और मधुमक्खी की उपमाएँ मालतही को दी गयी हैं।

52. गाँवों का शहरों की ओर पलायन भौतिक समृद्धि और रोजगार के कारण होता है।

53. कोरी सैद्धांतिकता का समर्थन करने वाला पात्र अमरपाल सिंह है।

54. धनिया नारी चेतना का सशक्त पात्र है।

55. गोबर द्वारा युवा आक्रोश अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है।

1.13 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. गोदान उपन्यास कब लिखा गया?

2. गोदान उपन्यास में प्रयुक्त गाँव का नाम लिखिए।

3. गोदान उपन्यास कितने पारिच्छेद में अभिव्यक्त है।

4. होरी ने भोला अहीर से भूसे के बदले क्या लिया?

5. सेवा एवं त्याग की मूर्ति किसे कहा जाता है?

6. होरी की इच्छा क्या थी?
7. गोबर गाँव छोड़कर कहाँ जाता है?
8. प्रेमचंद का जन्म किस गाँव में हुआ था?
9. व्यावहारिक आदर्श की अभिव्यक्ति के लिए कौन–सा पात्र श्रेष्ठ है
10. होरी का संबंध किस जमीदार से था?
11. होरी की गाय को किसने जहर देकर मारा?
12. प्रेमचंद ने शिक्षा की तुलना किससे की है?
13. स्वस्थ समाज की रचना के लिए क्या आवश्यक है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. गोदान उपन्यास की औपचारिक तत्वों के आधार पर समीक्षा कीजिए।
2. मालती की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. गेदान उपन्यास में आदर्श यथार्थ का मणिकंचन प्रयोग हुआ है। सिद्ध कीजिए।
4. गोदान उपन्यासकार प्रेमचंद की प्रौढ़ रचना है, स्पष्ट कीजिए।
5. रायसाहब अमरपाल सिंह एक और शोषक हैं तो दूसरी ओर संवेदना से युक्त उक्त कथन की पुष्टि कीजिए।
6. गोदान में आधुनिकता के लक्षण कौन–कौन से हैं?
7. गोदान में पात्र योजना की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
8. गोदान उपन्यास जमींदारी उन्मूलन की झाँकी प्रस्तुत करता है, स्पष्ट कीजिए।
9. सामाजिक परिवर्तन में नारी की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

1.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. डॉ. रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन।
2. ए. अरविंदाक्षन, प्रेमचंद के आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन।
3. परमानंद श्रीवास्तव, उपन्यास का पुनर्जन्म, वीणा प्रकाशन।
4. मधुरैश, हिंदी उपन्यास का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

इकाई–2 बाणभट्ट की आत्मकथा (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी)

इकाई की रूपरेखा

2.0 बाणभट्ट की आत्मकथा– व्याख्या खण्ड

2.1 बाणभट्ट की आत्मकथा की मूल संवेदना

2.2 बाणभट्ट की आत्मकथा में प्रेम–दर्शन

2.3 बाणभट्ट की आत्मकथा में आधुनिकता बोध

2.4 बाणभट्ट की आत्मकथा में स्त्री–पात्र

परिचय

बाणभट्ट की आत्मकथा' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित उपन्यास है जिसमें मध्यकालीन इतिहास के एक छोटे–से कालखण्ड को आधार बनाया गया है। सातवीं शताब्दी का इतिहास और समाज इस उपन्यास में जीवंत हो चुका है। स्त्री–मुक्ति चेतना, राष्ट्रीय स्वातंत्र्य आन्दोलन, साम्प्रदायिक चेतना, राजनीतिक अस्थिरता, जाति–पाति एवं ऊँच–नीच के भेद पर आधारित सामाजिक वैषम्य जैसे अनेक मुद्दे इस उपन्यास को समकालीन यथार्थ से जोड़ते हैं। इस उपन्यास में द्विवेदी जी ने प्राचीन कवि बाणभट्ट के बिखरे जीवन–सूत्रों को बड़ी कलात्मकता से गूँथकर एक ऐसी कथाभूमि निर्मित की है जो जीवन–सत्यों से रसमय साक्षात्कार कराती है। यह उपन्यास हर्षकालीन सभ्यता एवं संस्कृति का जीवंत दस्तावेज है।

2.0 व्याख्या खण्ड

- राजवधुएँ बहुमूल्य शिविकाओं पर आरूढ़ थीं। साथ–साथ चलने वाली परिचारिकाओं के चरण विघटनजनित नूपुरों के क्वणन से दिगंत शब्दायमान हो उठा था। वेग पूर्वक भुज लताओं के उत्तोलन के कारण मणिजटित चूड़ियाँ चंचल हो उठी थीं। इससे बाहु लताएँ भी झनकार करने लगी थीं। उनकी ऊपर उठी हवेलियों को देखने से ऐसा लगता था, मानो आकाश–गंगा में खिली हुई कमलिनियाँ हवा के झोंकों से विलुलित होकर नीचे उतर आई हों। भीड़ के संघर्ष से उनके कानों के पल्लव खिसक रहे थे।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। इन पंक्तियों में बाणभट्ट स्थाण्वीश्वर (थानेसर) में देखे हुए जुलूस का वर्णन करते हुए कहता है कि –

व्याख्या – राजपरिवार की कुलवधुएँ अत्यंत महँगी पालकियों पर चढ़ी हुई थीं। इन कुलवधओं के साथ उनकी दासियाँ भी चल रही थीं। इन दासियों के पैरों की चोट से उत्पन्न घुंघरूओं की आवाज से सभी दिशाएँ गूंज उठी थीं। वे दासियाँ जब अपनी स्वामिनियों की सेवा करने के लिए या उनका अभिवादन करने के लिए अपनी भुजाओं को ऊपर उठाती थीं तो उनकी भुजाएँ जो कि लता के समान थीं, उन भुजाओं को शीघ्रता से ऊपर–नीचे करने के कारण मणियों से युक्त उनकी चूड़ियों ने अपनी हथेलियों को ऊपर उठा रखा था। ऊपर उठी हुई हथेलियों को देखकर ऐसा लगता था जैसे आकाश गंगा में खिली हुई कमलिनियाँ हवा के झोंकों से अस्त–व्यस्त होकर नीचे पृथ्वी पर उतर आई हों। जुलूस को देखने के लिए उमड़ी भीड़ के फलस्वरूप उन दासियों के कानों के आभूषण नीचे की ओर खिसक रहे थे।

विशेष :

1. बाणभट्ट ने स्थाण्वीश्वर नगर में देखे जुलूस का बड़ा ही काव्यात्मक वर्णन किया है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- साधारणतः जिन स्त्रियों को चंचल और कुलभ्रष्टा माना जाता है उनमें एक दैवी शक्ति भी होती है, यह बात लोग भूल जाते हैं। मैं नहीं भूलता। मैं स्त्री शरीर को दैवीय–मंदिर के समान पवित्र मानता हूँ। उस पर की गई अनुकूल टीकाओं को मैं सहन नहीं कर सकता। इसलिए मैंने मण्डली में ऐसे कठोर नियम बना रखे थे कि स्त्रियों की इच्छा के विरूद्ध उनसे कोई बोल तक नहीं सकता था।

प्रसंग–प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। बाणभट्ट की दृष्टि में नारी की महत्ता अवर्णनीय है। बचपन से ही बाणभट्ट के हृदय में नारी के लिए सम्मान की भावना थी। नारी विषयक अपनी इसी मनोभावना का विश्लेषण करते हुए बाणभट्ट इन पंक्तियों में कहता है –

व्याख्या – बाणभट्ट कहता है कि आज का समाज साधारणतः जिन नारियों को चंचल एवं कुलभ्रष्टा मानता है, जिसे पुरुष की सिद्धि के रास्ते की सबसे बड़ी अवरोध मानता है, वस्तुतः उन नारियों में अनेक दैवीय गुण एवं शक्ति से युक्त प्रतिमाएँ हैं। वे त्याग, दया, करुणा, स्नेह, प्रेम, ममता, उदारता जैसे सद्गुणों से युक्त होती हैं। बाणभट्ट का कहना है कि अक्सर लोग इस तथ्य को भूल जाते हैं, किंतु उसने इस तथ्य को कभी विस्मृत नहीं किया। उसकी दृष्टि में नारी देव–मन्दिर की भांति पूजनीय एवं आराधना योग्य है। नारी पर की गई विपरीत टीकाएँ वह स्वीकार एवं सहन नहीं कर सकता। इसी कारण उसने अपनी नाटक मण्डली में ऐऐ कठोर नियम बना रखे थे कि मण्डली में काम करने वाली स्त्रियों की इच्छाओं के विरूद्ध उनसे कोई बात तक नहीं कर सकता था।

विशेष :

1. लेखक हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने नारी के प्रति अपने विचारों को बाणभट्ट के माध्यम से प्रस्तुत किया है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक हैं।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- निर्दय, तुमने बहुत बार बताया था कि तुम नारी–देह को देव–मंदिर के समान पवित्र मानते हो, पर एक बार भी तुमने समझा होता कि यह मन्दिर हाड़–माँस का है, ईंट चूने का नहीं! जिस क्षण मैं अपना सर्वस्व

लेकर इस आशा से तुम्हारी ओर बढ़ी थी कि तुम उसे स्वीकार कर लोगे, उसी समय तुमने मेरी आशा को धूलिसात् कर दिया। उस दिन मेरा निश्चित विश्वास हो गया कि तुम जड़ पाषाण–पिण्ड हो; तुम्हारे भीतर न देवता है, न पशु है; एक अडिग जड़ता। मैं इसलिए वहाँ ठहर नहीं सकी।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट' की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। निपुणिका, जो कि बाणभट्ट के प्रति आसक्ति रखती थी, जब उसे अनुभव हुआ कि बाण के मन में उसके प्रति ऐसी कोई भावना नहीं है तो वह मंडली छोड़कर भाग गई। थानेश्वर में बाणभट्ट जब उससे पुनः मिलता है तो उससे भाग आने का कारण पूछता है। प्रत्युत्तर में निपुणिका कहती है–

व्याख्या – निपुणिका कहती है कि बाणभट्ट, तुम नारी के शरीर को दैव मन्दिर की भांति आराधना के योग्य मानते हो। किन्तु तुमने कभी यह समझने की भी कोशिश की कि नारी शरीर देव मन्दिर की भांति ईंट–चूने से निर्मित न होकर हाड़–मांस का बना हुआ होता है। इसी कारण जब मैं पूर्ण समर्पण–भाव से तुम्हारे पास आई थी तथा यह समझा था कि तुम मेरे प्रेम को स्वीकार कर लोगे। किन्तु तुमने मेरी आशाओं पर पानी फेर दिया। तुम मुझे देखकर इस प्रकार हंस पड़े कि मेरी प्रेम–भावना धूल–धूसरित हो गई। उस दिन से मैंने जान लिया कि तुम एक ऐसे पत्थर हो जिसमें भानात्मक रूप से कोई चेतना नहीं है। तुम विचारों से उच्च हो, किन्तु हृदय से पत्थर हो। अतः तुममें न देवत्व है और न पशुत्व। इसके विपरीत तुम एक अचल जड़ स्पंदन–हीन मनुष्य हो। तुम्हारे इसी रूप को जानकर मैं उस मण्डली में ठहर नहीं सकी ओर वहाँ से भागकर थानेश्वर आ पहुँची।

विशेष :

1. निपुणिका का बाण के प्रति नारी सुलभ स्वाभाविक प्रेम उपालंभ के रूप में प्रकट हुआ है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली के अनंतर वार्तालाप शैली का प्रयोग हुआ है।

- वह भक्ति–गद्गद् स्वर में स्त्रोत–पाठ कर रही थी और मैं निर्निमेष नयनो से उसे देख रहा था–उस समय उसकी अंग–प्रभा अलौकिक दिख रही थी; कोटरगत आँखें मानो उद्वेल वारिधारा से परिपूर्ण होकर प्रफुल्ल पुण्डरीक के समान विकसित हो गई थी; कुन्तल–जाल रह–रहकर इस प्रकार विलुलित हो उठते थे, मानो महावराह के चरण–प्रान्त में गिर पड़ने को व्याकुल हो उठे हों।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। बाणभट्ट ने जब निपुणिका को पूजा में व्यस्त देखा तो उस समय का वर्णन करते हुए वह कहता है कि–

व्याख्या – बाणभट्ट कहता है कि निपुणिका अत्यंत भक्ति–भाव से विह्वल होकर भरे हुए स्वर में भगवान महावराह का स्त्रोत पाठ कर रही थी और मैं चुपचाप खड़ा होकर उसे एकटक निहार रहा था। उस समय निपुणिका के शरीर का अलौकिक सौन्दर्य दिखाई दे रहा था। ध्यान की अवस्था में होने के कारण उसके अन्दर की ओर धँसी हुई अर्थात् बंद हुई आँखें ऐसी लग रही थीं मानो अत्यधिक जल की धारा से पूर्ण होकर कमल खिल गया हो।

निपुणिका की केशराशि इस प्रकार अस्त–व्यस्त हो रही थी मानो वे केश उसके आराध्य देव महावराह के चरणों में गिर पड़ने को व्याकुल हो रहे हों। कहने का भाव यह है कि ध्यानामग्न निपुणिका अत्यंत सुदर्शन प्रतीत हो रही थी।

विशेष :

1. निपुणिका का महावराह के प्रति भक्ति–भाव प्रकट हुआ है। साथ ही यह भी प्रकट हुआ है कि बाणभट्ट सौन्दर्य का उपासक था। निपुणिका के वर्णन से इस तथ्य का पता चलता है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त हैं।
5. वाक्य कुछ सरल कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक हैं।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- साधारणतः लोग जिस उचित–अनुचित के बंधे रास्ते से सोचते हैं उससे मैं नहीं सोचता। मैं अपनी बुद्धि से अनुचित–उचित की विवेचना करता हूँ। मैं मोह और लोभवश किए गए समस्त कार्यों को अनुचित मानता हूँ, परंतु हमेशा अपने को इन दो रिपुओं से बचा नहीं सका हूँ। आज ही मैंने एक महान् संकल्प किया है। मैं नहीं जानता कि इसमें मैं कहाँ तक सफल हूँगा। अनुचित कार्यों से मैं अपने को सदा बचा नहीं पाया हूँ, पर उचित कार्यों को अक्सर आने पर करने के लिए मैंने अपने प्राणों तक की परवाह नहीं की है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। बाणभट्ट निपुणिका को महावराह की पूजा करते देख, उसके भक्त रूप से विस्मित हो गया। लेकिन बाद में निपुणिका बाणभट्ट से अपनी सहायता करने के लिए प्रार्थना करती हुई पूछती है कि क्या मेरी सहायता करने में तुम उचित–अनुचित कार्य करने के लिए भी तैयार हो। इसके प्रत्युत्तर में बाणभट्ट कहता है कि–

व्याख्या – समाज का प्रत्येक व्यक्ति जब भी किसी कार्य को करता है तो वह उस कार्य को करने से पहले यह सोचता है कि उसे वह कार्य करना चाहिए अथवा नहीं, क्योंकि जिस कार्य को समाज अनुचित मानता है और यदि उस अनुचित कार्य को कोई व्यक्ति करता है तो समाज उस अनुचित कार्य करने वाले व्यक्ति की आलोचना करता है। अतः आम आदमी में यह क्षमता नहीं होती कि वह समाज द्वारा बंधी–बंधाई लीक या परंपरा से हटकर कार्य कर सके। अतः साधारण आदमी समाज द्वारा स्थिर की गई मान्यताओं पर चलने में ही अपना धर्म समझता है परंतु मैं (अर्थात् बाणभट्ट) इसका अपवाद हूँ। बाणभट्ट निपुणिका को बताते हुए कहता है कि मैं समाज की परम्पराओं से हटकर, समाज की मान्यताओं से दूर रहकर पहले अपनी बुद्धि से उचित और अनुचित की विवेचना करता हूँ। मेरी अपनी दृष्टि में जब कोई व्यक्ति कोई भी कार्य लोभ और मोह के वशीभूत होकर करता है तब वह प्रायः अनुचित कार्य करता है। मोह और लोभ ये दो ऐसे शत्रु हैं जिनसे आज तक कोई भी व्यक्ति बच नहीं पाया। बाण अपने सम्बन्ध में निपुणिका को बताता है कि मैंने मोह और लोभ इन दो शत्रुओं से बचने की भरसक कोशिश की है। लेकिन सदैव स्वयं को इन दो शत्रुओं से नहीं बचा पाया हूँ। मेरी अपनी दृष्टि में जब भी कोई व्यक्ति किसी कार्य को निःस्वार्थ भाव से करता है तथा साथ ही उस कार्य में परोपकार की भावना होती है तो मैं उसे उचित कार्य मानता हूँ। उचित और अनुचित ये दो ऐसे बंधन हैं जिनसे मैं भी सामान्य आदमी की तरह बाहर नहीं निकल सका

हूँ। कभी–कभी मेरे मन में भी उचित और अनुचित का अन्तर्द्वन्द्व छिड़ जाता है है तब मैं अपनी बुद्धि से इस निर्णय पर पहुँचता हूँ कि यदि मेरा कोई कार्य लोकमंगल के लिए है तो मैं उसे अवश्य करता हूँ। वह कहता है कि मैंने आज ही एक महान संकल्प लिया है, लेकिन मैं यह नहीं जानता कि मैं अपने उस संकल्प को पूरा करने में कहाँ तक सफल हो पाऊँगा। वह ठीक है कि मैं अपने को अनुचित कार्य करने से सदैव बचा नहीं पाया हूँ, परंतु उचित कार्यों को करते समय मैंने अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की है। लोक मंगल की दृष्टि से निःस्वार्थ भाव से किए गए कार्यों में मुझे विशेष रुचि है। ऐसे कार्यों को करने के लिए मैंने अपनी जान की बाजी तक लगा दी है।

विशेष :

1. बाणभट्ट का उपर्युक्त कथन उसके चरित्र को उजागकर करता है कि उसकी कथनी और करनी में एकरूपता है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परन्तु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली के अनंतर संवाद शैली का प्रयोग हुआ है।

- उसकी सखी बनकर जब मैं बाहर आया, तो हंस के समान धवल–वर्णा, ज्योत्सना से भरी हुई धरती को देखकर चित्त एक अन्नुभूत आनन्द से भर गया। मैंने सोचा कि जब भगवान् त्रिलोचन के उतभाँग से झरने वाली गंगा की धारा समुद्र को भर रही होगी तो कुछ ऐसी ही शोभा उस समय भी हुई होगी। चन्द्रमा निश्चय ही देर से आकाश पर विचर रहा था। उदयकाल में जो एक लालिमा रहा करती है, उसका कोई कहीं चिह्न नहीं रह गया था तो उसके श्वेत कुम्भस्थल पर से सिंदूर धुल जाने के बाद ऐसी ही शोभा होगी। सारा आकाश चाँदनी से इस प्रकार भर गया था जैसे किस अज्ञात शिल्पी के सुधा–विलोम–चूर्ण का भंडार ही उलट गया हो।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। बाणभट्ट स्त्री वेश धारण कर भट्टिनी को बन्दीगृह से बाहर निकालने के लिए निपुणिका के साथ गया तो उस समय की मनोरम प्रकृत्ति का वर्णन करते हुए कहता है कि–

व्याख्या – भट्टिनी का उद्धार करने के लिए जब मैं निपुणिका की सखी वेश में बाहर आया तो सम्पूर्ण धरा पर स्वच्छ एवं निर्मल चाँदनी बिखरी हुई थी। हंस के समान सफेद चाँदनी से भीर हुई धरती को देखकर मन एक अपूर्व आनंद से भर गया, ऐसे आनन्द का अनुभव पहले कभी नहीं हुआ था। बाणभट्ट ने सोचा कि जिस समय मन्दाकिनी की स्वच्छ धारा शिव की जटाओं से निकलकर समुद्र में गिरी थी, तो उस समय की शोभा भी इसी प्रकार की रही होगी, इस प्रकार की शोभा पृथ्वी धारण किए हुए है। चन्द्रमा को उदय हुए काफी समय हो चुका था क्योंकि उदय होने के साथ उदित होने वाली विशेष प्रकार की लाली कहीं दिखाई नहीं दे रही थी। उस समय आकाश में चन्द्रमा इस प्रकार शोभित हो रहा था मानो इन्द्र का हाथी ऐरावत गंगा में स्नान करके निकला हो और उसके सफेद कुम्भ स्थल का सिंदूर ही धुल गया हो। सम्पूर्ण आकाश स्वच्छ एवं धवल चाँदनी से इस प्रकार भर गया मानो किसी अनजान तथा महान शिल्पी का स्वच्छ विलेपन करने वाले चूर्ण का भण्डार ही उलट गया हो।

विशेष :

1. प्रकृति का मनोहारी चित्रण हुआ है।
2. भाषा शुद्ध–साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परन्तु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- उस समय दक्षिण–समीर मंद गति से बह रहा था। वृक्ष–लता–गुल्म सभी झूम रहे थे। उनकी मूँगे–जैसी लाल–लाल किसलय–सम्पत्ति ने उनकी सारी शोभा को लाल बना दिया था। उन पर गूंजते हुए भौंरों की आवाज स्खलित वाणी के समान सुनाई दे रही थी और मलयानिल की मृदु मंद तरंगों से आहत होकर वे सचमुच ही झूम रहे जान पड़ते थे। शायद मधुमास के मधुपान से वे भी मत्त थे। अन्तःपुर की पारिचारिकाएँ ही नहीं, कुसुमलताएँ भी क्षीवा बनी हुई थीं।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हाजरी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास ' बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। बाणभट्ट निपुणिका के साथ भट्टिनी का उद्धार करने हेतु जैसे ही अन्तःपुर की सीमा में पहुँच, उस समय बसंत ऋतु होने के कारण रात्रि का सौन्दर्य मोहक हो उठा था। लेखक उसी का वर्णन करता हुा इन पंक्तियों में कहता है कि –

व्याख्या – उस समय दक्षिण दिशा से धीरे–धीरे मंद पवन बह रहा था। दक्षिण दिशा से चलने वाली मंद पवन के झोंकों से वृक्ष, लता समूह और पुष्पों के गुच्छे, बेलों के झुरमुट सभी हिलते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे मनों झूम रहे हों। बसंत ऋतु होने के कारण वृक्षों, पौधों और लताओं के नवीन लाल रंग के कोमल पत्ते ऐसे प्रतीत होते थे जैसे सुंदर लाल रंग के मूँगे के वस्त्र प्रकृति ने धारण कर रखे हों। लाल रंग के नवीन कोमल किसलयों ने समूचे वातावरण को लाल बना दिया था। रात्रि का शांत वातावरण और चन्द्रमा की दूध जैसी धवल चाँदनी में उन लताओं तथा पुष्पों पर उड़ते हुए भंवरों की गुंजार ऐसी प्रतीत हो रही थी जैसे किसी ने छक कर मधुपान कर रखा हो और नशे में लड़खड़ाती हुई उसकी वाणी हो। उसी समय मलय पर्वत से आने वाली शीतल, मंद और सुगन्धित हवा तथा चन्द्रमा की स्वच्छ चाँदनी की किरणें इनसे आहत होकर वृक्ष, लता और भ्रमर झूमते हुए दिखाई पड़ रहे थे। बाणभट्ट कल्पना करता है कि संभवतः बसन्त ऋतु के इस मादक वातावरण और मदनोत्सव के कारण मस्ती का ऐसा प्रभावशाली वातावरण था कि राजमहल अथवा हरम की परिचारिकाएँ भी मधुपान करके मदोन्मत बनी हुई हों। झूमती हुई कलियाँ और कुसुम लताएँ भी ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानो इन्होंने भी राजमहल की दासियों की तरह मद्यपान कर रखा हो और हवा में झूमती हुई जैसे मदोन्मत्त बनी हुई हों।

विशेष :

1. प्रकृति का मनोरम चित्रण हुआ है।
2. भाषा शुद्ध–साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम् व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य कुछ सरल कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक हैं।
6. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- उसके सारे शरीर से स्वच्छ कांति प्रवाहित हो रही थी। अत्यन्त धवल प्रभा–पुंज से उसका शरीर एक प्रकार ढंका हुआ–सा ही जान पड़ता था, मानो वह स्फटिक–गृह में आबद्ध हो, या दुग्ध–सलिल में निमग्न हो, या विमल चीनांशुक से समावृत हो या दर्पण में प्रतिबिंबित हो, या शरदकालीन मेघ–पुंज में अन्तरित चन्द्रकला हो।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। बाणभट्ट निपुणिका के साथ राजमहल में राजकन्या भट्टिनी का उद्धार करने जब पहुंचता है तो उस समय भट्टिनी पूजा कर रही है, उसने श्वेत वस्त्र धारण कर रखे हैं। श्वेतवस्त्रा गौरवर्णा भट्टिनी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए बाणभट्ट कहता है कि –

व्याख्या – पूजा में तल्लीन राजकन्या भट्टिनी का शरीर श्वेत वस्त्रों में आवृत अत्यधिक मोहक लग रहा था। उसके शरीर का सौन्दर्य अत्यंत निर्मल था ऐसा लगता था जैसे स्वच्छ निर्मल सौन्दर्य प्रवाहित हो रहा हो। गोरा रंग और पहने हुए श्वेत वस्त्र ऐसे प्रतीत होते थे जैसे श्वेत सौन्दर्य का कोई प्रभापुंज हो। अथवा श्वेत संगमरमर के घर के अन्दर श्वेत सौन्दर्य आबद्ध कर रहा हो। अथवा दूध के समान सफेद जल में भट्टिनी की देह कांति डूबी हुई हो अथवा श्वेत गौर वर्णा, गोरांगी भट्टिनी सफेद तथा महीन रेशमी वस्त्रों से ढकी हुई अथवा दर्पण में प्रतिबिम्बित होता हुआ कोई मोहक सौन्दर्य हो अथवा शरद् काल के निर्मल बादलों के समूह में चन्द्रमा की कोई किरण चमकती हुई प्रतीत हो रही हो। यहाँ भट्टिनी के श्वेत वस्त्र शरद् काल के बादलों की तरह तथा उसका चमकता हुआ देह सौन्दर्य चन्द्रमा की किरण की भांति प्रतीत हो रहा है। भट्टिनी के शरीर की इस स्वच्छ शोभा को देखकर बाणभट्ट के हृदय में उच्च, सात्विक भावों की उत्पत्ति हो रही थी।

विशेष :

1. भट्टिनी के सौंदर्य का सात्विक चित्रण किया गया है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खडी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परन्तु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- उसको धवल कांति दर्शक के नयन–मार्ग से हृदय में प्रविष्ट होकर समस्त कलुप को धवलित कर देती थी, मानो स्वर्गमंदाकिनी की धवल धारा समस्त कलुष–कालिमा का प्रक्षालन कर रही हो। मेरे मन में बार–बार यह प्रश्न उठता रहा कि इतनी पवित्र रूप–राशि किस प्रकार इस कलुषधारित्री में संभव हुई। निश्चय ही यह धर्म के हृदय से निकली हुई है मानो विधाता ने शंख से खोदकर, मुक्ता से खींचकर, मृणाल से संवारकर, चन्द्र–किरणों के कूर्चक से प्रक्षालित कर, सुधा चूर्ण से धोकर, रजत–रज से पोंछकर, कुटज, कुन्द और सिन्धुवार पुष्पों की धवल कांति से सजाकर ही उसका निर्माण किया था।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। बाणभट्ट भट्टिनी के उद्धार हेतु अन्तःपुर के राजकन्या कक्ष में पहुंचा तो उसने देखा की राजकन्या वीणा वादन में व्यस्त थी। उस अनिन्द्य सुंदरी की शोभा का वर्णन करते हुए बाणभट्ट कहता है कि –

व्याख्या – भट्टिनी उस समय साक्षात् आन्तरिक और बाह्य स्वरूप की धवल प्रतिमा दिखाई दे रही थी। उसके इस पवित्र रूप को जो भी देखता उसकी पवित्रता देखने वाले के मन में छिपी पाप भावना को धो डालती थी तथा दर्शक का मन भी पवित्र हो जाता था। भट्टिनी का यह भक्तिमय स्वरूप गंगा की भांति अपनी पवित्र जलराशि से सारी पाप भावना को धो डालता था। भाव यह है कि जिस प्रकार स्वर्ग की गंगा के जल में सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जा रही थी। उसी प्रकार राजकन्या भट्टिनी की भक्ति पूर्ण वाणी एवं दर्शन मात्र से बुरी भावनाएँ भी नष्ट हो जा रही थीं। बाणभट्ट का कहना है कि इस पवित्र रूपवती राजकन्या का जन्म पापापूरित धरती पर क्यों हो गया होगा? उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि राजकन्या अवश्य धर्म के हृदय से उत्पन्न हुई है। ऐसा प्रतीत होता है मानो ईश्वर ने शंख से खोदकर उसे निकाला हो, मोतियों से सारा सौन्दर्य लेकर उसे प्रदान किया हो, कमल की कूँची से लेकर उसे सजाया–संवारा हो, स्वच्छ चन्द्र किरणों से उसे स्नान कराया हो, अमृत के चूर्ण से उसे धोया हो, चाँदी के बुरकाव से उसे साफ किया हो तथा कुटज, कुंद और सिन्धुवार जैसे पुष्पों के सौंदर्य से उसका निर्माण किया हो।

विशेष :

1. राजकन्या भट्टिनी के पावन रूप सौंदर्य का वर्णन हुआ है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खडी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परन्तु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- अहा, यह कैसी अपूर्व पवित्रता है। यहाँ क्या मुनियों की ध्यान सम्पत्ति ही पूंजीभूत होकर वर्तमान है, या रावण के स्पर्श भय से भागी हुई कैलाश पर्वत की शोभा ही स्त्री विग्रह धारण करके विराज रही है, या बलराम की दीप्ति ही उनकी मतावस्था में उन्हें छोड़कर भाग आई है, या मंदाकिनी की धारा ने ही वह पवित्र रूप ग्रहण किया है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। निपुणिका के साथ बाणभट्ट अपहृता भट्टिनी के उद्धार हेतु जिस राजमहल में प्रवेश करता है उस समय राजकन्या भट्टिनी पूजा में रत थी, पूजा में तल्लीन राजकन्या भट्टिनी के पवित्र सौन्दर्य का वर्णन करते हुए बाणभट्ट कहता है कि –

व्याख्या – राजकन्या भट्टिनी का सौंदर्य अलौकिक, अपूर्व एवं दिव्य है। ऐसे मोहक और निर्मल सौन्दर्य को देखकर बाणभट्ट अवाक् रह जाता है और कहता है कि कैसी अपूर्व पवित्रता है। पूजा रत भट्टिनी ऐसी प्रतीत हो रही है मानो ध्यानमग्न मुनियों का ध्यान ही भट्टिनी के रूप में आकर साकार हो उठा हो। अथवा रावण जब भगवान शंकर की

पूजा में रत था तो उसने कैलाश पर्वत जहाँ भगवान शंकर निवास करते हैं अपने हाथों पर उठा लिया था उस समय स्पर्श के भय से भागी हुई कैलाश पर्वत की अनुपम शोभा ही भट्टिनी के रूप में यहाँ विराज रही है या बलराम की दीप्ति बलराम को मत अवस्था में छोड़कर यहाँ भाग आई है, अथवा गंगा की निर्मल श्वेत धारा ने भट्टिनी के रूप में यह पवित्र सौन्दर्य और रूप ग्रहण कर लिया है।

विशेष :

1. राजकन्या भट्टिनी के अद्वितीय एवं अनुपम सौंदर्य का हृदयग्राही वर्णन हुआ है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खडी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परन्तु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- देखते–देखते चन्द्रमा पद्म–मधु से रंगे हुए वृद्ध कलहंस की भांति आकाश गंगा के पुलिन से उदास भाव से पश्चिम जलधि के तट पर उतर गया। समस्त दिग्मण्डल वृद्ध रंकुमृग की रोमराजि के समान पांडुर हो उठा। हाथी के रक्त से रंजित सिंह के सटाभार की भांति किंवा लोहित वर्णन लाक्षारस के सूत्र के समान सूर्य किरणें आकाश–रूपी वन–भूमि से नक्षत्र–रूपी फूलों को इस प्रकार झाड़ देने लगीं, मानो वे पद्म रागमणि की शलाकाओं से बनी हुई झाडू हों।

प्रसंग–प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरति उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। बाणभट्ट निपुणिका के साथ भट्टिनी को लेकर चण्डी मंदिर के पिछवाड़े में बने कमरे में पहुँचा। रात के समय बाणभट्ट ने निपुणिका से कहा कि वे दोनों आराम करें और स्वयं बाहर आकर प्रकृति का अवलोकन करने लगागा। यहाँ उसी रात्रिकालीन प्रकृति का वर्णन हुआ है।

व्याख्या – बाणभट्ट कहता है कि रात्रिकालीन चन्द्रमा वृद्ध मनोहर हंस की भांति आकाश गंगा के मार्ग से, उदासी के भावों से भरा हुआ पश्चिमी समुद्र के किनारे पर उतर गया। सभी दिशाएँ उसी प्रकार स्वर्ण के समान चमकीली हो उठीं मानो किसी बूढ़े हिरण की पीली रोमावलियाँ हों। उस दृश्य को देखकर ऐसा लगता था मानो प्रातःकाल रूपी शेर अपने मुख पर लालिमा रूपी हाथी का रक्त पीए हुए हो और उसके कन्धे पर लाल रंग के बाल बिखरे हुए हों। कहने का भाव यह है कि सूर्य की लाल किरणें फैल गई थी। ये किरणें मानो झाडू का रूप रखकर आकाश में फैले हुए समस्त नक्षत्रों को बुहार रही थी। आशय यह है कि सूर्योदय के साथ नक्षत्र भी लुप्त होते जा रहे थे।

विशेष :

1. रात्रिकालीन प्रकृति का मनोरम, हृदयग्राही व काव्यात्मक वर्णन हुआ है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परन्तु सहज व रोचक है।

6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- पूर्व की ओर प्रकाश आविर्भूत होने लगा। धीरे–धीरे बिन्दु को वहन करता हुआ, पद्मवन को प्रकम्पित करता हुआ, परिश्रांत नगर–रमणियों के, धर्म–बिन्दु को विलुप्त करता हुआ वन्य–महिपों के फेन–बिन्दु से सिंचा हुआ, कम्पमान पल्लवों और लता समूहों को नृत्य की शिक्षा देता हुआ, प्रस्फुटित पद्मों का मधु बरसाकर, पुष्प सौरभ से भ्रमरों को संतुष्ट करके मंद–मंद संचारी प्रभात–वात बहने लगा।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। बाणभट्ट निपुणिका और भट्टिनी को अन्तःपुर से निकालकर एक गुप्त तथा सुरक्षित स्थान पर ले गए तब तक रात समाप्त हो चुकी थी और प्रभात ने अपनी छटा बिखेर दी थी। प्रस्तुत पंक्तियों में प्रातःकालीन वायु का वर्णन किया गया है।

व्याख्या – चन्द्रमा का प्रकाश क्षीण हो जाने पर उस समय पूर्व की ओर से प्रकाश उत्पन्न होने लगा था अर्थात् सूर्य उदय हो रहा था। तभी प्रातःकालीन वायु धीमी–धीमी गति से बहने लगी। वह वायु शिशिर ऋतु की ओस की बूंदों से शीतलता ग्रहण करती हुई, कमल के वनों को हिलाती हुई, श्रम से थकी हुई, नगर की स्त्रियों के पसीनों को सुखाती हुई, वन के भैंसों के फैन बिन्दुओं से सींची हुई, पत्तों और बेलों को कंपाती हुई, मानों नृत्य की शिक्षा देती हुई, विकसित कमलों के पुष्प रस को बरसाकर और फूलों की सुगन्धि से भौंरों को सन्तुष्ट करके मंद गति से बह रही थी।

विशेष :

1. प्रातःकालीन प्रकृति का मनोरम व काव्यात्मक वर्णन हुआ है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परन्तु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- इस समय मैंने लक्ष्य किया, वृक्षों और लताओं पर बसंत का प्रभाव–पूर्ण रूप से व्याप्त हो गया था। विकसित मंजरियों के सौरभ से स्वयं आकृष्ट भ्रमरावली ने आग के वृक्षों को छा लिया था, पुष्प–धूलि के केसर–चूर्ण सघन भाव से वर्षित होकर वनभूमि को पीत बालुकामय पुलिन के रूप में परिणत कर रहे थे; पुष्प मधु के पान से आमत्त भ्रमरियों बिछल भाव से लता रूप प्रेंखादोला पर झूला–झूल रही थी, कोकिल लवली के विकसित पल्लवों के अंतराल में लुक्कायित होकर पुष्प–मधु निकाल रहे थे।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। बाणभट्ट विहार से जब बाहर निकला, उस समय की प्रकृति के मनोरम रूप का वर्णन करते हुए इन पंक्तियों में कहता है कि –

व्याख्या –वृक्षों और बेलों पर बसंत का प्रभाव स्पष्ट दिखने लगा था अर्थात् बसंत ऋतु के कारण वृक्ष और बेल रूप से पुष्पित थे। आम के बोरों की सुगन्ध से खिंच कर भौंरों के समूह उनकी मंजरियों पर छाए हुए थे। पुष्पों से जो

पीला पराग झड़ रहा था, उसने वन–भूमि को इतना पीला बना दिया था मानो वह पीली बालू से युक्त नदी तट हो। फूलों का पराग पीकर मस्त हुई भ्रमरियाँ लताओं पर इस प्रकार मंडरा रही थीं मानो लता रूपी झूले में प्रसन्नतापूर्वक झूल रही थी। मस्त हुई कोयल अर्थात् प्रसन्नता से भरी हुई कोयल लवली बेल (पीले पुष्पों से मुक्त एक बेल) लवली बेल के खिले हुए पत्तों में छिपकर उन पुष्पों का रस निकाल रही थीं।

विशेष :

1. प्रकृति के मादक वातावरण का हृदयग्राही वर्णन हुआ है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- उन पेड़ों के नीचे मधु–वृष्टि सी हो रही थी; किसी–किसी वृक्ष और लता से जीर्ण पुष्प गिर रहे थे, और भ्रमर–भार से जर्जरित उनके गर्भकेसरों से लता–मंडप मनोरम हो उठे थे; और नाना भांति के रंग–बिरंगे पक्षियों से वृक्ष–समूह अतिशय रमणीय दिखाई दे रहे थे। दूर एक विशाल पर्कटी के वृक्ष आपाद रक्त किसलयों से लदा हुआ ऐसा जान पड़ता था मानो मेरू पर्वत पद्मराग–मणि आकस्मिक आविर्भाव से लाल हो गया है।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। जब बाण विहार से बाहर निकला तो उसने प्रकृति के अत्यंत मनोहारी रूप को देखा और इसी मनोहारी रूप का वर्णन करता हुआ बाणभट्ट इन पंक्तियों में कहता है –

व्याख्या–बाणभट्ट कहता है कि लवली बेल के नीचे पुष्प रस की वर्षा–सी हो रही थी। किसी–किसी वृक्ष और बेल से पुराने पत्ते झड़कर गिर रहे थे और अनेक भौंरों के होने के कारण वे झुक गए थे और उनके गर्भ में स्थित केसरों से लताओं के कुंज बड़े मनोहार और सुदर्शन बन गए थे। वहाँ विभिन्न प्रकार के पक्षियों से वृक्षों के समूह अत्यधिक शोभा दे रहे थे इन वृक्ष समूहों से दूर एक बहुत बड़ा पर्कटी का वृक्ष विराजमान था जो पूर्णरूपेण लाल और नवीन कोपलों एवं पत्तों से लदा हुआ था। ऐसा प्रतीत होता था मानो मेरु पर्वत पदमरागणि के अचानक पैदा हो जाने के कारण लाल हो।

विशेष :

1. बसंत ऋतु का मनोरम चित्रण बड़े ही काव्यात्मक रूप में हुआ है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- काव्य कुब्ज विचित्र देश है भद्र। वहाँ ऊपरी आचार को बहुत महत्त्व दिया जाता है और भीतर के तत्त्व को समझने का प्रयत्न कम किया जाता है। क्या ब्राह्मण और क्या स्वर्ण, सभी बाह्य आचारों को ही बुहुमान देते हैं। स्वयं महाराजाधिराज श्री हर्षवर्द्धन भी इस बात से अस्पृष्ट नहीं कहे जा सकते।

प्रसंगः प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। बाणभट्ट को आचार्य सुगतभद्र का एक शिष्य, कुमार कृष्णवर्द्धन से मिलने के लिए बुलाने आया। मार्ग में वह शिष्य स्थाण्वीश्वर राज्य के बारे में बाणभट्ट को जानकारी देता हुआ कहता है कि –

व्याख्या –कान्यकुब्जों के इस साम्राज्य की अलग ही विचित्रता एवं पहचान है। कान्यकुब्जों में बाहरी दिखावे को अधिक मान्यता प्रदान की जाती है। वास्तविक मान्यताओं को गंभीरतापूर्वक नहीं लिया जाता। सब कुछ स्वयं के हित को सर्वोपरि रखकर किया जाता है। ना किसी के कोई सिद्धांत रह गए हैं ना कोई मान्यता। व्यक्तिहित को प्रमुखता प्रदान की जाती है। चाहे वह ब्राह्मण हो या श्रावक, राजा हो या प्रजा, सब बाहरी दिखावे को महत्व देते हैं। ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्व को एवं पाण्डित्व को त्यागकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। श्रवा अर्थात् बौद्ध भिक्षु भी भगवान बुद्ध की करुणा, ममता, दया, प्रेम एवं सत्य का तिरस्कार कर अपनी झोली भरते हैं। स्वयं महाराज श्री हर्षवर्द्धन इस सबसे परिचित होते हुए भी, इन बाह्यचारों के प्रति अपना रोष व्यक्त न करके अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें प्रोत्साहित कर रहे हैं।

विशेष :

1. तत्कालीन धर्म–सम्प्रदायों में बाह्ययाचारों का प्रचलन था; इस तथ्य का पता चलता है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली के अनंतर संवाद शैली का प्रयोग हुआ है।

- भगवान ने जीवन में करुणा को प्रतिष्ठित करना चाहा था। जिसमें वह करुणा नहीं वह सौगात नहीं। वह सद्धम का सत्यनाश करता है। तर्क से विद्वेष बढ़ता है, विद्वेष से हिंसा पनपती है और हिंसा से मनुष्य का विध्वंस होता है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। आचार्य सुगतभद्र के शिष्य से जब बाणभट्ट की प्रख्यात तत्कालीन बौद्ध तार्किक वसुभूति के संदर्भ में चर्चा हुई तो शिष्य सामनेर, अपने आचार्य के संदेश को प्रस्तुत करते हुए कहता है कि –

व्याख्या – सामनेर कहता है कि तर्क बुद्धि पर आश्रित है अर्थात् तर्क का जन्म बुद्धि से होता है। तर्क हर वस्तु को तथ्य की कसौटी पर कसकर देख रहा है। तर्क कल्पना श्रद्धा, करुणा आदि में विश्वास नहीं रखता। अतः धर्म के

अनुसार तर्क त्याज्य वस्तु है। इसलिए भगवान बुद्ध ने तर्क के स्थान पर जीवन में सबसे अधिक महत्व करुणा और करुणा से उत्पन्न दया को दिया है। भगवान बुद्ध करुणा को जीवन का मूल मानते थे। साथ ही करुणा को विश्व–व्यापी मानते हुए सृष्टि के प्रत्येक जीव में करुणा का प्रसाद देखना चाहते थे। भगवान बुद्ध के अनुसार उनका सच्चा शिष्य और भिक्षु कहलाने का एक मात्र उसे ही अधिकार है जो करुणा के महत्व और उसकी महिमा को जानता हो। गौतम बुद्ध के अनुसार जिसने करुणा की महिमा को जान लिया वही वास्तव में उनका उत्तराधिकारी है। जिस व्यक्ति में करुणा का भाव नहीं है, वह स्वयं को बौद्ध नहीं कह सकता। बल्कि करुणा के स्थान पर तर्क को महत्व देने वाला व्यक्ति धर्म का नाश करने वाला होता है। ऐसा व्यक्ति न तो बौद्ध कहला सकता है और न ही बौद्ध भिक्षु। बल्कि यह व्यक्ति बाह्य आचरण द्वारा धर्म के नाम पर लोगों को भ्रमित करता है। तर्क सच्चे धर्म का शत्रु होता है क्योंकि तर्क में आस्था, विश्वास और करुणा जैसे उदात्त भावों के लिए कहीं कोई स्थान ही नहीं होता। तर्क के द्वारा लोगों में आपस में द्वेष की भावना अर्थात् शत्रुता बढ़ती है। जहाँ द्वेष की भावना उत्पन्न होगी वहीं हिंसा को पनपने का अवसर मिलेगा और हिंसा सम्पूर्ण मानवता का विनाश करती है इसके विपरीत बौद्ध धर्म करुणामय है जो मनुष्य को परस्पर स्नेह, प्रेम और सद्भाव एवं सहयोग के सूत्र में बांधता है और इस प्रकार मानवता का विकास होता है।

विशेष :

1. बौद्ध धर्म के अनुसार जीवन में तर्क की अपेक्षा करुणा का अधिक महत्त्व है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- मेरा रोष और भी उग्र हो जाता है जब मैं यह सोचता हूँ कि यह उन देवपुत्र तुवरमिलिन्द की कन्या है, जिसके दुर्दण्ड के प्रताप से रोमकपतन के उत्तर के देश काँपते हैं। जिनकी खरतर असि–धारास्त्रोतास्विनी में शाकपार्थिक जैसे नरेश फैन–बुदबुदे की भांति बह गये, जिनकी प्रतापग्नि के उदण्ड बाहूलीकों को इस प्रकार तोड़ डाला, जैसे क्रीड़ापरायण शिशु छत्रक–दण्ड को तोड़ देते हैं और जिनकी स्फूर्ति–दीप्ति कीर्ति–बह्नि में प्रत्यन्त–दस्यु स्वयं पतंगायमान हो रहे हैं। उस विषय–समरविजयी अज्ञात प्रतिस्पर्धि–विकट देवपुत्र तुवर मिलिन्द की कन्या को दुर्दशापन्न देखकर भी, मैं जो कुछ सहायता नहीं कर सकता, यही विशाल शल्य मेरे आहत चित्त से निकल नहीं रहा है।

प्रसंग–प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। बौद्ध विहार में भट्टिनी को लेकर पहले तो कुमार कृष्ण और बाणभट्ट में विवाद हो गया किन्तु जब कुमार को राजकन्या द्वारा झेली गई यातनाओं का पता चला तो स्वयं कुमार को बहुत परिताप हुआ, इसी सन्दर्भ में कुमार कहता है–

व्याख्या – भट्टिनी पर हुए अत्याचारों को सुनकर मेरा क्षत्रियत्व उमड़ पड़ा है। मैं बड़ी कठिनता–पूर्वक अपने रोष को दबा पा रहा हूँ। जब मैं यह सोचता हूँ कि भट्टिनी उस महाप्रतापी देवपुत्र तुवरमिलिंद की पुत्री है जिनके शौर्य का लोहा सम्पूर्ण देश मानता है तो मेरा क्रोध और भी भड़क उठता है। देवपुत्र के शौर्य के कारण रोमकपतन से उत्तर दिशा में स्थित सभी साम्राज्य काँपते थे। उनकी (तुवरमिलिन्द की) तीक्ष्ण तलवार की धार के सामने शाक–पार्थिव

जैसे बलशाली राजा भी उसी प्रकार खत्म हो गए जैसे पानी के बुलबुले खत्म हो जाते हैं। उनके शौर्य के यश ने घमंडी वाह्लीक राजाओं का दर्प उसी प्रकार चकनाचूर कर दिया जैसे कोई बच्चा खेलते–खेलते अपने खिलौनों को तोड़ डालता है। उनके शौर्य की आग में भयानक प्रत्यन्त दस्यु पतंगों की तरह जल कर खत्म हो गए। ऐसे रौद्र स्वरूप अजेय, देवपुत्र तुवरिमिलिन्द की राजकन्या भट्टिनी को संकट में पड़ा देखकर भी, मैं उनकी कोई यथायोग्य सेवा–सत्कार करने में असमर्थ हूँ, यह बात एक बड़े काँटे की भांति मेरे हृदय को भेध रही है और यह दुख मेरे हृदय से मुक्त नहीं हो पा रहा है।

विशेष :

1. कुमार कृष्णवर्द्धन के कथन से उनके उदात्त चरित्र का पता चलता है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली के अनंतर संवाद शैली का प्रयोग हुआ है।

- सूर्यमण्डल परिणत प्रियंगुमंजरी के केसर के समान पिंजरिमा से रैंगा हुआ पश्चिम समुद्र की ओर लटक चुका था। अस्तकालीन धूप दिग्वधुओं के मुख पर पड़ी हुई एक ऐसी महीन चादर के समान दिख रही थी जो कुसुम्भ–रस की अविरल वर्षा से लाल और कोमल हो गई हो। आकाश की नीलिमा बहुत–कुछ दूर हो गई थी और वह चकोर की नयन–तारिका के समान पिंगल–वर्ण की काँति से विलिप्त हो चुका था।

प्रसंग–प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। जब बाणभट्ट भट्टिनी की सुरक्षा का प्रबंध कुमार कृष्ण की सहायता से पूरा करने के पश्चात् नौका–व्यवस्था की देखभाल करने के बाद वापस लौटता है। नदी के समीप बाणभट्ट सूर्यास्त देख रहा है। इन पंक्तियों में इसी सूर्यास्त के दृश्य का चित्रण किया गया है।

व्याख्या–बाणभट्ट कहता है कि प्रियंगुमंजरी के पीले केसर के समान कुछ लाली–सी लिए हुए सूर्य अब पश्चिम–दिशा में समुद्र के पीछे छिपने के लिए आगे बढ़ रहा था। इस अस्त होते सूर्य की धूप चारों ओर इस प्रकार फैली हुई थी मानो दिशा रूपी वधुओं ने अपने चेहरे पर एक महीन–सी चादर डाल ली हो और जो केसर के रंग से युक्त लालिमा लिए हुए और कोमल सी दिखाई पड़ती है। आकाश का रंग अब धुँधला पड़ता जा रहा था और वह नीले के स्थान पर कुछ–कुछ पीला–सा लगने लग गया था मानो किसी चकोर की आँखों की पुतली पीले रंग से युक्त होकर दिखाई दे रही है।

विशेष :

1. लेखक ने अपनी लेखनी के माध्यम से पाठकों के समक्ष प्रकृति का मनमोहक दृश्य खींचा है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- आकाश की अरूणिमा धुल गई थी। वह गाढ़े नीले पट्ट के समान सिर पर फैला हुआ दिख रहा था। मध्यान्ह की नीलिमा का अब अधिक सान्द्र हो गई थी। आस–पास की वृक्षावजियों की हरीतिमा कालिमा में बदल चुकी थी। वनराजियाँ वन्य महिष के मलीमस शरीर की भाँति काली हो चली थी। उन पर होने वाला पक्षी–विराद अब शां हो गया था। सामने की टूटी दीर्घिका अपने शांत वक्षस्थल में आकाश की समस्त सम्पत्ति लिए हँस रही थी। सब–कुछ शांत, निस्तब्ध और महिमापूर्ण था।

प्रसंग–प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है। इस उपन्यास में हर्षवर्द्धन के राजकवि बाणभट्ट की जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला गया है। इन पंक्तियों में उस संध्या का वर्णन हुआ है जब बाणभट्ट भट्टिनी को नौका द्वारा किसी सुरक्षित स्थान पर भेजने की अपनी नौका–व्यवस्था को देखकर वापस लौट रहा है। इन पंक्तियों में संध्या के समय के मनमोहक दृश्य का चित्रण हुआ है।

व्याख्या –बाणभट्ट कहता है कि ज्यों–ज्यों संध्या बढ़ती जा रही थी वैसे–वैसे अस्त होते सूर्य की लालिमा समाप्त होती जा रही थी। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि संध्या के आगमन के साथ ही आकाश की लाली नष्ट होती जा रही थी। उस लाली के समाप्त होने के कारण अब आकाश गहरा नीला होता जा रहा था और अ बवह ऐसा लग रहा था मानो सिर पर कोई गाढ़ा नीला पटल छा गया हो। दिन और रात की संधि के प्रभाव से यह और भी अधिक नीला प्रतीत होता था। गहरी होती संध्या के कारण फैलते अंधकार के कारण अब पड़ों का हरा रंग भी काला दिखाई देने लगा था। वनों में बनी हुई पगडण्डियाँ भी बढ़ते–अंधकार के कारण काली दिखाई देने लगी थीं ओर वे किसी जंगली भैसे के काले शरीर के समान दिखाई पड़ रही थी। इन पगडण्डियों के दोनों ओर खड़े पेड़ों पर रहने वाले पक्षियों का कलरव भी शांत हो चुका था और उनका जो शोर संध्या के समय सुनाई देता है, अब वह सुनाई नहीं दे रहा था। सामने पड़ी हुई टूटी नाव में जल भरा हुआ था और उस जल में आकाश के तारों का प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा था और हवा के हलके झोंकों से हिलता हुआ नाव का पानी ऐसा आभास देता था मानो यह टूटी हुई नाव आकाश की समस्त सम्पत्तियों को अपने आँचल में लेकर हँस रही हो। अंधेरा बढ़ने के कारण सभी जीव–जन्तु अपने सुरक्षित स्थानों पर चले गए थे अतः चारों ओर का वातावरण बिल्कुल शांत था। वहाँ पर निस्तब्धता छाई हुई थी और यह शांत वातावरण अत्यंत ही महिमापूर्ण बना हुआ था।

विशेष :

1. प्रकृति का मानवीकरण रूप में चित्रण हुआ है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- जब तक तुम पुरुष और सी का भेद नहीं भूल जाते, तब तक तुम अधूरे हो, अपूर्ण हो, आसक्त हो। तुम और मैं का भेद तब तक तुमसे निरंतर चिपटा रहेगा अगर तुममें नैरात्म्य–भावना की प्रवृत्ति होती, तो शक्ति के

बिना भी साधना चल सकती। तुममें वह प्रवृत्ति नहीं है पर मैं अपनी ओर से यह साधना तुम्हारे सिर लादना नहीं चाहता। तुम्हारी रूचि हो तो स्वीकार करो। देखो, न तो प्रवृत्तियों को छिपाना उचित है, न उनसे डरना कर्तव्य और न लज्जित होना युक्तियुक्त है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या –विरतिवज्र यद्यपि तुमने संन्यास ले लिया है, संन्यास का अर्थ होता है कि आसक्तियों से मुक्ति। परन्तु तुम्हारे मन में अभी भी आसक्तियाँ हैं। जब तक साधक संसार से और अपनी आसक्तियों से निर्लिप्त नहीं हो जाता, तब तक संन्यास लेने का कोई अर्थ या लाभ नहीं है। संन्यासी बनने के लिए स्त्री और पुरुष, तुम और मैं इस भेद को मिटा देना होगा। जब तक साधक अथवा संन्यासी इस भेद को मिटा नहीं देता तो वह सच्चे अर्थों में संन्यासी नहीं है। हाँ, इस प्रकार के संन्यासी ने संन्यास का मात्र बाह्य आडम्बर ओढ़ रखा है। ऐसा संन्यासी संन्यास की पूर्णता को भी नहीं पा सकता। यदि व्यक्ति के अंदर सांसारिक भोग–लिप्सा से निर्लिप्त रहने की स्वयं में शक्ति होती तो फिर उसे संन्यास लेने की आवश्यकता ही न होती। अतः तुम्हें साधना के लिए संन्यास को छोड़कर किसी अन्यपथ की आवश्यकता है। तुम मेरे पास शिष्यत्व ग्रहण करने आए हो, अतः मैं तुम पर अपनी भावनाओं को लादना नहीं चाहता, जब तक तुम्हारा मन निष्काम भावना से नहीं जुड़ जाता तब तक तुम्हारे मन में विभेद की स्थिति बनी रहेगी। जब तक निष्काम भावना, व्यक्ति के मन में उसे अंदर उदय नहीं हो जाती, तब तक कोई भी शक्ति साधक को समर्थ बनाने में सहायक नहीं हो सकती। यदि तुम्हारी निष्काम भावना में रूचि है तो स्वयं तुम संन्यास भावना को ग्रहण करोगे अतः तुम्हें यह बताना उचित समझता हूँ कि साधक को अपने मन की भावनाओं को प्रकट कर देना चाहिए, उन भावनाओं को छिपाए रहना भी उचित नहीं है क्योंकि मनुष्य के अन्दर की भावनाएँ ईश्वरीय देन है। यदि व्यक्ति अपनी भावनाओं का प्रकटीकरण नहीं करता, अपने इष्ट को स्वीकार नहीं कर लेता तब तक कुण्ठाएँ जमती रहेंगी और साधना सफल नहीं हो सकेगी।

विशेष :

1. अघोर भैरव के अनुसार साधक की दृष्टि में उसका निर्भय होना अति आवश्यक है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली के अनंतर संवाद शैली का प्रयोग हुआ है।

- तू अपने को क्या पुरुष समझ रहा है और मुझे स्त्री? यही प्रमाद है मुझमें पुरुष की अपेक्षा प्रकृति की अभिव्यक्ति की मात्रा अधिक है, इसलिए मैं स्त्री हूँ। तुममें प्रकृति की अपेक्षा पुरुष की अभिव्यक्ति अधिक है, इसलिए तू पुरुष है। यह लोक की प्रज्ञप्तिप्रज्ञा है, वास्तविक सत्य नहीं। ऐसी स्त्री प्रकृति नहीं है, प्रकृति का अपेक्षाकृत निकटस्थ प्रतिनिधि और ऐसा पुरुष प्रकृति का दूरस्थ प्रतिनिधि है। यद्यपि तुझमें तेरे ही भीतर के प्रकृति तत्व मेरे भीतर के पुरुष तत्व की अपेक्षा अधिक नहीं है। मैं तुझसे अधिक निःसंग, अधिक निर्द्वन्द्व और अधिक मुक्त हूँ।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या– महामाया कहती है कि तुम क्यों अपने आप को पुरुष और मुझे स्त्री मानने की भूल कर रहे हो? यहाँ न

तो कोई पुरुष है और न ही कोई स्त्री, वस्तुतः ये दोनों दो भिन्न तत्त्व हैं जिन्हें प्रकृति (स्त्री) और ब्रह्म (पुरुष) कहा जा सकता है। जिसमें प्रकृति तत्त्व अधिक है और पुरुष तत्त्व कम है वही स्त्री है और जिसमें प्रकृति तत्त्व कम तथा ब्रह्म तत्त्व अधिक है वही पुरुष है। अर्थात् मुझमें प्रकृति तत्त्व अधिक है इसीलिए मैं एक स्त्री हूँ जबकि तुममें पुरुष की अभिव्यक्ति प्रकृति की तुलना में कहीं अधिक है इसीलिए तुम पुरुष हो। यह तो केवल ज्ञान कराने की बुद्धि है अर्थात् केवल समझाने के लिए है इसमें भी सत्यता का अभाव है। यह तो केवल सत्य के समीप की बात है स्वयं सत्य नहीं है। जिस स्त्री में प्रकृति तत्त्व की अधिकता है वह वास्तव में स्वयं प्रकृति न होकर, केवल प्रकृति की एक प्रतिनिधि है क्योंकि उसमें प्रकृति तत्त्व की अधिकता नहीं है। अतः प्रकृति और पुरुष में बहुत दूर का संबंध है। यद्यपि यह सच है कि तुम्हारे हृदय में प्रकृति–तत्त्व की तुलना में पुरुष तत्त्व अधिक है परंतु मैं जो कि एक स्त्री हूँ, मुझमें जो पुरुष तत्त्व है वह तुम्हारे अन्दर के पुरुष तत्त्व से कहीं है अर्थात् तुम पुरुष होकर भी उतना पुरुष तत्त्व अपने अंदर नहीं रखते जितना कि मैं स्त्री होकर भी पुरुष तत्त्व अपने अंदर रखती हूँ और इसी आधिक्य पुरुष तत्त्व के कारण मैं (स्त्री होकर) तुमसे अधिक वासनारहित हूँ, मुझमें उतना ही कम द्वन्द्व है और मैं उतनी ही अधिक विकार मुक्त हूँ।

विशेष :

1. लेखक ने इन पंक्तियों में पुरुष व स्त्री की प्रकृति का सूक्ष्म मनोविश्लेषण करके उनका भेद स्पष्ट करने में सफलता प्राप्त की है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली के अनंतर संवाद शैली का प्रयोग हुआ है।

- इन युवतियों के कणों में नव–कर्णिकार के पुष्प फूल रहे थे, चल–नील अलकों में अशोक स्तवक विराजमान थे और कपोल–पालि पर वेपथु विहीन अंगुलियों की अंकित सुडौल मंजरियाँ झलक रही थीं। ललाट के कुंकम की गौर कांति से बलयित वे काश्मीर–किशोरियों–सी दिख रही थीं। नृत्य के नाना करणों में जब वे अपनी बाहुलता का आकाश में उत्क्षेप करती थी, तो ऐसा लगता था कि उनके सपुत्सुक वलय उछलकर सूर्य–मंडल को उछलकर बंदी बना लेंगे। उनकी कनक मेखला की किंकिणियों से उछली हुई कुरंटक माला उने मध्यदेश को घेरती हुई ऐसी शोभित हो रही थी, मानो रागग्नि ही प्रदीप्त होकर उन्हें वलयित किए हुए है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या – नृत्य करती इन नृत्यांगनाओं के कानों में नए–नए अमलतास के फूल उनके नृत्य के साथ–साथ झूल रहे थे, उनके चंचल सिर के बालों में अशोक के फूलों के गुच्छे लगे हुए थे और उनके गालों पर वे सुंदर मंजरियाँ झलक रही थी जो कि कम्पन रहित अंगुलियों से बनाई गई थीं। अपने माथे पर कुमकुम लगाने से वे युवतियाँ उसकी चमक के कारण काश्मीर–प्रदेश की युवतियों की तरह सुन्दर दिखाई दे रही थी। अपने नृत्य के समय जब वे अपनी नृत्य मुद्रा बदलते समय अपनी लता जैसी कोमल व सुन्दर भुजाओं को आसमान की ओर ऊपर उठाती थी तो ऐसा लगता था मानो उनके कंकण इच्छाओं के आवेश में आकर सूर्य को बंदी बनाने के लिए आकाश की ओर

जा रहे थे। उनकी कमर में पड़ी हुई सोने की छोटी–छोटी घंटियों से नी पीली माला उनके कटि–भाग को इस प्रकार घेरे हुए थी मानो प्रेम की आग ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया हो।

विशेष :

1. होली उत्सव पर नृत्यांगनाओं द्वारा किए गए नृत्य और उनके सौंदर्य का हृदग्राही वर्णन हुआ है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- उनमें नारी–सुलभ सुकुमार भावना को लोप हो चुका था वे ऊजड़े हुए देव मंदिर की भांति रास्तें में फँसी हुई प्रतिमा की भांति, कीचड़ में धँसी हुई मालती–माला की भांति अपनी प्रतिष्ठा खो चुकी थी, अपना सम्मान भूल चुकी थी और अपनी शुचिता म्लान कर चुकी थी। मैं नारी सौन्दर्य को संसार की सबसे अधिक प्रभावोत्पादिनी शक्ति मानता रहा हूँ, परंतु यह क्या देख रहा हूँ। महामाया ने कहा था; नारी की सफलता पुरुष को बांधने में है, सार्थकता उसे मुक्ति देने में।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या – बाणभट्ट कहता है कि इन अश्लील रास पदों पर नृत्य करती इस असभ्य श्रृंगार से युक्त ये नर्तकियाँ अपनी नारी–सुलभ कोमल भावनाओं अर्थात् लज्जा को भूल चुकी हैं। अर्थात् ये नर्तकियाँ निर्लज्ज होकर इन अश्लील पदों पर उत्तेजक नृत्य करती हैं। ये युवतियाँ अपना आत्मसम्मान, नारी–सुलभ लज्जा व प्रतिष्ठा को ठीक उसी प्रकार खो चुकी हैं जिस प्रकार उजड़ा हुआ कोई देव–मंदिर या रास्तें में फैंकी हुई कोई मूर्ति या कीचड़ व गंदगी में धंसी हुई मालती–फूलों की माला अपनी प्रतिष्ठा खो देती है अर्थात् उनको कोई भी सम्मानजनक नहीं मानता। इन युवतियों में अपने स्वयं के लिए सम्मान प्राप्त करने अथवा सम्मान को सुरक्षित रखने की भावना का लोप हो चुका था और वे अपना सतीत्व भी लुटा चुकी थी अर्थात् उनकी पवित्रता भंग हो चुकी थी। बाणभट्ट सोचता है कि वह अभी तक यह मानता रहा है कि नारी–सौंदर्य ही इस संसार में सबसे अधिक प्रभाव डालने वाली शक्ति है परंतु यहाँ इन नर्तकियों को देखने के बाद उसे अपने विचार गलत प्रतीत होते हैं। तब उसे महामाया का वह कथन याद आता है जिसमें उसने कहा था कि नारी का सौंदर्य तभी सफल मानना चाहिए जब वह पुरुष को अपने सौंदर्य के पाश में बांधने में सक्षम हो जाए तथा नारी की सार्थकता इस बात में है कि वह पुरुष को इतना अधिक ऊपर उठने में अर्थात् उसका आत्मिक विकास करने में सहायता करे कि वह इन सभी बंधनों से मुक्त हो जाए।

विशेष :

1. लेखक ने नारी के सौंदर्य की सफलता व सार्थकता पुरुष को अपनी और आकर्षित करने व उसके विकास में ही दर्शाई है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- उन स्थूल अश्रु बिन्दुओं को देखकर ऐसा भान होता था, मानो उनके अन्तस्थल की चित्त शुद्धि को लेकर ही ये बाहर आ रहे हैं, इन्द्रिय समूह के प्रसाद ही मानो वर्षित हो रहे हैं, तपस्या के रस ही स्रवित हो रहे हैं आंखों की धवल प्रभा ही मानो द्रवित होकर गिर रही है, पवित्रता की मेघ–माला ही मानो बरस रही है और कृतज्ञता की मुक्तमाला ही मानो छिन्न होकर मोतियों के रूप में बिखर रही है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या – भट्टिनी की आंखों से आंसुओं की झड़ी लग जाने से ऐसा प्रतीत होता था मानो उसके हृदय में छिपी हुई पवित्रता को अपने अंदर समेटे हुए ये आँसू निकल रहे हों अर्थात् उसकी सारी मनोभावनाएँ ही आँसू के रूप में बाहर आ गई हों। ये बूँदे मन की शुद्ध भावनाओं के प्रसाद के रूप में बाहर आ गई थीं। ऐसा लगता था ये बूँदे तपस्या के रस के रूप में बह रही थी अर्थात् भट्टिनी की तपस्या इन अश्रू बूँदों के रूप में अपना रस बरसा रही थी। भट्टिनी की आँखों से बहते आँसू ऐसे लगते थे मानो उसकी आँखों की स्वच्छ कांति ही प्रेम–विभार में बहकर बाहर आ रही हों। ऐसा लगता था कि मानो भट्टिनी के हृदय की पवित्रता आंखों में बादल के समान बन अब बरस रही हो। उसकी आँखों से बहते आँसू ऐसे लगते थे मानो कोई मोतियों की माला टूट जाए और उसका एक–एक मोती उस माला से अलग होकर नीचे गिर रहा हो।

विशेष :

1. लेखक ने स्त्री के हृदय में समाए एक भाई के प्रेम की अभिव्यक्ति के साथ–साथ इस संबंध की पवित्रता को भी दर्शाया है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- कौन कहता है देवी, कि आप कलंकिनी नारी हैं? पार्वती के समान निर्मल अन्तःकरण गंगा के समान पूतकारी विचारधारा, कैलाश के समान शूभ्र चरित्र और मानसरोवर के समान सकरुण हृदय ने जिस देवी को अशेष लोक की पूजनीया बनाया है, उसे कलंकिनी समझने वाला नरक–भागी होगा। देवी, पावक को कभी कलंक स्पर्श नहीं करता, दीपशिखा को कभी अंधकार की कालिमा नहीं लगती, चन्द्र मंडल को आकाश की नीलिमा कलंकित नहीं करती और जाह्नवी की वारि धारा को धरती का कलुष स्पर्श भी नहीं करता।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या– बाणभट्ट कहता है कि तुम्हें स्वयं को कलंकिनी नहीं समझना चाहिए। जिस स्त्री का हृदय पार्वती के समान पवित्र हो, जिसके विचार गंगा के समान दूसरों को शुद्ध करने वाले हों, जिसका चरित्र सफेद बर्फ से ढके, स्वच्छ व निर्मल कैलाश पर्वत के समान उज्ज्वल हो तथा जिस स्त्री के हृदय में करुणा मानसरोवर की भांति भरी हुई हो और जो अपने इन पवित्र विचारों, उज्जवल चरित्र, निर्मल हृदय के कारण संसार में पूज्या बन गई हो अर्थात् संसार

उसके इन गुणों के सामने नतमस्तक हो चुका हो तो ऐसे गुणों से बनी पवित्रता की मूर्ति रूपी भट्टिनी को यदि कोई व्यक्ति कलंकिनी समझता है तो वह अवश्य ही पाप का भागी बनकर नरक में जाएगा। बाणभट्ट आगे भट्टिनी की मनोव्यथा को दूर करते हुए कहता है कि जिस प्रकार अग्नि को कोई कलंक छू भी नहीं सकता क्योंकि पवित्र अग्नि उस कलंक को जला कर राख कर देती है, जिस प्रकार दीपक की ज्योति को अंधेरे की कालिमा अपने अंदर नहीं छुपा सकती क्योंकि वह ज्योति निरंतर उस कालिमा को हटाकर अपना प्रकाश फैलाती रहती है जिस प्रकार रात के समय आकाश में छाया अंधकार व उसकी नीले रंग की आभा चन्द्रमा के प्रकाश को प्रभावित नहीं कर पाती और गंगा–जल को पृथ्वी का मैल छू भी नहीं सकता क्योंकि गंगाजल के सम्पर्क में आने पर वह मैल स्वयं शुद्ध हो जाता है, ठीक उसी प्रकार, दस्युओं का स्पर्श आपको कभी कलंकित कर ही नहीं सकता। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि दस्युओं के सम्पर्क में आने पर भी भट्टिनी की पवित्रता ज्यों की त्यों बनी हुई है।

विशेष :

1. लेखक ने इस बात पर बल दिया है कि यदि मन निर्मल है, हृदय में पवित्रता तथा चरित्र व विचार दोनों ही शुद्ध हैं तो बलात् पूर्वक शरीर के दूषित किए जाने पर भी वह व्यक्ति कलंकित नहीं माना जा सकता।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- आपके अवसादयुक्त वाक्य आपके योग्य नहीं हैं। देवी! स्वारों के स्पर्श से सिंह–किशोरी कलुषित नहीं होती। असुरों के गृह में जाने से लक्ष्मी घर्षिता नहीं होती। चींटियों के स्पर्श से कामधेनु अपमानित नहीं होती। चरित्रहीनों के बीच वास करने से सरस्वती कलंकित नहीं होती।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या – बाणभट्ट कहता है कि तुम स्वयं को कलंकिनी समझकर जो दुख भरे वचन कह रही हो वह तुम जैसी पवित्र व निर्मल विचारों, हृदय वाली स्त्री को शोभा नहीं देता। यह ठीक है कि तुम दस्युओं के साथ रहने पर विवश हुई परंतु जिस प्रकार, सियारों के सम्पर्क में आने मात्र से कोई शेर शाविका कलंकित नहीं बन जाती तो वह कलुषित नहीं हो जाती, या असुरों के साथ रहने पर जिस प्रकार धन का मूल्य कम नहीं होता अर्थात् लक्ष्मी पर कलंक नहीं लगता या जिस पकार किसी चींटी के छू लेने से कामधेनु गाय का अपमान नहीं हो सकता या चरित्रहीनों के साथ रहने पर सरस्वती पर कलंक नहीं लग सकता, ठीक उसी प्रकार दस्युओं के साथ रहने पर भी तुम निष्कलंक हो। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि इन दस्युओं के साथ रहने पर भी भट्टिनी ने अपने मन–मस्तिष्क व हृदय में व्याप्त शुद्ध, पवित्र व निर्मल विचारों तथा भावों को पूर्ववत् ही बनाए रखा। अतः वह आज भी लक्ष्मी, सरस्वती, कामधेनु के समान पवित्र है अतः उसे मन में दुख या अवसाद को स्थान नहीं देना चाहिए।

विशेष :

1. लेखक ने नीच व्यक्तियों के संपर्क में आने पर भी अपने मनोभावों की पवित्रता बनाए रखने पर बल दिया है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।

3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- नारीहीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। यह धर्म–कर्म का विशाल आयोजन, सैन्य संगठन और राज्य व्यवस्थापन सब फेन–बुद्बुद की भांति विलुप्त हो जाएंगे क्योंकि नारी का इसमें सहयोग नहीं है। यह सारा बंटवारा संसार में केवल अशान्ति पैदा करेगा।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या – महामाया कहती है कि यदि संसार यह सोचता है कि नारी के बिना भी वह सिद्धि प्राप्त कर सकता है तो यह उसकी सबसे बड़ी भूल है क्योंकि जब–ज बवह नारी के बिना आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है, तब–त बवह विनाश की ओर ही अग्रसर होता है। आज का मनुष्य नारी के महत्त्व को नकार कर जो धर्म व कर्म के विशाल आयोजन करता है, जो सेना को संगठित करके तथा राज्य की व्यवस्था आदि के रूप में बड़े–बड़े कार्य करने का प्रयत्न कर रहा है, वे सब पानी के बुलबुले या झाग के समान शीघ्र ही नष्ट हो जाऐंगे क्योंकि इन कार्यों में नारी–तत्त्वों जैसे दया, करुणा, ममता आदि भावनाओं का संचार नहीं है। पुरुष ने अपनी सुख–सुविधा के लिए जो सैन्य संगठन या राज्य व्यवस्था खड़ी कर रखी है उससे केवल अशांति ही मिल सकती है क्योंकि ये साधन कलह व द्वेष–भावना को बढ़ावा देते हैं।

विशेष :

1. लेखक ने इतिहास की उन घटनाओं से शिक्षा–ग्रहण करने का आह्वान किया है, जो नारी की उपेक्षा करने के कारण विनाशकारी बनीं, जैसे रावा ने मंदोदरी की उपेक्षा की और समूल वंश नष्ट हो गया।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- सूर्यमण्डल अपने किरा जाल को ऊपर की ओर समेट रहा था। ऐसा लग रहा था मानो दिवस–लक्ष्मी आकाश के पश्चिम–प्रांत से नीचे की ओर चली जा रही है और उनके द्रुत–संचारित चरणों से पद्मरागमणि के नूपुर खिसक कर पीछे छूट गए हैं। सूर्य बिम्ब ने सारा दिन करपुटों से जो कमल पराग संग्रह किया था, वह मानो अचानक ढ़रक गया और सारा आकाश पद्मराग के रस से पिंजर हो गया।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या – बाणभट्ट कहता है कि अस्त होते सूर्य की किरणें अब ऊपर की ओर जाती हुई प्रतीत होती थी। ढलते हुए सूर्य का यह दृश्य ऐसा आभास दे रहा था कि मानो दिन रूपी लक्ष्मी अब पश्चिम–दिशा में नीचे की ओर जा रही हो और उसकी द्रुत गति के कारण उसके चरणों में से पद्म रागमणि के घुंघरू छिटक कर पीछे छूट गए हों।

ये घुंघरू ही सूर्यास्त की लाली के रूप में चारों ओर दिखाई दे रहे हैं। सूर्यास्त के समय पश्चिम दिशा में फैली लाली ऐसी लगती है मानो सूर्य ने सारे दिन अपने दोनों हाथों से कमलों का पराग एकत्र किया हो और अब वह पराग अचानक ही उनके हाथ से गिरकर आकाश में फैल गया हो।

विशेष :

1. लेखक ने इतिहास की उन घटनाओं से शिक्षा–ग्रहण करने का आह्वान किया है, संध्याकालीन प्रकृति का मनोरम चित्रण हुआ है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- पश्चिम दिग्वधू के कानों को सुशोभित करने वाले रक्तोत्पल के समान मनोहर सूर्यमंडल अस्त हो गया, आकाश रूप सरोवर में संध्यारूपी पद्मिनी प्रकाशित हो उठी कृष्णगुरु के पंक से निर्मित पत्रलेखा की भांति तिमिर लेखा दिग्मुखों में परिव्याप्त हो उठी और उससे संध्या की लालिमा इस प्रकार आच्छादित हो गई, मानो भ्रमरभूषित नीलोत्पलों ने रक्तपद्म के सरोवर को आच्छन्न कर लिया हो।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या – बाणभट्ट कहता है कि पश्चिम–दिशा रूपी वधू को सुशोभित करने वाला लाल कमल के समान सूर्य अब अस्त हो गया है तथा अब आकाश रूपी सरोवर में संध्या रूपी कुमुदिनी (वह फूल जो चाँद के प्रकाश में खिलता है) खिलती जा रही है अर्थात् आकाश में अंधेरा छाता जा रहा है। अब कृष्णगुरु की कीचड़ से बनी पत्र लेखा की भांति अंधकार की रेखा भी सभी दिशाओं में फैल गई है। आकाश में संध्या के अंधकार ने आगे बढ़कर सूर्यास्त की शेष लालिमा को उसी प्रकार ढक लिया है जैसे भौंरों से घिरे नीले कमलों ने लाल कमल के सरोवर को ढक लिया हो।

विशेष :

1. संध्याकालीन प्रकृति का मानवीकरण रूप में मनोहारी चित्रण हुआ है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- शोभा और कांति को विभ्रम और विच्छिति पर बिकते देखकर मैं जिस दिन प्रथम बार विचलित हुआ था, उस दिन की याद आती है तो मेरी सम्पूर्ण सत्ता विद्रोह कर उठती है। माधुर्य और लावण्य की अपेक्षा हेला और विव्वोक का सम्मान दैनन्दिन घटना है, मैं यह सब जानता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि इन सारे आपाततः परस्पर–विरोधी दिखने वाले आचरणों में एक सामरस्य है निरंतर परिवर्तनमान बाह्य आचरणों के

भीतर एक परम मंगलमय देवता स्तब्ध है। उस देवता को नहीं देखने वाले ही यौवन को मत्तगजराज कहा करते हैं। अनुराग को मानस अंधकार बताया करते हैं, सहज भाव को बंकिम लीला का नाम दिया करते हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या – बाणभट्ट कहता है कि भट्टिनी उससे पहली बार मिली थी तब उसमें यौवन का आगमन हो चुका था। शरीर में यौवन के आगमन पर भट्टिनी का चेहरा अत्यंत सुंदर व कांतिमय था और उसकी हाव–भाव की चेष्टाओं में लज्जा का भाव कम था और वह यौवन के गर्व से भरी हुई थी अर्थात् उसका व्यवहार थोड़ा सा अटपटा होने पर भी वह उसके सौंदर्य से प्रभावित हो गया था। उसका माधुर्य व लज्जा से रहित परंतु हेला व विव्वोक से युक्त व्यवहार अब प्रतिदिन की घटना बन चुका था। बाणभट्ट कहता है वह जानता था कि नायिका के व्यवहार में ये परिवर्तन परस्पर विरोधी तो अवश्य प्रतीत होते हैं, परंतु वास्तव में इनमें कोई विरोध नहीं होता बल्कि यदि सूक्ष्मता से देखा जाए तो उनमें एक समानता की भावना दिखाई देती। वस्तुतः नायिका के बदलते व्यवहारों में भी एक कल्याणकारी देवता विद्यमान रहता है। जो व्यक्ति उस देवता को देख नहीं पाते, वे यौवन को एक मस्त हाथी की संज्ञा देते हैं और प्रेम को हृदय का अंधकार बताते हैं तथा यौवन पाती युवती के स्वाभाविक भावों व क्रीड़ाओं को टेढ़ी लीला कहते हैं।

विशेष :

1. भट्टिनी के सौंदर्य का चित्रण हुआ है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- देखो भट्ट, तुम नहीं जानते कि तुमने मरे पाप पंकिल शरीर में कैसा प्रफुल्ल शतदल खिला रखा है। तुम मेरे देवता हो, मैं तुम्हारा नाम जपने वाली अधम नारी हूँ। ऐसा कलुष मानस लेकर भी जो जी रही हूँ, सो केवल इसीलिए कि तुमने जीने–योग्य समझा है। सूर्य पश्चिम दिग्विभाग में उदय हो सकता है; पर तुम भट्टिनी को अनुचित बात नहीं कर सकते, यह मैं जानती हूँ। फिर भी कोई ऐसी बात जरूरी हुई है, जिससे भट्टिनी का चित्त उत्क्षिप्त हो गया है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या – देखो बाणभट्ट तुम शायद नहीं जानते कि तुमने मेरे इस पाप की कीचड़ से युक्त शरीर में कैसा सुन्दर फूल खिला रखा है। तुम्हारे सद्गुणों को देखते हुए मैंने तुम्हें अपना देवता मान लिया है और मैं केवल तुम्हारे नाम का स्मरण करने वाली एक पपीता हूँ। मैं अपने कलुषित जीवन को इसीलिए व्यतीत कर रही हूँ क्योंकि यह तुम्हारी ही इच्छा है कि मैं जीवित रहूँ जबकि मैं अपने जीवन को बिलकुल निरर्थक व अनुपयोगी मानती हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि भले ही सूर्य पश्चिम से उदय हो जाए परंतु तुम भट्टिनी को कोई ऐसा कटु वचन नहीं कह सकते जिससे वह दुखी हो। परन्तु कोई ऐसी घटना अवश्य घटित हुई है या तुम्हारे मुख से भूलवश ऐसा वचन निकला है जिससे भट्टिनी का हृदय दुखी हुआ है तथा वह व्याकुल हो उठी है।

विशेष :

1. निपुणिका द्वारा बाणभट्ट से भट्टिनी के विषय में कही हुई उसकी बात जानने की कोशिश की गई है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- यह प्रमाद है आर्य, कि यह शरीर नरक का साधन है। यही बैकुण्ठ है। इसी को आश्रय करके नारायण अपनी आनंद लीला प्रकट कर रहे हैं। आनंद से ही यह भुवन मण्डल उद्भासित है। आनंद से विद्याता ने सृष्टि उत्पन्न की है। आनंद ही उसका उद्गम है, आनंद ही उसका लक्ष्य है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या– सुचरिता कहती है कि मनुष्य का शरीर भगवान का दिया हुआ एक उपहार है, यह शरीर नरक का साधन नहीं है जैसा कि बौद्ध–धर्म बताता है। अतः यदि कोई इसे नरक का साधन कहता है तो यह उसकी मूर्खता है। वस्तुतः यह शरीर तो उस परमात्मा का निवास–स्थान है। इसी शरीर के माध्यम से हमारी आत्मा में बसे भगवान अपनी लीला से इस सृष्टि को चला रहे हैं अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति में भगवान का अंश विद्यमान है। शरीर के माध्यम से ईश्वर आनन्द लीला दिखा रहे हैं और उनकी इस आनंद लीला से यह सारा जगत प्रकाशमान है। ईश्वर ने आनन्द लीला के लिए ही यह सृष्टि बनाई है। यदि सच पूछों तो इस जगत् की उत्पत्ति का कारण भी ईश्वर की आनन्द लीला है और इसका उद्देश्य भी ईश्वर की आनंद लीला है।

विशेष :

1. लेखक ने वैष्णव धर्म के कर्मवाद का पक्ष लिया है तथा प्रत्येक मनुष्य में ईश्वरीय अंश बताकर सभी भेद–भाव समाप्त करने पर बल दिया है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली के अनंतर संवाद शैली का प्रयोग हुआ है।

- अमृत के पुत्रों, मृत्यु का भय माया है, राजा से भय दुर्बल चित्त का विकल्प है। प्रजा ने सजा की सृष्टि की है। संगठित होकर मलेच्छ–वाहिनी का सामना करो। देवपुत्रों और महाराजाधिराजों की आशा छोड़ो। समस्त उत्तरा पथ की लाज तुम्हारे हाथों में है। अमृत के पुत्रों, आर्य विरतिवज्र और आयुष्मती सुचरिता को बन्दी बनाना, लाख–ब्राह्मणों की रक्षा के लिए नहीं हुआ।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या – महामाया युवकों को संबोधित करते हुए कहती है– देश के युवकों, तुम तो देवताओं की सन्तान हो, क्योंकि भारतवर्ष देवताओं की भूमि है। अतः इस संबंध के कारण तुम उनके वंशज हो अतः तुम्हें मृत्यु का भय तो होना ही नहीं चाहिए। जो व्यक्ति मृत्यु से डरता है वह तो मोह–माया के बंधन में बंधा हुआ होता है। जो व्यक्ति देश हित के कार्य में भी अपने राजा के क्रोध अथवा सजा के भय से ग्रस्त होते हैं वस्तुतः वे कमजोर हृदय के मनुष्य होते हैं। अर्थात् देशभक्ति के लिए तो किसी प्रकार से भी भयभीत नहीं होना चाहिए। इसके अतिरिक्त एक सत्य यह भी है कि प्रजा ही अपने राजा का चुनाव करती है। अतः प्रजा अपने राजा से कहीं अधिक शक्तिशाली है। तुम्हें अब बिना राजाज्ञा के ही संगठित होकर सीमा पर खड़ी म्लेच्छ सेना का सामना करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। देश की रक्षा के लिए अब तुम्हें राजाओं व राजकुमारों से आशा नहीं रखनी चाहिए। वे तो अपने ही भोग–विलास में डूबे हुए हैं। समस्त देश को आक्रमणकारियों के हाथों अपमानित होने से बचाने का भार अब तुम पर ही आ गया है। मेरे देश के वीरों, मैं तुम्हें साथ ही साथ यह भी बता दूँ कि थानेश्वर में विरतिवज्र व सुचरिता को इसलिए बन्दी नहीं बनाया गया है कि धर्म की प्रतिष्ठा बढ़ाई जा सके, बल्कि उन्हें इसलिए बन्दी बनाया गया है ताकि महाराज व उनके सामंतों को प्रसन्नता मिले।

विशेष :

1. देश के नवयुवकों को अपने देश की सुरक्षा हेतु उद्‌बोधित किया गया है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्‌भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- वस्तुतः कल्पष भी मनुष्य का अपना सत्य है। उसे स्वीकार करके ही वह सार्थक हो सकता है। दबाने से वह मनुष्य को नष्ट कर देता है। समस्त गुण और अवगुण जब तक निर्विकार चित्त से नारायण को नहीं सौंप दिए जाते, तब तक वे भारमात्र हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या – सुचरिता महामाया का उदाहरण देते हुए बाणभट्ट से कहती है कि जिस प्रकार लंबे समय तक महामाया द्वारा की गई साधना भी उसके भीतर के पाप को नष्ट नहीं कर सकी उससे स्पष्ट है कि पाप भी मनुष्य जीवन का एक सत्य है। जिस प्रकार फूल के साथ काँटे, सच्चाई के साथ झूठ, पाप के साथ पुण्य रहते हैं ठीक उसी प्रकार मनुष्य के मन में भी मैल रहता है और यह तथ्य शाश्वत सत्य है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि व्यक्ति के मन में सद्‌विचारों के साथ कुछ बुरे विचार भी होते है। जो व्यक्ति यह तथ्य स्वीकार कर लेता है कि उसमें भी कुछ बुराईयाँ हैं तो निश्चय ही उसका जीवन सार्थक बन जाता है परन्तु इसके विपरीत जो व्यक्ति अपनी कमियों को स्वीकार न करके केवल अपनी अच्छाइयों को ही ध्यान में रखता है तब ये कमियाँ अन्ततः उसके जीवन को नष्ट कर डालती है। जैसा कि वैष्णव धर्म मनुष्य को नारायण का ही एक अंग मानता है, अतः सुचरिता भी कहती है कि मनुष्य को चाहिए कि वह अपने गुणों, अवगुणों दोनों को ही बिना किसी भेदभाव ईश्वर को समर्पित कर दे ताकि उसका जीवन सार्थक बन सके अन्यथा ये गुण–अवगुण उसके जीवन पर एक भार के समान रहते हैं।

विशेष :

1. पाप को भी पुण्य की भाँति मनुष्य जीवन का एक सत्य बताया गया है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- तुम त्रिपुर भैरवी की लाला नहीं रोक सकतीं, तुम महाकाल को कुष्ठनृत्त नहीं थमा सकती, तुम शूलपाणि की मुण्डमाल की रचना में बाधा नहीं दे सकीं, क्योंकि तुमने अपने को संपूर्ण रूप में त्रिपुर भैरवी के साथ एक नहीं कर दिया। जिस दिन तुम स्वयं उनसे अभिन्न हो जाओगी, उसी दिन इस लीला को जिधर चाहे मोड़ सकती हो।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या – तुमने अपने आप को पूर्ण रूप से त्रिपुर सुन्दरी को समर्पित नहीं किया है अभी तुम्हारे अन्दर स्व की भावना विद्यमान है इसीलिए तुम्हें अभी वह शक्ति प्राप्त नहीं हुई है जिसके बल पर तुम त्रिपुर भैरवी की लीला को रोक सको अथवा शिव के ताण्डव नृत्य को रोक सको या फिर भगवान रूद्र की विनाश लीला को रोक सको। जिस दिन तुम अपने स्व को त्याग कर स्वयं को त्रिपुर सुन्दरी को सौंप दोगी उसी दिन तुम में वह सामर्थ्य उत्पन्न हो जाएगा कि तुम इन सबको अपनी इच्छानुसार गति व दिशा दे सकोगी।

विशेष :

1. लेखक ने शक्ति प्राप्त करने के लए 'स्व' की भावना त्याग अनिवार्य माना है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली के अनंतर संबोधन शैली का प्रयोग हुआ है।

- एक क्षण के लिए भ्रम हुआ कि हम कैलाश पर तो नहीं आ गए हैं। आहा, यही क्या वह वायु है जिसने कैलाश के निर्झरों का सीकर आत्मसात् है, भूर्ज–पत्रों को स्खलित किया है, नांदी के रोमंच–फेन के स्पर्श से अपने को धन्य बनाया है, हरजटा–विहारिणी भगवती मंदाकिनी का जल–पान किया है, पार्वती के कर्ण पल्लवों को आंदोलित किया है, रूद्राक्ष के पुण्य–रेणु से अपने को सुगंधित बनाया है और नमेरू पल्लवों के जीवन से महादेव की क्लांति को दूर किया है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या – बाणभट्ट कहता है कि वहाँ पहुँच कर सुख के अनुभव के कारण उसे यह भ्रम हुआ कि कहीं वे कैलाश

पर्वत पर तो नहीं पहुँच गए। वहाँ पर बहती हुई वायु इतनी शीतल व सुखद लग रही थी कि मानों वह कैलाश के झरनों के शीतल जल को अपने अंदर समेटे हुए हो, जो वहाँ पर फैले भोज–पत्रों को बिखेर कर आई हो, जो शिव की सवारी नन्दी बैल के जुगाली करते समय उत्पन्न फेनों को छूकर पवित्र हो गई हो, जो शिव की जटा से निकलने वाली गंगा के शीतल जल को पीकर आई हो, जो पार्वती के कानों में लटकते पत्तों से बने कर्ण फूलों को हिला कर आई हो और जो सुरपुन्नाग वृक्ष के पंखे से हवा करके महादेव की थकान को दूर करने के लिए आई हो। कहने का तात्पर्य यह है कि शिव–सिद्धायतन की हवा कैलाश–पर्वत पर चलने वाली हवा के समान शीतल व सुखदायिनी थी।

विशेष :

1. शिव सिद्धायतन की अपूर्व शोभा का चित्रण हुआ है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- एक जाति दूसरे को मलेच्छ समझती है, एक मनुष्य दूसरे को नीच समझता है, इससे बढ़कर अशान्ति का कारण और क्या हो सकता है। तुम्हीं ऐसे हो जो नरलोक से लेकर किन्नर–लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय, एक ही करुणायित चित्त को हृदयंम करा सकते हो। मनुष्य लोभवश, मोहवश, द्वैष–वश पशुता की ओर बढ़ता जा रहा है, तुम इसके हृदय को संवेदनशील और कोमल बना सकते हो।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विरचित उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से लिया गया है।

व्याख्या – भट्टिनी बाणभट्ट से कहती है कि आज प्रतिस्पर्धा व द्वेष के कारण हमारे राष्ट्रों, समाज, परिवार व व्यक्तियों में परस्पर कलह ब़ रहे हैं। प्रत्येक राष्ट्र, समाज व व्यक्ति स्वयं को श्रेष्ठ तथा दूसरे को मलेच्छ समझता है, फलतः प्रत्येक राष्ट्र, समाज व व्यक्ति अशांति से ग्रस्त है। भट्ट, इस समाज में केवल तुम्हीं ऐसे व्यक्ति हो जो अपनी ओजपूर्ण परन्तु प्रेम व शांति का संदेश लिए बाणी से सम्पूर्ण संसार के लोगों में सौमनस्य एवं भातृ–भाव को जगा सकते हो, अपनी लोकमंगल की कामना से विश्व–बंधुत्व की भावना का विकास कर सकते हो। आज का मनुष्य लोभ, मोह व द्वेष भाव में पड़कर अपनी मानवता को भूलता जा रहा है और वह पशु जैसा बनता जा रहा है तुम अपने सुन्दर विचारों से उनके हृदय को पुनः मानवीय भावनाओं से भर सकते हो और उनमें पुनः मानवता का संचार कर सकते हो।

विशेष :

1. लेखक ने कवि का मूल उद्देश्य लोकमंगल की कामना माना है।
2. भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य कुछ सरल, कुछ जटिल परंतु सहज व रोचक है।
6. आत्मकथात्मक शैली के अनंतर संवाद शैली का प्रयोग हुआ है।

2.1 मूल संवेदना

संस्कृति एवं समाज परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। समाज संस्कृति को जन्म देता है और संस्कृति समाज में प्राण–प्रतिष्ठा करती है। जहाँ संस्कृति सूक्ष्म एवं आंतरिक होती है, वहीं सभ्यता स्थूल एवं बाह्य है। संस्कृति के निर्माण में युग लग जाते हैं। संस्कृति संस्कार की हुई अर्थात् शुद्ध एवं बुद्ध (ज्ञान–समन्वित) होती है। अर्थात् संस्कृति के अंदर, वह जिस समाज से संबंधित होती है, उस समाज में रहने वाले व्यक्तियों के आचार–विचार, रहन–सहन, रीति–रिवाज, परम्पराएँ, उत्सव एवं त्यौहार, सामाजिक दशा, कला, धर्म आदि सभी आ जाती हैं। अतः हम बाणभट्ट की आत्मकथा में संस्कृति से संबंधित सभी तत्त्वों का (जिनसे उसका निर्माण होता है) अध्ययन करेंगे।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को भारतीय संस्कृति का आख्याता कहा जाता है। उन्होंने अपने उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भारतीय संस्कृति के एक विशेष युग–हर्षवर्द्धन के युग का चित्रण किया है। इस युग के सांस्कृतिक तत्त्वों का अध्ययन करने के लिए हम निम्नलिखित उपशीर्षकों के अंतर्गत विचार करेंगे–

रीति–रिवाज एवं परंपराएँ

उपन्यास की कथा का केन्द्र बिन्दु स्थाण्वीश्वर वर्तमान का थानेसर रहा है। 7वीं शब्तादी में उस समय का समाज अनेक वर्णों में विभाजित था। उच्च वर्ण अर्थात् ब्राह्मण आदि निम्नवर्ण से घृणा करते थे। ब्राह्मणों को समाज में आदर एवं सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। निम्न वर्ण का कोई व्यक्ति राजकृपा को प्राप्त कर लेता था तो उसे समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान मिलने लगता था। निपुणिका के साथ घटित–घटना से इस बात का पता चलता है। लेखक लिखता है–'निपुणिका आजकल की उन जातियों में से एक की संतान है, जो किसी समय अस्पृश्य समझी जाती थीं, परंतु जिसके पूर्व–पुरुषों को सौभाग्यवश गुप्त सम्राटों की नौकरी मिल गई थी। नौकरी मिलने से उनकी सामाजिक मर्यादा कुछ ऊपर उठ गई। वे आजकल अपने को पवित्र वैश्य वंश में गिनने लगी हैं और ब्राह्मण क्षत्रियों में प्रचलित प्रथाओं का अनुकरण करने लगी हैं। उनमें विधवा–विवाह की लन हाल ही में बंद हुई है। निपुणिका का विवाह किसी कांदविक वैश्य के साथ हुआ जो भड़भूजे से उठकर सेठ बना था। विवाह के बाद एक वर्ष भी नहीं बीतने पाया था कि निपुणिका विधवा हो गई।''

उपर्युक्त उदाहरण से इस बात का भी पता चलता है कि उच्चवर्ण में विधवा का विवाह निषेद्य था। इसीलिए निपुणिका को वैधव्य के दिन घोर संघर्षों में बिताने पड़े। वह घर से भाग निकली थी।

बाल विवाह का प्रचलन उस समय था। सुचरिता विवाह के बंधन के उस समय बाँध दी गई, जब उसे यह भी ज्ञान नहीं था कि विवाह क्या है और क्यों किया जाता है। इस संबंध में सुचरिता बाणभट्ट से कहती है–''मुझे अपनी कहानी बीच में से ही सुनानी पड़ेगी। वस्तुतः मेरा बालकपन मेरी बेसुधी में ही बीत गया। न तो मुझे अपनी माता का स्मरण है न ही पिता का। अत्यंत कच्ची उमर में ही विवाह करके मेरे अभिभावकों ने यथाशीघ्र अपना कर्त्तव्य भार हलका कर लिया था। श्वसुर–कुल में मैं केवल अपनी सास को ही जानती हूँ। श्वसुर मेरे आने से पहले ही परलोक सिधार चुके थे।

अंतरजातीय विवाहों का प्रायः अभाव था, पर कुछ न कुछ विवाह होते ही रहते थे। अनुलोम ओर प्रतिलोम अंतरजातीय विवाह की ये दो कोटियाँ थीं। अनुलोम विवाह में उच्चवर्ण का पुरुष निम्नवर्ण की जाति की स्त्री के साथ करता है। उस समय अनुलोम विवाह को निरुत्साहित किया जाता था। पर वह प्रचलित था। स्वयं बाणभट्ट का चन्द्रसेन नामक एक सौतेला भाई था, जो एक शूद्र स्त्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। ध्रुवभट्ट यद्यपि क्षत्रिय था, किंतु वह हर्ष का दामाद था, जो वैश्य था। राज्यश्री वैश्य कन्या थी, किन्तु उसका विवाह मौखरी क्षत्रिय गृह वर्मा के साथ हुआ था।

प्रतिलोम विवाह में लड़की उच्च जाति की होती है तथा पुरुष निम्न जाति का। उस समय बहुपत्नी प्रथा भी प्रचलित थी। पर्दे की प्रथा समाज में उच्च श्रेणी की महिलाओं में प्रचलित थी। भट्टिनी भी पर्दा रखती थी। महाराज हर्षवर्द्धन आचार्य सुगतभद्र से वैशाखी पूर्णिमा के दिन विहार में जब धर्म देशना सुनने के लिए पहुँचे उस समय सम्भ्रांत महिलाओं में पर्दा प्रथा के संबंध में लेखक लिखता है –''सब मिलाकर वहाँ अद्ध–सहस्र व्यक्ति बैठे हुए थे। आधे में तो भिक्षु थे और आधे में महाराजा धिराज के सामंत तथा अंतःपुर की देवियाँ थीं। एक महीन तिरस्कारिणी (पर्दा) के पीछे देवियों का आसन था।''

नारियों की स्थिति उन दिनों समाज में अच्छी नहीं थी। उन्हें केवल काम–पिपासा का साधन समझा जाता था। नारियों की इच्छा के विरूद्ध उन्हें बलात् अपहरण करके बन्दी बना लिया जाता था। यही कारण है कि भट्टिनी को छोटे राजकुल के अन्तःपुर में बंदी होना पड़ा और महामाया को गृहवर्मा के साथ विवाह करना पड़ा। कुछ नारियाँ अपनी परिस्थितियों पर नियन्त्रण न पा सकने पर नगरवधू बन जाती थीं। नगरवधुओं का समाज में आदर होता था। चारुस्मिता का जीवन इसका उदाहरण है– बाणभट्ट के शब्दों में–''समाज में नगर की लक्ष्मी, शोभा की खानि, कला की स्रोत स्विनी परम शीलगुणन्विता गणिक चारुस्मिता का मयूर और पद्म–नृत्य होने वाला है।''

गणिकाओं के आवास बहुत सुंदर एवं भव्य हुआ करते थे, मदनश्री के प्रसाद के बारे में निपुणिका कहती है–''मदनश्री का प्रसाद बहुत विशाल था। उसके द्वार पर नाना भाँति की कुसुम–मालिकाएँ मनोहर ढंग से सजी थीं। भिन्न–भिन्न प्रकोष्ठों में शुक–सारिका, लाव तित्तिर, हंस–कारंडव, मयूर–सारस के निवास थे। घोड़ों और मेषों के लिए अलग प्रकोष्ठ थे और नागरजनों के विश्राम और गान–नृत्य सुनने के अलग–अलग प्रकोष्ठ नियत थे। उसके प्रमद–वन की स्थंडिलपीठिकाओं पर नगरी के बड़े–बड़े श्रेष्ठि कुमार कुसुमास्तरण (फूल बिछाना) किया करते थे। उसकी क्रीड़ा–वाणी के हंसों और चक्रवाकों को मृणाल भक्षण कराना नागरिक लोग सौभाग्य का कार्य मानते थे।

उत्सव एवं त्यौहार :

तत्कालीन समाज में उत्सवों की बड़ी धूमधाम थी। जन्मोत्सव आदि बड़ी धूम–धाम तथा गरिमा के साथ मनाए जाते थे। नाटक मंडली द्वारा विभिन्न नाटकों का आयोजन समय–समय पर होता था। जनता परम्परा तथा रूढ़ि दोनों से लगाव रखती थी। साहित्य को समझने वाले भी कम न थे। उपन्यासकार ने कुमार कृष्णवर्द्धन के पुत्रोत्सव के अवसर पर नगर की गली से जो जुलूस निकला था, उसका मनमोहक शब्द चित्र अंकित किया है। यह वर्णन इतना विशद एवं सूक्ष्म है कि छोटी से छोटी बात भी लेखक की आँख से बच नहीं पाई है। यथा–''राजकन्याओं का स्थान जुलूस के ठीक मध्य भाग में था। यहाँ का नृत्य–गान संयत, गंभीर ओर मनोहारी था। एक ओर मेरी, मृदंग, पटह, काहल और शंख के निनाद से धरित्री फटी जा रही थी और दूसरी ओर राजकन्याओं के कपोल–तली के आंदोलित मणिमय कुंडलों और उत्पल–पत्रों से जगमगाती हुई शिविकाएँ बीच–बीच में सनूपुर चरणों की ईषत् झंकार से मुखरित हो उठती थीं। सबके पीछे राजा के रण और बंदी लोग विरुद्–गान करते हुए जा रहे थे। उनमें से कुछ तो आनंदातिरेक में ऐसे मदमस्त थे कि मुख से ही एक विशेष प्रकार के वाद्य का काम ले रहे थे। जुलूस के पार होने में दो दंड समय बीत गया, और मैं निश्चल प्रतिमा की भाँति इतनी देर तक खड़ा रहा।''

कान्यकुब्ज में मदनोत्सव का त्योहार फाल्गुन की पूर्णिमा के दिन बड़े उत्साह से मनाते थे। नगर के समस्त राजमार्ग नागरिकों की भीड़ से भर जाया करते थे। पुरवासियों की करतल–ध्वनि, मधुर संगीत और मृदंग की घोष से सारा नगर गूंज उठता था। मधुमत्त नगर–विलासिनियों के सामने जो भी पुरुष पड़ जाता था, उस पर शृंगक के रंगीनी जल की बौछार की जाती थी। बड़े–बड़े चौराहे मर्दल के गंभीर घोष से चर्चरी–ध्वनि से शब्दायमान हो जाते थे। ढेर–काढेर सुगंधित अबीर दसों दिशाओं में ऐसा उड़ता था कि दिशाएँ रंगीन हो जाया करती थीं और नगर के राजपथ केसर–मिश्रित पिष्टातक (अबीर) से इस प्रकार भर गए थे, जैसे उन पर उषा की छाया पड़ी हुई हो।

पौरजनों के शरीर पर शोभामान अलंकार और सिर पर धारण किए हुए अशोक के लाल फूल इस पीले सौंदर्य को और भी बढ़ा देते थे। ऐसा जान पड़ता था, नगरी के सभी लोग सुनहरे रंग में डुबो दिए गए हैं। समृद्धिशाली भवनों के सामने वाले आँगन में धारायंत्रों से पानी उत्क्षिप्त हुआ करता था और उसमें अपनी–अपनी पिचकारी भरने की होड़–सी मच जाती थी। इन स्थानों पर पौर विलासिनियों के निरंतर आते रहने से उनके सीमांत के सिंदूर और कपोल के अबीर झड़ते रहते थे और सारे कुट्टिम लाल पिष्टातक–पंक से भरकर सिंदूरमय हो उठते थे।

ऊँच–नीच का भेदभाव

7वीं शताब्दी में ब्राह्मणों का समाज में सर्वोच्च स्थान था। अध्ययन एवं अध्यापन का कार्य उन्हीं का था। अध्ययन तथा अध्यापन के कार्य को ब्राह्मण मनोयोगपूर्वक किया करते थे। बाणभट्ट अपने पिता चित्रभानु भट्ट के विषय में कहता है– ''अपने पिता चित्रभानु भट्ट को तो मैंने स्वयं देखा है। यदि मैं कहूँ कि सरस्वती स्वयं आकर अपने पाणि पल्लवों से मेरे पितृदेव के होमकालीन श्रम–सीकरों को पौंछा करती थीं, तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं होगी; क्योंकि उषःकाल से लेकर सूर्योदय के दो मुहूर्तों तक निरंतर हवन करने के बाद जब मेरे पिता पसीने से तर होकर उठते थे, तो सीधे अध्यापन के कुशासन पर जा बैठते थे। यही उनका विश्राम था। इसी समय विद्यार्थियों को वेदाभ्यास करते–कराते उनके श्रम बिंदु सूखते थे।''

राजनैतिक दशा

राजा सर्वेसर्वा हुआ करता था। राजा की ईश्वर की तरह पूजा होती थी। वह अत्यंत वैभव के साथ अपने दिन व्यतीत करता था। महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन की राजसभा के वर्णन से इस बात की पुष्टि होती है–''महाराजाधिराज के आसनासीन होते ही जय–निनाद रुक गया। मांगल्य शंख ने मौन धारण किया, बंदियों की बिरुदावली शांत हुई, पुरोहितों का आर्शीवाद अक्षत–वर्षा के साथ–साथ उपरत हुआ और सभा में अद्‌भुत शांति छा गई। केवल रह–रहकर चामरधारिणियों के वाचाल कंकण अपनी रुनझुन से इस शांति को बीच–बीच में तोड़कर उपभोग्य बनाते रहे।''

बाहर से विदेशी जातियों के आक्रमणों की संभावना बनी रहती थी। भारतीय राजसत्ता सुसंगठित नहीं थी। यथा–कुमार कृष्णवर्द्धन, बाणभट्ट से कहता है–''भेड़ियों के समान निर्धृण और चींटियों से भी अधिक संघबद्ध प्रत्यंत दस्यु सीमांत पर फिर एकत्र हो रहे हैं। फिर आर्यावर्त के देवमंदिर और बिहार, वृद्ध और बालक, साधु और स्त्रियाँ, ब्राह्मण और श्रवण सत्यानाश के बवंडर के शिकार होने वाले हैं आज गुप्तों का प्रताप अस्तमित है, दुर्भद यौधेय उत्पाठित दंत व्याघ्र की भांति हीन दर्प हो गए हैं, भौखरियों का विक्रमानल निर्वापित हो गया है, केवल कान्यकुब्ज का साम्राज्य ही आज इस विनाश से आर्यावर्त्त को बचा सकता है। परंतु देखो भट्ट, एक बार यदि दस्युओं ने गिरिवर्त्म लाँघकर मैदान में प्रवेश किया, तो उन्हें रोकना कठिन हो जाएगा।''

राजा सर्वेसर्वा हुआ करता था, परन्तु ऐसे भी उदाहरण देखने को मिलते हैं कि राजा के अयोग्य होने पर मंत्री–परिषद् द्वारा योग्य उत्तराधिकारियों में से राजा का चयन कर लिया जाता था; जैसे–सम्राट हर्षवर्द्धन की बहन राजश्री का विवाह मौखरियों में हुआ था। राजश्री के पति का नाम गृहवर्मा था। गृहवर्मा का मालवा नरेश ने वध कर दिया था। मौखरियों में किसी प्रतापी शासक के न होने के कारण, वहाँ की प्रजा तथा मंत्रियों के अनुरोध पर महाराजाधिराज श्री हर्षवर्द्धन ने अपने बहनोई का राज्य भी अपनी छत्रच्छाया में ले लिया था।

तत्कालीन राजवंश अपने राज्य के विस्तार के लिए अथवा एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए युद्ध छेड़ दिया करते थे; यही कारण है कि आचार्य सुगत भद्र कुमार कृष्ण वर्द्धन से; भट्टिनी के उद्धार हेतु कह रहे हैं–''यौधेयों ने सौ वीर से गंधार तक आतंक फैला रखा है, सम्राट समुद्र गुप्त की कीर्ति आज तक चंद्रकिरणों के समान धवल है। परन्तु रादुर्भ यौधेयों का दमन न किया गया तो आयुष्मती चंद्रदीपित्ति का छंदानुरोध करना पड़ेगा

और उसकी विपत्ति के अकारण बंधु बाणभट्ट की वाणी का उचित सम्मान करना होगा।''

कहने का अर्थ यह है कि जनता गृहयुद्ध तथा बाह्य आक्रमण दोनों से पीड़ित होती थी। बाह्य आक्रमणों के समय स्वयं द्वारा स्वयं की रक्षा अर्थात् देश की रक्षा के लिए वृद्ध, बच्चे, स्त्रियों, मंदिरों तथा मठों की रक्षा के लिए जनता को भी युद्ध में उतरने के लिए आह्वान किया जाता था। इससे पता चलता है कि तत्कालीन प्रजा में स्वतंत्र रहने के लिए राजनीतिक चेतना जाग्रत होने लगी थी। महामाया भैरवी स्थाणवीश्वर की प्रजा को संबोधित करते हुए कहती है– ''अमृत के पुत्रों, मृत्यु का भय माया है, राजा से भय दुर्बल चित्र का विकल्प है। प्रजा ने राजा की सृष्टि की है संघटित होकर म्लेच्छवाहिनी का सामना करो। देवपुत्रों और महाराजधिराजों की आशा छोड़ो। समस्त उत्तरापथ की लाज तुम्हारे हाथों में है।....अमृत के पुत्रों, धर्म की रक्षा अनुनय–विनय से नहीं होती, शास्त्र वाक्यों की संणति लगाने से नहीं होती; वह होती है अपने को मिटा देने से। न्याय के लिए प्राण देना सीखों, सत्य के लिए प्राण देना सीखो, धर्म के लए प्राण देना सीखो। अमृत के पुत्रों, मृत्यु का भय माया है।

धार्मिक अवस्था

तत्कालीन समय में धार्मिक विद्वेष पनपने लगा था। प्रमुख धर्म दो थे– ब्राह्मण धर्म एवं बौद्ध धर्म, इसके अतिरिक्त वाम मार्ग का भी समाज में दब–दबा था। धार्मिक सम्प्रदायों मे एक–दूसरे को नीचा दिखाने के लिए शास्त्रार्थ होता रहता था। बाणभट्ट की आत्मकथा में इस बात का उल्लेख आया है कि बौद्ध धर्म द्वारा ब्राह्मण धर्म को शास्त्रार्थ में पराजित कर देने पर सम्राट हर्षवर्द्धन बौद्ध धर्म के अनुयायी हो गए थे। परन्तु फिर बाणभट्ट के चचेरे भाई उडुपति भट्ट द्वारा कालान्तर में पुनः ब्राह्मण धर्म को शास्त्रार्थ में बौद्धों को पराजित करके स्थापित किया था। परिणाम स्वरूप हर्षवर्द्धन ने सभी धर्मों को समभाव तथा धर्म–निरपेक्षता का सिद्धांत स्थापित कर दिया था– ''अब से ब्राह्मण पंडितों का ठीक उसी प्रकार राजसभा में सम्मान होगा, जिस प्रकार महाराजा ग्रहवर्मा के समय में था। महाराजाधिराज ने लगभग सौ सामाध्यायिों को नवीन रूप में भूमि दान किया है। यद्यपि चतुर्वेद, भिवेद और द्विवेद कहकर ब्राह्मणों की भिन्न–भिन्न स्तर सीमा निर्धारित कर दी गई है तथापि व्यवहार में सब के साथ समान व्यवहार किया जाएगा.....बौद्ध मठों को जो दान दिया गया है वह ज्यों का त्यों रहने दिया जाएगा। महाराजाधिराज ने सबका समान भाव से सम्मान करने का निश्चय किया है।''

वाम साधना का प्रचलन भी उस समय जोरों पर था। वाम मार्ग में शक्ति की साधना अनिवार्य थी। अवधूत श्मशान भूमि में नर बलि तक का आयोजन किया करते थे। बाणभट्ट की आत्मकथा में कदाला देवी की स्तुति इसका प्रमाण है। तांत्रिक साधना का प्रचलन भी उस समय था। उच्चाटन, जादू–मंत्र, टोना आदि का प्रयोग कई बार स्वार्थ सिद्धि के लिए उपयोग में लाया जाता था। चंडी मंदिर का पुजारी, महामाया, अवधूत अघोर भैरव आदि वाम मार्ग में दीक्षित थे।

उस समय मोक्ष के लिए गृहस्थ आश्रम को त्यागकर संन्यास या वैराग्य ले लेने का प्रचलन था। जैसे सुचरिता के पति अमित–कांति ने सुचरिता तथा गृहस्थ आश्रम को त्यागकर वैराग्य ले लिया था–इस प्रसंग में अमित–कांति की माँ उसे समझाते हुए कहती है– ''बेटा, तू मुझ अभागी को रोती–कलपती छोड़ कौन–सा धर्म कमा रहा है? यह देख, यह तेरी ब्याहता बहू है। अभागे, स्वर्ग में ऐसी कौन–सी अप्सराएँ मिलती होंगी, जिनके लिए तू इस मणिकांचन–प्रतिमा को छोड़कर तपस्या कर रहा है?''

कहने का अर्थ यह है कि धार्मिक दृष्टि से तत्कालीन समय में बौद्ध धर्म का बोलबाला था। मौखिरी वंश ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था तो गुप्त वंश में बौद्ध धर्म का प्रचलन हो गया था। स्वयं महाराजा हर्षवर्द्धन ने बौद्ध भिक्षु सुगतभद्र से दीक्षा ली थी। उड्पति भट्ट द्वारा बौद्ध पंडित वसुभूति को पराजित कर दिए जाने पर ब्राह्मण धर्म में फिर आस्था जागने लगी थी। वा मसाधना का प्रलन भी जोरों पर था। शास्त्रों में प्रवृत्तियों का निषेध किया गया

है तो वाम मार्ग में निषेध को अमान्य ठहराया है। अपने–अपने धर्म का प्रचार तत्कालीन समाज में उनके अनुयायी करते रहते थे; जैसे आचार्य भर्वुपाद के आने के समाचार से बौद्ध–संन्यासी वसुभूति को कष्ट हुआ था।

एक सुखद आश्चर्य की बात यह है कि निवृत्ति मार्गी विचारधारा के विरोध में गृहस्थ धर्म के प्रति प्रवृत्ति मार्गी विचारधारा का अभ्युदय उस समय हो रहा था। यथा–अमितकांति की माँ अपने संन्यासी पुत्र से कहती है– ''अरे ओ मूढ़ रटी हुई बोली बोल रहा है तू ! भंड है वह धर्माचार, जो अपनी माता को भी पहचानने में लज्जा अनुभव कराता है। इस दुःखमय संसार को और भी दुःखमय बनाकर ही क्या तेरा सुख का राजमार्ग तैयार होगा। स्वार्थी है तेरा मार्ग, धिक्कार है तेरे पौरुष को!''

वेश–भूषा व रहन–सहन

तत्कालीन समाज में ब्राह्मण शुक्ल अंगराग धारण किया करते थे, शुक्ल पुष्पों की माला तथा आगुल्फ शुक्ल धौत उत्तरीय धारा करते थे। सम्भ्रान्त स्त्रियाँ रेशमी महीन वस्त्र, मणिमय कुंडल, नूपुर, उत्तरीय, अंगराग, पुष्पहार कंकण, वलय, केयूर, अंगद आदि पहना करती थी। मित्र बनाने के लए स्वयं अपने हाथ से पान का बीड़ा दिया जाता था। जैसे स्वयं सम्राट हर्ष ने बाणभट्ट के लिए पान का बीड़ा दिया था।

मनोविनोद के लिए पाशा खेलना, द्यूत क्रीड़ा, वीणा वादन, चित्रकला, अंत्याक्षरी, मानसी, प्रहेलिका, अक्षरच्युतक, काव्य पाठ, नगर वधुओं के नृत्य आदि का प्रचलन था।'' चारुस्मिता और वित पांगा के नृत्य–गीत से कान्य कुब्ज नगर में अपूर्व मादकता का संचम् हुआ था। ज्योतिष विद्या का प्रचलन भी उस समय था। सम्भ्रान्त स्त्रियाँ पुरुषों के सम्मुख खुले में नहीं आत थीं। वाम मार्गी साधक गहरे लाल रंग के तथा बौद्ध भिक्षु गेरुए रंग के चीक धारण किया करते थे। तिलक लगाने की प्रथा माथे एवं बाहुओं दोनों प्रचलन में थी। सुगंधित पदार्थों–इत्र आदि का प्रचलन शोभा वृद्धि के लिए किया जाता था।

सांस्कृतिक चेतना

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' द्वारा सांस्कृतिक चेतना को झकझोरा है–बाणभट्ट का यह कथन द्रष्टव्य है –

मेरा चित्त कहता है कि कहीं न कहीं मनुष्य समाज ने अवश्य गलती की है। ये उन्मत्त उत्सव, ये रसिकगान, ये शृंगक सीत्कार, ये अबीर गुलाल, ये चर्चरी और पहट मनुष्य की किसी मानसिक दुर्बलता को छिपाने के लिए हैं। ये दुःख भुलाने वाली मदिरा है। इनका अस्तित्व सिद्ध करता है कि मनुष्य का मन रोगी है, उसकी चिन्ताधारा आविल है, उनका पारस्परिक संबंध दुःखपूर्ण है।

इसी प्रकार महामाया भैरवी का नारियों का अपहरण क्रय–विक्रय तथा उनके सम्मान के लिए यह कथन–''क्या इस देश के विद्वानों में स्वतंत्र संघटन–बुद्धि का विलोप हो गया है?.....इस उत्तरापद में लाख–लाख निरीह बहुओं और बेटियों के अपहरण और विक्रय का व्यवसाय क्या नहीं चल रहा है? अगर देवपुत्र तुतर मिलिंद का हृदय थोड़ा भी संवेदनशील होता, तो आज से बहुत पहले उन्हें मूर्च्छित होकर गिर पड़ना था। क्या निरीह प्रजा की बेटियाँ उनकी नयन–तारा नहीं हुआ करतीं? क्या राजा और सेनापति की बेटियों का खो जाना ही संसार की बड़ी दुर्घटनाएँ हैं? और आर्य सभासदों, मेरी ओर देखो। मैं तुम्हारे देश की लाख–लाख अवमानित, और अकारण दंडित बेटियों में से एक हूँ। कौन नहीं जानता कि इस घृणित व्यवसाय के प्रधान आश्रय सामंतों और राजाओं के अंतःपुर हैं।''

आज के संदर्भ में भी महामाया भैरवी का यह प्रश्न समाज के सामने मुँह बाए खड़ा है। इसी प्रकार महामाया द्वारा प्रजा जनों से यह कहना कि ''प्रजा ने राजा की सृष्टि की है। संघटित होकर म्लेच्छवाहिनी का सामना करो।

देवपुत्रों और महाराजाधिराओं की आशा छोड़ो।'' महामाया भैरवी का यह कथन स्वावलम्बन, राजनीतिक जागृति और म्लेच्छ जातियों अर्थात् विदेशियों के आक्रमण से स्वयं की रक्षा के लिए सांस्कृतिक चेतना को जागृत करता है वहीं सत्ताधारियों के विलास लोलुप जीवन के आडंबर को अनावृत करता है।

भट्टिनी का बाणभट्ट के प्रति यह कथन जो शाश्वत प्रश्न के रूप में सनातन काल से लेकर आज तक मनुष्य के मन में विद्यमान रागात्मकता को लेकर खड़ा है–''यह देखो, तुम यदि किसी चवन कन्या से विवाह करो तो इस देश में यह एक भयंकर सामाजिक विद्रोह माना जाएगा। परंतु यह क्या सत्य नहीं है कि यवन–कन्या भी मनुष्य है और ब्राह्मण युवा भी मनुष्य हैं।''

इसी प्रकार युगों में दम्भित दलितों के लिए चेतना जगाती बाणभट्ट के प्रति भट्टिनी की यह पंक्ति भी द्रष्टव्य हैं–''भारतवर्ष में जो ऊँचे हैं, वे बहुत ऊँचे हैं, जो नीचे हैं उनकी निचाई का कोई आर–पार नहीं' परन्तु उनमें (यवनों में)सब समान हैं।''

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर यह निस्संकोच कहा जा सकता है, कि आलोच्य उपन्यास में मध्यकालीन भारतीय जीवन के समस्त सांस्कृतिक, आयामों को उजागर करने का प्रयास आचार्य द्विवेदी ने किया है। यह केवल बाणभट्ट की आत्मकथा नहीं अपितु मानव संस्कृति की गाथा है। बाणभट्ट मात्र माध्यम हैं जो एक पूरे युग के परिवेश को ढोता है। बाणभट्ट कवि है अतः जीवन के आन्तरिक सत्य को आत्मसात् करने के साथ–साथ उसे अभिव्यक्ति दे सका है। कथा और पात्रों के माध्यम से युग के जीवन की संस्कृति का निरूपण इसमें हुआ है।

2.2 प्रेम–दर्शन

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में द्विवेदी जी ने प्रेम को उच्च भाव भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। बाणभट्ट कहता है कि; मैं स्त्री शरीर को देव–मंदिर के समान पवित्र मानता हूँ।' वह नारी को विलास की नहीं, करुणा की मूर्ति मानता है। यहाँ प्रेम देह–कामना से बहुत हद तक निरपेक्ष है। भट्टिनी और बाण दोनों ही प्रेम को शारीरिक तृप्ति का माध्यम नहीं बनने देते। इसीलिए प्रेमास्पद पर एकाधिकार की वह कामना यहाँ दिखाई नहीं देती है जो विकारों को पल्लवित करती है। भट्टिनी एवं भट्ट का प्रेम अक्षुण्ण बना रहता है। मैं ऐसा काव्य लिखता कि युग–युग तक इस पवित्र आर्यभूमि में नारी–सौंदर्य की पूजा होती रहती है और इस पवित्र देव–प्रतिमा को अपमानित करने का साहस किसी को न होता।' अघोर भैरव ने कहा था कि भट्ट पशु नहीं है अर्थात् उनकी वृत्तियाँ पशुवत् नहीं है। वैसे भी, प्रेम शरीरी होकर भी मानव जगत् में भी स्थायित्व पाता है। देहिक तृप्ति प्रेम की गहराई नहीं है। वह प्रेम को स्थायित्व नहीं दे सकती। भट्ट और भट्टिनी का प्रेम रोमानीपन को छूता हुआ दिखाई देता है। भट्ट लावण्य और माधुर्य को देखता है। उसका प्रेम व्यापक सामाजिक सरोकार से जुड़ जाता है। प्रेम और सौंदर्य की सार्थकता उसके रचनात्मक होने में है। भट्टिनी का प्रेम और सौंदर्य पूरी तरह रचनात्मक है। यही कारण है कि भट्टिनी के प्रति भट्ट का प्रेम आर्यावर्त के उद्धार का महान, लक्ष्य लेकर अग्रसर होता है जिसमें स्त्री जाति की शुचिता और सुरक्षा का भाव निहित है। यह रचनाकार की उदात्त दृष्टि का प्रमाण है कि उसने बाणभट्ट के प्रेम की वैयक्तिक सार्थकता की लोक की सार्थ के साथ जोड़ दिया है और उसे एक उच्च आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। इसलिए प्रेम का यह स्वरूप एकनिष्ठ होते हुए भी सामाजिक है।

बाणभट्ट और भट्टिनी के प्रेम को देवोपम बनाने का एक उद्देश्य यह भी रहा कि लेखक नारी के प्रति सामंती दृष्टि को बदलना चाहता है। सम्राटों और सामंतों के अंतःपुर में बंधक की तरह रखी जाने वाली अपहृता स्त्रियों की पीड़ा भट्टिनी के माध्यम से व्यक्त हुई है। इस पीड़ा का एक कारण यह भी है कि ये अपहृता स्त्रियाँ पराधीन होती हैं और अंतःपुर का समूचा कार्य–व्यापार वासनाजन्य दंभ, पौरुष और प्रसाद का कारण स्वरूप होता है। व्यक्ति स्वातंत्रय का निषेध एवं सौंदर्य का नितांत शरीर रूप प्रधान होता है। मानवीय प्रवृत्तियों का दमन सामंती दमन का

ही एक रूप है। अमानवीकरा की यह प्रक्रिया शासक वर्गों के दमन का प्रमुख अस्त्र रही है। सामंती युग में इस दमन कार्य के लिए शासक वर्ग धर्म का सहारा लेता था और आधुनिक पूँजीवाद युग में धर्म के अतिरिक्त वैज्ञानिक–तार्किक–व्यवहारिक नीतिशास्त्र का भी। हजारी प्रसाद द्विवेदी सत्री के इस सामंती पूँजीवादी रूप को अस्वीकार करते हुए उसे उच्च आदर्श भूमि पर स्थापित करते हैं। वह नारी केउस रूप को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं जो कम से कम इतना देवोपन ही कि उसकी मर्यादा भंग करने का कोई नैतिक साहस न कर सके। संभवतः इसलिए भी भट्टिनी के प्रेम को इतना महनीय एवं गौरवशाली रूप प्रदान किया गया है। भट्टिनी अपने हृदय का प्रेमोद्‌गार व्यक्त करते हुए कहती है– 'तुम नहीं जानते कि तुमने मेरे इस पाप–पंकिल शरीर में कैसा प्रफुल्ल शतदल खिला रखा है। तुम मेरे देवता हो, मैं तुम्हारा नाम अपने वाी अधम नारी।' हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रतिभा का अकुंठ विलास इसी रागात्मक हृदय का साक्षात्कार है। उन्होंने स्त्री के प्रति सामंती दृष्टि के स्थान पर मानवीय दृष्टि के संधान किया है। भट्टिनी के प्रति भट्ट के प्रेम की प्रासंगिकता को इसी रूप में देखा जा सकता है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भट्ट भट्टिनी और निपुणिका का जो प्रेम–त्रिकोण लक्षित हुआ है वह निपुणिका के चरित्र को गहराई से समझने की माँग करता है। जहाँ भट्ट और भट्टिनी के प्रेम में एक प्रकार का रोमानी आदर्शवाद झलकता है, वहीं निपुणिका का भट्ट के प्रति प्रेम नितांत मानवीय रूप में प्रकट हुआ है। हालांकि शारीरिक तृप्ति की माँग भी कोई रूप नहीं ग्रहण करती फिर भी भट्टिनी की अपेक्षा निपुणिका के प्रेम में मुखरता अधिक है। छः वर्ष की निरंतर भटकन और कुटिल जगत् की खट्टी–मीठी यादों को संजोए निपुणिका का प्रेम भक्ति में रूपांतरित हो जाता है। समाज में नीच समझी जाने वाली जाति से सम्बद्ध निपुणिका का अनुभव संसार भट्टिनी की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक है। अवहेलना, प्रताड़ना और कुत्सित रुचि के अनेक अनुभवों से गुजर क रवह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि स्त्री होना ही सारे अनर्थों की जड़ है। यह समाज में स्त्री के प्रति सोच का प्रमाण है। निरर्थकता बोध और आत्महीनता की मनोभूमि पर स्थित नारी के मन में नारी–शरीर की देव–मंदिर समझने वाले उच्च कुलोत्पन्न बाणभट्ट के प्रति विश्वास का भाव प्रकट हो जाना स्वाभाविक है। वह बाण के सहज एवं समतामूलक व्यवहार से कृतज्ञता का अनुभव करती है। निपुणिका साधारण नारी है, भट्टिनी असाधारण। विषम परिस्थितियों से गुजरने के बाद भी भट्टिनी का आभिजात्य जीवित रहता है। निउनिया अभिशप्त वर्ग की नारी है, इसलिए बाणभट्ट के सहज मानवीय व्यवहार से उसमें साहस और विश्वास का सांर होता है। वह अपने विकारों को दबा नहीं पाती। वह उन्हीं के सहारे बाण के प्रेम को प्राप्त करना चाहती है। 'मैं तुम्हारा करावलम्ब चाहती हूँ।'' नारी का जन्म पाकर केवल लांछन पाना ही सार नहीं है। तुमने ही मुझे आनंद की ज्योतिष्कणिका दी थी। तुम्हीं मुझे तेज की चिनगारी दो आर्य।'' यह तेज की चिनगारी का एक निहितार्थ है। उसके मन में सामंती शोषण और दमन के विरूद्ध लड़ने की शक्ति देगा, ऐसी संभावना निपुणिका के उपर्युक्त कथन में झलकती है।

जहाँ तक निपुणिका के प्रेम का संबंध है वह बाण के प्रति तमाम श्रद्धा और भक्ति के बावजूद सामाजिक समता के धरातल पर ही उपस्थित हुआ है। निपुणिका नापित (नाई) जाति की कन्या है और बाणभट्ट ब्राह्मण जाति का है। इन दोनों में प्रेम और समानता का भाव दिखाकर उपन्यासकार ने अपने युग की अपेक्षाओं को चरितार्थ किया है। भट्टिनी के प्रेम की अपेक्षा यह ज्यादा वास्तविक, पार्थिव व मानवीय है। उसमें वासना तो नहीं है। किंतु देह कामना का नितांत अभाव भी नहीं दिखाई देता। निपुणिका का यह कथन द्रष्टव्य है।

'निर्दय, तुमने बहुत बार बताया था कि तुम नारी देह को देव मंदिर के समान पवित्र मानतो हो, पर एक बार भी तुमने समझा होता कि यह मंदिर हाड–मांस का है, ईंट चूने का नहीं।''

जिस क्षण मैं अपना सर्वस्व लेकर इस आशा से तुम्हारी और बढ़ी थी कि तुम उसे स्वीकार कर लोगे, उसी समय तुमने मेरी आत्मा को धूलिसात् कर दिया। उस दिन मेरा निश्चित विश्वास हो गया कि तुम जड़–पाषाण पिंड, जो, तुम्हारे भीतर न देवता है, न पशु है, है एक अडिग जड़ता।'

दरअसल, निपुणिका का प्रेम पूरी तरह से मानवीय संवेदना से युक्त है। ऐसे में वह अपने आस्पद से नितांत मानवीय स्वर का प्रेम चाहती है लेकिन इस मामले में बाण की दृष्टि बिल्कुल साफ है और वह निपुणिका के बढ़े हुए कदम को यकायक रोक देता है। भट्टिनी और बाण का प्रेम मौन और निगूढ़ है। सुरुचि, संयम और मर्यादा का उल्लंघन तो निपुणिका भी नहीं करती किंतु ऐसा गोपन भाव उसके यहाँ नहीं है।

निपुणिका और बाणभट्ट के प्रेम का महत्व इस बात में है कि दलित और ब्राह्मण के प्रेम का समर्थन करता है। बाणभट्ट दलितों में लक्षित होने वाली मानवीयता का समर्थन करता है इसीलिए यह निपुणिका को प्रेम का पात्र समझता है। तात्पर्य यह है कि बाणभट्ट परंपरागत रूढ़िवादी मूल्यों को अस्वीकार करते हुए दलितों की मनुष्यता को जिस ऊँचाई तक ले जाते हैं वह एक ओर तो तत्कालीन सामंती समाज व्यवस्था का अतिक्रमण है तो दूसरी तरफ वर्तमान के लिए उच्च मानवीय मूल्यों की स्थापना का प्रयास। इस प्रेम–संबंध की सार्थकता आज भी उतनी ही है जैसी बाणभट्ट के जीवन काल में थी। कहना न होगा कि प्रेम का यह स्वरूप हृदय के सत्य को सर्वोपरि मानते हुए ही प्राप्त किया जा सकता है। जहाँ समता, न्याय और आदर की भावना हो, वहीं इस प्रेम की संभावना की तलाश की जा सकती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बाणभट्ट के चरित्र को इस लिहाज से गढ़ा है कि उसके हृदय में राजा और रंक, ब्राह्मण और शूद्र सभी के प्रेम को समाहित किया जा सके। यह आज भी सामाजिक समता का ज्वलंत मुद्दा बन गया है। यह अकारण नहीं है कि समाज के उपेक्षित वर्ग से आयी हुई निपुणिका बाण के अप्रत्याशित प्रेम–व्यवहार के विरूद्ध हृदय की रागात्मक वृत्ति की विजय का प्रतीक है।

2.3 आधुनिकता बोध :

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में आधुनिकता का निरूपण–कालजयी रचनाओं में साहित्यकार वर्तमान की समस्याओं का समाधान अतीत में खेजता है। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में यही किया है। ठीक इसी प्रकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 7वीं शती से संबंधित अपनी कृति 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में 21वीं शती की समस्याओं को उठाकर उनके समाधान के संकेत दिए हैं। आचार्य द्विवेदी ने अपनी कुशल प्रतिभा द्वारा सम्राट हर्षवर्द्धन के सभा पंडित बाणभट्ट की आत्मकथा में तत्कालीन संदर्भों के साथ–साथ सामयिक संदर्भों को भी इस प्रकार अनुस्यूत कर दिया है कि आलोच्य उपन्यास जीवन्त कथा का रूप ग्रहण करने के साथ–साथ कृति रूप में महान बन पड़ा है। द्विवेदी जी ने अनेक इक्कीसवीं शती के सामयिक, जलते हुए प्रश्नों को इस ऐतिहासिक उपन्यास के साथ इस प्रकार अनुस्यूत कर दिया है कि न तो उपन्यास के युग के परिवेश में बाधा पहुँचती है और न ही कथा की रोचकता ही बाधित हुई है। इन समस्त समस्या संदर्भों को उपन्यास में निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत आ सकता है–

(क) नारी समस्या–नारी समस्या के अंतर्गत निम्नलिखित तीन समस्याओं का उल्लेख किया जा सकता है –

(1) नारी के अपहरण की समस्या – मध्यकाल में बहुओं और बेटियों के अपहरण तथा विक्रय का व्यवसाय चल रहा था। देवपुत्र तुवर मिलिंद की कन्या भट्टिनी दस्युओं द्वारा अपहरण करके लाई गई और मौखिरी कुल के राजवंश में पहुँचा दी गई। इसी प्रकार महामाया भैरवी जो कि वाग्दत्ता थी उसका अपहरण करके मौखनी नरेश गृहवर्मा से यह कहकर कि यह कुलूत राज की कन्या है, विवाह करा दिया गया। नारी अपहरण आज भी हमारे समाज की एक ऐसी विकराल और वीभत्स समस्या है कि देश की केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारें भी इसका निदान एवं नियंत्रण नहीं कर पा रही हैं। ऐसी बालाओं का अपहरण करने के बाद वेश्यावृत्ति अपनाने को विवश कर दिया जाता है।

सम्राट हर्षवर्द्धन की बहन राज्यश्री का दस्यु अपहरण करके ले गए थे, जिसे दिवाकर मित्र की सहायता से हर्षवर्द्धन तब बचा पाए थे, जबकि वह विवशता वश जल भरने का प्रयास कर रही थी। यह समस्या आज भी भारतवर्ष के सीमा प्रांत प्रदेशों में उग्रवादियों तथा आतंकवादियों द्वारा ज्यों की त्यों अपनाई जा रही है।

आचार्य द्विवेदी जी ने इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए लिखा है–''नारी से बढ़कर अनमोल रत्न और क्या

हो सकता है, पर उससे अधिक दुर्दशा किसकी हो रही है?'' बाणभट्ट के माध्यम से द्विवेदी जी कहते हैं कि–''स्त्री के दुःख इतने गंभीर हैं कि उसके शब्द उसका दशयांश भी नहीं बता सकते। सहानुभूति के द्वारा ही उस मर्म वेदना का किंचित आभास पाया जा सकता है।'' नारी शक्ति की महत्ता के संबंध में उपन्यासकार का मत है कि –''राज्य–गठन, सैन्य–संचालन, मठ–स्थापन और निर्जन–वास पुरुष की समताहीन, मर्यादाहीन, श्रृंखलाहीन महत्वाकांक्षा के परिणाम हैं। इनको नियंत्रित कर सकने की एकमात्र शक्ति नारी है।'' इतिहास साक्षी है कि इस महिमामयी शक्ति की उपेक्षा करने वाले साम्राज्य नष्ट हो गए हैं, मरु ध्विस्त हो गए हैं, ज्ञान और वैराग्य के जंजाल फेन–बुद–बुद् की भांति क्षणभर में विलुप्त हो गए हैं। नारी की शक्ति एवं महानता के संबंध में महामाया भट्टिनी को बताते हुए कहती है– 'क्या जाने क्या बात है बिटिया, गुरु ने मुझे बताया है कि नारी की सफलता पुरुष को बाँधने में है और सार्थकता उसको मुक्त करने में।

(2) विधवा एवं बाल विवाह की समस्या – बाणभट्ट की आत्मकथा में नागर समाज का वर्णन विशद रूप में किया गया है। उपन्यास की नायिका निपुणिका के माध्यम से लेखक ने विधवा समस्या को बड़े सशक्त ढंग से उजागर किया है। इसी प्रकार सुचरिता के माध्यम से उपन्यासकार ने इस समस्या को उठाया है। सुचरिता को उस समय यह भी पता नहीं था कि पति क्या होता है, और दाम्पत्य जीवन किसे कहते हैं? भारतवर्ष में ऐसी भी लड़कियाँ हैं, जिनका विवाह 3–4 वर्ष की आयु में कर दिया जाता है और शारदा कानून धरा का धरा रह जाता है।

स्माज के नियमों में अर्थात् पुरुष प्रधान समाज के नियमों में बँधी, विवश नारी की मुक्ति के लिए निपुणिका, बाणभट्ट से कहती है–भट्टिनी के उद्धार हेतु–''तुम असुर गृह में आबद्ध लक्ष्मी का उद्धार करने का साहस रखते हो; मदिरा के पंक में डूबी हुई कामधेनु को उबारना चाहते हो? बोलो, अभी मुझे जाना है। महावराह ने आज ही अनुमति दी है। इस सीता का उद्धार करते समय तुम्हें जटायु की भाँति शायद प्राण देना पड़ेगा। है साहस?'' इसीलिए इस नारी की मुक्ति की ओर संकेत करते हुए लेखक ने इस महीयसी (नारी) के संबंध में इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है– धर्म–कर्म, भक्ति–ज्ञान शांति–सौमनस्य कुछ भी नारी का सस्पर्श पाए बिना मनोहर नहीं होते–नारी देह वह स्पर्श मणि है, जो प्रत्येक ईंट–पत्थर को सोना बना देती है।''

(3) गणिका समस्या – पुरुष के एकछत्र साम्राज्य में पिसने वाली नारी का एक और भी रूप है और वह है गणिका या नगर वधू। आलोच्य उपन्यास में द्विवेदी जी ने मदन श्री विद्युतपांगा एवं चारुस्मिता के माध्यम से इस समस्या पर विचार किया है। उच्छृंखला, कामुक और लम्पट पुरुषों की वासना की शांति हेतु यह समस्या अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आज भी विद्यमान है। उस समय अर्थात् 7वीं शती में सम्राट हर्षवर्द्धन ने चारुस्मिता के नृत्य का आयोजन कान्यकुब्ज की विद्रोही जनता को वश में ले आने के शस्त्र के रूप में किया था। आज की सौन्दर्य प्रतियोगिताएँ इसी का सुधरा हुआ रूप है, जो वर्तमान समाज में व्याप्त है। लेखक कहता है – 'गणिका नगर का श्रृगार होती है या नगर का अंगार? वह क्या एक ही साथ अमृत और विष का मिश्रण है?''

इस उपन्यास में नारियों के उद्धार की कथा ही प्रमुख है और नारी मुक्ति की समस्या प्रधान है। कथानक और सारी घटनाएँ इसी बात को व्यंजित करती हैं। नारी समस्या समाज की एक ज्वलंत एवं बुनियादी समस्या है, जिसे सुलझाये बिना न राष्ट्र का कल्याण संभव है और न ही मानवीयता की रक्षा। अतः नारी के उद्धार में, नारी की हित साधना में समूचे मानव समाज की हित रक्षा है।

(जाति व्यवस्था का विकृत रूप)– प्रस्तुत उपन्यास में भारतवर्ष की सारी समस्याओं की जड़ और अराजकता तथा अशान्ति का कारण जातिवाद माना गया है। भट्टिनी बाण से कहती है– ''मैं दूसरी बात सोच रही थी, भट्ट! महामाया ने ठीक कहा है कि राजाओं और राजपुत्रों की ओर ताकते रहने से आर्यावर्त का उद्धार नहीं होगा।'' भट्टिनी पुनः बाणभट्ट से कहती है–''एक बात बताऊँ भट्ट, मेरा जनम रोमकपत्तन के उत्तरवर्ती अस्मीय वर्ष में हुआ था, मैं वहाँ से पुरुषपुर तक पिता की गोद में बड़ी हुई हूँ। मैंने अनेक देश देखे हैं, अनेक समाज देखे हैं, अनेक जातियाँ देखी हैं,

बाल्याभाव के कारण सबका रहस्य नहीं समझ सकी हूँ, परन्तु आर्यावर्त्त जैसी विचित्र समाज व्यवस्था मैंने कहीं नहीं देखी है। यहाँ इतना स्तर भेद है कि मुझे आश्चर्य होता है कि यहाँ के लोग कैसे जीते हैं।

भारतीय जाति प्रथा ने मानव मन में उठने वाले रागात्मक भाव को किस प्रकार दमित किया है इस संबंध में भट्टिनी कहती है– 'यही देखो, तुम यदि किसी यवन–कन्या से विवाह करो तो इस देश में यह एक भयंकर सामाजिक विद्रोह माना जाएगा। परंतु यह क्या सत्य नहीं है कि यवन कन्या भी मनुष्य है और ब्राह्मण युवा भी मनुष्य है।'' भारतीय समाज के स्तर भेदों को बताते हुए भट्टिनी कहती है– ''महामाया जिन्हें म्लेच्छ कर ही हैं वे भी मनुष्य हैं। भेद इतना ही है कि उनमें सामाजिक ऊँच–नीच का ऐसा भेद नहीं है। जहाँ भारतवर्ष के समाज में एक सहस्र स्तर हैं वहाँ उनके समाज में कठिनाई से दो–तीन होंगे। बहुत कुछ इन आभारों के समान समझो। भारतवर्ष में जो ऊँचे हैं वे बहुत ऊँचे हैं, जो नीचे हैं उनकी निचाई का कोई आर–पार नहीं, परंतु उनमें सब समान हैं। उनकी स्त्रियों में रानी से लेकर परिचारिका तक के सारे गणिका से लेकर बार–विलसिनी तक के सैंकड़ों भेद नहीं हैं। वे सब रानी हैं, सब परिचारिका हैं।''

भारतवर्ष में यह केवल मध्यकालीन परिस्थितियों के बी में से उभरी समस्या नहीं है, आधुनिक परिस्थितियों में तो यह और भी विकट रूप में व्याप्त हो गई है। अतः यह समस्या जितनी प्राचीन है उतनी ही समकालीन भी है। भट्टिनी के उपर्युक्त शब्दों में जातिवाद के विरोध में आधुनिकता का स्वर सुना जा सकता है। उपन्यास में हर कहीं जाति, वर्ण आदि संकीर्ण मनोवृत्तियों का खंडन किया गया है और उन सबके बदले में मनुष्यता का समर्थन किया गया है। मनुष्य–मनुष्य के बीच की यह खाई की समस्त अनर्थों का कारण है। इसकी भरपाई की आवश्यकता मध्य युग में थी, उससे भी बढ़कर आज की परिस्थितियों में है। हरिजनों या निम्नवर्ण पर सवर्णों या उच्च वर्णों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों के कारण हरिजनों को सामूहिक रूप से हिंदू धर्म छोड़कर अन्य धर्मों का अनुयायी बनने को विवश होना पड़ रहा है।

(ग) प्रवृत्ति मार्ग पर बल – इस उपन्यास में लौकिक जीवन के अन्योन्य मानव–सम्बन्धों की आवश्यकता एवं सार्थकता को प्रतिष्ठित किया गया है। जो वासनाएँ या लौकिक सुख कुण्ठा के कारण माने जाते हैं, वे ही विकास का पथ प्रशस्त करने वाले हैं। इस सत्य की प्रतीति इस उपन्यास में कराई गई है। द्विवेदी जी ने निवृत्ति मार्ग का निषेध एवं प्रवृत्ति मार्ग को स्वीकारा है, जो तत्कालीन युग के संदर्भ में अद्‌भुत होने पर भी आधुनिक युग के संदर्भ में उतना ही ग्राह्य है। द्विवेदी जी इसे भारतीय परम्परा की अन्यतम देन मानते हुए बाणभट्ट के मुख से कहलवाते हैं, ''भारतीय समाज ने बंधन को सत्य मानकर संसार को बहुत बड़ी चीज दी है।'' सुचरिता के प्रसंग मं जिसका पति अमितकांति उसे छोड़कर संन्यासी हो जाता है, निवृत्ति मार्ग का निषेाध करता हुआ कितना सटीक कहता है– 'आर्ये, संयत हो जाओ, वृथा उद्विग्न क्यों हो रही हो? माता ने करुण नेत्रों से पुत्र की ओर देखा, बोली 'बेटा, स्वर्ग में ऐसी कौन–सी अप्सराएँ मिलती होंगी, जिनके लिए तू इस मणिकांचन प्रतिमा को छोड़कर तपस्या कर रहा है?'' जब संन्यासी पुत्र पर माता के स्नेहिल मनोहर भावों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा तो माता ने ही दूसरा रूप धारण किया– 'अरे ओ मूढ़, रटी हुई बोली बोल रहा है तू। भंड है वह धर्माचार, जो अपनी माता को भी पहचानने में लज्जा अनुभव करता है। इस दुःखमय संसार को और भी दुःखमय बनाकर ही क्या तेरा सुख का राजमार्ग तैयार होगा? स्वार्थी है तेरा मार्ग, धिक्कार है तेरे पौरुष को।''

महाभारत के मुनि वेदव्यास ने इसीलिए कहा था– मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं। बाणभट्ट की आत्मकथा की सुचरिता भी इसी प्रवृत्ति मार्ग का पक्ष लेते हुए कहती है– ''मानव–देह केवल दंड भोगने के लिए नहीं बनी है, आर्य! यह विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि है। यह नारायण का पवित्र मंदिर है। पहले इस बात को समझ गई होती, तो इतना परिताप नहीं भोगना पड़ता। सुचरिता इसी संबंध में पुनः बाणभट्ट से कहती है– 'यह प्रमाद है आर्य, कि यह शरीर नरक का साधन है। यही बैकुंठ है। इसी को आश्रय करके नारायण अपनी आनंदलीला प्रकट कर रहे हैं।'' न तो

प्रवृत्तियों को छिपाना उचित है, न उनसे डरना कर्त्तव्य है और न लज्जित होना युक्तियुक्त है।

(घ) स्वावलम्बन की प्रेरणा – द्विवेदी जी ने वेद–उपनिषद् के तत्त्व–चिंतन, सनातन धार्मिक परम्परा या परंपरित नैतिकता के आधार पर नहीं, यथार्थ जीवन–परिस्थितियों के साक्ष्य में मानव कर्त्तव्य का निरूपण किया है। उन्होंने बहुत लंबे अर्से से चली आइ कार्य परम्परा के विपरीत एक दूसरी परम्परा का सूत्रपात किया है, जिसका मूल मंत्र है पौरुषता और स्वावलम्बन। किसी अज्ञात सत्ता के भरोसे पर जीना कापुरुषता है, विपरीत परिस्थितियों के आगे झुकना या उनसे भाग खड़े होना निरी कायरता है और अपने ही भीतर स्थित अपार क्षमता को भूलकर दूसरे का मुँह ताकना आत्मप्रवंचना है –यह संदेश उपन्यास के कथ्य के भीतर से उभरता है। अपनी शक्ति को भूले हुए अपनी ही क्षमता से अनजान भारतवर्ष को सुप्त चेतना को उद्‌बुद्ध करने के लिए ऐसे उद्‌बोधनकारी मंत्र की आवश्यकता थी, जो राष्ट्रीय जीवन पर ही नहीं, सारे विश्वजीवन पर छा सके। इसीलिए उपन्यास में गैरिक धारिणी भैरवियाँ मधुर उदात्त कंठ से जनता का आह्‌वान करते हुए गा रही हैं –

''आर्यावर्त्त के तरुणों, जीना सीखो, मरना सीखो, इतिहास से सीखना सीखो। आर्यावर्त्त नाश के कगार पर खड़ा है। जवानों, प्रत्यंत–दस्यु आ रहे हैं''

''राजाओं का भेरासा करना प्रमाद है, राजपुत्रों की सेना का मुहँ ताकना कायरता है। आत्मरक्षा का भार किसी एक जाति पर छोड़ना मूर्खता है। जवानो, प्रत्यंत–दस्यु आ रहे हैं।''

इसी प्रकार अवधूत अघोर भैरव की शिष्या महामाया भैरवी जनसमूह को संबोधित करती है ''यह पहला अन्याय नहीं है, अंतिम भी नहीं होगा.....इसके लिए न्याय की प्रार्थना व्यर्थ है। अमृत के पुत्रों, धर्म की रक्षा अनुनय–विनय से नहीं होती, शास्त्र वाक्यों की संगति लगाने से नहीं होती, वह होती है अपने को मिटा देने से। न्याय के लिए प्राण देना सीखो, सत्य के लिए प्राण देना सीखो, धर्म के लिए प्राण देना सीखो। अमृत के पुत्रो, मृत्यु का भय माया है।

स्वावलम्बी बनने की यह प्रेरणा, स्व की रक्षा के लिए संगठित होकर प्राण देने के लिए तत्पर रहना आज के युग के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता है। भारतवर्ष की आधुनिक परिस्थितियों में जबकि भाड़े के आतंकवादी खून खराबा कर रहे हैं, इसका एकमात्र उपाय यही है।

(ङ) धर्मनिरपेक्षता – संसार में धर्म के नाम पर जितना रक्तपात हुआ है, शायद ही अन्य किसी कारण से हुआ हो। आज भी धर्म के नाम पर तथा धर्म के अंदर ही उसके सम्प्रदायों में हिंसा अनवरत रूप से जारी है। ईसाइयों में कैथोलिक तथा प्रोटोस्टेंटों में, मुसलमानों में सिया तथा सुन्नियों में यह खूनी जंग जारी है।

मध्य युग में भी सम्राट हर्षवर्द्धन के समय में ब्राह्मण धर्म तथा बौद्ध धर्म में तथा राममार्गी अघोर भैरवों में यह द्वेष भावना चरम पर थी। कान्यकुब्ज के समय–समय पर होने वाले अलग–अलग धर्मों के सम्मेलन इस तथ्य के प्रमाण हैं। मौखिरीवंश में ब्राह्मण धर्म का प्रचलन था तो दूसरी ओर स्वयं सम्राट हर्षवर्द्धन आचार्य सुगतभद्र से प्रभावित हो बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए थे। कान्य कुब्ज में आचार्य भर्वुपा के आने के समाचार से बौद्ध संन्यासी वसुभूति को कष्ट हुआ था। धर्मावलम्बियों में शास्त्रार्थ होता रहता था। बाणभट्ट के चचेरे भाई उडुपतिभट्ट का बौद्ध पंडित वसुभूति के साथ शास्त्रार्थ हुआ था। इस शास्त्रार्थ में उडुपतिभट्ट की विजय ब्राह्मण धर्म की विजय थी। परिणामस्वरूप महाराजा हर्षवर्द्धन की पुनः ब्राह्मण धर्म में आस्था हो गई थी।

एक धर्म का अनुयायी दूसरे धर्मावलम्बियों पर आक्षेप करता था। अघोर भैरवी का बाणभट्ट के साथ वातार्लाप देखिए –

''ब्राह्मण है?''

''हाँ, आर्य!''

'तेरी जाति ही डरपोक है। क्यों रे, महावराह पर तेरा विश्वास नहीं है?''

''है, आर्य!''

''झूठा! तेरी जाति ही झूठी है! क्यों रे, तू आत्मा को नित्य मानता है?''

''मानता हूँ, आर्य!''

''पाखंडी! तेरे सब शास्त्र पाखण्ड सिखाते हैं। क्यों रे, कर्मफल मानता है?''

''प्रपंची! तेरी जाति ही प्रपंची है। सौ बात क्यों समझता फिरता है? एक को समझ और उसी को कर।''

उपर्युक्त संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि आज भी भारतवर्ष में तथा इससे बाहर धर्म के नाम पर आपसी धर्मावलम्बियों में कटुता विद्यमान है। आचार्य द्विवेदी जी ने आज के संदर्भ में इस समस्या का समाधान सम्राट हर्षवर्द्धन द्वारा सर्वधर्म समभाव या धर्म निरपेक्षता के सिद्धांत द्वारा करवाया है। यथा–'दूसरे दिन नगर में डांडी पिटवा दी गई कि शास्त्रार्थ–विचार में उड्पतिभट्ट विजयी हुए हैं और महाराजाधिराज को ब्राह्मण धर्म में फिर आस्था हो गई है। अब से ब्राह्मण पंडितों का ठीक उसी प्रकार राजसभा में सम्मान होगा, जिस प्रकार महाराजा गृहवर्मा के समय में था। महाराजाधिराज ने लगभग सौ सामाध्यायियों को नवीन रूप में भूमिदान किया है यद्यपि चतुर्वेद, त्रिवेद और द्विवेद कहकर ब्राह्मणों की भिन्न–भिन्न स्तर सीमा निर्धारित कर दी गई है तथापि व्यवहार में सबके साथ समान व्यवहार किया जाएगा। भर्वुशर्मा के वंशधर अभी बालक हैं। उन्होंने अभी तक दो वेदों का ही अभ्यास किया है। फिर भी इन द्विवेदों का सम्मान उसी प्रकार किया जाएगा जिस प्रकार चतुर्वेद और त्रिवेद ब्राह्मणों का। बौद्ध मठों को जो दान दिया गया था वह ज्यों का त्यों रहने दिया जाएगा। महाराजाधिरज ने सबका समानभाव से सम्मान करने का निश्य किया है।''

(च) लोक–कल्याण की भावना – लोक कल्याण की भावना प्रधान वस्तु है, वही सत्य है। आचार्य आर्यदेव ने सबसे बड़े सत्य को भी सर्वत्र बोलने का निषेध किया है। औषध के समान अनुचित स्थान पर प्रयुक्त होने पर सत्य भी विष हो जाता है। बाणभट्ट की आत्मकथा उपन्यास में कुमार कृष्णवर्द्धन, बाणभट्ट को लोककल्याण के लिए समझाते हैं। इसका वर्णन स्वयं बाणभट्ट कर रहा है– ''मुझे कुमार का वह उपदेश याद आ गया जिसमें उन्होंने संकोचपूर्वक बताया था कि झूठ बोलना सदा अनुचित नहीं होता।''

स्मता तथा मानवता के प्रसाद के लिए भट्टिनी चाहती है कि म्लेच्छ जातियों को भारतवर्ष में बर्बर समझा जाता है, दस्यु कहा जाता है, यदि उनमें अच्छे संस्कारों का प्रचार किया जाए तो मानवता का सबसे बड़ा हित होगा। अतः भट्टिनी म्लेच्छों के संस्कार हेतु बाण से कहती है–''उनके दर्पष रूप को ही जानते हो, उनके कोमल हृदय को एकदम नहीं जानते। क्यों भट्ट, ऐसा क्या नहीं हो सकता कि ऊँची भारतीय साधना उन तक पहुँचाई जा सके और निकृष्ट सामाजिक जटिलता यहाँ से हटाई जा सके? जब तक ये दोनों बातें साथ–साथ नहीं हो जातीं तब तक शाश्वत शांति असंभव है। महामाया आधा ही देख हैं। बौद्ध संन्यासियों ने भी आधा ही देखा था। भट्ट तुम यदि इस पूर्ण सत्य का प्रचार करो तो कैसा हो!''

भट्टिनी के अनुसार म्लेच्छों में भी एक रागात्मक हृदय है। म्लेच्छों में शायद शास्त्रचर्चा का अभाव है, धर्म साधना की कमी है, दरिद्रता का वास है। ये बातें अगर सुधार दी जाएँ तो वहाँ स्वर्ग बना ही हुआ है। भट्टिनी लोक कल्याण तथा विश्व में मानवता के प्रसाद के लिए बाणभट्ट से आग्रह करती है– 'तुम्हारे मुख में सरस्वती का निवास है। तुम इस म्लेच्छ कही जाने वाली निर्दयी जाति के चित्त में संवेदना का संचय कर सकते हो, उन्हें स्त्रियों का सम्मान करना सिखा सकते हो, बालकों को प्यार करना सिखा सकते हो। भट्ट....एक जाति दूसरी को म्लेच्छ समझती

है, एक मनुष्य दूसरे को नीच समझता है, इससे बढ़कर अशांति का कारण क्या हो सकता है, भट्ट! तुम्हीं ऐसे हो जा नर लोक से लेकर किन्नर लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय, एक ही करुणाचित चित्र को हृदयंगम करा सकते हो। मनुष्य लोभ–वश, मोह–वश, द्वेष–वश पशुता की ओर बढ़ता जा रहा है, तुम इसके हृदय को संवेदनशील और कोमल बना सकते हो। देखो भट्ट, इस शुष्क कांतार में अंतः स्रोता सरिता भी बढ़ रही है, इस भोग–पूजा के वत्कल के नीचे निर्मोह वैराग्य का देवता सतब्ध है, यह संवाद तुम्हारे सिवा दूसरा कौन दे सकता है! भट्ट, मैं तुम्हारी काव्य संपद पाकर शक्ति पा जाऊँगी। तुम मेरी विनती स्वीकार करो।''

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आधुनिक युग में मूल्यहीनता की घोर अंधकारमई परिस्थितियों में गुजरते हुए आज के समाज के संदर्भ में संघर्ष के पथ को प्रशस्त करने वाला यह उपन्यास और भी अर्थपूर्ण तथा प्रसंगिक लगता है। मध्यकालीन युग आधुनिकता के संदर्भ में और आधुनिक युग माध्यकालीन के संदर्भ में अभिव्यक्त हुआ है यह बाणभट्ट की आत्मकथा की सीमा है तो उपलब्धि भी है।

2.4 स्त्री–पात्र

भट्टिनी

'बाणभट्ट की आत्मकथा' की भट्टिनी भले ही काल्पनिक पात्र है परन्तु उपन्यासकार ने ऐतिहासिक व्यक्ति देवपुत्र तुवरमिलिंद की कन्या के रूप में उसका परिचय दिया है। प्रत्यंत दस्युओं द्वारा अपहरण किए जाने के पश्चात् वह मौखरि वंश के छोटे राजकुल के अनतःपुर में पहुँचा दी जाती है जहाँ से बाणभट्ट व निपुणिका उसे मुक्त कराते हैं तथा भद्रेश्वर दुर्ग पहुँचकर वह पुनः ससम्मान स्थाण्वीश्वर पहुँचती है। इस अवधि में वह बाणभट्ट की ओर आकर्षित भी होती है परन्तु उसका प्रेम वासना परक नहीं है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा के कथानक के आधार पर भट्टिनी की प्रमुख विशेषताओं को निम्न शीर्षकों के अंतर्गत बाँटा जा सकता है –

(1) **अद्वितीय सुन्दरी** – भट्टिनी के बाह्य व्यक्तित्त्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह असाधारण रूप से सुन्दर है। बाणभट्ट ने अनेक स्थलों पर उसकी सुन्दर रूपराशि मन के सुन्दर व पवित्र विचारों का वर्णन किया है। छोटे राजकुल के अन्तःपुर में स्त्री–वेश में पहुँचा बाणभट्ट उसके प्रथम दर्शन में ही उसके सौंदर्य से प्रभावित होता है। वह उसकी अलौकिक सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहता है कि ''उसकी धवल कांति दर्शक के नयन–मार्ग से हृदय में प्रविष्ट होकर समस्त कलुष को धवलित कर देती थी, मानो स्वर्गमंदाकिनी की धवल–धारा समस्त कलुष कालिमा का प्रक्षालन कर रही हो। मेरे मन में बार–बार यह प्रश्न उठता रहा कि इतनी पवित्र रूप राशि किस प्रकार, इस कलुष धरित्री में संभव हुई। निश्चय ही यह धर्म से निकली हुई है। मानो विधाता ने शंख से खोदकर, मुक्ता से खींच कर, मृणाल से सँवारकर चन्द्र किरणों के कूर्चक से प्रक्षालित कर, सुधाचूर्ण से धोकर, रजत रज से पोंछ कुटज, कुंद और सिंधुवार पुष्पों की धवल कांति से सजाकर ही उसका निर्माण किया हो।'' अतः यह निःसंकोच स्वीकार किया जा सकता है कि भट्टिनी नारी सौंदर्य में अद्वितीय है।

(2) **आत्मसम्मानिनी**– भट्टिनी के व्यक्तित्त्व की दूसरी विशेषता यह है कि वह अत्यंत ही आत्मसम्मानिनी है। वह राजकुल में उत्पन्न होने पर अपने प्राकृतिक गुण स्वाभिमान का किसी भी स्थिति में त्याग नहीं करती। भले ही प्रत्यंत दस्युओं द्वारा अपहरण किए जाने के पश्चात् छोटे राजकुल के अन्तःपुर में नारकीय जीवन भोगने को विवश होती है परन्तु वहाँ पर वह अपने स्वाभिमान की रक्षा करती है। निपुणिका व बाणभट्ट की सहायता से अन्तःपुर से मुक्त होने के पश्चात् भी उसे अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता थी परन्तु अपनी इस दुर्दशा के लिए एक सीमा तक उत्तरदायी उस राजवंश की सहायता लेने से इनकार कर देती है जो उसके स्वाभिमान का परिचायक है। ''मैं स्वाण्वीश्वर के राजवंश से घृणा करती हूँ। राजवंश से सम्बद्ध किसी व्यक्ति का आश्रय

पाने से पहले मैं यमराज का आश्रय ग्रहण करूँगी। भद्रेश्वर दुर्ग में सुरक्षित पहुँचकर भी वह बाणभट्ट के उसस आग्रह को अस्वीकार कर देती है जिसके अनुसार उसे राजवंश का आतित्य स्वीकार कर लेना चाहिए था। यह बाणभट्ट को अपने स्वाभिमान का परिचय देते हुए उसे दो टूक उत्तर देती हुई कहती है ''अथवा जहाँ कहीं भी तुम्हें उचित जान पड़े। परन्तु मैं मौखरियों या कान्य कुब्जेश्वर के राजवंश का आतिथ्य स्वीकार नहीं कर सकती।'' अन्ततः कुमार कृष्णवर्द्धन द्वारा उसे अपनी बहन के रूप में स्वीकार किए जाने के पश्चात् व किसी स्वतंत्र देश की राजकुमारी की मर्यादानुकूल अतिथि–सेवा का आश्वासन पाकर ही वह पुनः स्थाण्वीश्वर जाती है। अतः कहा जा सकता है कि आत्मसम्मान की भावना उसमें विद्यमान है।

(3) **निर्मल हृदय की स्वामिनी** – 'स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन वास करता है' यह उक्ति भट्टिनी पर पूर्णतः लागू होती है। यद्यपि उसमें आत्मसम्मान की भावना है परन्तु वह न्योयाचित अवसरों पर ही प्रकट होती है अन्यथा उसका हृदय बच्चों के हृदयों के समान निर्मल है। वह संसार में फैले द्वेष–भाव, कुटिल चालों या अवसरवादिता आदि से सर्वथा अपरिचित है। बाणभट्ट उसके निर्मल मन को देखकर कहता है कि उसके स्पर्श करने से ही स्वयं कलंक ही निष्कलंक हो जाता है। उसके हृदय की पवित्र भावनाओं व निर्मल मन को देखकर निपुणिका बाणभट्ट से कहती है ''निउनिया की बात छोड़ो, वह बहत्तर घाट का पानी पी चुकी है। वह भले–बुरे को पहचानती है, अपने पहचानने की शक्ति पर भरोसा रखती है; अपने कलुष–मानस के विकारों की दूसरों पर आरोप कर सकती है, पर भट्टिनी तो बालिका है। उन्हें संसार की कटुता का लेश मात्र भी ज्ञान नहीं है।'' भट्टिनी का मन इतना निर्मल है कि वह नारी–सुलभ ईर्ष्या से भी वंचित है। कोई भी स्त्री अपने प्रेमी को दूसरी स्त्री के साथ प्रेम–सम्बन्ध स्थापित करते नहीं देख सकती है। परन्तु भट्टिनी अपने देवता, उपास्य व प्रेमी बाणभट्ट के चरणों में उसकी दूसरी प्रेमिका निपुणिका को चरणों में लौटते हुए देखती है तभी वह अपने निर्मल व उदार हृदय का परिचय देते हुए अपने को छुड़ाने का प्रयास करते हुए बाणभट्ट से कहती है ''मत छुड़ाओं, भट्ट! उसे शांति मिल रही होगी।'' अतः कहा जा सकता है कि भट्टिनी का मन अत्यन्त निर्मल है। उसके मन में ईर्ष्या के स्थान पर पवित्र विचार की लब्धता है जिसके परिणामस्वरूप वह दूसरों के मन की पवित्र भावना को समझने में सक्षम है। फिर भले ही वह उसके प्रेमी की दूसरी प्रेमिका ही क्यों न हो।

(4) **मानवता की पक्षधर**– भट्टिनी का मन जितना निर्मल है, उसके विचार उतने ही उदात्त व मानवीय संवेदनाओं से ओत–प्रोत हैं। वह किसी भी समाज में जाति, वर्ण आदि आधारित सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार नहीं करती। वह विश्व बन्धुत्व की भावना लिए हुए है। वह भारतीय समाज में विभिन्न स्तरों पर फैले जातिगत व वर्गगत भेदभाव पर कटु प्रहार करते हुए कहती है कि ''यही देखो, तुम यदि किसी यवन कन्या से विवाह करो तो इस देश में यह भयंकर विद्रोह माना जाएगा परन्तु यह क्या सत्य नहीं है कि यवन–कन्या भी मनुष्य है और ब्राह्मण युवा भी मनुष्य है। महामाया जिन्हें म्लेच्छ कह रही है वे भी मनुष्य हैं। भेद इतना ही है कि उनमें सामाजिक ऊँच–नीच का ऐसा भेद नहीं है, जहाँ भारतवर्ष के समाज में एक सहस्र हैं वहाँ उनके समाज में कठिनाई से दो–तीन होंगे।'' भट्टिनी के इस कथन से उसके मन में मानवतावाद की छवि दिखाई देती है इसी संदर्भ में वह पुनः बाणभट्ट से पूछती है कि विभिन्न देशों के नागरिक आपस में घृणा क्यों करते हैं? वह स्वयं ही बाणभट्ट को विश्व–शांति का उपाय बताते हुए कहती है ''क्यों भट्ट, ऐसा क्या नहीं हो सकता है कि ऊँची भारतीय साधना उन (यवनों व म्लेच्छों) तक पहुँचाई जा सके और निकृष्ट सामाजिकि जटिलता यहाँ से हटाई जा सके? जब तक ये दोनों बातें साथ–साथ नहीं हो जातीं, तब तक शाश्वत शांति असंभव है। महामाया आधा ही देख रही हैं, बौद्ध संन्यासियों ने भी आधा ही देखा था। भट्ट, तुम यदि इस पूर्ण सत्य का प्रचार करो तो कैसा हो।'' अतः कहा जा सकता है कि भट्टिनी न केवल विश्व–शांति के विषय में सोचती है बल्कि अपनी मानवतावाी विचारों को व्यवहार में लाने के लिए उचित अवसर व व्यक्ति के मिलने पर प्रयास भी करती है।

(5) **भगवान मह्यवराह की अनन्य उपासिका**– भट्टिनी सम्पूर्ण रूप से धार्मिक स्त्री है। वह अपने इष्ट देव महावराह की अनन्य उपासिका है। उसे अपनी भक्ति, श्रद्धा व अपने भगवान महावराह पर इतना अधिक दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक विपत्ति को यह सोचकर हँसते हुए सह लेती है कि भगवान महावराह उसकी सहायता अवश्य करेंगे। स्थाण्वीश्वर के राजकुल के अन्तःपुर में भी वह भगवान महावराह की पूजा करती है। जब बाणभट्ट व निपुणिका उसे वहाँ से मुक्त करवाते हैं तब भी वह महावराह की मूर्ति अपने साथ लेकर जाती है। यहाँ तक कि जब वह भयवश नाव से कूदने के पश्चात् डूब रही होती है तब भी भगवान महावराह की पत्थर की मूर्ति को अपने शरीर से लगाए हुए ही कूदती है। उसे डूबने से बचाने के लिए बाणभट्ट जब उस मूर्ति को वहीं गंगा में विसर्जित कर देता है त बवह मिट्टी की छोटी–सी प्रतिमा बनाकर महावराह की उपासना करती है। उसका भगवान महावराह में इतनी अधिक श्रद्धा है कि लगभग प्रत्येक अवसर पर उन्हें स्मरण करती है, यहाँ तक कि बाणभट्ट व निपुणिका की सहायता भी भगवान महावराह का प्रसाद मानती है। ''माता से मैंने बौद्ध–दुःखवाद का भाव पाया है और पिता से भगवान अनुकम्पा का। मेरे ऊपर यहाँ महावराह की करुणा है, यही एक मात्र सुख है, और इसी करूणा ने मुझे तुमसे और भट्ट से मिलाया है। ना, निउनिया, रोने से क्या होता है। मैं आज भी अपनी रूलाई रोक नहीं सकती; परन्तु तू उसे सामयिक आवेग समझा। मैं सब कुछ भूल जाने की साधना कर रही हूँ। पिता से क्या फिर मिलन होगा? महावराह ही जाने, हम क्यों चिंता करें।'' राजमहल से निकल कर जीर्ण–शीर्ण मंदिर में पहुँचर भी वह अनवरत रूप से अपने इष्ट देव की पूजा करती है और तब तक अन्न जल ग्रहण नहीं करती जब तक वे उसकी पूजा–अर्चना न कर ले। अतः कहा जा सकता है कि वह महावराह की अनन्य उपासिका है।

(6) **कुंठाग्रस्त भाग्यवादिनी** – बालकों के समान निर्मल हृदय वाली, पवित्र विचारों व उच्च संस्कारें में पलने वाली भट्टिनी के मन–मस्तिष्क पर इस संसार की निष्ठुरता, काम–वासना, स्वार्थ आदि का इतना अधिक दुष्प्रभाव पड़ता है कि वह कुंठाग्रस्त हो जाती है तथा स्वयं को भाग्यहीन समझने लगती है। प्रत्यंत दस्युओं द्वारा अपहरण करने के पश्चात् जब वह स्थाण्वीश्वर के छोटे राजकुल के अन्तःपुर में पहुँचती है तब वह स्वयं को कलंकित व अपवित्र मानने लगती है। ''रो मत निउनिया, मैं बहुत रो चुकी हूँ। नगरहार से पुरुषपुर, पुरुषपुर से जालंधर और फिर न जाने कहाँ–कहाँ मुझे दुस्याओं के साथ घूमना पड़ा और अंत में स्थाण्वीश्वर के छोटे राजकुल में आश्रय मिला। जिस दिन नगरहार के मार्ग में दुस्याओं ने इस अभागे शरीर को स्पर्श किया, उस दिन तक मुझे देवपुत्र की कन्या होने का अभिमान था। एक मास तक अपने पिता का नाम लेकर रोती रही। बाद में मुझमें से वह अभिमान चला गया। आज भगवान की बनाई और लाखों कन्याओं की भाँति मैं भी एक मनुष्य–कन्या हूँ। उन्हीं की भाँति सुख–दुख का पात्र मैं भी हूँ। अभिमान नष्ट हो गया है। कौलीन्य गौरव विलुप्त हो चुका है। मैं घर्षिता, अपमानिता, कलंकिनी, सौ–सौ मानवियों की भाँति सामान्य नारी हूँ। जगत के दुःख प्रवाह में फेन बुद–बुद के समान मैं भी नष्ट हो जाऊँगी और प्रवाह अपनी मस्तानी चाल से चलता जाएगा।'' दस्युओं द्वारा स्पर्श किए जाने के पश्चात् स्वयं को कलंकिनी समझने वाली भट्टिनी यद्यपि बाणभट्ट के ओजस्वी संवाद से कुछ शांत अवश्य होती है, उसे ऊपर पुनः कुछ–कुछ विश्वास होने लगता है परन्तु उसके हृदय पर जो अपनी भाग्यहीनता होने की छवि अंकित हो चुकी है, उसे भुलाने में वह असफल रहती है। इसीलिए वह बाणभट्ट से आग्रह करती है कि वह उसको छोड़कर निपुणिका की चिंता करे। ''छोड़ो, मेरी सुरक्षा की बात। तुम मुझे नहीं बचा सकते। कोई मेरी रक्षा नहीं कर सकता। मैं जिसके साथ रहूँगी, उसी को डुबाऊँगी। मैं सत्यानाश लेकर पैदा हुई हूँ, वैसी रहकर जी सकती हूँ।''

(7) **समर्पित कृतज्ञ** – भट्टिनी राजवंश से सम्बन्धित है परन्तु उसके मन में इसका न तो कोई गर्व है और न ही वह दूसरों को अपने आदेशों पर चलाने का प्रयत्न करती है। वह अपने ऊपर उपकार करने वालों की विनीत कृतज्ञ बनी रहती है। छोटे राजकुल के अन्तःपुर से उसे मुक्त कराने के लिए निपुणिका व बाणभट्ट अपने प्राण

संकट में डालकर वहाँ जाते हैं तथा उसे वहाँ से मुक्त कराकर ले आते हैं। उन दोनों के इस निःस्वार्थ परोपकार के लिए वह उन दोनों की कृतज्ञ बनी रहती है। एक ओर बाणभट्ट के सद्‌गुणों को देखकर वह अपनी नारी–सुलभ लज्जा को त्याग कर उसके प्रति अपना प्रेम प्रकट करती है तथा उसे आर्यावर्त का दूसरा कालिदास बताती है। वहीं दूसरी ओर वह पान बेचने वाली साधारण–सी युवती निपुणिका के प्रति भी अपनी कृतज्ञता दर्शाती है। वह निपुणिका का पक्ष लेते हुए बाणभट्ट से कहती है–''निपुणिका ने कुछ अनुचित कहा हो, तो मन में न लाना। वह मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करती है। तुम्हारे ऊपर उसकी जो अपार श्रद्धा है, उसका प्रमाण तो मिल ही चुका है।'' अपने प्रेमी से उसकी दूसरी प्रेमिका के ऊपर सद्‌भाव बनाए रखने का आग्रह करना व निपुणिका के भावों को समझकर उनका सम्मान करना निश्चय ही भट्टिनी की कृतज्ञता को दर्शाते हैं।

(8) **उदात्त प्रेम की अतृप्त प्रेमिका** – भट्टिनी का शरीर जितना सुन्दर है, उसका हृदय जितना निर्मल है, उसके विचार जितने उदार हैं, उसका प्रेम भी उतना ही उदात्त है। छोटे राजकुल के अनतःपुर से मुक्त कराने वाले बाणभट्ट द्वारा उसे नदी में डूबने से बचाने के प्रयास में तथा बाद में स्वास्थ्य–लाभ के लिए उसको स्पर्श किए जाने के पश्चात् वह उसकी ओर आकर्षित होती है तथा बाण के समक्ष अपना प्रेम प्रस्तुत करती है। ''यह क्या चालकों की भाँति उत्तरल भाव है, भट्ट। मैं देवी नहीं हूँ हाड–माँस की नारी हूँ। मैं विघ्न–स्वरूपा हूँ, परन्तु मैं जानती हूँ कि मेरा विघ्न रूप होना ही विश्व का परित्राण है। तुम्हीं ने मुझे यह ज्ञान दिया है भट्ट और तुम्हीं उसे भुलवाने की प्ररोचित कर रहे हो? मैं हूँ चन्द्र दीधिति–सौ–सौ बालिकाओं के समान एक सामान्य बालिका। मैं हूँ तुम्हारी भट्टिनी।'' परन्तु उसके प्रेम में माँसलता नहीं है, काम–वासना नहीं है, केवल शारीरिक आकर्षण नहीं है। उसका प्रेम उदात्त है। बाणभट्ट के प्रति उसका प्रेम भावात्मक है। परन्तु वह अपने प्रेम को तृप्त नहीं होने देती। उसका प्रेम इतना उदात्त है कि वह अपने ही मुख से अपने प्रेमी बाणभट्ट को उसकी दूसरी प्रेमिका निपुणिका को दूर हटाने से रोकती है। क्योंकि वह निपुणिका के प्रेम को समझती है उसकी भावनाओं को समझती है। इसीलिए निपुणिका से अपने पाँव छुड़ाने का प्रयास करते हुए बाणभट्ट को रोकते हुए वह कहती है–''मत छुड़ाओं, भट्ट, उसे शांति मिल रही होगी'' अतः कहा जा सकता है कि उसका प्रेम उच्च आदर्श स्थापित करने वाला उदात्त प्रेम है वह सांसारिक प्रेम न होकर लोकोत्तर है।

महामाया :

चरित्र–चित्रणः

बाणभट्ट की आत्मकथा में सर्वप्रथम महामाया का परिचय एक संन्यासिनी के रूप में होता है। वस्तुतः वह एक अपहृत कन्या है जिसका विवाह छलपूर्वक महाराज विग्रह वर्मा के साथ कर दिया जाता है और उसे कुलूतराज की पुत्री बताया गया है जबकि वह वाभ्रव्य के समक्ष स्वीकार करती है ''मेरे पिता कुलूतराज नहीं हैं। अपहृत बालिका हूँ।'' महाराज विग्रह वर्मा के साथ विवाह होने से पूर्व उसका अघोर भैरव के साथ वाग्दान हो चुका था। कथानक के आधार पर महामाया के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर हृदयंगम किया जा सकता है –

(1) **आदर्श पतिव्रता स्त्री** – एक आदर्श भारतीय नारी सम्पूर्ण रूप से पति को समर्पित होती है। महामाया भी इन आदर्श भाव को अपने जीवन में व्यावहारिक रूप से प्रयोग में लाती है। उसका वाग्दान किसी पुरुष से होने के पश्चात् छल–कपट से उसका विवाह महाराज विग्रह वर्मा के साथ कर दिया जाता है। चूँकि एक आदर्श पतिव्रता नारी की भाँति केवल वाग्दान से ही महामाया उस व्यक्ति को अपने पति के रूप में स्वीकार कर चुकी है अतः वह महाराज विग्रह वर्मा के साथ विवाह होने के पश्चात् भी दूरियाँ बनाए रखती है। वह न तो राजा के व्यवहार से और

न ही उनकी वैभव–सम्पत्ति आदि से प्रभावित होती है। वह सीता के समान महाराज विग्रह वर्मा के अन्तःपुर में रात–दिन पूजा–पाठ में लगी रहती है, अपने चारों ओर बिखरे पड़े वैभव के प्रति उदासीन होती है। अन्ततः वह इस सुख–वैभव को त्याग कर तपस्या में लीन अपने पति के पास पहुँच जाती है। ''जिस पुरुष को मेरे पिता ने वाग्दान किया था, मैं उसी की पत्नी हूँ। महाराज ने मेरे भाव का आदर किया। उन्होंने बड़े सौजन्य और स्नेह से मुझे रखा है। परन्तु आज तक वे मुझे पत्नी रूप में पाने का मोह नहीं छोड़ सके हैं। जिस युवक को मेरे पिता ने मेरा वर चुना था वह निराश होकर संन्यासी हो गया। वह विंध्य–मेखला के धूम्रगिरि में न जाने क्या तपक र रहा है। आर्य, मुझे बराबर उसकी पुकार सुनाई देती है।'' इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने पति के लिए राजकुल के समस्त सुख–भोगों को त्याग कर संन्यासिनी बनने वाली महामाया वस्तुतः एक आदर्श पतिव्रता नारी है जो आगे चल कर अपने पति अघोर भैरव की सेवा में लीन रहती है।

समर्पित संन्यासिनी– महामाया एक समर्पित संन्यासिनी है वह अपने धर्म, अपने गुरु आदि सभी के प्रति सच्चे रूप से समर्पित है। वह संन्यासिनी की वेश–भूषा में जब प्रथम बार बाणभट्ट से भेंट करती है तब उसके व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए बाणभट्ट कहता है ''सामने एक गाड़ गैरिक वस्त्रधारिणी स्त्री थी। उसके एक हाथ में त्रिशूल था और देसरे में काला–सा कोई पात्र, खुले हुए पिंगल–वर्ग के केश गुल्फों तक लटके हुए ऐसे लग रहे थे मानो सांयकालीन अरुण मेघ–मंडल गैरिक वस्त्रों से इस प्रकार कुंडलित था, मानो धातुमयी अधित्यका के झाड़ फूले हुए हों। उसकी आँखें विकच कांचनार–कुसुम के समान लाला–लाल और फटी हुई थी और उनसे एक मंद–मंद रश्मि–सी निकल रही थी। उसकी मूर्ति मनोहर नहीं थी, पर वह भयंकर भी नहीं थी। यदि कड़क कर उसने पहले ही मुझे डाँट न दिया होता, तो निःसंदेह मैं उसे साक्षाद्विग्रहयारिणी चंडिका ही समझता।'' महामाया अपने वाम मार्गी अवधूत तथा पति अघोर भैरवी की साधना में संपूर्ण रूप से सहयोग देती है। वह साधना–गृह में अनुष्ठान की विधियों का सम्पादन का भार अपने ऊपर लेती है, वह ग्यारह पात्रों की स्तुति में अपना सहयोग देती है तथा शांति मंत्र आदि के उच्चारण में भाग लेती है। कहने का अभिप्राय यह है कि वह अपने गुरु अथवा पति की साधना में हर प्रकार से सहयोग देकर पाठकों की दृष्टि में एक समर्पित संन्यासिनी कहलाने की उत्तराधिकारिणी है। इसी प्रकार वह अपने पति रूपी गुरु अघोर भैरव की आज्ञा पाकर 'त्रिपुर भैरवी' के समान अपने शिष्यों व देश के सैनिकों तथा युवाओं को म्लेच्छवाहिनी का विरोध व उनसे संघर्ष करने के लिए उत्साहित करती है। अतः यह निर्विवाद के रूप में स्वीकार किया जा सकता है कि महामाया एक समर्पित व सच्ची संन्यासिनी है।

ओजस्विनी वक्ता – महामाया के व्यक्तित्व की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि वह ओजस्वी भाषण देने में सक्षम है। उसकी ओजपूर्ण वाणी न केवल स्थाण्वीश्वर के सैनिकों व युवकों को उत्साहित करती है बल्कि पाठकों को भी प्रभावित करती है। जब विरतिवज्र और सुचरिता को धर्म के विरूद्ध आचरण करने पर बन्दी बना लिया जाता है तब वह अपने भाषण से न केवल सभासदों बल्कि सामान्य जनता को भी इस अत्याचार के विरूद्ध नए सिरे से सोचने पर विवश करती है। ''अमृत के पुत्रों, मृत्यु का भय माया है। राज्य से भय दुर्बल–चित्त का विकल्प है। प्रजा ने राजा की सृष्टि की है। संघटित होकर म्लेच्छवाहिनी का सामना करो। देवपुत्रों और महाराजाधिराजों की आज्ञा छोड़ो। समस्त उत्तरापथ की लाज तुम्हारे हाथों में है।'' इसी प्रकार विद्रोह के लिए उत्तेजित भीड़ को शांत करते हुए वह अपने ओजस्वी भाषण से देश के युवकों को सीमा पार से होने वाले विनाश के प्रति सचेत करते हुए उन्हें अपना बलिदान देने के लिए कहती है। ''क्या ब्राह्मण क्या चांडाल, सबको अपनी बहू–बेटियों की मान–मर्यादा के लिए तैयार होना होगा। मैं भविष्य में देख रही हूँ। अमृत के पुत्रों, बड़ा दुर्घट काल उपस्थित है। राजाओं, राजपुत्रों, देवपुत्रों की आशा पर निश्चेष्ट बने रहने का निश्चित परिणाम पराभाव है। प्रजा में मृत्यु का भय छा गया है, यह अशुभ लक्षण है। अगर तुम आर्यावर्त्त को बचाना चाहते हो, तो प्राण देने के लिए तत्पर हो जाओ। धर्म के लिए प्राण देना किसी जाति का पेशा नहीं है, वह मनुष्य–मात्र का उत्तम लक्ष्य है। अमृत के पुत्रों, न्याय जहाँ से भी मिले, वहाँ से बलपूर्वक खींच लाओ।'' अतः कहा जा सकता है कि वह एक ओजस्विनी वक्ता है।

देशभक्ति –महामाया यद्यपि संन्यासिनी है परंतु वह अपने देश व समाज के हितों के प्रति सचेत भी है। वह संन्यासिनी के रूप में अपने देश व समाज का त्याग नहीं करती बल्कि उसके विकास व रक्षा में अपना रचनात्मक सहयोग भी देती है। वह विरतिवज्र व सुचरिता को बन्दी बनाने का विरोध करने के लिए राजसभा में पहुँच जाती है तथा वहाँ उपस्थित सभासदों को आगाह करती है कि उनके अन्याय व अत्याचार के कितने गंभीर परिणाम निकल सकते हैं इस प्रकार वह देश के व सम्पूर्ण समाज के व्यवस्थापकों को उचित सलाह देकर समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करती है। अघोर भैरव के कहने पर वह अपने देश की रक्षा के लिए त्रिपुर भैरवी का रूप धारण करती है तथा अपनी शिष्याओं को देशभर के युवकों, सैनिकों को म्लेच्छवाहिनी के प्रति संघर्ष करने के लिए प्रेरित करने के लिए भेजती है। इसके पूर्व देश की प्रजा को भी अपने प्राणों का बलिदान देकर देश व अपनी बहू–बेटियों की रक्षा करने का आह्वान करती है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि वह एक सच्ची देशभक्तिनी है। उसी के प्रयासों से उसके लाखों शिष्य पुरुषपुर के आगे एकत्र हो जाते हैं तथा तुअरमिलिंद उनको प्रतिशिक्षित व संगठित करने का प्रयास करता है ताकि म्लेच्छवाहिनी को रोका जा सके।

नारी सुलभ ममता से ओत–प्रोत – वस्तुतः नारी पहले है संन्यासिनी बाद में है। उसमें नारी–सुलभ ममता की गंगा–जमुना बहती है। भले ही अपरिचित बाणभट्ट के साथ तनिक कटु व्यवहार करती है, परन्तु बाद में उसे पुत्र समान मानती है। भट्टिनी पर तो वह अपनी ममता का घड़ा ही उड़ेल देती है। वह एक माता के समान भट्टिनी को अपनी गोद में बैठाती है, उसके अनतःस्थल तक पहुँचने का प्रयत्न करती है तथा उसे एक माता के समान नारी के अर्थ व सार्थकता का उपदेश देती है। वह भट्टिनी को बेटी मानकर सम्बोधित करते हुए कहती है ''क्या जाने क्या बात है बिटिया, गुरु ने मुझे बताया है कि नारी की सफलता पुरुष को बाँधने में है और सार्थकता उसको मुक्त करने में'' सम्मोहित बाणभट्ट के केशों में सप्रेम अँगुली फेरना, भट्टिनी को ढाँढस बँधाना आदि छोटी–छोटी बातों से संन्यासिनी महामाया में उमड़ते हुए ममता रूपी बादलों की स्पष्ट झलक देखी जा सकती है।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि महामाया वास्तव में भैरवी स्वरूपा है जो सामान्य परिस्थितियों में अपनी ममता को समाज व जरूरतमंदों पर लुटाती है, आवश्यकता पड़ने पर अपने ज्ञान से दूसरों के दुख कम करती है तथा देश व समाज पर पड़े संकटों को दूर करने के लिए त्रिपुर भैरवी का रूप भी धारण कर सकती है।

निपुणिका

चरित्र–चित्रण –निपुणिका 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की एक मुख्य स्त्री पात्रा है। वह हिंदी कथा साहित्य का एक अमर पात्र बन चुकी है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भट्टिनी की मुक्ति कथा से अधिक प्रभावशाली निपुणिका की व्यथा–कथा और उसके सेवा–भाव, त्याग आदि दिखाई पड़ते हैं। कथानक में निपुणिका को बाणभट्ट व भट्टिनी अधिकांश समय निउनिया कहकर पुकारते हैं। उसके पूर्वज किसी अस्पृश्य–जाति से संबंध रखते थे परन्तु गुप्त सम्राटों की नौकरी मिलने के कारण वे अब अपने आपको वैश्य–जाति का अंग मानने लगे थे तथा उनकी सामाजिक मर्यादा भी बढ़ गई थी। निपुणिका का विवाह किसी कान्दविक वैश्य के साथ हुआ था जो भड़भूजे से सेठ बना था परन्तु विवाह के एक वर्ष पश्चात् ही वह विधवा हो गई थी। परिस्थितिवश वह बाणभट्ट की नाटक मण्डली में सम्मलित हो गई थी परन्तु अपने प्रेम का अपमान होते देख वह वहाँ से भाग जाती है तथा स्थाण्वीश्वर में पान की दुकान चलाती है। छह वर्ष के पश्चात् पुनः भेंट होने पर वह बाणभट्ट से भट्टिनी की मुक्ति का आग्रह करती है तथा तत्पश्चात् बाणभट्ट व भट्टिनी के परस्पर आकर्षण को देखकर वह 'रत्नावली' के रंगमंच पर विष खाकर अभिनय के दौरान अपने प्राणांत करती है। कथानक के आधार पर निउनिया की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है –

यर्थावादिनी – निपुणिका की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह यथार्थवादिनी है। उसका यथार्थवाद न केवल स्वयं

उसकी रक्षा करता है बल्कि कई बार बाणभट्ट व भट्टिनी को भी गलत मार्ग पर चलने से रोकता है। पहली बार बाणभट्ट को कवि कल्पना व भावुकता के समुद्र से बाहर उस समय निकालती है जब वह आवेश में आकर भट्टिनी की सुरक्षा का भार अपने ऊपर लेता है, तब निपुणिका उसे यथार्थ से अवगत कराते हुए कहती है कि ''भट्ट, तुम बहुत ऊपर–ऊपर चक्कर काटते हो। कविता छोड़ो भट्टिनी की मर्मवेदना गंभीर है। सेवक उनके पहले भी थे; पर वे उनकी रक्षा न कर सके। अप्रमेय वाहिनी तब भी थी और अब भी हैं; पर भट्टिनी को वह बचा नहीं सकी। तुम अकेले क्या कर लोगे? सोच–समझकर प्रतिज्ञा करो।'' इसी प्रकार वह बाणभट्ट के नारी–संबंधी विचारों को भी काल्पनिक मानती है जिसमें भावुकता अधिक और यथार्थ अत्यधिक है। नारी–शरीर को देव–मंदिर मानने वाले बाणभट्ट को यथार्थ के धरातल पर खड़ा करते हुए निपुणिका उससे कहती है कि ''निर्दय, तुमने बहुत बार बताया था कि तुम नारी–देह को देवमंदिर के समान पवित्र मानते हो, पर एक बार भी तुमने समझा होता है कि यह मंदिर हाड़–माँस का है, ईंट–चूने का नहीं। जिस क्षण मैं अपना सर्वस्व लेकर इस आशा से तुम्हारी ओर बढ़ी थी कि तुम उसे स्वीकार कर लोगे, उसी समय तुमने मेरी आशा को धूलिसात् कर दिया।'' अतः कहा जा सकता है कि बाणभट्ट जहाँ कवि होने के नाते भावुक और कल्पनाशील था वहीं निपुणिका उसे अपने यथार्थ से मानव–सुलभ प्रवृत्तियों से अवगत कराने का प्रयास करती है। अतः वह यथार्थ के बहुत अधिक निकट है।

करुणा व दया की मूर्ति – निपुणिका का हृदय करुणा व दया से ओत–प्रोत है। उसने अपने जीवन में इतने कष्ट उठाए हैं कि वह दूसरों के कष्टों से कातर हो उठती है। अतः वह कोमल हृदया स्त्री है। बाणभट्ट की नाटक मण्डली को छोड़कर भागी निपुणिका स्थाण्वीश्वर में पान की दुकान चलाती है और छोटे राजकुल के अनतःपुर में पान लेकर जाती है जहाँ उसकी भेंट देवपुत्र तुंवरमिलिंद की पुत्री भट्टिनी से होती है जिसे कुछ दस्यु अपहरण करने के पश्चात् यहाँ पहुँचा देते हैं। अपने ही कष्टों से दुखी निपुणिका भट्टिनी की विवशता, उसके दुख–संताप आदि को देखकर द्रवित हो उठती है तथा उसे वहाँ से मुक्त कराने के लिए बाणभट्ट से सहायता माँगती है। अपने प्रयास से सफल होने पर निपुणिका को इस राज–विद्रोहात्मक कार्य के दड–स्वरूप मृत्यु की सजा सुना दी जाती है। अतः कहा जा सकता है कि अपने कार्यों का परिणाम भली–भाँति जानते हुए भी निपुणिका भट्टिनी की दुर्दशा पर दया करके उसे मुक्त कराती है। निपुणिका के हृदय में भट्टिनी के प्रति यह दया भाव व करुणा अंत तक बनी रहती है। आभीर सामंत ईश्वरसेन के सैनिकों द्वारा आक्रमण से भयभीत भट्टिनी जब नाव से छलांग लगा कर गंगा में कूद पड़ती है तब निपुणिका भी उसे बचाने के प्रयास में कूद पड़ती है तथा बाणभट्ट से आग्रह करती है कि वह पहले भट्टिनी को बचाने का प्रयत्न करे। ''निपुणिका ने चिल्ला कर कहा, मुझे छोड़ो, भट्टिनी को सम्भालो। उधर देखो–उधर.....।'' अतः कहा जा सकता है कि निपुणिका दया व करुणा की साक्षात मूर्ति है।

अद्वितीय प्रेमिका – निपुणिका के व्यक्तित्व की एक अन्य बड़ी विशेषता यह है कि वह अद्वितीय प्रेमिका है। बाणभट्ट की नाट्य मंडली में सम्मिलित होते समय उसकी अवस्था सोलह वर्ष के पास थी और वहाँ बाणभट्ट के आचार–विचार से प्रभावित होकर निपुणिका उसकी ओर आकर्षित हो जाती है। वह मूक संकेतों से बाणभट्ट के समक्ष अपने प्रेम को प्रकट भी करती है परन्तु बाणभट्ट की उपेक्षापूर्ण हँसी को देखकर वह स्वयं को अपमानित अनुभव करती है तथा उसकी नाट्य–मंडी को छोड़कर भाग खड़ी होती है। छह वर्षों के पश्चात् जब बाणभट्ट उसकी पान की दुकान के सामने से निकलता है तब वह बाणभट्ट को आवाज देकर पुकारती है तथा वहाँ अपने प्रेम को शब्दों में व्यक्त करते हुए कहती है– ''हाँ भट्ट मेरे भाग आने का कारण तुम्हीं हो; परन्तु दोष तुम्हारा नहीं है। दो मेरा ही है।'' उसके प्रेम की विचित्रता यहीं से आरम्भ होती है जब वह बाणभट्ट से एक देव–मंदिर के समान पवित्र स्त्री के उद्धार के लिए सहायता माँगती है जसमें प्राण खोने का भी भय है। ''इस सीता का उद्धार करते समय तुम्हें जटायु की भाँति शायद प्राण दे देना पड़ेगा। है साहस?'' इस संसार में शायद ही कोई ऐसी प्रेमिका हो जो दूसरी युवती की रक्षा के लिए अपने प्रेमी को संकट में डालने का विचार करे। आगे चलकर निपुणिका अपने प्रेम की अद्भतता को उस समय पुनः दर्शाती है जब आभीर सामंत ईश्वर सेन के सैनिक बाणभट्ट व अन्य सैनिकों की नावों को घेर

लेते हैं तब भट्टिनी भय से आक्रांत होकर नदी में कूद जाती है तथा उसके तुरन्त बाद कूदने वाली निपुणिका बाणभट्ट से आग्रह करती है कि वह पहले भट्टिनी की रक्षा करे जबकि वह जानती थी कि भट्टिनी भी बाणभट्ट की ओर आकर्षित हो रही है। उसके प्रेम की चरम–सीमा उस समय देखने को मिल जाती है तब वज्रतीर्थ के मंदिर में सम्मोहित बाणभट्ट की बलि देने के लिए अघोरघंट व चंडमंडना को धक्के से गिरा देती है तथा हवन–कुण्ड को विध्वस्त कर देती है। अतः कहा जा सकता है कि निपुणिका का प्रेम अद्वितीय है। उपन्यास के अन्त में 'रत्नावली' नाटक को अभिनीत करते समय वासवदत्ता की भूमिका में निपुणिका वास्तव में जहर खाकर अपने राजा रूपी बाणभट्ट का हाथ रत्नावली के हाथ में देकर अपना प्राणांत कर लेती है। वस्तुतः उसका बाणभट्ट के प्रति प्रेम उस कथन पर आधारित है जो योगी महाराज ग्रहवर्मा से कहता है ''अपने को निःशेष भाव से दे देना ही वशीकरण है।''

बुद्धिमति – भले ही निपुणिका अशिक्षित युवती है परन्तु वह प्रत्येक कार्य को भली–भाँति सोचकर व अपने विवेक से करती है। भले ही वह कार्य किसी पुरुष के लिए भी दुस्सह हो परन्तु निपुणिका उसे भी अपने विवेक से आसान–सा बना लेती है। छोटे राजकुल के अन्तःपुर में पुरुषों का प्रवेश वर्जित था परन्तु भट्टिनी की मुक्ति के लिए निपुणिका बाणभट्ट को स्त्री वेश में ले जाती है तथा भट्टिनी को मुक्त भी कराती है। इसी प्रकार बाणभट्ट की नाट्य–मंडली को छोड़कर जब वह भागती है तब उसकी एक बार पुनः बाणभट्ट को देखने की इच्छा जागृत होती है तथा अपनी कामना पूर्ण करने के लिए वह शार्विलक की दुकान पर चषक भरने का काम रकती है तथा अपनी पहचान छुपाने के लिए वह बालक–वेश में वहाँ जाती है। अन्ततः वह अपने उद्देश्य में सफल होती है। ''सौभाग्य से वह उस समय प्रसन्न था और चषक भरने के काम में मुझे नियुक्त कर लिया। तुम दंडधरों के साथ आए और मैंने तुम्हें जी भर कर देखा।'' एक अन्य घटना में भी निपुणिका अपनी असाधारण बुद्धि व विवेक के बल पर समस्या का निवारण करती है। बाणभट्ट की नाट्य–मंडली में एक जटिल वटु को स्वर्ण–मृग की भूमिका में रंगमंच पर उतारा जाता है परन्तु वह अधिक से अधिक समय तक दर्शकों के समक्ष रहने के प्रायास में ऊटपटांग अभिनय करता है तब ऐसी परिस्थिति में रंगमंच पर चलते अभिनय के दौरान ही निपुणिका अपने विवेक का प्रयोग कर नृत्य करती हुई रंगमंच पर आती है और अभिनय करती हुई जटिल वट रूपी मरीच की दाढ़ी पकड़कर ले जाती है और इस प्रकार बाणभट्ट का वह नाटक निर्विघ्न समाप्त होता है। अतः कहा जा सकता है कि निपुणिका अपने विवेक व अपनी बुद्धि के बल पर असाधारण कार्य को भी साधारण–सा बना देने में सक्षम है।

दृढ़ निश्चयी– निपुणिका की एक अन्य विशेषता यह है कि वह जिस कार्य को करने का संकल्प करती है उसे पूरा करने के लिए अपनी जी–जान लड़ा देती है। वह किसी भी कार्य को अधूरे मन से नहीं करती। उदाहरण के लिए वह भट्टिनी को स्थाण्वीश्वर के छोटे राजकुल के अन्तःपुर से मुक्त कराने का प्रण लेती है। इसके लिए वह बाणभट्ट से सहायता माँगती है परन्तु इसके साथ ही वह स्पष्ट भी कर देती है यदि बाणभट्ट ने सहायता नहीं की तो वह अकेली ही उस कार्य को पूरा करेगी। ''आज ही उत्तम अवसर है। महावराह ही मेरे वास्तविक सहायक हैं। उन्होंने ही तुम्हें यहाँ भेजा है। तुम न आते तो भी मुझे तो यह करना ही था।'' इन पंक्तियों में उसका आत्मविश्वास व दृढ़ निश्चय झलकता है। अन्ततः वह भट्टिनी को मुक्त कराने में सफल रहती है परन्तु उसकी सुरक्षा अभी भी खतरे में है और निपुणिका इसकी सुरक्षा के प्रति बेहद सचेत है। महाराज हर्षवर्द्धन की सभा में पद पाने व उनका भट्टिनी के नाम निमंत्रण–पत्र देखकर वह अज्ञात अनिष्ट की शंका से भयभीत हो उठती है परन्तु भट्टिनी की सुरक्षा पर वह दृढ़ शब्दों में कहती है – ''भट्टिनी की मर्यादा के विरूद्ध पत्ता भी खड़का तो रक्त की नदी बह जाएगी। और कोई नहीं मरेगा तो तुम और मैं तो निश्चय ही इस कार्य में बलि हो जाएँगे। तुम प्राण देने में क्यों हिचकते हो?'' निपुणिका के इन वचनों में त्याग के साथ–साथ दृढ़ निश्चय की भावना स्पष्ट झलकती है।

नारी जाति की शिरोमणि – निपुणिका की एक अन्यतम विशेषता यह भी है कि उसमें नारी–सुलभ ईर्ष्या का अभाव है। वह अपने प्रेमी बाणभट्ट को भट्टिनी की ओर आकर्षित होता देख स्वतः ही पीछे हट जाती है। इससे उसके

असीम प्रेम की गहराई के साथ–साथ यह भी पता चलता है कि उसमें नारी–सुलभ–ईर्ष्या का अभाव है। सही अर्थों में देखा जाए तो उसमें स्त्रीत्व के सभी अच्छे गुण विद्यमान हैं; दुर्गुण तो न के बराबर हैं। यही कारण है कि अभिनय के दौरान जहर खाकर प्राणांत करने वाली निपुणिका के लिए चारुस्मिता भी कह उठती है ''निपुणिका स्त्री–जाति का श्रृंगार थी, स्त्रीत्व की मर्यादा थी, हमारे जैसी उन्मार्गगामिनी नारियों की मार्गदर्शिका थी।'' इसी प्रकार वह मदन श्री के रूप–गर्व को तोड़ने के लिए कहती है कि हाँ बाणभट्ट पुरुष नहीं है बल्कि वह देवता है क्योंकि उसमें वे गुण, संस्कार विद्यमान थे जो नारी को सम्मान का पात्र बनाते हैं परन्तु यदि समाज उसे उचित सम्मान न दे सका तो यह निश्चय ही समाज की विडम्बना मानी जानी चाहिए। वह समाज–व्यवस्था में नारी के प्रति काम–वासना की भूल भावना का विरोध करते हुए कहती है ''मैं इस ढूह की एक नगण्य कणिका मात्र हूँ। मुझे इस योग्य बना दो आप अपनी अग्नि से धधककर समूचे जंजाल को भस्म कर दूँ। मैं तुम्हारा करावलम्ब चाहती हूँ। नारी का जनम पाकर केवल लांछना पाना ही सार नहीं है।'' अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि निपुणिका में नारी जाति के सभी अच्छे गुण विद्यमान हैं परन्तु पुरुष–प्रधान समाज अपनी रूढ़ियों व गली–सड़ी परम्पराओं का पालन करते हुए अपनी संकीर्ण मानसिकता से ही निपुणिका के आचार–विचार व व्यवहार को देखता है। उसके बारे में अपनी घटिया राय बनाता है। वस्तुतः वह नारी–जाति की शिरोमणि है।

कुशल अभिनेत्री – निपुणिका एक कुशल अभिनेत्री है। वस्तुतः वह न केवल रंगमंच पर ही अपनी अभिनय कला का उत्कृष्ट प्रदर्शन करती है बल्कि अपने व्यावहारिक जीवन में भी अपने मनोभावों को दबाकर प्रसन्नवदन दिखाई देने का सफल अभिनय करती है। वह बाणभट्ट से प्रेम करती है परन्तु उसे भट्टिनी की ओर आकर्षित हुआ देखकर पीछे हट जाती है। वह अपने को निःशेष भाव से बाणभट्ट को समर्पित करने के लिए विषपान करके वासवदत्ता का अभिनय करती है। अतः 'रत्नावली' का जब रंगमंच पर अभिनय किया जा रहा था उस समय निपुणिका दोहरा अभिनय कर रही थी– अपने वास्तविक जीवन के आदर्श का पालन करते हुए निपुणिका का अभिनय तथा 'रत्नावली' की वासवदत्ता का अभिनय। निःसंदेह उसने दोनों ही पात्रों के रूप में जीवंत अभिनय करके अपने आप को कुशल अभिनेत्री सिद्ध किया है। इससे पूर्व उज्जयिनी में भी निपुणिका अपने अभिनय का लोहा मनवा चुकी थी। अतः कहा जा सकता है कि वह एक कुशल अभिनेत्री थी जिसे बाणभट्ट ने अभिनय करके पाया था और अभिनय करके ही खो दिया।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुए भले ही विधवा निपुणिका ने घर से भाग कर विद्रोहात्मक कदम उठाया हो परन्तु वस्तुतः वह ऐसे गुणों की खान थी जो किसी सामान्य नारी में नहीं मिल सकते। वह विकट–से–विकट परिस्थितियों में भी धैर्य, निडरता व विवेक का दामन नहीं छोड़ती थी। उसमें एक ही नारी–सुलभ दुर्बलता थी– वह पुरुष से प्यार करती है और वह पुरुष और कोई नहीं बल्कि बाणभट्ट स्वयं है जो उसकी मृत्यु के लिए एक सीमा तक उत्तरदायी है। वस्तुतः वह एक हत् भाग्या स्त्री थी जो समाज की संकीर्ण मानसिकता के कारण जीवन भर कष्ट झेलती रही। जबकि गुणों के आधार पर वह पूज्य थी।

सुचरिता

चरित्र–चित्रण – 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में सुचरिता के चरित्र व व्यक्तित्व का अधिकांश चित्रण आत्मकथात्मक रूप से हुआ है। उपन्यास में उसका चरित्र नारी–समस्या के अन्य पक्ष को प्रकट करता है। उसके चरित्र संबंधी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

परित्यक्ता – सुचरिता समाज में परित्यक्ता के उत्पीड़न व दुखों को प्रकट करने वाली पात्र है। वह एक ऐसी स्त्री है जिसका विवाह बचपन में ही हो गया था परन्तु पति विरतिवज्र संन्यास धारण कर लेता है। अतः बाल्यावस्था को

बेसुधी में गुजारने वाली सुचरिता के निकट सम्बन्धियों में केवल एक सास ही है। वह एक परित्यक्ता के रूप में अनेक कष्ट व दुःख झेलती है। बाल्यावस्था से निकल कर उसमें यौवन ठीक उसी प्रकार आता है जैसे बसन्त काल में मधुमास, मधुमास में पल्लवराजि, पल्लवराजि में पुष्पसंभार, पुष्पसंभार में भ्रमरावली और भ्रमरावली में मदावस्था बिना बुलाए आ जाती है परन्तु वह अपने रूप, देह आदि को बलपूर्वक सम्भाले हुए अपनी सास के संरक्षण में अपने पति को लगातार ढूँढती फिरती है।

धैर्य–धारिणी – सुचरिता की एक अन्य बड़ी विशेषता यह है कि वह बहुत ही धैर्य से काम लेती है। पति की वियोगावस्था में भी वह यह सोचकर अपने मन को धैर्य देती है कि एक न एक दिन उसे अवश्य ही पति–परमेश्वर के दर्शन होंगे। बाणभट्ट से पहले वह अपने जीवन की कथा निपुणिका व अन्य लोगों को सुना चुकी है परन्तु ज्यों ही वह अपने तपस्वी पति की ओजस्विता की ओर आकर्षित होने का वर्णन करती है तब निपुणिका को छोड़कर अन्य लोग उसके आचरण को पाप मानकर उसकी पूरी बात सुनने से मना कर देते हैं, केवल निपुणिका ही उसके इस आचरण को संदेह की दृष्टि से नहीं देखती और केवल बाणभट्ट ही एक ऐसा व्यक्ति है जो उसे आगे की बातें सुनाने का आग्रह करता है। यह सुचरिता के धैर्य का ही परिणाम है कि उसकी सास बरसों पश्चात् मिले अपने तपस्वी पुत्र को डाँट–डपटकर उसे पाणिग्रह के लिए विवष करती है। इसी प्रकार महाराजाधिराज द्वारा बन्दी बनाए जाने पर भी वह अपने धीरज का प्रदर्शन करते हुए कहती है ''मैं महाराजाधिराज पर न प्रसन्न हूँ, न अप्रसन्न हूँ।''

यथार्थवादिनी – सुचरिता किसी भी घटना के पीछे छिपे सत्य को पहचानने की क्षमता रखती है तथा अवसर पड़ने पर उस सत्य को उद्घाटित करने में हिचकिचाती भी नहीं है। जब उसका तपस्वी पति विरतिवज्र उसका पाणिग्रहण करने के पश्चात् बौद्ध धर्म को छोड़कर वैष्णव धर्म अपना लेता है तब बौद्ध वसुभूति इससे चिढ़कर अपने शिष्य धनदत्त श्रेष्ठी को उकसाकर उस पर मित्याभियोग चलवाता है फलतः सुचरिता व उसका पति विरतिवज्र दोनों ही बन्दी बना लिए जाते हैं। सुचरिता इस मिथ्याभियोग के पीछे छिपे यथार्थ को प्रकट करती हुई कहती है ''यह सब थोड़े से पंडित मानी व्यक्तियों की ईर्ष्याग्नि है, जिसमें राजा जल रहा है, प्रजा जल रही है और वह समय भी आ गया है, जब समूचा आर्यावर्त्त अपने तरुण बालकों, अनाथों और वृद्धों के साथ जलकर भस्म हो जाएगा।'' अतः कहा जा सकता है कि सुचरिता प्रत्येक घटना में छिपे तथ्य को पहचान सकती है।

अनन्य भक्तिनी– सुचरिता के हृदय में धैर्य के साथ–साथ अपने ईश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा व भक्ति भी है। यद्यपि उसने व उसके पति ने कोई भी अनुचित कार्य करके किसी भी सामाजिक या धार्मिक मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है परन्तु उनके धर्म परिवर्तन से रूष्ट होकर बौद्ध वसुभूति उन्हें मिथ्याभियोग में बन्दी बना देते हैं। परन्तु सुचरिता उसके व महाराजाधिराज के इस अन्यायपूर्ण कृत्य से तिनक भी विचलित नहीं होती है क्योंकि उसे महाराजाधिराजसे भी बड़े महाराज अर्थात् ईश्वर पर अटूट विश्वास है। इसीलिए वह कहती है ''मैं महाराजाधिराज पर न प्रसन्न हूँ, न अप्रसन्न हूँ। आर्य इनसे कहीं बड़े महाराज की शरण पाने का प्रयास कर रही हूँ। इसी प्रकार वह अपने आप को ईश्वर के प्रति समर्पित कर चुकने का भाव दर्शाते हुए कहती है ''नारायण ही इस नाव के करणधार हैं। हम तो तूफान देखकर हाय–हाय करने वाले जीव हैं। मन क्यों नहीं समझ पाता, आर्य कि वह किसी कार्य का उत्तरदायी नहीं है। वसुदेव के रहते इतना वृथा सोच क्यों करता है वह?'' अतः कहा जा सकता है कि सुचरिता एक अनन्य भक्तिनी है जो विपदा–काल में भी अपने उपास्य पर अटूट विश्वास रखते हुए अपने धैर्य को धारण किए रहती है।

मनोविज्ञान का ज्ञान रखने वाली – सुचरिता बचपन से ही एक परित्यक्ता के रूप में रहती है, उसका सामना सभी प्रकार के व्यक्तियों से हुआ है अतः उसे मनोविज्ञान का पूरा ज्ञान है। अपनी पति के साथ बंदी बनाए जाने पर वह लोगों की कुत्सित मनोवृत्ति को पहचानते हुए कहती है ''मैं नगर के विडम्ब रसिकों का छन्दानुरोध नहीं कर सकी हूँ, इसीलिए उन लोगों ने मेरे विषय में बहुत–सा अपवाद फैला रखा है।'' वह मानव–सुलभ प्रवृत्तियों को जानने और

परखने की क्षमता रखती है तथा मानव–जीवन के गूढ़ सत्य को प्रकट करते हुए कहती है ''वस्तुतः कल्मष भी मनुष्य का अपना सत्य है। उसे स्वीकार करके ही वह सार्थक सिद्ध हो सकता है। दबाने से वह मनुष्य को नष्ट कर देता है अतः कहा जा सकता है कि वह मनोविज्ञान को जानने व मानवी–प्रवृत्तियों को परखने वाली स्त्री है।

सात्विक विचारों की आदर्श नारी – सुचरिता सात्विक विचारों वाली स्त्री है। अपने भरपूर यौवन में भी सात्विक आचरण करने वाली सुचरिता अपने इस गुण से बाणभट्ट को प्रभावित करती है और वह सोचने पर विवश हो जाता है कि ''कौन कहता है यौवन अन्य और दुर्ललित है।'' उसके मन में अपने पति के प्रति अगाध श्रद्धा, निष्ठा व प्रेम है। यदि देखा जाए तो उसमें एक आदर्श नारी के वे सभी गुण विद्यमान हैं जो नारी को शक्ति का रूप प्रदान करते हैं, यही कारण है कि उसके बन्दी बनाए जाने पर प्रजा विद्रोह करने पर उतारू हो जाती है और समाज उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। अतः कहा जा सकता है कि वह शोभा की राशि है, नारीत्व उसका एक बड़ा गुण है।

निपुणिका के प्रति सद्भाव–सुचरिता के हृदय में नारी–सुलभ ईर्ष्या का लगभग अभाव है। स्थाण्वीश्वर में पान की दुकान चलाने वाली व राजकुल के अन्तःपुर में पहुँचाने वाली निपुणिका के प्रति जहाँ अधिकांश लोग दुर्भाग्य रखते थे, उसे पतित समझते थे, वहीं सुचरिता उसकी दशा को समझकर उससे सहानुभूति रखती है तथा उसके प्रति सद्भाव बनाए रखती है। जब बाणभट्ट पुनः स्थाण्वीश्वर पहुँचकर सुचरिता को निपुणिका के विषय में बताता है तब वह अपने सद्भावों को प्रकट करती हुई पूछती है ''तो वह अभागी अभी जीती है।''

अन्त में यह कहा जा सकता है कि बाणभट्ट ने सुचरिता के संबंध में जो कुछ कहा है वह न तो कविता है, न ही प्रशंसा है बल्कि उसके व्यक्तित्व की एक सच्ची परिभाषा है जो बाणभट्ट ने निम्न शब्दों में व्यक्त की है –

''तुम्हारा शरीर और मन सार्थक है, तुम्हारा ज्ञान और वाणी सार्थक है, सबसे बढ़कर तुम्हारा प्रेम सार्थक है। तुमकों प्रणाम करके भवसागर में निर्लक्ष्य बहने वाले अकर्मा जीव भी सार्थक होंगे। तुम सतीत्व की मर्यादा हो, पातिव्रत्य की पराकाष्ठा हो, स्त्री–धर्म का अलंकार हो।''

इकाई–3 'अतीत के चलचित्र (महादेवी वर्मा)

इकाई की रूपरेखा :

3.0 'अतीत के चलचित्र – व्याख्या खण्ड

3.1 महादेवी वर्मा की संवेदना

3.2 सामाजिक समस्याओं का निरूपण

3.3 महादेवी वर्मा का रचना–शिल्प

3.4 चरित्र–चित्रण

परिचय :

'अतीत के चलचित्र' महादेवी वर्मा का सुंदर संस्मरणात्मक रेखाचित्र संग्रह है, जिसमें उन्होंने जीवन में आए हुए अनेक दीन हीन, क्षत् विक्षत् पात्रों का यथार्थवादी एवं प्रभावक चित्रण किया है। इनके पात्र तथाकथित अकिंचन और अपने क्षतविक्षत् जीवन में सिमटे किसी खिलौने की हाट या प्रदर्शिनी के उपकरण नहीं जो मनोरंजन प्रदान कर सके। इस रचना के ग्यारह संस्मरणात्मक रेखाचित्र हैं– रामा, विधवा भाभी, बिंदा, सबिया, बिट्टो, बालिका वधू, घीसा, सती वेश्या पुत्री, अंधा अलोपी, बदलू और रधिया, लछमाँ। ये सभी समाज के ऐसे कुरूप चित्र हैं जो या तो अशिक्षा और शोषण के कारण दीन और सरल हैं या समाज की घोर उपेक्षा के शिकार रहे हैं।

3.0 व्याख्या–खण्ड :

शैशव की स्मृतियों में एक विचित्रता है। जब हमारी भाव प्रवणता गम्भीर और प्रशांत होती है तो अतीत की रेखाएँ कुहरे में से स्पष्ट होती हुई वस्तुओं के समान अनायास ही स्पष्ट से स्पष्टतर होने लगती हैं; पर जिस समय हम तर्क से उनकी उपयोगिता सिद्ध करके स्मरण करने बैठते हैं, उस समय पत्थर फेंकने से हटकर मिल जाने वाली पानी की काई के समान विस्मृति उन्हें फिर–फिर ढक लेती है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कृति 'अतीत के चलचित्र' से प्रथम चलचित्र 'रामा' से उद्धृत है।

व्याख्या – लेखिका कहती है कि बचपन की यादें बड़ी विचित्र होती हैं। सामान्यतः बाल्यावस्था की घटनाएँ स्मृति–पटल पर अंकित नहीं होतीं। अतः उन्हें स्मरण करने के लिए जब हम अत्यंत भावुक व शांत–चित्त होकर गहनता से विचार करते हैं, तो बाल्यकाल की बातें हमें धीरे–धीरे याद आने लगती हैं और उसी प्रकार वे हमारी स्मृति में अधिक से अधिक स्पष्ट होती चली जाती हैं। जिस प्रकार जब धीरे–धीरे कुहरा कम होने लगता है तो उसमें विलीन वस्तुएँ स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं। दूसरी तरफ बचपन की बातों को याद करके जब हम तर्क के आधार पर उनके विषय में विचार करते हैं कि वे कहाँ तक औचित्यपूर्ण थी और कहाँ तक अनुचित थी? तो इन तर्कपूर्ण क्षणों में ही बाल्याकाल की यादगार उसी प्रकार धीरे–धीरे समाप्त होती चली जाती हैं। जिस प्रकार कोई पत्थर का टुकड़ा यदि काई से ढके हुए जल में फेंक दिया जाता है तो कुछ समय के लिए काई की परत जल के ऊपर से हट जाती है और जल दिखाई देने लगता है, परंतु काई का आवरण धीरे–धीरे जल को फिर ढकने लगता

है और पानी पुनः दिखाई देना बंद हो जाता है। भाव यह है कि बचपन की बातें भावुक और गंभीर क्षणों में कुछ याद तो आ जाती हैं, परंतु तर्क के आधार पर उनकी उपयोगिता सिद्ध नहीं की जा सकती। केवल उन्हें उसी रूप में कम या अधिक स्मरण किया जा सकता है।

विशेष :

1. इन पंक्तियों में स्पष्ट किया गया है कि भावुक होकर कदाचित बचपन की बातों को याद तो किया जा सकता है, परंतु तर्क के आधार पर उनका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावपूर्ण साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- वास्तव में जीवन सौंदर्य की आत्मा है; पर वह सामंजस्य की रेखाओं में जितनी मूर्तिमत्ता पाता है, उतनी विषमता में नहीं। जैसे–जैसे हम बाह्य रूपों की विविाता में उलझते जाते हैं, वैसे–वैसे उनके मूलगत जीवन को भूलते जाते हैं। बालक स्थूल विविधता से विशेष परिचित नहीं होता, इसी से वह केवल जीवन को पहचानता है जहाँ से स्नेह सद्भाव की किरणें फूटती जान पड़ती हैं, वहाँ वह व्यक्ति विषम रेखाओं की उपेक्षा कर डालता है और जहाँ द्वेष, घृणा आदि के धूम से जीवन ढका रहता है, वहाँ वह बाह्य सामंजस्य को भी ग्रहण नहीं करता।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कृति 'अतीत के चलचित्र' से प्रथम चलचित्र 'रामा' से उद्धृत है।

व्याख्या – लेखिका कहती है कि किसी वस्तु या व्यक्ति की सुंदरता एकमात्र उसके बाह्य रूप में ही नहीं रहती, बल्कि सम्पूर्ण जीवन में रहती है अर्थात् आंतरिक रूप में भी रहती है। आंतरिक व बाह्य दोनों प्रकार की सुंदरता जब व्यक्ति में रहती है तभी सौंदर्य वास्तव में सार्थक हो पाता है, परंतु जब सुंदरता बाह्य या आंतरिक में से किसी एक में रहती है तो उसकी यह सुंदरता महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाती है। प्रायः बाह्य सौंदर्य को ही जीवन में सार्थक व उपयुक्त माना जाता है, परंतु यह विचार महत्त्वपूर्ण नहीं है। बाह्य सौंदर्य को वास्तविक सौंदर्य मानने से सौंदर्य के मूल जीवन की उपेक्षा हो जाती है। लेखिका उदाहरण देते हुए कहती है कि छोटा बच्चा किसी के बाह्य सौंदर्य को नहीं पहचानता, वह तो जीवन के यथार्थ सौंदर्य को जानता है। कोई व्यक्ति बाह्य रूप में कितना ही सुंदर हो, उसने सुंदर से सुंदर कपड़े भी पहन रखे हों तो भी बालक उसके बाह्य सौंदर्य से आकर्षित न होकर उसके स्नेह, प्यार, ममत्व आदि आंतरिक सौंदर्य से ही प्रभावित होता है। भाव यह है कि यदि कोई बालक से घृणा करता है या उसे आँखें दिखाता है या उसकी उपेक्षा करता है तो वह उसके लिए सुंदर नहीं, दूसरी तरफ जो व्यक्ति स्नेह, प्यार, सद्भाव आदि से भरकर अपनत्व के साथ बालक से बोलता है, हँसकर बातें करता है तभी बालक उसे अपना समझता है, क्योंकि वह उसके आंतरिक सौंदर्य को पहचानता है।

विशेष :

1. प्रस्तुत पंक्तियों में बाल मनोविज्ञान के आधार पर सौंदर्य की व्याख्या की गई है।

2. भाषा सरल, सहज तथा भावपूर्ण साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

- एक बार अपनी और पराई वस्तु का सूक्ष्म और गूढ़ अंतर स्पष्ट करने के लिए रामा चतुर भाष्यकार बना। बस फिर क्या था! वहाँ से कौन सी पराई चीज लाकर रामा की छोटी आँखों को निराश विस्मय से लबालब भर दें। इसी चिंता में हमारे मस्तिष्क एक बारगी क्रियाशील हो उठे।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कृति 'अतीत के चलचित्र' से प्रथम चलचित्र 'रामा' से उद्धृत है।

व्याख्या – लेखिका कहती है कि जब कभी वह और उसके भाई–बहन किसी की वस्तु को उठा लेते थे या किसी के फूल आदि तोड़ लेते थे तो रामा उन्हें विस्तारपूर्वक समझाता था कि अपनी वस्तु और दूसरे की चीज में पर्याप्त अंतर होता है। उसने स्व और पर के भेद को सूक्ष्म रूप से उन्हें बताया था। जिससे वे दूसरों के फूल तक भी पराए समझकर न तोड़ सकें। वह नहीं चाहता था कि वे पराई वस्तु को किसी भी रूप में और कभी भी प्राप्त करें। दूसरी ओर लेखिका और उसके भाई–बहन बलबुद्धि व चंचलता के कारण यही सोचने लगे कि हम किस प्रकार दूसरे की वस्तु उठ लाएँ या पराई चीज को बिना पूछे प्राप्त कर लें जिससे रामा का समझाना व्यथ सिद्ध हो और हमें चोरी करता देखकर रामा बड़ी निराशा से भर जाए और वह इतना दुखी और आश्चर्य से युक्त हो जाए कि उसकी आँखों में पानी भर जाए। हम इसी धारणा को लेकर सोचने लगे कि कोई न कोई इस प्रकार का उपाय हमें अवश्य करना चाहिए और इस उपाय को ज्ञात करने के लिए हम बार–बार विचार करने लगे।

विशेष :

1. लेखिका अपने बालपन की उस घटना को याद करती है जब रामा संवेदनशील हो जाता था।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावपूर्ण साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

- उस समय परिवार में कन्याओं की अभ्यर्थना नहीं होती थी। आंगन में गाने वालियाँ, द्वार पर नौबत वाले और परिवार के बूढे से लेकर बालक तक सब पुत्र की प्रतीक्षा में बैठे रहते थे। जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया, वैसे ही घर के एक कोने से दूसरे तक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गई। बड़ी–बूढ़ियाँ संकेत से मूक गाने वालियों को जाने के लिए कह देतीं और बड़े–बूढ़े इशारे से नीरव बाजे

वालों को विदा कर देते–यदि ऐसे अतिथि का भार उठाना परिवार की शक्ति से बाहर होता, तो उसे बैरंग लौटा देने के उपाय भी सहज थे।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कृति 'अतीत के चलचित्र' से प्रथम चलचित्र 'रामा' से उद्धृत है।

व्याख्या – लेखिका कहती है कि जब कभी वह छोटी थी उस समय कोई भी अपने परिवार में लड़की का पैदा होना शुभ नहीं मानता था। जब सन्तति उत्पन्न होने का अवसर होता था तो सभी इसी आशा में रहते थे कि पुत्र उत्पन्न हो, पुत्री न हो। अतः पुत्र के आगमन की खुशी के लिए गाने वाली नारियाँ बुलाई जाती थीं। नौबत बजाने वाले एकत्रित किए जाते थे। घर का छोटा–बड़ा प्रत्येक व्यक्ति इस इंतजार में रहता था कि पुत्र के उत्पन्न होने की सूचना दी जाए तो खुशी मनाई जाएगी। परंतु दुर्भाग्यवश लड़की पैदा हो जाती थी तो इसका समाचार भी उदासीन स्वर में दिया जाता था, जिसे सुनते ही घर में चारों ओर उदासीनता, निराशा और दुख–सा व्याप्त हो जाता था। यहाँ तक कि घर की बड़ी वृद्धाएँ संकेत से ही गाने वाली नारियों को घर से चले जाने को कह देती थीं और बड़े वृद्ध लोग बाजे बजाने वालों को हाथों के या आँखों के इशारे से विदा कर देते थे। क्योंकि किसी प्रकार की खुशी पुत्री के आगमन पर स्वीकार्य नहीं थी। कभी–कभी तो ऐसा भी होता था कि यदि परिवार वाले सोचते थे पुत्री का बोझ उइाना संभव नहीं है तो जन्म के समय में ही उसे मार डालते थे। यह कार्य करना भी तत्कालीन समाज में सामान्य बात थी।

विशेष :

1. प्रस्तुत पंक्तियों में तत्कालीन पारिवारिक कुरीति पर प्रकाश डाला गया है कि तब पुत्री का जन्म अशुभ व पुत्र का जन्म शुभ माना जाता था।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावपूर्ण साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. मुहावरों के प्रयोग से भाषा में लाक्षणिकता का प्रयोग हुआ है।

- हम सब खिलौने रख कर शून्य दृष्टि से बाहर देखते रह जाते थे। नन्हें बाबू सात समुद्र पार पहुँचना चाहता था; पर उड़ने वाला घोड़ा न मिलने से यात्रा स्थगित हो जाती थी। मुन्नी अपनी रेल पर संसार भ्रमण करने को विकल थी; पर हरी–लाल झण्डी दिखाने वाले के बिना उसका चलना ठहरना संभव नहीं हो सकता था। मुझे गुड़िया का विवाह करना था, परंतु पुरोहित और प्रबंध के बिना शुभ लग्न टलता चला जाता था।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कृति 'अतीत के चलचित्र' से प्रथम चलचित्र 'रामा' से उद्धृत है।

व्याख्या – रामा के चले जाने के पश्चात् प्रायः लेखिका और उसके भाई–बहन बचपन में निराश से हो गए। अपने खिलौने से भी वे नहीं खेल पाते थे, बल्कि उन्हें रामा के बिना सभी खिलौने निरर्थक लगते थे। ये निरंतर घर से बाहर खड़े होकर रामा की प्रतीक्षा किया करते थे कि कब रामा आए और वे खेलें। नन्हें बाबू सात समुद्र पार जाने

का खेल खेलना चाहता था, परंतु रामा के अभाव में वह संभव न था क्योंकि रामा ही उड़ने वाला घोड़ा बनता था और नन्हें बाबू मानो सात समुद्र पार पहुँच जाता था। इसी प्रकार मुन्नी रेल यात्रा में भ्रमण करने का खेल खेलना चाहती थी, परंतु उस खेल में रामा ही हरी झण्डी और लाल झण्डी दिखाकर यह खेल खिलात था। अतः रामा के अभाव में मुन्नी का खेल भी संभव नहीं था। लेखिका भी बचपन में गुड्डे–गुड़िया का खेल खेलती थी। गुड़िया का विवाह रचाती थी, जिसमें रामा पुरोहित होता था। वह ही विवाह का समस्त प्रबंध करता था। परंतु रामा के न आने पर गुड़िया के विवाह का न तो कोई प्रबंधकर्ता रह गया था और न पुरोहित का कार्य करने वाला ही, अतः लेखिका का गुड़िया का विवाह संबंधी खेल भी पूरा नहीं हो सकता था। भाव यह है कि रामा के बिना लेखिका व उसके भाई बहनों का कोई खेल संभव नहीं था। सभी उदस रहते थे।

विशेष :

1. लेखिका ने रामा के अभाव में बचपन के खेलों को सर्वथा शून्य भरा पाया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावपूर्ण साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

- आज मैं इतनी बड़ी हो गई कि राजा भइया कहलाने का हठ स्वप्न सा लगता है, बचपन की कथा–कहानियाँ कल्पना जैसी जान पड़ती हैं और खिलौनों के संसार का सौंदर्य भ्रांति हो गया है। पर रामा आज भी सत्य है, सुंदर है और स्मरणीय है। मेरे अतीत में खड़े रामा की विशाल छाया वर्तमान के साथ बढ़ती जाती है–निर्वाक्, निसतन्द और स्नेहतरल।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कृति 'अतीत के चलचित्र' से प्रथम चलचित्र 'रामा' से उद्धृत है।

व्याख्या – लेखिका कहती है कि आज बड़ी हो जाने पर भी मैं अपने बचपन के सेवक तथा रामा को नहीं भूल पाती। बचपन में वह मुझे 'राजा–भइया' कहकर पुकारा करता था और यह सम्बोधन इतने प्यार, ममत्व व स्नेह के साथ होता था कि आज भी मैं चाहती हूँ कि रामा इसी नाम से मुझे पुकारे; जो संभव नहीं, बल्कि यह सब बीते हुए स्वप्न के समान असंभव है। बचपन में रामा जो कथाएँ व कहानियाँ कहता था, अब उन मधुर व मनोरम कथाओं को सुनाने वाला कोई रामा नहीं है। अतः वे बातें काल्पनिक सी प्रतीत होती हैं। खिलौने से रामा लेखिका का मन बहलाया करता था। अ बवह बचपन का सुनहरा संसार रामा के अभाव में वहम सा लगता है। फिर भी रामा की सरलता, उसकी निश्छलता, प्रगाढ़ स्नेह और ममता आज भी भुलाई नहीं जा सकती। जब कभी लेखिका उस रामा को याद करती है तो लेखिका शांत हृदय रामा के स्नेह से मानो भीग जाती है और मौन रह जाती है। रामा की स्मृति उसके हृदय में विशाल छाया की भांति बढ़ती जाती है, जो निःशब्द, उनींदी और स्नेह से पूर्ण होती है।

विशेष :

1. रामा के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है कि वह सहृदयता, ममत्व व स्नेह से पूर्ण था जिसे लेखिका न भुला सकी।

2. भाषा सरल, सहज तथा भावपूर्ण साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

- घर के सब उजले–मैले सहज कठिन कामों के कारण, मलिन रेखा–जाल से गुंथी और अपनी शेष लाली को कहीं छिपा रखने का प्रयत्न सा करती हुई कहीं कोमल, कहीं कठोर हथेलियाँ, हाथों का बोझ संभालने में भी असमर्थ सी दुर्बल, रूखी पर गौर बाँहें और मारवाड़ी लहंगे के भारी घेरे से थकित से एक सहज सुकुमारता का आभास देते हुए, कुछ लम्बी उँगलियों वाले दो छोटे–छोटे पैर, जिनकी एड़ियों में आंगन की मिट्टी की रेखा मटमैले महावर सी लगती थी, भुलाए भी कैसे जा सकते हैं?

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कृति 'अतीत के चलचित्र' से दूसरे चलचित्र 'भाभी' से उद्धृत है।

व्याख्या – लेखिका कहती है कि वह विधवा मारवाड़िन भाभी इतनी विवश और दीनता से भरी थी कि घर में अकेली रहने के कारण वह घर का समस्त कार्य स्वयं करती थी। घर का कार्य चाहे सरल हो अथवा कठिन, हाथ–पैरों को स्वच्छ करने वाला हो या मैला बनाने वाला; सभी कार्यों में संलग्न रहने के कारा उसकी हथेलियों की रेखाओं में मैल भर गया था। जिस कारण वे लाल हथेलियाँ काले जाल से लिपटी हुई प्रतीत होती थीं। कहीं से वे कोमल थीं और कहीं से कठोर हो गई थीं। सभी कार्यों में संलिप्त रहने से उनके नाखूनों में मैल भरा रहता था। अतः उसके नाखून काले और मैल के कारण भारी हो गए थे। उसकी दुर्बल, शुष्क और गौरी–गौरी भुजाएँ पतली–पतली हाथों की उंगलियों और नाखूनों के बोझ को उठाने में असमर्थ हो गई थीं। मारवाड़ी परम्परा और संस्कृति के अनुसार वह भारी लहंगा पहनती थी। जो बहुत से घेर होने के कारण इतना भारी था कि उसके कामल और दुर्बल पैर जिनमें कुछ लम्बी उंगलियाँ थीं उस मारवाड़ी लहंगे के भार को उठाने में मानो असमर्थ जान पड़े थे। भाव यह है कि उसके पैर बोझ से दबे हुए थे। मकान का आंगन कच्ची मिट्टी का होने के कारण इधर–उार चलने से उसके पैरों की एड़ियों में इतनी मिट्टी लगी रहती थी कि मानो उन पर उसने मलिन महावर लगा रखा हो अर्थात् पैर भी मिट्टी से भरे रहते थे। लेखिका इस प्रकार की विवशता और दीनता से भरे मारवाड़िन विधवा भाभी के रूप को आज तक भी नहीं भुला पाई थी।

विशेष :

1. इन पंक्तियों में मारवाड़ी भाभी की हथेलियों, हाथ के नाखूनों व उंगलियों, बाँहों, पैरों, एड़ियों का यथार्थ चित्रण किया गया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावपूर्ण साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

- उसी दिन से वह घर जिसमें न एक भी झरोखा था, न रोशनदान, न एक भी नौकर दिखाई देता था, न अतिथि ओर न एक भी पशु रहता था, न पक्षी, मेरे लिए आकर्षण बनने लगे। उस समाधि जैसे घर में लोहे के प्राचीर से घिरे फूल के समान वह किशोरी बालिका बिना किसी संगी–साथी, बिना किसी प्रकार के आमोद–प्रमोद के मानो निरंतर वृद्धा होने की साधना में लीन थी।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कृति 'अतीत के चलचित्र' से दूसरे चलचित्र 'भाभी' से उद्धृत है।

व्याख्या – जिस घर में विधवा भाभी रहती थी वहाँ एक एकांकी तो थी ही : परंतु उसमें न कोई झरोखा था, न कोई रोशनदान था। न तो कभी कोई नौकर उसमें प्रवेश करता था और न कभी कोई अतिथि आता था। न कभी किसी पक्षी या पशु का उस घर में प्रवेश करना संभव था, जिस कारण वह घर भाभी के लिए चार–दीवारी का शून्य कारागार जान पड़ता था। इस प्रकार भाभी का अकेलापन लेखिका के आकर्षण का केन्द्र बन गया था। उस समाधि मौन घर की सर्वाधिक दुखद स्थिति यह थी कि विधवा भाभी के लिए उस घर में न कोई साथ रहने वाला व्यक्ति था, न कोई मन बहलाने या मनोरंजन के लिए कोई साधन था। इन सभी के अभाव में वह अपना जीवन अत्यंत कष्टों, विवशताओं व एकाकीपन से बिता रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो किशोर अवस्था में ही विधवा हो जाने वाली वह बालिका वृद्धा होने की साधना उसी प्रकार कर रही थी जैसे किसी फूल को लोहे के पिंजरे में बंद कर दिया जाता है तो वह मुरझाने लगता है। भाव यह है कि वह विधवा हो गई थी, परंतु इस प्रकार के अशोभनीय व दुर्भाग्यपूर्ण घर में रहकर वह शीघ्र बुढ़िया हो जाएगी, इसमें कोई संदेह नहीं था।

विशेष :

1. लेखिका ने विधवा भाभी की दुर्दशा का चित्रण किया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावपूर्ण साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

- उस 19 वर्ष की युवती की दयनीयता आज समझ पाती हूँ, जिसके जीवन के सुनहरे स्वरूप गुड़ियों के घरौंदे के समान दुर्दिन की वर्षा में केवल बह ही नहीं गए, वरन् उसे इतना एकाकी छोड़ गए कि उन स्वप्नों की कथा कहना भी संभव न हो सका।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कृति 'अतीत के चलचित्र' से दूसरे चलचित्र 'भाभी' से उद्धृत है।

व्याख्या – मारवाडिन विधवा भाभी 19 वर्ष की अवस्था में दुर्भाग्य से विधवा हो गई थी। इस अल्प आयु में विधवा होकर उसने कितने और किस प्रकार के कष्टों को सहन किया? उसके साथ कितना क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया गया,

उसकी सभी इच्छाएँ किस प्रकार कुचल दी गई आदि का ज्ञान लेखिका को अपनी आठ वर्ष की अवस्था में न हो सकता था; परंतु उस भाभी की दयनीय दशा का आज लेखिका को बहुत समय पश्चात् ज्ञान हुआ। लेखिका विधवा भाभी की दीनता और विवशता का चित्रण करते हुए कहती है कि भाभी के जीवन की सभी मनोकामाएँ उसी प्रकार नष्ट हो गई थीं, जैसे बच्चे बड़े मनोयोग और प्रयत्न से गुड़ियों के घरौंदे बनाते हैं, परंतु तीव्र वर्षा होने के कारण घरौंदे नष्ट हो जाते हैं। उनका कोई अस्तित्व ही नहीं रहता। विवाह के पश्चात् बेचारी भाभी ने भी न जाने कितनी आकांक्षाएँ व सुखद भविष्य की अभिलाषाएँ की थीं। वैधव्य के कारण वे सभी लालसाएँ इतनी विलीन हो गई थीं कि उनकी पूर्ति तो सर्वथा असंभव थी ही उनको वह किसी से कहने में भी समर्थ नहीं थी, क्योंकि घर में उसके कष्टों को कोई भी सुनने वाला नहीं था।

विशेष :

1. मारवाड़िन भाभी के विधवापन की दुर्दशा का चित्रण किया गया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावपूर्ण साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. चित्रात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

- आज भी जब कोई रंगीन कपड़ों के प्रति विरक्ति के संबंध में कौतुक भरा प्रश्न कर बैठता है, तो वह अतीत फिर वर्तमान होने लगता है। कोई किस प्रकार समझे कि रंगीन कपड़ों में जो मुख धीरे–धीरे स्पष्ट होने लगता है, वह कितना करुण और कितना मुरझाया हुआ है। कभी–कभी तो वह मुख मेरे सामने आने वाली सभी करुण क्लान्त मुखों में प्रतिबिम्बित होकर मुझे उसके साथ एक अटूट बंधन में बाँध देता है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कृति 'अतीत के चलचित्र' से दूसरे चलचित्र 'भाभी' से उद्धृत है।

व्याख्या – लेखिका अपने जीवन में रंगीन कपड़े नहीं पहनती थी, बल्कि श्वेत वस्त्र धारण करती थी। कभी–कभी कोई व्यक्ति जब लेखिका से प्रश्न करता था कि वह रंगीन कपड़े क्यों नहीं धारण करती, तो लेखिका को बहुत वर्षों के पश्चात् भी इस प्रश्न को सुनकर विधवा भाभी की वह घटना याद आ जाती है जब बाल्यावस्था में अपनी अबोधता के कारण उसने विधवा भाभी को रंगीन ओढ़नी ओढ़ाई थी और जिसके फलस्वरूप उसकी दशा अत्यन्त विवश, दयनीय और असहाय हो गई थी। उसकी वह अवस्था लेखिका के मानस पटल पर आज भी अंकित हो जाती है। आज भी वह नहीं बता सकती कि रंगीन वस्त्रों से विधवा भाभी का मुख कितना करुणा से भरा था और कितना मुरझाया हुआ था। उसका प्रतिबिंब लेखिका के हृदय में उस समय भी अंकित हो जाता है ज बवह किसी दुखी, अभावग्रस्त, दीनता भरी नारी को देखती है। लेखिका को ऐसा प्रतीत होता है कि वह विवशता, दीनता, दयनीयता किसी अन्य की नहीं, बल्कि विधवा भाभी की ही है। अतः लेखका का ध्यान शीघ्र उसी विधवा भाभी पर आता है, जिसको उसने बचपन में ससुर और ननद के द्वारा रंगीन कपड़ों के कारण दारुण पीड़ा सहन करते हुए देखा था। उसका यह दुख आज भी लेखिका को इस विधवा भाभी के साथ एक अटूट बंधन में बांध देता है।

विशेष :

1. इन पंक्तियों में विधवा भाभी के वैधव्य की दीनता का दर्द भरा हुआ है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावपूर्ण साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. चित्रात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

- जिसकी सुशीला का उदाहरण देकर मेरे नटखटपन को रोका जाता था, वही बिन्दा घर में चुपके–चुपके कौ सा नटखटपन करती रहती है उसे बहुत प्रयत्न करके भी मैं न समझ पाती थी। मैं एक भी काम नहीं करती थी और रात–दिन उधम मचाती रहती, पर मुझे तो माँ ने न मर जाने की आज्ञा दी और न आँखें निकाल लेने का भय दिखाया।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कृति 'अतीत के चलचित्र' में संकलित 'बिन्दा' नामक चलचित्र से लिया गया है। इस चलचित्र में उन्होंने अपनी बात सखी बिंदा का रेखाचित्र पस्तुत किया है।

व्याख्या – लेखिका अपने बचपन में जब कोई शरारत करती तो उसे उसकी सहेली बिन्दा का उदाहरण देकर नटखटपन से रोका जाता था कि बिन्दा कितनी सुशील, कर्त्तव्यपरायण, आज्ञाकररिणी व शांत स्वभाव वाली है। वह कभी भी न शरारत करती है और न अपने काम से जी चुराती है, अतः लेखिका को भी उसी के समान सुशील बनना चाहिए। लेखिका बाल्यकाल में यह नहीं समझ सकी थी कि जो बिन्दा दिन–रात निरंतर काम में व्यस्त रहती है, फिर भी उसकी विमाता उसे डांटती रहती है कि वह मूर्ख, आलसी और काम न करने वाली है। लेखिका नहीं समझ पाती थी कि बिन्दा और उसमें इतना अंतर क्यों था? एक ओर लेखिका घर का कोई भी कार्य नहीं करती थी। सदा शरारत करती रहती थी दूसरी ओर बिन्दा कोई भी नटखटपन नहीं करती थी और सदा काम में लगी रहती है। इस पर भी बिन्दा को उसकी विमाता क्रोध में भर कर कहती थी कि वह मर क्यों नहीं जाती। वह उसे धमकी देती थी कि यदि वह ढंग से काम नहीं करेगी तो वह उसकी आँखें निकाल लेगी। इस प्रकार वह अनेक प्रकार से बिन्दा का अपमान करती थी और उसके प्रति आक्रोश व्यक्त करती थी, परंतु लेखिका के काम न करने और नटखटपन करने पर भी इस प्रकार का आक्रोश उसकी माँ कभी व्यक्त नहीं करती थी और न कभी डाँटती थी।

विशेष :

1. इन पंक्तियों में लेखिका ने अपनी बाल्य सखी बिन्दा की दुर्दशा का चित्रण किया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

- दो पैसों में आने वाली खंजड़ी के ऊपर चढ़ी हुई झिल्ली के समान पतले चर्म से मढ़े और भीतर की हरी–हरी नसों की झलक देने वाले दुर्बल हाथ–पैर न जाने किस अज्ञात भय से अवसन्न रहते थे। कहीं से कुछ आहट होते ही उसका विचित्र रूप से चौंक पड़ना और पंडिताइन चाची का स्वर कान में पड़ते ही उसके सारे शरीर का थरथरा उठना मेरे विस्मय को बढ़ा ही नहीं देता था, प्रत्युत उसे भय में बदल देता था और बिन्दा की आंखें तो मुझे पिंजड़े में बंद चिड़ियाँ की याद दिलाती थी।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कृति 'अतीत के चलचित्र' में संकलित 'बिन्दा' नामक चलचित्र से लिया गया है। इस चलचित्र में उन्होंने अपनी बात सखी बिंदा का रेखाचित्र पस्तुत किया है।

व्याख्या – लेखिका कहती है कि जिस प्रकार खंजड़ी बहुत सस्ती आती है, उस पर खाल की एक पतली सी परत चढ़ी रहती है, उसी प्रकार बिन्दा के हाथ–पैरों पर भी खाल की एक पतली परत चढ़ी हुई थी, जिसमें से उसके हाथ–पैरों की हरी–हरी नसें चमकती रहती थीं। इससे यह भी स्पष्ट था कि उसका शरीर अत्यन्त कमजोर और दुबला था जो सदा भयभीत बना रहता था कि जब उसकी विमाता उसे डांटने लगे या मारने लगे। कहीं से भी कोई आहट मिलते ही वह घबरा जाती थी कि कहीं उसकी विमाता पंडिताइन चाची तो नहीं आ गई। जब उसी विमाता पंडिताइन चाची की आवाज उसे सुनाई देती तो उस समय तो वह इतनी डर जाती थी कि उसका शरीर कांपने लगता था। लेखिका को अपनी बचपन की सखी बिन्दा की यह दर्दनाक स्थिति देखकर बहुत आश्चर्य होता था। कभी–कभी तो वह बिन्दा के समान डर के कारण कांप उठती थी। बिन्दा की आँखों में सदा उसी प्रकार का भय बना रहता था जैसे किसी चिड़िया को पिंजरे में बंद कर दिया हो और डरी हुई रहती हो।

विशेष :

1. लेखिका की बाल सखी बिन्दा की दुर्दशा का चित्रण किया गया है कि वह विमाता के कितने अत्याचार सहन करती थी।

2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।

3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।

6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

- कई दिनों तक बिंदा के घर झाँक–झाँककर जब मैंने माँ से उसके ससुराल से लौटने के संबंध में प्रश्न किया, तब पता चला कि वह तो अपनी आकाश वासिनी अम्मा के पास चली गई। उस दिन से मैं प्रायः चमकीले तारे के आस–पास फैले छोटे तारों में बिंदा को ढूँढती रहती; पर इतनी दूर से पहचानना क्या संभाव था।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश महादेवी वर्मा द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध कृति 'अतीत के चलचित्र' में संकलित 'बिन्दा' नामक चलचित्र से लिया गया है। इस चलचित्र में उन्होंने अपनी बात सखी बिंदा का रेखाचित्र पस्तुत किया है।

व्याख्या – लेखिका कहती है कि बिन्दा का विवाह हो जाने के पश्चात् उसने केई दिन तक उसके घर में झाँक–झाँककर देखा कि वह वापिस लौटकर आई है या नहीं। परन्तु जब वह काफी समय बाद तक भी नहीं लौटी तो उसने अपनी माँ से उसके ससुराल से लौटने के विषय में पूछा। तब उसकी माँ ने बताया कि उसकी तो मृत्यु हो चुकी है तथा इस समय वह आकाश में रहने वाली अपनी माँ के पास रह रही है। लेखिका चूँकि उस समय स्वयं अबोध बालिका थी, अतः अपनी माँ के कथन को सही मानकर प्रायः उसी दिन आकाश में दिखाई देने वाले सबसे चमकीले तारे के आस–पास छिटके छोटे तारों में बिंदा को ढूँढने लगी। चूँकि लेखिका और तारों के बीच की दूरी बहुत अधिक थी, अतः वह कभी भी बिंदा को उन तारों में पहचान नहीं पाई।

विशेष :

1. लेखिका ने अल्पायु बिन्दा की असामयिक मृत्यु का दुःखद वर्णन किया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

सबिया

- सबिया न शबनम का संक्षिप्त है न शबरात का। वह तो हमारे पौराणिक सावित्री का अपभ्रंश है; पर सच कहें तो कहना होगा कि या तो हमारे उदार आर्यत्व ने दयार्द्र होकर ही हरिजनों में भी निकृष्टतम जीव को, इस संज्ञा की छाया में पवित्र होने की अनुमति दे डाली या सबिया के परंपरा के अनुसार स्वर्गगत; परंतु यथार्थ में नरकगत माता–पिता चतुर पाकेटमार के समान सबकी आंख बचाकर इस नामनिधि को उड़ा लाए और इसे अपना बनाने के लिए इतना काटा–छांटा कि अब इस पर किसी एक का अधिकार प्रमाणित करना कठिन हो गया है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री व लेखिका महादेवी वर्मा की चर्चित कृति 'अतीत के चलचित्र' में संकलित 'सबिया' नामक चलचित्र से लिया गया है। इस रेखाचित्र में उन्होंने सबिया नाम की हरिजन नारी का चित्रण किया है।

व्याख्या – 'सबिया' शब्द न तो शबनम शब्द का संक्षेप में बना हुआ रूप है और न सबिया 'शबरात' शब्द से बना है। बल्कि 'सबिया' शब्द तो भारतीय पौराणिक शब्द 'सावित्री' से बिगड़कर बना है। लेखिका सबिया की दुर्दशा को ध्यान में रखकर 'सबिया' नाम की दुर्दशा पर भी विचार करती है कि 'सावित्री' शब्द पुराणों में मिलता है ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय आर्य बहुत उदार थे, इसी कारण उन्होंने सबिया जैसी निम्न जाति की तुच्छ, नारी को भी मानो इस बात की अनुमति दे दी थी कि वह अपना नाम सावित्री (सबिया) रख ले। इससे हरिजन शोषित व पतित नारी इस नाम को प्राप्त करके मानो पवित्र हो जाएगी। लेखिका 'सबिया' नामकरण के विषय में यह भी कल्पना करती है कि सबिया के माता–पिता जिनका स्वर्गवास हो चुका है, परंतु अपने निम्न कार्यों के कारण जो नरक में ही गए होंगे, उन्होंने पौराणिक 'सावित्री' शब्द को चुरा लिया होगा। जिस प्रकार कोई जेबकतरा या चोर बड़ी सावधानी व चतुराई से किसी की वस्तु या राशि को चुरा लेता है और उसे अपना बनाने के लिए उसका इतना रूप–परिवर्तन

करता है कि वह पहचानी न जा सके, उसी प्रकार सबिया के माता–पिता ने भी 'सावित्री' शब्द को सबिया शब्द में इतना बदल दिया कि कोई भी निश्चय से यह नहीं कर सकता कि 'सबिया' शब्द सावित्री का अपभ्रंश या तद्भव रूप है। लेकिन लेखिका का निश्चयात्मक मत है कि 'सबिया' शब्द 'सावित्री' शब्द ही से बिगड़कर बना है।

विशेष :

1. लेखिका ने स्पष्ट किया है कि 'सबिया' शब्द ही से बिगड़कर बना है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

- माँ के दुबले शरीर में सूखी लकड़ी की कठिनता न होकर हरी टहनी का लचीलापन रहता था, जो दुर्बलता से अधिक जीवन का परिचय देता है और बालिका के सूखे शरीर में नए पत्ते की चंचलता न होकर पाले से खिल न सकने वाले बंधे किशलय–कोरक का अवश हिलना डुलना था, जो विकास का सूचक न होकर जड़ता का परिचय देता है।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री व लेखिका **महादेवी वर्मा** की चर्चित कृति **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित **'सबिया'** नामक चलचित्र से लिया गया है। इस रेखाचित्र में उन्होंने सबिया नाम की हरिजन नारी का चित्रण किया है।

व्याख्या –बचिया की माता सबिया जब काम करती थी तो उसके शरीर में स्फूर्ति जाग्रत हो जाती थी। वह उस सूखी लकड़ी के समान न थी जो मुड़ने से पहले ही टूट जाती है। वह तो हरी टहनी के समान थी, जिसमें लचीलापन होता था। भाव यह है कि सबिया का शरीर दुबला पतला अवश्य था, परंतु उसमें आलस्य या असमर्थता नहीं थी। वह तो कार्य करने में पूर्णतः सक्षम थी। वह जीवन में अनेक कठिनाइयों और चिंताओं में रहने पर भी अपने निर्धारित कार्यों को करने में इतनी तत्पर और उत्साहित थी कि वह कर्त्तव्यपरायणा सिद्ध हुई। दूसरी ओर, उसकी पुत्री चार वर्षीया बचिया के शरीर का पूरी तरह से विकास नहीं हो पाया था। जिस प्रकार कोई नूतन कोंपल विकसित होने लगती है, परन्तु सर्दी में पाला पड़ने के कारण उसका विकास रुक जाता है। उसी प्रकार जीवन की दुखद परिस्थितियों ने बचिया के शरीर को इतना अविकसित व सुस्त बना दिया था कि जैसे उसका शरीर अब सूख जाएगा और अधिक उसमें विकास नहीं हो सकेगा।

विशेष :

1. सबिया की कार्य करने की सजगता तथा उसकी पुत्री बचिया के शरीर की अविकसित दशा का चित्रण किया गया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

- उसकी सारी कर्त्तव्यपरायणता के दुर्ग को भेदकर जब भूख भीतर पहुँच जाती है त बवह उसी मैले कपड़े के एक छोर में बंधा रोटी का टुकड़ा खोलकर उस छिपे शत्रु से समझौता आरंभ करती। परन्तु यह तो मानना ही होगा कि इतने दर्शकों की उपस्थिति में यह कार्य दुष्कर हो उठा था। एक बार ज्यों ही उसने मुर्गे के स्वर में कुछ उपालम्भ देने का उपक्रम किया, त्यों ही विद्रोही कोवा उसका भूख से लड़ने का एकमात्र अस्त्र छीन भागा।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री व लेखिका **महादेवी वर्मा** की चर्चित कृति **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित **'सबिया'** नामक चलचित्र से लिया गया है। इस रेखाचित्र में उन्होंने सबिया नाम की हरिजन नारी का चित्रण किया है।

व्याख्या – बचिया अपने भाई को संभालती थीं, उसकी मक्खी उड़ाती थी। ज बवह रोता था तो चुप कराती थी परन्तु कार्य करते–करते जब बचिया को भूख जग जाती थी तो वह उसी कपड़े से बंधी रोटी का टुकड़ा खोलकर भूख मिटाने के लिए खाना आरंभ करती थी, जिस कपड़े पर उसका भाई लेटा हुआ था। वहीं नीम के पेड़ के नी बैठकर जैसे ही वह खाना आरंभ करती तो वहाँ छात्रावास की कुतिया, बिल्ली व गिलहरी, कौवे तथा चिड़िया इस प्रयास में रहते थे कि बचिया से किसी प्रकार उस रोटी के टुकड़े को छीनकर खा लिया जाए। वह उन सभी से सुरक्षित रहकर रोटी के टुकड़े से अपनी भूख मिटाती थी। एक बार जैसे ही वह मुर्गे की भाँ अपना मुँह खोल रही थी, तभी एक कौआ बड़ी तेजी के साथ आया और उसके हाथ से रोटी का वह टुकड़ा छीनकर ले गया और वह देखती रह गई।

विशेष :

1. सबिया की पुत्री बचिया की निरीहता का चित्रण किया गया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

- पुरुष भी विचित्र है। वह अपने छोटे से छोटे सुख के लिए स्त्री को बड़े से बड़ा दुःख दे डालता है और ऐसी निश्चिन्तता से मानो वह स्त्री को उसका प्राप्य ही दे रहा है। सभी कर्त्तव्यों को वह चिनी से ढकी कुनैन के समान मीठे–मीठे रूप में ही चाहता है। जैसे ही कटुता का आभास मिला कि उसकी पहली प्रवृत्ति सब कुछ जहाँ का वहाँ पटक कर भाग खड़े होने की होती है।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री व लेखिका **महादेवी वर्मा** की चर्चित कृति **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित **'सबिया'** नामक चलचित्र से लिया गया है। इस रेखाचित्र में उन्होंने सबिया नाम की हरिजन नारी का

चित्रण किया है।

व्याख्या – इन पंक्तियों में लेखिका कहती है कि समाज में पुरुष वर्ग का स्वभाव बड़ा ही अनोखा है कि वह स्वयं तो सुखी रहना चाहता है, परन्तु अपने थोड़े से सुख के लिए भी वह नारी को कठिन से कठिन दुख देने में कोई संकोच नहीं करता है। उसे इसकी चिंता नहीं रहती कि जैसे दुख या विपत्ति उसके लिए कष्टदायक है, वैसे ही नारी के लिए भी दुखदायक है। वह नारी को इतना निश्चिंत होकर कष्ट दे डालता है मानो वह स्त्री के लिए आवश्यक है या उसको ये अधिकार है। पुरुष अपने सभी काम सुविधा और आसानी के साथ चाहता है। वहीं पर कोई बाधा या कठिनाई नहीं चाहता। जिस प्रकार कुनैन जैसी कड़ी दवाई को चीनी की परत से ढक देने पर उसे सरलता से खा लिया जाता है। वह कड़वी होने पर भी मीठी लगती है। वैसे ही पुरुष कठोर से कठोर कार्य भी सरलता से करना चाहता है। जैसे ही पुरुष को ज्ञात होता है कि उसे अपने कर्त्तव्य पालन में कठिनाई हो रही है तो वह अपने समस्त कार्यों को यथावत छोड़कर भाग जाता है। उसके पीछे घर के चाहे कितने ही कार्य बिगड़ जाएँ, स्त्री व बच्चों को अनेक प्रकार के दुखों का सामना करना पड़े इसकी वह कोई चिंता नहीं करता।

विशेष :

1. नारी की अपेक्षा पुरुष को स्वार्थी व कर्त्तव्यहीन बताया गया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिम्ब का प्रयोग हुआ है।

- वह उन महिलाओं में नहीं, जो पति के हल्केपन को उसके बंगले, कार, वैभव आदि के पासंग रखकर भारी कर सकती है। उसकी गणना न उनमें हो सकती है जिनके यातना मंदिर के द्वारा स्वयं धर्म के कठोर और सजग पहरेदार हैं अैर न उनमें, जिनके उद्भ्रान्त मस्तकों पर समाज की नंगी तलवार लकटती रहती है। यह तो सब प्रकार से निकृष्टतम प्राणी कही जाएगी। फिर इस पारस की उपस्थिति, जिसके स्पर्श से कैसे भी लोहे का आवरण सोना हो सकता है, किस प्रकार समझाई जावे।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री व लेखिका **महादेवी वर्मा** की चर्चित कृति **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित **'सबिया'** नामक चलचित्र से लिया गया है। इस रेखाचित्र में उन्होंने सबिया नाम की हरिजन नारी का चित्रण किया है।

व्याख्या – सबिया उन पतिव्रता नारियों में है जो पति की सेवा करना ही अपना सर्वोच्च कर्त्तव्य समझती है। बहुत सी बड़े घरों की स्त्रियाँ पति के पास वैभव सम्पन्न कोठी, घूमने के लिए कार व अन्य सम्पत्ति का सुख देखकर उनके दुर्गुणों को तुच्छता नहीं समझती। वे पति का महत्त्व तभी समझती हैं जब उनके पास सुख–सुविधाओं के अपार साधन हों, क्योंकि उन्हें सम्पत्ति का सुख ही सर्वश्रेष्ठ लगता है। सबिया के पति के पास यह कुछ भी नहीं है तो भी वह पति के प्रति समर्पित है। कुछ नारियाँ ऐसी हैं जो पातिव्रत्य धर्म का पालन करने के लिए तथा धार्मिक–मर्यादा का निर्वाह करने के लिए पति के अनेक कष्टों को सहन करना अपना परम कर्त्तव्य मानती है। परन्तु सबिया पति की सेवा धार्मिक–मान्यता या सामाजिक मर्यादा मानकर नहीं करती, बल्कि वह तो स्वभावतः पति सेवा

में लवलीन है। कुछ स्त्रियाँ सामाजिक दृष्टि से उच्च स्तर से रहना चाहती है परन्तु नारी–सुलभ कर्त्तव्यों को छोड़कर छिपकर अशोभनीय कार्य करती हैं। सबिया का चरित्र इस प्रकार का भी नहीं है, वह तो इन सभी प्रकार की स्त्रियों से भिन्न रहकर पति परायण होकर घर के सदस्यों का पालन करती रहती है। लेखिका की दृष्टि में तो वह इतनी उच्च उदार व आदर्श नारी है कि उसकी तुलना पारसमणि से करनी चाहिए, जो पारसमणि लोहे को भी यदि स्पर्श कर देती है तो उसे भी सोना बना देती है। उसी प्रकार सबिया भले ही अशिक्षित, अछूत, शूद्र व कुरूप हो, परन्तु वह नारी के उस उच्च आदर्श को प्राप्त कर चुकी है जिस पर पहुँचना कठिन नहीं, सर्वथा असम्भव है।

विशेष :

1. सबिया के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है तथा उसके चरित्र को पारस पत्थर के समान बताया गया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. मुहावरों के प्रयोग से भाषा में लाक्षाकिता का समावेश हुआ है।

- स्त्री की आत्मा में उसकी मर्यादा की जो सीमा अंकित रहती है, वह समाज के मूल्य से बहुत अधिक गुरु और निश्चित है, इसी से संसार भर का समर्थन पाकर जीवन का सौदा करने वाली नारी के हृदय में भी सतीत्व जीवित रह सकता है ओर समाज भर के निषेध से घिरकर धर्म का व्यवसाय करने वाली सती की सांसें भी तिल–तिल करके असती के निर्माण में लगी रह सकती है।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री व लेखिका **महादेवी वर्मा** की चर्चित कृति **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित **'सबिया'** नामक चलचित्र से लिया गया है। इस रेखाचित्र में उन्होंने सबिया नाम की हरिजन नारी का चित्रण किया है।

व्याख्या – इन पंक्तियों में लेखिका हरिजन स्त्री सबिया का सत व्यक्तित्व चित्रित करते हुए विचार करती है कि वास्तव में समाज ने स्त्री–मर्यादा के जो मापदंड स्थिर किए हैं वे ही स्त्री की मर्यादा के परिचायक नहीं हैं अपितु स्वयं स्त्री की आत्मा अपने लिए जिस मर्यादा की सीमा का निर्धारण करती है। वह समाज द्वारा निर्धारित मापदंडों से कहीं अधिक श्रेष्ठ और अटल है। इन्हीं आत्मिक मापदंडों के कारण ही संसार भर का समर्थन पाकर अपने जीवन का सौदा करने वाली स्त्री के हृदय में भी स्त्रीत्व की मर्यादा सुरक्षित रह पाती है तथा दूसरी ओर समाज भर के नकार के भाव से घिरकर कथित रूप से धर्म का आचरण करने वाली तथा सती कहलाने वाली स्त्री का हृदय भी क्षण–क्षण असतीत्व की ओर बढ़ा हुआ मिल सकता है।

विशेष :

1. लेखिका ने स्त्री की आत्मा द्वारा निर्धारित स्त्री मर्यादा के मापदंडों को समाज द्वारा उसके लिए निर्धारित मापदंडों से श्रेष्ठ बताया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

- सच तो यह है कि मैं सबिया को उस पौराणिक नारीत्व के निकट पाती हूँ जिसने जीवन की सीमा–रेखा किसी अज्ञात लोक तक फैला दी थी। उसे यदि जीवन के लिए मृत्यु से लड़ना पड़ा तो यह न मरने के लिए जीवन से संघर्ष करती है।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री व लेखिका **महादेवी वर्मा** की चर्चित कृति **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित **'सबिया'** नामक चलचित्र से लिया गया है। इस रेखाचित्र में उन्होंने सबिया नाम की हरिजन नारी का चित्रण किया है।

व्याख्या – लेखिका का पूर्ण विश्वास है कि सबिया ईमानदार ही नहीं, बल्कि इतनी कर्त्तव्यपरायण व नारी गुणों से सम्पन्न है कि उसे सच्ची सती सावित्री ही कहना चाहिए। जिस प्रकार सती सावित्री ने अपने पति की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया था और उसके महनीय गुण सर्व व्यापक हैं, उसी प्रकार सबिया भी उदात्त और महान् गुणों से सम्पन्न थी। वह सती सावित्री से कम नहीं थी। उसने भी अपने जीवन की सीमा रेखा को किसी अनजान लोक तक फैला दिया था। जहाँ सावित्री को जीवन के लिए मृत्यु से संघर्ष करना पड़ा था, वही सबिया न मरने के लिए जीवन से संघर्ष कर रही थी।

विशेष :

1. सबिया के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया गया है कि वह पौराणिक सावित्री के समान ही है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- पर्वतीय भूमि मेरी धात्री से माँ बन गई है। पैदल ही कई सौ मीलों की यात्रा कर मैंने उसकी प्रशांत सुषमा और प्रमुख जीवन को अनेक रूपों में देखा। परन्तु उस निस्तब्ध सौन्दर्य और नगर के कोलाहल में मैं अब तक कोई समझौता न करा सकी। अपनी धूल भरी धरती का अंक छोड़ करके मुझे उन्हीं, तुषारधौत चरणों में विश्राम मिलता है, जिन्होंने साधना से धूल के विशाल दुर्ग बनाकर अपनी करुणा को हमारे लिए सुरक्षित रखा है।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश हिंदी की प्रख्यात लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा रचित **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित **'बिट्टो'** नामक रेखाचित्र से लिया गया है।

व्याख्या – लेखिका पहले पर्वतीय प्रदेशों से कम संबंध रखती थी, परंतु अस्वस्थ रहने के कारण पर्वतीय अंचल में उन्हें रहने का पर्याप्त अवसर मिला और वहीं रहकर उन्हें रोगों से छुटकारा मिला। इसी कारण जो पर्वत भूमि पहले

उसके लिए घात्री के समान स्नेहिल थी, वही अब माता के समान ममता भरी हो गई। आशय यह है कि महादेवी वर्मा की पर्वतीय भूमि से पहले कम प्रेम था, अब बहुत अधिक हो गया है। उन्होंने पर्वतीय सौन्दर्य और वहाँ की संस्कृति के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर ली थी, क्योंकि वे कई सौ मील तो पर्वत प्रदेश पर पैदल यात्रा कर चुकी थी। जब वे पर्वतांचल के प्राकृतिक मनोरम वातावरण व शहरी जीवन के कोलाहल भरे परिवेश की तुलना करती है तो उन्हें दोनों में पर्याप्त अंतर तथा वैषम्य दिखाई पड़ता है। यही कारण है इलाहाबाद जैसे नगर में जन्म लेकर भी अपनी मातृभूमि के धूल भरे आंचल में वे इतना स्नेह प्राप्त नहीं कर पाती, जितना उन्हें बर्फ से धुले हुए पर्वतीय अंचल में आनंद व सुख का अनुभव होता है। लेखिका की दृष्टि में ये पर्वतीय प्रदेश करुणा के आधार हैं, क्योंकि इन्होंने मानो इतनी साधना की है कि धूलि के कणों को एकत्रित करके वे इतने विशाल महल के रूप में प्रस्तुत हैं कि उनके अंक में आकर मानव सुख और आनंद अनुभव करता है।

विशेष :

1. लेखिका ने पर्वतीय अंचल की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- उस एक मात्र ढाल के नष्ट होते ही उस पर ऐसे असंख्य प्रहारों की वर्षा होने लगी, जिनकी उपस्थिति का ज्ञान न होने के कारण ही बचाव के साधन भी ज्ञान न थे। अब तक पति उसके निकट ऐसा था जैसा ईश्वर, जो हमारी इन्द्रियों से परे रहकर भी हमारे हृदय की अचल श्रद्धा और अड़िग विश्वास का आधार बना रहता है। भावुक उपासक के समान उसने बिना तर्क किए ही एक सुखमय साधना से अपने जीवन को घर लिया था।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश हिंदी की प्रख्यात लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा रचित **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित **'बिट्टो'** नामक रेखाचित्र से लिया गया है। इस गद्यांश में लेखिका ने बिट्टो के पिता की मृत्यु के साथ ही उस पर आ पड़ने वाले कष्टों का हृदयग्राही चित्रण किया है।

व्याख्या – लेखिका कहती है कि जिस प्रकार युद्ध में ढाल अनेकों प्रहारों को रोक लेती है, उसी प्रकार जब तक बिट्टो के पिता जीवित थे, उसे किसी प्रकार का कष्ट न था परंतु ढाल के समान पिता की मृत्यु होने पर बिट्टो पर अनेक रूपों में चारों ओर से कष्ट आने लगे। घर और समाज के सभी सदस्य उसे दुखी करने लगे थे। उसके साथ कौन कब व किस प्रकार का कष्ट देने वाला व्यवहार करेगा, उसे ज्ञात न था। वह तो इस घर में सुखी और शांत जीवन व्यतीत कर रही थी, परन्तु अब उस पर इतने व्यंग्य किए जाते, इतने ताने दिए जाते थे कि वह इनसे बचने का कोई उपाय नहीं जान सकी थी। इस कारण वह और दुखी होती जा रही थी। उसका जीवन कष्टतर से कष्टतम बनता जा रहा था। जब वह विवाहित थी तो उसका पति उसके लिए उसी प्रकार था, जैसे सर्वशक्तिमान ईश्वर होता है जो न दिखाई देने पर भी मानवों के हृदयों की दृढ़ श्रद्धा और अटूट विश्वास का आश्रय होता है। उसी प्रकार उसका पति भी उसके लिए श्रद्धेय व विश्वसनीय था। जैसे कोई श्रद्धालु, ईश्वर की उपासना में भावुक

होकर बिना किसी तर्क के ईश्वर से अपने जीवन की सुख की आशा रखता है, उसी प्रकार वह भी अपने पति की छत्रछाया में रहकर मानो अपने जीवन को सुखी और आनंदमय बनाने के लिए साधना कर रही थी। भाव यह है कि वह जब अपने पति के प्रति भी सच्ची उपासिका व श्रद्धालु बन गई थी।

विशेष :

1. बिट्टो की दुर्दशा का यथार्थ चित्रण किया गया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- जब भाभी ने उसे यह सुखद समाचार सुनाया, तब पहले तो यह सत्य उसकी बड़ी–बड़ी शून्य आँखों की दृष्टि को भेदकर हृदय तक पहुँच ही नहीं सका और जब अनेक प्रयत्न करने पर पहुँचा तो उसका परिणाम विपरीत ही हुआ। बिट्टो ने बहुत करुणा क्रन्दन के साथ विवाह का विरोध किया, पर परांपोकरयों का मार्ग न समुद्र रोक सकता है और न पर्वत।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश हिंदी की प्रख्यात लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा रचित **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित **'बिट्टो'** नामक रेखाचित्र से लिया गया है।

व्याख्या – लेखिका कहती है कि बिट्टो को जब सकी भाभी ने यह समाचार दिया कि उसका पुनर्विवाह एक 54 वर्ष के वृद्ध व्यक्ति से होने जा रहा है तो इस दुर्भाग्यपूर्ण समाचार पर बिट्टो को विश्वास नहीं हुआ। यह सुनकर वह बेचारी सर्वथा निराश होकर देखती रह गई। उसे कभी यह आशा नहीं थी कि उसके साथ इतना कठोर और अनिष्टकारी व्यवहार भी किया जा सकता है, परन्तु जब उसकी भाभी ने उसे विश्वास दिलाया और उसने अपने भाई तथा अप्रत्याशित बातों पर विशेष विचार किया तो उसे निश्चय हो गया कि यह पुनर्विवाह की योजना सत्य है। बिट्टो ने अपने भाई व भाभियों के समक्ष इस विवाह का बहुत विरोध किया। वह बहुत रोई। उसने करबद्ध प्रार्थना भी अपने भाइयों के समक्ष की कि उसका यह विवाह न किया जाए, परन्तु उसके सभी प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए। क्योंकि भाइयों का निश्चय इतना अटल और दृढ़ था कि किसी भी प्रकार से उनके इस पुनर्विवाह के निश्चय को न रोका जा सका। भाव यह है कि भाइयों ने बिट्टो के अनेकों विरोध करने पर भी पुनर्विवाह के विषय में विचार नहीं बदला और बिट्टों का विवाह कर दिया।

विशेष :

1. बिट्टो की मानसिक दुर्दशा का चित्रण किया गया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- सामाजिक विकृति का बौद्धिक निरूपण मैंने अनेक बार किया है, पर जीवन की इस विभीषिका से मेरा यही पहला साक्षात् था। मेरे सुधार संबंधी दृष्टिकोण को लक्ष्य करके परिवार में प्रायः सभी ने कुछ निराश भाव से सिर हिलाकर मुझे यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि मेरी सात्विक कला इस लू का झोंका न सह सकेगी और साधना की छाया में पले मेरे कोमल सपने धुएँ में जी न सकेंगे। मैंने अनेक बार सबको यही एक उत्तर दिया है कि कीचड़ से कीचड़ को धो सकना न संभव हुआ है न होगा। उसे धोने के लिए निर्मल जल चाहिए। मेरा सदा से विश्वास रहा है कि अपने दलों पर मोती सा जल उसमें भी न ठहरने देने वाली कमल की सीमातीत स्वच्छता ही उसे पंक में जमने की शक्ति देती है।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री एवं लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा रचित **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित चलचित्र **'बालिका माँ'** से लिया गया है।

व्याख्या – लेखिका सोचती है कि समाज में व्याप्त अनेक प्रकार की बुराइयों को उसने अपनी बुद्धि द्वारा विचार करके अपनी रचनाओं में अनेकों बार प्रस्तुत किया है। परन्तु समाज की इस प्रकार की भयंकर विकृति और अमानवीय घटना को उसने पहली बार देखा है। यद्यपि लेख्किा के मन में पहले ही विचार था कि समाज की इस प्रकार की बुराइयों को दूर करना अतीव आवश्यक है। समाज को यदि सुधार दिया जाए तो इस प्रकार की विकृतियाँ नहीं रहेंगी। परन्तु लेखिका के परिवार के सदस्यों ने उनकी इस धारणा को सर्वथा अस्वीकार करते हुए उन्हें समझाया कि आज के दोषपूर्ण समाज में इस प्रकार की सात्विक वृत्ति उसी प्रकार स्थिर रह सकेगी जैसे लू के झोंके के समक्ष कोमल वस्तु नहीं रह सकती। लेखिका ने जो परोपकार या सुधार का मार्ग अपनाया, उनकी मनोरम कल्पनाएँ निरर्थक सिद्ध होंगी। क्योंकि समाज की इन भयावह विकृतियों का सामना करना सरल नहीं है। सुधावादी बातें कहना सरल है, परन्तु उनका आचरण करना बहुत कठिन है। लेखिका का मन उकने इस उत्तर से संतुष्ट नहीं था। अतः उसने बार–बार उन्हें यही समझाया कि जिस प्रकार कीचड़ को धोने के लिए कीचड़ नहीं, बल्कि स्वच्छ जल की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार बुराइयों को दूर करने के लिए बुराई नहीं, बल्कि भलाई की आवश्यकता होती है। लेखिका का अपने जीवन में यही विश्वास रहा है कि जिस प्रकार कमल की पंखुड़ियों पर जल की एक बूंद भी नहीं ठहर पाती। वह इतनी स्वच्छ होती है कि गंदगी भी उस पर प्रभाव नहीं डाल सकती। उसे अपनी आंतरिक स्वच्छता से ही वह शक्ति प्राप्त होती है, जिसके कारण वह गंदगी में भी जड़ जमाकर टिका रहता है। उसी प्रकार व्यक्ति की आंतरिक उदार भावनाएँ ही उसे बुराइयों में भी टिके रहने की शक्ति देती हैं।

विशेष :

1. लेखिका की समाज–सुधारवादी दृढ़ भावना व्यक्त हुई है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- जो समाज इन्हें वीरता, साहस और त्याग भरे भातृत्व के साथ स्वीकार नहीं कर सकता, क्या वह इनकी कायरता और दैन्य भरी मूर्ति को ऊँचे सिंहासन पर प्रतिष्ठित पर पूजेगा? युगों से पुरुष स्त्री को उसकी शक्ति के लिए नहीं, सहनशक्ति के लिए दंड देता जा रहा है।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री एवं लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा रचित **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित चलचित्र **'बालिका माँ'** से लिया गया है।

व्याख्या – लेखिका स्पष्ट करती है कि समाज किसी विधवा स्त्री के मातृत्व को उस स्थिति में भी स्वीकार नहीं करता, जबकि उसने अत्यधिक वीरता, साहस और त्याग का परिचय ही क्यों न दिया हो। फिर उन विधवा स्त्रियों के मातृत्व का, जो भीरुपन दिखाती हैं या दैन्य की मूर्ति बनी रहती हैं, को तो मान–सम्मान के ऊँचे सिंहासन पर प्रतिष्ठित करना समाज कभी नहीं कर सकता। लेखिका विचार करती है कि यह समाज सदियों से स्त्रियों को उनकी ताकत के लिए नहीं बल्कि उनकी असीम सहन शक्ति की ही सजा देता आ रहा है।

विशेष :

1. समाज द्वारा स्त्री को उसकी सहनशक्ति के लिए दिए जाने वाले दंड के प्रति लेखिका का आक्रोश व्यक्त हुआ है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- उस बालिका माता के मस्तष्क पर हाथ रखकर मैं सोचने लगी कि कहीं वह वरद हो सकता। इस पतझड़ के युग में समाज फूल चाहे न मिल सकें पर धूल की किसी स्त्री को कमी नहीं रह सकती, इस सत्य को यह रक्षा की याचना करने वाली नहीं जानती।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री एवं लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा रचित **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित चलचित्र **'बालिका माँ'** से लिया गया है।

व्याख्या – लेखिका महादेवी वर्मा उस बालिका पर, जो अठारह वर्ष की अवस्था में विधवा होकर अवैध रूप से माँ बन गई थी, दया करती है और ममता से भरकर उसके सिर पर प्यार से हाथ रखकर विचार करती है कि शायद इसे इसी रूप में स्वीकार करना वरदान हो सकता है। यह समय दुराचार, अन्याय और विष से भरा हुआ है। आज जबकि नारी के लिए दुःखों, कष्टों व मुसीबतों की आशा तो की जा सकती है, किसी प्रकार के सुख, सहायता व शांति की कामना नहीं की जा सकती। अर्थात् इस समाज में इस बालिका को अन्याय, अत्याचार, अनाचार तो मिल सकते हैं, कोई उपयुक्त आश्रय, शक्ति या आराम से रहने का साधन नहीं मिल सकता। यह बात वह बेचारी बालिका नहीं जानती, जो अपनी इस दुर्दशा में भी समाज से अपनी ओर अपनी संतति की सुरक्षा चाहती है अर्थात् उस बालिका को इस गहन दुःख को प्रदान करने वाले संसार से सुख की कोई आशा नहीं रखनी चाहिए।

विशेष :

1. लेखिका का समाज के प्रति आक्रोश व्यक्त हुआ है कि यहाँ अभागिन नारी को कष्ट ही प्राप्त हो सकता है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- अब आज तो वे किसी अज्ञात लोक में हैं। मलय के झोंके के समान मुझे कण्टक वन में खींच लाकर उन्होंने जो दो फूलों की धरोहर सौंपी थी, उससे मुझे स्नेह की सुरभि ही मिली है। हाँ, उन फूलों में से एक को शिकायत है कि मैं उसकी गाथा सुनने का अवकाश नहीं पाती और दूसरा कहता है कि मैं राजकुमार की कहानी नहीं सुनती।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री एवं लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा रचित **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित चलचित्र **'बालिका माँ'** से लिया गया है।

व्याख्या – लेखिका कहती है कि जिन वृद्ध व वृद्धा ने अठारह वर्षीया विधवा माँ व उसकी बाईस दिन की संतान को उसे सौंप दिया था, वे इस विधवा बालिका के दादा और बुआ थे। उन दोनों का अब स्वर्गवास हो चुका है, परंतु लेखिका ने इन दोनों का पालन बड़े उत्तरदायित्व से किया है। जिस प्रकार कोई सुगंधित वायु का झोंका कंटीले प्रदेश से दो फूल उड़ाकर ले आता है। उसी प्रकार इस संसार की विषमता के वातावरण से उन दोनों–वृद्ध व वृद्धा, ने भी इन दोनों को मुझे प्रदान किया है कि वे मेरे लिस दुखदायक सिद्ध होंगे, परंतु ये मेरे लिए कष्टप्रद या भारयुक्त नहीं हैं, बल्कि फूल के समान आनंद प्रदान करने वाले हैं। इन दोनों में से अठारह वर्षीया विधवा लेखिका को पुत्री के रूप में स्वीकार्य है, प्रायः यही शिकायत करती है कि लेखिका उसकी बातें सुनने का समय नहीं निकाल पाती है। दूसरी ओर उसकी अवैध संतान जो लेखिका की नाती के रूप में है उसे शिकायत है कि लेखिका उसे राजकुमार की कहानी नहीं सुनाती। अभिप्राय यह है कि दोनों महादेवी वर्मा के पास प्रसन्न हैं।

विशेष :

1. लेखिका ने विधवा बालिका और उसकी अवैध संतान के सकुशल रहने का संकेत दिया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- वर्तमान की कौन सी अज्ञात प्ररेणा हमारे अतीत की किसी भूली हुई कथा को सम्पूर्ण मार्मिकता के साथ दोहरा जाती है, यह जान लेना सहज होता, तो मैं भी आज गाँव के उस मलिन सहमे नन्हें से विद्यार्थी की सहसा याद आ जाने का कारण बना सकती जो एक छोटी लहर के समान ही मेरे जीवन–तट को अपनी सारी आर्द्रता से छूकर अनन्त जलराशि में विलीन हो गया है।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री एवं लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा रचित प्रसिद्ध रचना **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित **'घीसा'** नामक चलचित्र से लिया गया है।

व्याख्या – लेखिका कहती है कि वस्तुतः यह ज्ञात करना अत्यंत कठिन है कि वर्तमान में ऐसी कौन सी प्रेरणा हमें भूली हुई घटनाओं का अकस्मात् स्मरण दिलाने लगती है, जबकि उस विषय को सर्वथा भुला दिया जाता है। फिर भी वह घटना पुनः मार्मिकता से उसी रूप में मानस में घूम जाती है। लेखिका को भी आज न जाने क्यों अकस्मता् उस बालक का जीवन याद आ गया। जिसका नाम घीसा था और जो इलाहाबाद के गंगापार झूँसी के खण्डर के समीपस्थ एक उपेक्षित गाँव का रहने वाला था। वह नन्हा विद्यार्थी सदा सहमा–सहमा रहता था। जिस प्रकार नदी में एक छोटी सी लहर तट को कुछ भिगोकर जल समूह में विलीन हो जाती है, उसी प्रकार वह छोटा सा बालक भी अपने जीवन की कुछ घटनाओं से लेखिका के ह्रदय को करुणा से भरकर न जाने इस संसार में कहाँ विलीन हो गया। आशय यह है कि घीसा महादेवी के सम्पर्क में आकर लेखिका के मन में ममत्व व दया को जाग्रत करके संसार से विदा हो गया।

विशेष :

1. इन पंक्तियों में लेखिका के जीवन में घीसा के प्रति संवेदना व्यक्त की गई है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. विचारात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- और तब अपने स्नेह में प्रगल्भ उस बालक के सिर पर हाथ रखकर मैं भावातिरेक से ही निश्चिल हो रही। उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिणा मिली होगी, ऐसा मुझे विश्वास नहीं, परन्तु उस दक्षिणा के सामने संसार में अब तक सारे आदान–प्रदान फीके जान पड़े।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री एवं लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा रचित प्रसिद्ध रचना **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित **'घीसा'** नामक चलचित्र से लिया गया है।

व्याख्या – तरबूज के रूप में दी गई घीसा की दक्षिणा को देखकर और उसके आग्रह को सुनकर लेखिका स्नेह से भरकर बहुत गंभीर हो गई। घीसा के सिर पर हाथ रखकर इतनी भावुक और विचारमग्न हो गई कि बालक को कुछ भी उत्तर न दे सकी और शांत तथा स्थिर खड़ी रह गई। उन्हें आज पहली बार यह ज्ञात हुआ कि घीसा जिस भाव से अपना सब कुछ समर्पण करके यह दक्षिणा लेकर उपस्थित हुआ है। शायद ही, संसार में ऐसा कोई शिष्य रहा हो, जिसने किसी गुरु को इस प्रकार की महान् दक्षिणा प्रदान की हो। लेखिका को उसकी दक्षिणा गुरुतम और सर्वोत्तम प्रतीत हुई। संसार में अनेक व्यक्ति लेन देन करते हैं, परन्तु उस दक्षिणा के समक्ष वे सभी व्यवहार उसे

तुच्छ व निम्न जान पड़े।

विशेष :

1. प्रस्तुत अनुच्छेद में लेखिका की घीसा के प्रति सच्ची करुणा व्यक्त होती है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. विचारात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- भारी ढक्कन से ढंके दीपक के समान आकाश में बिजली बुझ गई थी। संध्या से ही हवा बादलों की तह–पर–तह जमानें में व्यस्त रही और अब वे इतने सघन हो उठे कि रात के छायारूपों के उपुयक्त ही एक अखण्ड पर अपनी आर्द्रता से रिसती हुई काली शिला की छत बन गये।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश सुप्रसिद्ध लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा लिखित **'अतीत के चलचित्र'** नामक कृति के आठवें रेखाचित्र **'अभागी स्त्री'** से लिया गया है।

व्याख्या –लेखिका कहती है कि जैसे किसी भारी ढक्कन से किसी दीपक को ढक दिया जाता है और दीपक बुझ जाता है, वैसे ही आकाश में बहुत बादल व्याप्त हो गए थे और बिजली का चमकना बंद हो गया था। संध्या के समय से ही हवा चल रही थी। अतः हवा में तैरकर लगातार बादल आ रहे थे और एक पर एक एकत्रित हो रहे थे, जिससे उनका मोटापन या घनत्व ऐसा प्रतीत होता था जैसे रात्रि में भूत–प्रेतों की छाया अस्पष्ट और भयंकर दिखाई पड़ती है। आकाश में बादल इतने अधिक और घने व्याप्त हो गए थे ऐसा प्रतीत होता था जैसे आकाश में काले पत्थरों की भारी और विशाल छत बना दी गई और उसमें से धीरे–धीरे पानी टपक रहा हो। भाव यह है कि आकाश में सघन बादल छाए थे और धीरे–धीरे वर्षा हो रही थी।

विशेष :

1. काव्यात्मक रूप में प्रकृति चित्रण हुआ है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- उसे पता नहीं कि समाज के पास वह जादू की छड़ी है जिससे छूकर वह जिस स्त्री को सती कह देता है, केवल वही सती होने को सौभाग्य प्राप्त कर सकती है। जिसे समाज ने एक बार कुलवधुओं की पंक्ति से बाहर खड़ा कर दिया, उसे जन्म जन्मान्तर तक अपनी सभी भावी पीढ़ियों के साथ बाहर खड़े रने को ही

जीवन का सबसे बड़ा वरदान समझना चाहिए और फिर समाज ने उन्हें क्या छोटा मोटा काम दिया है।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश सुप्रसिद्ध लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा लिखित **'अतीत के चलचित्र'** नामक कृति के आठवें रेखाचित्र **'अभागी स्त्री'** से लिया गया है।

व्याख्या –लेखिका कहती है कि भारतीय समाज के भी बड़े विचित्र नियम हैं, जिनका उस बेचारी वेश्या की पुत्री को पता नहीं है। समाज अपनी मान्यताओं के आधार पर उसे ही सती कहता है, जो उनके रम्परागत नियमों पर चलती है। जो नारियाँ समाज के नियमों, मान्यताओं व परम्पराओं पर नहीं चलतीं, समाज उन्हें सती नहीं मानता। वह युवती वेश्या की पुत्री है। अतः वह कुल वधू नहीं बन सकती। समाज की नियमावली के अनुसार जो एक बार वेश्या बन जाती है वह कभी भी सती साध्वी नारी नहीं बन सकती। इतना ही नहीं, उसकी संतान भी वेश्या की संता नही कलाएगी। वह भी चाहे कितनी ही पवित्र हो, परन्तु कुल वधू होने योग्य नहीं है। इसी प्रकार कई पीढ़ियो तक वेश्या की संतान कुल वधुओं की पीढ़ियों की श्रेणी में नहीं गिनी जा सकती। यह समाज का अभिशाप है, जिसे उन्हें भुगतना पड़ेगा। समाज में उन्हें कोई भी सत्कार्य करने की अनुमति नहीं दी। अतः वे चाहे कितने ही पवित्र व आदर्श मार्ग पर चले, सर्वथा समाज की दृष्टि से निरर्थक है।

विशेष :

1. इन पंक्तियों में वेश्या जीवन को समाज का और कुल का अभिशाप बताया गया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. विचारात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- यह माता, पुत्री पत्नी आदि गुणात्मक उपाधियों से रहित जीवनमुक्त नारी मात्र है और इनकी इसी मुक्ति से समाज का कल्याण बंधा हुआ है। फिर भी यदि यह अपने गुरु कर्त्तव्य से युक्त होकर पत्नीत्व, मातृत्व आदि संबंधों को चुराती फिरें, तो समाज चुराई हुई वस्तु पर इनका स्वत्व स्वीकार करके क्या अपना विधान ही मिथ्या कर दें?

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश सुप्रसिद्ध लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा लिखित **'अतीत के चलचित्र'** नामक कृति के आठवें रेखाचित्र **'अभागी स्त्री'** से लिया गया है।

व्याख्या –वेश्या जीवन नारियों के लिए सम्माननीय नहीं है। नारी के प्रमुख रूप से तीन रूप समाज को मान्य होते हैं–माता, पत्नी व पुत्री। वेश्या–जीवन में नारी के इन रूपों में से कोई रूप भी स्वीकार्य नहीं है। वह तो केवल नारी है। अर्थात् वेश्या इनमें किसी रूप में न रहकर केवल नारी ही बनी रहती है। समाज के विकृत कामुक व्यक्तियों के साथ विलासता का जीवन वह व्यतीत करे–यही समाज के विलासी व्यक्ति चाहते हैं। यदि वह वेश्या जीवन छोड़कर छिपकर कदाचित् किसी की पत्नी, पुत्री या माँ बनकर समाज में पवित्र और आदर्श जीवन बिताना चाहे तो समाज को यह स्वीकार नहीं है। वह तो यही चाहता है कि ज बवह एक वेश्या बन ही गई है तो उसी रूप में रहे। वह इस जीवन को त्याग कर यदि पवित्र से पवित्र भी रहे तो भी समाज उसे वेश्या ही मानेगा और उसे यही घृणित कार्य करने को विवश करेगा। समाज की यही तुच्छ मान्यताएँ उसे निन्दनीय जीवन से छुटकारा नहीं देना चाहती।

लेखिका की दृष्टि में समाज की ये कुरीतियाँ वेश्या को स्वच्छ व पवित्र जीवन व्यतीत करने में मुख्य रूप से बाधक हैं।

विशेष :

1. इन पंक्तियों में वेश्या जीवन के अभिशाप को प्रस्तुत किया गया है। साथ ही लेखिका का सामाजिक मान्यताओं के प्रति आक्रोश है जो वेश्या को पवित्र व आदर्श जीवन व्यतीत नहीं करने देतीं।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

- वैशाख नए गायक के समान अग्निवीणा पर एक–एक लम्बा आलाप लेकर संसार को विस्मित कर देना चाहता था। मेरा छोटा घर गर्मी की दृष्टि से कुम्हार का देहाती आवाँ बन रहा था और हवा से खुलते, बंद होते खिड़की दरवाजों के कोलाहल के कारण आधुनिक कारखाने की भ्रांति उत्पन्न करता था। मैं मुखर ज्वाला के उपयुक्त ही काम कर रही थी अर्थात् उत्तर पुस्तकों में अंधा–धुंध भरे ज्ञान अज्ञान की राशि को विवेक में तपाकर ज्ञान कणों का मूल्य निश्चित कर रही थी।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश सुविख्यात लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा विरचित **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित रेखाचित्र अलोपी से लिया गया है।

व्याख्या –लेखिका कहती है कि वैशाख का महीना था भयंकर गर्मी पड़ रही थी। जिस प्रकार कोई वीणा सीखने वाला व्यक्ति प्रारम्भ में वीणा सीखने के लिए दीर्घकालीन अभ्यास करता है और बहुत देर तक एक ही धुन बजाकर दूसरों को आश्चर्य में डाल देता है, उसी प्रकार बैशाख के महीने में निरंतर आग सी बरस रही थी अर्थात् बहुत गर्मी हो गई थी। सभी आश्चर्य कर रहे थे कि इतनी अधिक गर्मी इस बार क्यों हुई? लेखिका अपने छोटे से घर में बैठी थी। वहाँ भी इतनी गर्मी थी कि ऐसा प्रतीत होता था जैसे उसका गाँवों में कुम्हार का बर्तन पकाने का आवाँ हो। जब वहाँ तेजी से लू चलती थी खिड़की और दरवाजे कभी खुलते थे और कभी बंद होते थे, जिसकी इतनी तेज आवाज होती थी जैसी किसी कल कारखाने में तीव्र ध्वनि हाती रहती है। वह ऐसे गर्मी के वातावरण में मानो उसी प्रकार का कार्य कर रही थी। अर्थात् परीक्षाओं की उत्तर–पुस्तिकाओं के मूल्यांकन का कठिन कार्य रही थी जिनमें विद्यार्थियों ने सही और गलत उत्तर लिखे थे। लेखिका अपने ज्ञान के द्वारा सही व उपयुक्त उत्तरों पर अंक देकर गलत उत्तरों को अंक रहित कर परीक्षक का समुचित उत्तरदायित्व निभा रही थी।

विशेष :

1. लेखिका ने भयंकर गर्मी का वर्णन किया है जबकि परीक्षा के पश्चात् वे उत्तर पुस्तिकाएँ देखने का कार्य कर रही है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

- इस वर्ग का जीवन खुली पुस्तक जैसा रहता है, अतः महान ही नहीं, तुच्छतम आवश्यकता के अवसर पर भी उसकी कथा आदि से अंत तक सुना देना सहज हो जाता है। इसके विपरीत हमारा जटिल से जटिलतम होता हुआ अंतर्जगत् और कृत्रिम जीवन ऐसी स्थिति उत्पन्न किए बिना नहीं रहता, जिसमें बाहर के बगूलेपन को भीतर की सड़ी गली मछलियों से सफेदी मिलने लगती है। इसी से हमारी तारतम्यहीन कथा अधिकाधिक अकथनीय बनती जाती है और सुख–दुख की सरल मार्मिकता निर्जीव होने लगती है। हम सहज भाव से अपनी उलझी कहानी कह नहीं सकते। अतः जब कहने बैठते हैं तब कल्पना का एक–एक तार अनेक झंकारों की भ्रांति उत्पन्न करके उसे और अधिक उलझाने लगता है।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश सुविख्यात लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा विरचित **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित रेखाचित्र अलोपी से लिया गया है।

व्याख्या –लेखिका कहती है कि अलोपी जिस वर्ग से संबंधित है उस वर्ग के व्यक्तियों के जीवन की बातें खुली हुई पुस्तक के समान स्पष्ट, अकृत्रिम व सबकी समझ में आ जाती है। उनकी सभी बातों को पड़ लेना सरल है। अतः उन्हें बड़ी अथवा छोटी से छोटी आवश्यकता भी पड़ती है तो वे अपने जीवन की समस्त कहानी स्पष्ट और स्वाभाविक रूप में सुना देते हैं। उसमें किसी प्रकार का बनावटीपन या छिपाव नहीं रहता। दूसरी ओर, हम जैसे मध्यवर्ग के व्यक्तियों का जीवन निरंतर बाहर से अपने को स्वच्छ, निर्मल व आदर्शमय दिखाने का प्रयत्न करते हैं। जिस प्रकार बगुले अंदर गली सड़ी मछलियों को निगलकर बाहर से श्वेत रूप धारण करके भोले, दयालु व सीधे दिखाई पड़ते हैं, वैसे ही हम समाज के अंदर अनेक प्रकार के विकार व दुर्भावनाएँ दबाकर बाहर रूप में सज्जनता, करुणा व बनावटी को प्रदर्शित करते हैं। इसी कारण जब हम अपनी सच्ची बात से अपना बड़पन्न प्रदर्शित करने के लिए उसको बनावटी रूप में प्रस्तुत करते हैं तो उसमें कथा का एक क्रम नहीं बन पाता। यदि कहीं हम अपनी असत्य भरी बातों को कहते भी हैं तो झूठ कहीं न कहीं पकड़ा जाता है, क्योंकि एक झूठ के लिए अनेक झूठ बोलने पड़ते हैं। परिणामस्वरूप हम अपनी बातें कहते समय और भी उलझन में पड़ जाते हैं। यह सत्य है कि मध्यवर्ग का व्यक्ति अपने जीवन को स्पष्ट रूप से नहीं रख पाता।

विशेष :

1. लेखिका ने निम्न वर्ग की बातों को स्पष्ट व मध्यवर्ग की बातों को बनावटी व उलझनपूर्ण सिद्ध किया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

- बदलू अपने बेडौल घड़ों का निर्विकार निर्माता भी था ओर अष्टाचक्र जैसी रूप रेखा वाले बच्चों का निश्चिंत विधाता भी। न कभी निर्जीव मिट्टी की सजीव विषमता ही उसका ध्यान आकर्षित कर सकी और न सजीव रक्त माँस की निर्जीव कुरूपता ही उसकी समाधि भंग करने का सामर्थ्य पा सकी।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा रचित **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित

बदलू नामक चलचित्र से लिया गया है।

व्याख्या – बदलू कुम्हार है। वह निरंतर अधिक से अधिक घड़ों का निर्माण करता रहता है। उसका इस बात पर ध्यान कभी नहीं गया कि उसे सुंदर और सुघड़ घड़े बनाने चाहिए। इसी प्रकार वह निरंतर संतान पैदा करता रहा। भले ही संतानों को सुख न हो, वे चाहे कितने की कुरूप हों, और उनका पालन करना कितना ही कठिन हो, इसकी उसे कोई चिंता नहीं थी। न कभी उसने इस बात पर ध्यान दिया कि निर्जीव मिट्टी से मूर्तियाँ बनाते समय वह कितनी सजीव प्रतीत होने वाली मूर्ति बना सकता है और न इस बात पर कि वह कुरूप घड़े और कुरूप बच्चों का निर्माण निरंत निश्चिंत होकर कर रहा है।

विशेष :

1. बदलू के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है कि वह निश्चिंत होकर जैसे घड़ों का निर्माण करता था, वैसे ही संतानों की भी सृष्टि करता था।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

- स्त्री में माँ का रूप ही सत्य, वात्सल्य ही शिव और ममता ही सुंदर है। ज बवह इन विशेषताओं के साथ पुरुष के जीवन में प्रतिष्ठित होती है, तब उसका रिक्त स्थान भर लेना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा रचित **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित बदलू नामक चलचित्र से लिया गया है।

व्याख्या – लेखिका कहती है कि जिस प्रकार सर्वश्रेष्ठ कला वही होती है जिसमें सत्य, शिव और सुंदर तीन गुण होते हैं। उसी प्रकार नारी का माँ रूप ही सत्य, वात्सल्य और ममता इन तीन गुणों से शोभायतान होता है। माता के रूप में ही नारी की महानता सत्य रूप में दिखाई पड़ती है। नारी का वात्सल्य ही कल्याणकारी होता है और उसका ममत्व सर्व सुंदर होता है। अर्थात् नारी माँ बनकर ही सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की मूर्ति बन जाती है। ज बवह तीन गुणों के साथ पुरुष के जीवन में आती है तो उसका जीवन सार्थक हो जाता है अर्थात् सत्य, वात्सल्य और ममता से भर ाता है, परन्तु माता की मृत्यु होने पर उसका त्रिगुणात्मक रूप कोई नहीं भर सकता। अर्थात् माँ के समान सत्य, वात्सल्य व ममत्व प्रदान करना संभव नहीं है।

विशेष :

1. नारी जीवन में मातृत्व को ही महत्वपूर्ण सिद्ध किया गया है।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

- दूसरों की आँखों का अमंगल चाहने से किसी की पवित्रता की रक्षा नहीं होती, क्योंकि वास्तविक पवित्रता का प्रमाण तो यही है कि मलिन से मलिन दृष्टि भी उसका स्पर्श कर पवित्र हो जावे। इस सत्य को समझना सहज नहीं था। पर लछमा को मेरे कथन भाव तक पहुँचने में कठिनता नहीं हुई। तब से उसके थूप दीप में अपनी ही नहीं, सब की कल्याण कामना रहती है।

प्रसंग –प्रस्तुत गद्यांश प्रसिद्ध छायावादी कवयित्री लेखिका **महादेवी वर्मा** द्वारा रचित **'अतीत के चलचित्र'** में संकलित **'लछमा'** नामक रेखाचित्र से लिया गया है।

व्याख्या – दूसरों की आँखों को नष्ट करने के लिए यदि कोई नारी कामना करती है तो उसकी पवित्रता भी सुरक्षित नहीं रह सकती। अन्य जनों की आँखें फूटें या न फूटें, दूसरों का अशुभ ाहने वाली नारी स्वयं अपवित्र भावना से अवश्य भर जाएगी। सच्चे अर्थों में पवित्रता तो वह है कि बुरी दृष्टि भी उसके प्रति न उठे अर्थात् कोई भी व्यक्ति से कुदृष्टि उसे न देखे। यदि कोई उसे कुदृष्टि या बुरी भावना से देखे तो भी नारी की पवित्रता को देखकर दर्शक की भावना भी पवित्र व निर्मल हो जाए। अतः अपने को इतना पवित्र बनाना चाहिए। वस्तुतः आदर्शवादी भावना या पवित्रता को जानना बहुत सरल नहीं है, परन्तु लछमा लेखिका के कथन को भली भाँति जान गई थी और उसके अनुसार चलने लगी थी। अ बवह अपनी उपासन में देवी से किसी अमंगल की कामना नहीं करती थी, बल्कि सभी का कल्याण व भलाई चाहने लगी थी।

विशेष :

1. लछमा के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। वह कुशाग्र बुद्धि थी, अतः लेखिका की बात शीघ्र ही समझ गई।
2. भाषा सरल, सहज तथा भावानुकूल साहित्यिक खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. वाक्य–विन्यास कुछ जटिल परंतु सहज तथा रोचक है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
7. दृश्य बिंब का प्रयोग हुआ है।

3.1 महादेवी वर्मा की संवेदना

महादेवी वर्मा पीड़ा की साम्राज्ञी और करुणा की मूर्ति मानी जाती हैं। बचपन से ही उनके मन में दीन–दुखियों के प्रति ममता रही है। उनकी पूज्य माता ने सदा उन्हें पीड़ितों, प्रताड़ितों व भिक्षुकों आदि के प्रति दया करना, उनकी सहायता करना, आदि का उपदेश दिया है। उनमें बालकाल से ही परहित–भावना तथा मानवतावाद के प्रति विशेष आस्था रही है। उनमें इस प्रकार के संस्कार माता–पिता द्वारा आरोपित हैं। वे स्वयं संकेत करती हैं– बचपन से बड़े होने तक माँ न जाने कितनी व्याख्या–उपव्याख्यों के साथ इस व्यवहार सूत्र को समझती रही है कि हमारी शिष्टता की रीक्षा उस समय होती है जब कोई भूखा भटका भिखारी द्वार पर खड़ा होकर, हमारी दया के कण के लिए हाथ

फैला देता है।' लेखिका के ये संस्कार आजीवन कम नहीं होते। उनका व्यक्तित्व आंतरिक दृष्टि से दयार्द्र, करुण, सजल, स्वच्छ एवं कृत्रिमताओं से मुक्त रहा है। वे स्वयं प्राप्त संस्कारों के विषय में लिखती हैं –एक ओर साधनाभूत आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ एवं दार्शनिक पिता ने अपने अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा रूप दिया, उससे भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर साधन एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बंधने वाली चेतना पर स्थित हो सकती थी।' उनका स्वभाव उदार व सरल रहा है। अंतरंग में 'नीरभरी दुख की बदली' रही और सामाजिक जीवन में सदैव अज्ञान, अंधविश्वास और दुराचार का विरोध करती रही। इतना अवश्य है कि अल्पायु में विवाह के पश्चात् दाम्पत्य सुख का अभाव उनकी मानसिक वृत्ति को परिवर्तित करने वाला था। इसी कारण दीना, उपेक्षिता, शोषिता, कामवासना की शिकार नारियों के प्रति सदैव उनकी अपार सहानुभूति ओर अक्षय–ममता बनी रही। उसका समस्त जीवन अपने लिए नहीं, बल्कि परहितार्थ समर्पित था। अतीत के चलचित्र के प्रारंभ में अपनी बात में वे कहती हैं– 'मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसा परिचय दे पाते हैं, वह बाहर रूपानतरित हो जाएगा। फिर जिस परिचय के लिए कहानीकार अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकट लाला है उसी परिचय के लिए मैं अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिधान पहनकर दूरी की सृष्टि क्यों करती। इससे स्पष्ट है कि लेखिका के 'अतीत के चलत्रि' के पात्र उनके जीवन के पथ के साथी हैं, कहानी के कल्पित पात्र नहीं। 'अतीत के चलचित्र' में लेखिका का व्यक्तित्व इस प्रकार अपने पात्रों से संबंधित है –

1. **शैशवावस्था से संबंधित पात्र** – ''अतीत के चलचित्र'' में कुछ रेखाचित्रों में इस प्रकार के पात्र हैं जो लेखिका के शैशवकालीन हैं। रामा नाक उनका घरेलू सेवक तो उनकी याद से पूर्व का है। लेखिका ने उसके विषय में कुछ तो बाद में ज्ञात किया था और कुछ स्मृति के आधार पर ही कहा है। ये स्वयं यह स्वीकार करती हैं –

   ''रामा हमारे यहाँ कब आया, यह न मैं बता सकती हूँ और न मेरे भाई–बहिन।''

   परन्तु लेखिका की अपार ममता व अपनत्व उसके प्रति रहा है। लेखिका की माता का स्नेहिल हृदय रामा को जितना अपना बना सका, उतना ही रामा ने बच्चों को अपनी ममता में डुबो दिया। रामा की अनेक घटनाओं को लेखिका ने पुनः स्मरण किया है। रामा के चले जाने पर जहाँ बालिका महादेवी वर्मा और उसके भाई–बहन उसे नहीं भुला सके, वहीं बड़े होने पर भी लेखिका उसके अपार वात्सल्य को विस्मृत न कर सकी। वे कहती है–

   ''आज मैं इतनी बड़ी हो गई हूँ कि ''राजा भइया'' कहलाने का हठ स्वप्न सा लगता है.....पर रामा आज भी सत्य है, सुन्दर है और स्मरणीय है।''

   मारवाड़ी विधवा भाभी लेखिका के घर के पास रहती थी। उस समय महादेवी वर्मा की आयु आठ वर्ष की थी और वह मिशन स्कूल में पढ़ती थी, परंतु लेखिका का उसके साथ इतना संवेदनात्मक संबंध हो गया था कि कभी नहीं भुलाया गया। लेखिका कालान्तर में कहती है– ''कभी कभी तो वह मेरे मुख मेरे सामने आने वाले सभी करुण क्लान्त मुखों में प्रतिबिम्बित होकर मुझे उसके साथ अटूट बंधन में बांध देता है।''

   इस प्रकार रामा, बिंदा, भाभी आदि लेखिका के बचपन से संबंध रखने वाले पात्र हैं, जिनके प्रति उनका ममत्व चिरकाल तक बना रहा।

2. छात्रावास में आगत पात्र – लेखका ने कुछ ऐसे पात्रों की स्मृति भी इस कृति में रेखांकित की है जो उनके छात्रावास में रहत हुए आ गए थे। कर्त्तव्यनिष्ठ सफाई का कार्य करने वाली सबिया, उनमें एक थी। उसकी एक छोटी सी पुत्री अपने अनुज भाई की देखरेख करती थी और सबिया बड़ी स्फूर्ति से छात्रावास में कार्य करती थी। उसके जीवन की घोर विडम्बना को ध्यान करके लेखिका को उसके प्रति असीम करुणा रहती है। वह सबिया को पौराणिक सावित्री से कम नहीं पाती। लेखका लिखती है– ''सच तो यह है कि सबिया को उस पौराणिक नारीत्व के

निकट पाती हूँ जिसने जीवन की सीमारेखा किसी अज्ञात लोक तक फैला दी थी। उसे यदि जीवन के लिए मृत्यु से लड़ना पड़ा तो यह न मरने के लिए जीवन से संघर्ष करती है।

इसी प्रकार एक बालिका जो आठ वर्ष की अवस्था में मातृ–पितृ–विहीन और ग्यारहवें वर्ष में विधवा हो गई थी तथा अठाहरवें वर्ष में दुष्कर्मी की वासना का शिकार होकर एक पुत्र की माँ बन गई थी। लेखिका के मन में इस मानवी के पुत्र और माँ के प्रति इतनी ममता, दया और करुणा भर गई थी कि उसने एक विधवा माँ को अपनी बेटी व उसके पुत्र को अपना नाती मानकर उनकी सुरक्षा व पालन–पोषण का भार स्वीकार कर लिया था। उस समय लेखिका की अवस्था अठारह वर्ष की ही थी। लेखिका की भावभरी चाह थी–''अब यदि मैं उसे माँ की ममता भरी छाया दे सकूँ, तो वह अपने बालक के साथ कहीं भी सुरक्षित रह सकेगी।''

एक दिन अंधा अलोपी भी बालक रग्घू के साथ लेखिका के पास कुछ काम माँगने आया था। उसकी देन्य दशा को देखकर लेखिका ने उसे छात्रवास की तरकारी लाने का कार्य उसी की इच्छानुसाद दे दिया। वह पर्याप्त कर्त्तव्यनिष्ठ सिद्ध हुआ। उसका छात्रावास की बालिकाओं से इतना ममत्व और प्रगाढ़ स्नेह हो गया था कि वह उन्हीं बालिकाओं को बहुत सी चीजें बिना दामों के बाँटता था। बालिकाओं में उसे अठारह वर्ष की अपनी चचेरी बहन का स्वर जान पड़ता था। अंधे अलोपी की अगाध श्रद्धा जितनी लेखिका के प्रति थी, उतनी ही लेखिका में अंधे अलोपी के प्रति करुणा भरी ममता थी। अलोपी के संसार से विदा होने पर भी लेखिका उसे नहीं भूल सकी थी। वे लिखती है– ''पर आज भी देहली की ओर देखते ही मेरी दृष्टि मानो एक छायामूर्ति में पुंजीभूत होने लगती है। फिर धीरे–धीरे उस छाया का मुख स्पष्ट हो चलता है। इस प्रकार कुछ पात्र लेखिका के छात्रावास जीवन में आए, जिनकी स्मृति अक्षुण्ण है और भुलाने पर भी वे पात्र जीवित ही प्रतीत होते हैं।

3. **लेखिका के जीवन में अक्समात् आए पात्र** – लेखिका के जीवन में कुछ पात्र ऐसे भी आए, जिनका लेखिका के जीवन में अकस्मात् आगमन हुआ और वे लेखिका की ममता के कोष के रत्न बन गए। घीसा गंगापार झूंसी के खण्डहर के समीपवर्ती गाँव में रहता था। लेखिका वहाँ पढ़ाने जाती थी। अचानक कोरी जाति की विधवा के पुत्र घीसा के प्रति लेखिका की ममता जागृत हो गई। क्योंकि यह बालक गुरुभक्त और पढ़ने का जिज्ञासु था। उस बालक ने लेखिका को अंत में तरबूज के रूप में जो गुरुदक्षिणा दी थी, वह लेखिका को इतना भावुक बना गई कि लेखिका कुछ न बोल सकी। उसकी भक्ति, श्रद्धा व ममत्व को जानकर लेखिका कहती है –

''मैं आज गाँव के उस मलिन सहमें नन्हें से विद्यार्थी की सहसा याद आ जाने का कारण बता सकती जो एक छोटी लहर के समान ही मेरे जीवन को अपनी सारी आर्द्रता से छूकर अनन्त जल राशि में विलीन हो गया।''

इसी प्रकार लछमा से लेखिका की मुलाकात पर्वतीय प्रदेश में हुई थी जो महादेवी वर्मा की अभिन्न सहेली बन गई थी। नैनीताल के पर्वतीय प्रदेश में ही लेखिका की बिट्टो से जानकारी हो गई थी, जिसकी व्यथा को ज्ञात करके लेखिका की करुणा जीवि हो उठी थी। अतः उसके विषय में महादेवी वर्मा का कथन है– ''उसकी (बिट्टो) कहानी मेरे हृदय के कोने–कोने में बस सी गई। इसी से कभी–कभी उन्हीं सखी महोदया को लिखकर उसके संबंध में पूछना पड़ जाता है।

ये सभी पात्र अचानक लेखिका और उनके रेखाचित्रों के अध्ययन के आधार पर महादेवी वर्मा की जो संवेदना उभर कर आती है, उनका जो व्यक्तित्व झलकता है, उसे निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से प्रकट किया जा सकता है –

1. नारी के प्रति व्यामोह –उपर्युक्त रेखाचित्रों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि पुरुष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों के प्रति लेखिका की प्रगाढ़ करुणा, दया, ममता, मोह और रागात्मक संबंध रहा है। वे स्वयं नारी थी। अतः नारी की पीड़ा को सम्यक् रूप में जानती थी। नारी जीवन की विषमता, मानवीय, वेदना, आर्थिक अभाव,

अशिक्षा, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता तथा उनकी विवशता का यथार्थ चित्रण उन्होंने इन कृतियों में किया है। अबला जीवन की अभागी कहानी जानकर वे दुखित हो उठती थी। यही कारण है कि विधवा मारवाड़िन भाभी, सावित्री के रूप में प्राप्त सबिया, तीन भाइयों की लाड़ली बहन बिट्टों, अठारह वर्षीया विधवा बालिका, बदलू कुम्हार की पत्नी रधिया, पहाड़ी युवती लछमा–इन सभी पात्रों की करुणा भरी दुःखद व दुर्भाग्य कथा सुनकर लेखिका का नारी हृदय दुख से व्याकुल हो जाता है। वेश्या की उस पुत्री की गाथ को सुनकर जो समाज में पवित्र, कुलवधू बनना चाहती है, लेखिका का मन अतीव व्याकुलता, संवेदना और दुख से भर गया है। वे नारियेां के महान् त्याग और समर्पण को बहुत उदात्त और आदर्श मानती है। अतः कहती है– समाज ने स्त्री मर्यादा का जो मूल्य निश्चित कर दिया है, केवल वही उसका गुरुता का मापदण्ड नहीं। स्त्री की आत्मा में उसकी मर्यादा की जो सीमा है, वह समाज के मूल्य से बहुत अधिक गुरु की ओर निश्चित है।

नारियों के प्रति उनमें अत्यधिक संवेदना है। उनका दर्द वे जानती हैं और कहती हैं–''युगों से पुरुष स्त्री को उसकी शक्ति के लिए नहीं, सहनशक्ति के लिए ही दंड देता आ रहा है।'' परंतु क्या करें–पुरुष प्रधान समाज में नारी की दुर्दशा इतनी व्यापक और बहुआयामी है कि उनकी गाथा कहना बहुत कठिन है। अंतिम रेखाचित्र में लेखिका नारी की अकथनीय समस्याओं और दुःखों का सही समाधान चाहती है– ''जब तक स्त्री स्वभाव से इतनी शक्तिशाली नहीं होती है कि मिथ्या पराभव की घोषणा से विचलित न हो, तब तक उसकी स्थिति अनिश्चित ही रहती है।''

2. मातृत्व के प्रति सम्मान– लेखिका की धारणा है कि नारी का पुरुष से चाहे अनेक रूपों में संबंध रहा हो, परंतु उसका माता का रूप अत्यंत सम्माननीय है। वह पुरुष की जन्मदात्री है। उसने समाज की सृष्टि की है। बर्बर पुरुष अपने झूठे दंभ में भरकर के इस महत्त्व को चाहे न समझे, परंतु उसका मातृपक्ष अतीय महनीय है। ''स्त्री में माँ का रूप ही सत्य, वात्सल्य ही शिव और ममता ही सुंदर है।''

यह सत्य है कि नारी की मातृत्व शक्ति समाज की सबसे बड़ी ताकत है। परन्तु समाज की अव्यवस्था, अस्वस्थ नियम व खोखली रूढ़ियाँ और परम्पराएँ नारी के महत्व को निरर्थक सिद्ध कर रही हैं। स्वयं नारियाँ उसे नहीं पहचान पाती। समाज के मनोविाान के आधार पर वे कहती हैं –एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने के लिए उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को भारी बनाए बिना नहीं रहती। इस कुव्यवस्था को जानकर भी लेखिका मातृत्व के रूप में नारी का समाज में सम्मान चाहती हैं।

3. पुरुषों के अन्याय के प्रति आक्रोश – लेखिका का जहाँ नारी–वर्ग के प्रति ममता और उनकी पीड़ा के प्रति दुःख है, वहीं पुरुषों के अन्याय के प्रति आक्रोश भी है। उनका यह आक्रोश अतीत के चलचित्र में अनेक प्रसंगों में अभिव्यक्त हुआ है। वह कर्त्तव्यनिष्ठ सबिया के स्वार्थी और कामुक पति मैकू के विषय में यह जानकर कि सबिया के रहते हुए भी दूसरी पत्नी ले आया है ओर घर का सारा दायित्व सबिया पर है, उन्हें पुरुष के प्रति अपार क्रोध पैदा होता है। तब लेखिका कहती है– ''पुरुष भी विचित्र है। वह अपने छोटे से छोटे सुख के लिए स्त्री को बड़ा से बड़ा दुख दे डालता है और ऐसी निश्चिन्तता से मानो वह स्त्री को उसका प्राप्य दे रहा है।

पुरुष वर्ग का कितना बड़ा अत्याचार नारी के प्रति है। मैकू गरीब है। उसी दीना माँ, पत्नी सबिया, दो बच्चे हैं, फिर भी एक अन्य नारी से विवाह कर लेता है और सबकी आजीविका का भार वहन करती है बेचारी सबिया। उसकी सौत आ जाती है, सबिया को फिर भी आक्रोश नहीं, बदले की भावना नहीं। कितना महान् संतोष और पतिव्रता की उदात्त भावना उसमें है? यह मैकू के लिए जानना कठिन है।

एक वेश्या की पुत्री पवित्र बनकर आदर्श जीवन व्यतीत करना चाहती है। समाज उसे भी पतिता ही मानता

है। वेश्या के साथ रहने वाला पुरुष पतित नहीं है, बल्कि वेश्या अपवित्र है। उसकी सन्तति सदा ही अपवित्र रहेगी। लेखिका की दृष्टि में नारी जाति के प्रति यह घोर अन्याय है। एक विधवा बालिका का ही जीवन भारतीय रीति–रिवाजों के अनुसार अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है, परंतु एक कामुक दुर्वासनाग्रस्त युवक आकर स्वेच्छारिता से उसे माँ बना देता है तो वह निर्बला नारी ही समाज की दृष्टि में तुच्छ है, निकृष्ट है, पापिनी है और हेय है। लेखिका ऐसे पुरुष निर्मित समाज की मान्यताओं पर दुःख व आक्रोश व्यक्त करती है।

महादेवी वर्मा ने अविवाहिता–सा एकाकी जीवन व्यतीत कर अपने को इन क्षत–विक्षत पात्रों के साथ जोड़ दिया था। वे स्वयं स्वीकार करती हैं–इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था।'' उन्होंने अपने बचपन से लेकर 'अतीत के चलचित्र' लिखने तक के समय को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत किया है। गर्मियों में उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करना, झूसी के खण्डहरों के पास गाँव में पढ़ाने जाना, अस्वस्थ होने के कारण नैनीताल या अन्य पर्वतीय प्रदेश पर स्वास्थ्य लाभ लेने जाना, अतिरिक्त समय में कविता करना आदि समस्त उनके व्यक्ति के कार्यकलाप इन रेखाचित्र में हैं। उनका स्वाभाविक रूझान, संवेदना, ममता और करुणा इन्हीं पात्रों से जुड़ी रही। इसी कारण वे कहती हैं –उद्देश्य केवल यही था कि जब समय अपनी तूलिका फेर कर इन अतीत चित्रों की चमक मिटा दे, तब इन संस्मरणों के धुंधले आलोक में मैं उन्हें फिर पहचान सकूँ।

3.2 सामाजिक समस्याओं का निरूपण :

महादेवी वर्मा एक महान छायावादी कवयित्री ही नहीं अपितु सामाजिक सरोकार रखने वाली लेखिका भी है। अतः स्वाभाविक रूप से उनके गद्य साहित्य में विभिन्न सामाजिक समस्याओं का निरूपण हुआ है। उनकी रचना 'अतीत के चलचित्र' भी सामाजिक समस्याओं को निरूपित करने में पीछे नहीं है। उनके 'अतीत के एक चलचित्र', बालिका माँ में उनका यह कथन उनके सामाजिक समस्याओं के निरूपण विषयक उनकी क्षमता का प्रतिपादन करता है– सामाजिक विकृति का बौद्धिक निरूपण मैंने अनेक बार किया है। पर जीवन की इस विभषिका से मेरा यही पहला साक्षात् था। मेरे सुधार संबंधि दृष्टिकोण को लक्ष्य करके परिवार में प्रायः सभी ने कुछ निराश भाव से सिर हिलाकर कहा, मुझे यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि मेरी सात्विक कला इस लू का झोंका न सह सकेगी और साधना की छाया में पले मेरे कोमल सपने इस धुएँ में जी न सकेंगे। मैंने अनेक बार सबको यही एक उत्तर दिया है कि कीचड़ से कीचड़ को धो सकना न संभव हुआ है न होगा, उसे धोने के लिए निर्मल जल चाहिए। जाहिर है कि लेखिका ने न केवल अपने साहित्य में सामाजिक समस्याओं का निरूपण किया है, अपितु उन समस्याओं को हल का सरल मार्ग भी सुझाने का प्रयत्न किया, उनकी पुस्तक अतीत के चलचित्र में ग्यारह रेखाचित्र संकलित हैं। इन ग्यारह रेखाचित्रों में उन्होंने अपने जीवन में आए ग्यारह सामान्य पीड़ित चरित्रों का चित्रण तो किया ही है, साथ ही उनसे संबंधित समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं को भी निरूपित किया है। 'अतीत के चलचित्र' में निरूपित हुई विभिन्न सामाजिक समस्याएँ निम्नलिखित हैं –

1. कन्या विरोधी समाज – महादेवी वर्मा ने जिस कालंखण्ड को आधार बनाकर यह पुस्तक लिखी है, उस समय का समाज कन्या विरोधी समाज था। कोई यह नहीं चाहता था कि उसके यहाँ पुत्री का जन्म हो, सभी पुत्र की चाह रखते थे। हालांकि समाज आज भी कन्याओं की अभ्यर्थना नहीं करता, परन्तु उन दिनों तो यह समस्या और भी विकट थी। लेखिका ने अपने रेखाचित्र 'रामा' में इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए लिखा है.... ''उस समय परिवार में कन्याओं की अभ्यर्थना नहीं होती थी। आंगन में गाने वालियाँ, द्वार पर नौबत वाले और परिवार के बूढे से लेकर बालक तक सब पुत्र की प्रतीक्षा में बैठे रहते थे। जैसे ही दबे स्वर में लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया, वैसे ही घर के एक कोने से दूसरे तक निराशा व्याप्त हो गई। बड़ी बुढ़ियाँ संकेत से मूक गानेवालियों को जाने के लिए कह देती, और बड़े बूढे इशारे से नीरव बाजे वालों को विदा देते यदि ऐसे अतिथि का भार उठाना परिवार की शक्ति से बाहर होता, तो उसे बैरंग लौआ देने के उपाय भी सहज थे'' हालांकि लेखिका ने अपने घर का उदाहरण

देकर, अपने पिता की कन्याओं के प्रति उदार सोच का मुजाहिजा करके इस समस्या का निदान भी देखा है– ''हमारे कुल में कब ऐसा हुआ यह तो पता नहीं, पर जब दीर्घकाल तक कोई देवी नहीं पधारी, तब चिंता होने लगी क्योंकि जैसे अश्व के बिना अश्वमेघ नहीं हो सकता, वैसे ही कन्या के बिना कन्यादान का महायज्ञ संभव नहीं। बहुत परीक्षा के उपरांत जब मेरा जन्म हुआ, तब बाबा ने इसे अपनी कुल देवी दुर्गा का विशेष अनुग्रह समझा और आदर प्रर्शित करने के लिए अपना फारसी ज्ञान भूलकर एक ऐसा पौराणिक नाम ढूंढ लाए, जिसकी विशालता के सामने कोई मुझे छोटा–मोटा घर का नाम देने का भी साहस न कर सका।''

2. विधवा स्त्रियों की दयनीय स्थिति – अतीत के चलचित्र में महादेवी ने जिस सामाजिक समस्या का सर्वाधिक शिद्दत से निरूपण किया है, वह तत्कालीन समाज में विधवाओं की स्थिति। हालांकि आज के समाज में जबकि विधवा विवाह का अत्यधिक प्रचलन हो चुका है, फिर भी विधवाओं की स्थिति बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती परंतु स्वतंत्रता पूर्व तो समाज में विधवाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय ही थी। विधवा हो जाना एक तरह का श्राप था जो विधवा स्त्री को उम्र भर बिना किसी विरोध के भोगना पड़ता था। अतीत के चलचित्र के रेखाचित्रों, जैसे–भाभी, बिट्टो, अभागी स्त्री आदि में लेखिका ने इस समस्या की वीभत्सता पर प्रकाश डाला है। 'भाभी' रेखाचित्र में वे अपनी मारवाड़िन विधवा भाभी के वैधव्यपूर्ण जीवन की दयनीयता पर प्रकाश डालते हुए लिखती है– उस उन्नीस वर्ष की युवती की दयनीयता आज समझ पाती हूँ, जिसके जीवन के सुनहरे स्वप्न गुड़ियों के घरौंदे के समान दुर्दिन की वर्षा में केवल बह ही नहीं गए, वरन् उसे इतना एकाकी छोड़ गए कि उन स्वप्नों की कथा कहना भी संभव न हो सका।'' उस समय विधवा से विवाह करने वाले के हृदय में भी कितना स्वार्थ भरा होता था कि इसका निरूपण लेखिका ने अपने चलचित्र 'बिट्टो' में इस प्रकार किया है– जिस समाज में 64 वर्ष का व्यक्ति 14 वर्ष की पत्नी चाहता है। वहाँ 32 वर्ष की बिट्टो के पुनर्विवाह की समस्या सुलझा लेना टेढ़ी खी थी। उसके भाग्य से ही 150 वर्ष की पूर्णायु वाला कोई पुरुष न मिला और उसके जन्म जन्मांतर के अखण्ड पुण्य फल से हमारे 54 वर्ष के बाबा ने उसके उद्धार का बीड़ा उठाया।'' इसी रेखात्रि में लेखिका ने यह भी स्पष्ट किया है कि विधवा न केवल अपनी ससुराल में बोझ बन जाती थी अपितु अपने मायके में भाई भाभियों के लिए बोझ बन जाती थी यहाँ कारण था कि बिट्टो की भाभियाँ उसका पुनर्विवाह 54 वर्षीय वृद्ध के साथ करने को तैयार हो गई। बड़ी भाभी इस संदर्भ में अपने पति से कहती है– ''अब तो विधवा विवाह होने लगे हैं।'' जिज्ञासु भाई ने जब बहिन की इच्छा के संबंध में प्रश्न किया, तब भाभी ने ममताभरी वाणी में उनसे नासमझी का टीका करते हुए बताया कि ऐसी इच्छा तो कोई निर्लज्ज लड़की भी प्रकट नहीं करती, परन्तु विवाह न होने पर उसका घुट–घुट कर मर जाना निश्चित है।

3. सौतेली माँ से संबंधित समस्या – लेखिका ने अपने रेखाचित्र 'बिंदा' के माध्यम से भारतीय समाज की एक अत्यंत भयानक समस्या सौतेली माँ से संबंधित समस्या का भी सजीव निरूपण किया है। लेखिका ने स्पष्ट किया है कि पुरुष अपनी पत्नी के निधन पर दूसरा विवाह कर लेता है, परन्तु यह नहीं सोचता कि जिस दूसरी स्त्री को वह अपनी पत्नी बनाकर ला रहा है, उसका व्यवहार उसकी पहली पत्नी के बच्चों के प्रति कैसा होगा? प्रायः सौतेली माँ का आगमन बच्चों के लिए घोर अन्याय ही सिद्ध होता है। यही कारण है कि बिंदा को भी अपनी सौतेली माँ से तरह–तरह की यातनाएँ सहनी पड़ती हैं– ''बिंदा के अपराध तो मेरे लिए अज्ञात थे, पर पंडिताइन चाची के न्यायालय के मिलने वाले दंड के सब रूपों से मैं परिचित हो चुकी थी। गर्मी की दोपहर में मैंने बिंदा को आंगन की जलती धरी पर बार–बार पैर उठाते और रखते हुए घण्टों खड़ा देखा था, चौके के खंभे से दिन–दिन भर बंधा पाया था और भूख से मुरझाए मुख के साथ पहरों नई अम्मा और खटोले में सोते मोहन पर पंखा झलते देखा था। उसे अपराध का ही नहीं, अपराध के अभाव का भी दंड सहना पड़ता था इसी से पंडित जी की थाली में पंडिताइन चाची का ही काला मोटा और घुंघराला बाल निकलने पर भी दंड बिंदा को मिला।

4. पुरुष में स्त्री के प्रति अत्याचार से संबंधित समस्या – लेखिका ने अपने रेखाचित्र 'सबिया' में पुरुष से स्त्री के

प्रति अत्याचार की समस्या को भी बड़ी सजीवता के साथ निश्चित किया है। एक स्थल पर लेखिका लिखती है–''पुरुष भी विचित्र है।'' वह अपने छोटे–छोटे से सुख के लिए स्त्री को बड़े से बड़ा दुख दे डालता है और ऐसी निश्चिंता से माने वह स्त्री को उसका प्राप्य दे रहा है। सभी कर्त्तव्यों को वह चीनी से ढकी कुनैन के समान मीठे–मीठे रूप में चाहता है। जैसे ही कटुता का आभास मिला कि उसकी पहली प्रवृत्ति सब कुछ जहाँ का तहाँ पटककर भाग खड़े होने की होती है।'' इस रेखाचित्र में इसी संदर्भ में लेखिका ने पुरुषों की लंपटता को भी निरूपित किया है। पुरुष स्वयं तो अपनी पत्नी से सतीत्व की अपेक्षा करता है परंतु स्वयं अपनी काम–पिपासा की शांति के लिए दूसरी स्त्री से संसर्ग को जरा भी गलत नहीं समझता यही कारण है कि मैकू अपनी पत्नी सबिया के होते दूसरी स्त्री गेंदा को अपने घर उसकी सौत के रूप में ले आता है। लेखिका लिखती है–''जब सब ठीक हो चुका, तब मैकू मुहँ लटकाकर बैठा रहा और बहुत पूछने पर गेंदा का सामाचार देकर उसे बुला लाने के लिए सबिया की खुशामद करने लगा। इतना ही नहीं, सबिया की रेशमी साड़ी देखकर उसने बहुत दीनता से कहा– ''यह तो तेरे रंग पर नहीं फबती सबिया, इसे गेंदा को दे डाल, उस पर खूब खिलेगी।''

5. समाज की दकियानुसी सोच संबंधी समस्या – लेखिका ने अपने रेखाचित्र 'अभागी स्त्री' के माध्यम से समाज की जाति–पाति, अस्पृश्यता, पतीत आदि दकियानूसी मान्यताओं के संदर्भ में पिसती स्त्री अस्तित्व की समस्या को निरूपित किया है। अभागी स्त्री जो एक पतित कही जाने वाली माँ की पुत्री है तथा जिसने समाज में कुलीन कहे जाने वाले परिवार के एक पुरुष से विवाह कर लिया है, अपने ससुराल वालों द्वारा अपनाई नहीं गई है, हालांकि वह अपने पति के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार है, और उसका पति भी उसके लिए घर–परिवार को छोड़ चुका है। इस प्रसंग के संदर्भ में लेखिका समाज की दकियानूसी सोच पर व्यंग्य करती हुई कहती है– ''उसे पता नहीं कि समाज के पास वह जादू की छड़ी है, जिससे छूकर व जिस स्त्री को सती कह देता है, केवल वही सती होने का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है। जिसे समाज ने एक बार कुलवधुओं की पंक्ति से बाहर खड़ा कर दिया, उसे जन्म जन्मांतर तक अपनी सभी भावी पीढ़ियों के साथ बाहर खड़े होने को ही जीवन का सबसे बड़ा वरदान समझना चाहिए और फिर समाज ने क्या उन्हें छोटा मोटा काम दिया है।''

6. गरीबी और अशिक्षा – लेखिका ने अपने उपर्युक्त रेखाचित्रों के माध्यम से तत्कालीन समाज में फैली घोर दरिद्रता और अशिक्षा का भी निरूपण किया है। रामा, अभागी स्त्री, अलोपी दरिद्रता के शिकार होकर ही रोजगार पाने की चाह में लेखिका के पास आते हैं। उनके अन्य रेखाचित्रों में भी घोर दरिद्रता का चित्रण देखने को मिलता है। अभागी स्त्री अपनी घोर दरिद्रता का वर्णन करती हुई लेखिका से कहती है– ''उनके पति डेढ़ वर्ष से बीमार हैं– दवा दारू में सब स्वाह हो चुका है। गहने के नाम से उसकी उंगली में चार माशे भर सोने का एक छल्ला शेष है। पति का एकमात्र उपहार होने के कारण इसे बेचने का विचार ही उसे क्लांत कर देता है और बेचकर भी कै दिन चलेगा.....यदि कोई काम न मिल सका तो वह स्वयं भूखी रहकर मरने से भी नहीं डरती पर.....और उसका गला भर आया'' लेखिका द्वारा रचित इन रेखाचित्रों के अधिकांश पात्र न केवल दरिद्र हैं अपितु अशिक्षित भी हैं। अधिकांश पात्रों में शिक्षा के प्रति कोई ललक भी नहीं है। घीसा रेखाचित्र अशिक्षा की खुली तस्वीर प्रस्तुत करता है। लेखिका गंगापार की बस्ती में जाकर नीचे तबके के लोगों के बच्चों को पढ़ाने की बात कह कर उनके अशिक्षित होने का प्रमाण देती है। घीसा की माँ घीस को पढ़ाने के लिए लेखिका से आग्रह करती है– स्त्री ने रूक रूककर कुछ शब्दों और कुछ संकेत में जो कहा उससे मैं केवल यह समझ सकी कि उसे पति नहीं है, दूसरों के घर लीपने–पोतने का काम करने वह चली जाती है और उसका यह अकेला लड़का ऐसे ही घूमता रहता है। मैं इसे भी और बच्चों के साथ बैठने दिया करूँ तो यह कुछ सीख सके।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ''अतीत के चलचित्र'' में लेखिका ने तत्कालीन अनेक सामाजिक समस्याओं का निरूपण बड़ी सजीवता के साथ किया है।

3.3 रचना शिल्प

महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य की सुप्रसिद्ध कवयित्री और गद्यकर्त्री उभय रूपों में जानी जाती है। जहाँ पद्य के क्षेत्र में उनकी आत्माभिव्यक्ति अधिक है, वहाँ गद्य के क्षेत्र में उन्होंने समाज के पीड़ित, शोषित, दलित, दीन–हीन तथा पतित वर्ग का यथार्थ चित्रण किया है। उनकी कृति 'अतीत के चलचित्र' इसका जीता जागता उदाहरण है। इसके पात्र तथाकथित अकिंचन और अपने क्षत विक्षत जीवन में सिमटे किसी खिलौने की हाट या प्रदर्शिनी के उपकरण नहीं जो मनोरंजन प्रदान कर सकें। इस रचना के ग्यारह संस्मरणात्मक रेखाचित्र हैं –

1. रामा, 2 विधवा भाभी, 3 बिंदा, 4 सबिया, 5 बिट्टो, 6 बालिका वधू, 7 घीसा, 8 सती वेश्या पुत्री, 9 अंधा अलोपी, 10 बदलू और रधिया, 11 लछमाँ। ये सभी समाज के ऐसे कुरूप चित्र हैं जो या तो अशिक्षा और शोषण के कारण दीन और सरल हैं या समाज की घोर अपेक्षा के शिकार रहे हैं। यदि इस सम्पूर्ण रचना को काव्य कला अथवा रचना शिल्प की दृष्टि से देखा जाए तो इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

1. संवेदनशीलता – महादेवी वर्मा करुणा और पीड़ा की साम्राज्ञी मानी जाती है। उनकी करुणा, संवेदना और दया उस समय और भी अधिक द्रवीभूत हो जाती है जब वे समाज के प्रताड़ित, अपमानित, पतित व दलित पात्रों को देखती है। विशेष रूप से जब से परित्यक्ता, अपमानित, मार्मिक पीड़ा से व्यथिता नारी को मानव के दंभ भरे समाज में पाती हैं तो उनके मन में संवेदना घनीभूत हो उठता है। 'अतीत के चलचित्र' में क्षुधा से व्याकुल परंतु जिज्ञासु निरीह बालक घीसा, बेड़ोल घड़ों का निर्माता बदलू कुम्हार आदि पुरुष पात्रों के प्रति लेखिका का अक्षय ममत्व दीर्घ काल की दीवार को लांघकर भी नहीं मिटा सका। कालान्तर में भी ये पात्र लेखिका के मानस पटल पर अंकित हैं और भुलाए नहीं जाते। उदाहरण के लिए, वे अनाथ व दीन बालक घीसा के विषय में लिखती हैं –

''आज यह कहानी दोहराने की मुझमें शक्ति नहीं, पर संभव है आज के कल, कल के कुछ दिन, दिनों के मास और मासों के वर्ष बन जाने पर मैं दार्शनिक के समान घोर भाव से उस छोटे जीवन का उपेक्षित अंत बता सकूंगी। अभी मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है कि मैं अन्य मलिन मुखों में उसकी छाया ढूंढती रहूँ।

लेखिका अपनी ममता के इन अक्षय कोषों को नहीं भुला पाती। क्योंकि उनके प्रति संवेदना और अपनत्व है। वे समाज से भले ही उपेक्षित रहे हों, परन्तु लेखिका के अपेक्षित पात्र हैं। अंधा अलोपी यद्यपि संसार से चल बसा था, परन्तु लेखिका को छायारूप में वह अभी भी कर्त्तव्यपरायण लग रहा था। वे लिखती हैं–''आज भी देहली की ओर देखते ही मेरी दृष्टि मानो एक छायामूर्ति में पूंजीभूत होने लगती है। फिर धीरे–धीरे उस छाया का मुख स्पष्ट हो चलता है। उसमें मुझे कच्चे काँच की गोलियाँ जैसी निष्प्रभ आँखें भी दिखाई पड़ती हैं और पिचके गालों पर सूखे आँसुओं की रेखा का आभास भी मिलने लगता है। तब मैं आँखें मल मलकर सोचती हूँ–नियति के व्यंग्य से जीवन और संसार के छल से मृत्यु पाने वाला अलोपी क्या मेरी ममता के लिए प्रेत होकर मंडराता रहेगा?''

लेखिका की संवेदनशीलता सभी पात्रों में फूट पड़ी है। चाहे इन पात्रों में लेखिका का पारिवारिक संबंध रहा हो अथवा नहीं। नारी के प्रति उनका नारी हृदय और भी अधिक करुणा से भरा रहता है। परित्यक्ता सबिया हो या बाल विधवा मारवाड़िन, पुनर्विवाहिता बिट्टो हो या अविवाहिता बालिका–माँ, सभी उनकी अपार करुणा के केन्द्र रहे हैं। उनकी संवेदनशीलता ही मानो पात्रों का जीवन बनाती है।

2. भावुक कल्पना–'अतीत के चलचित्र' में महादेवी वर्मा पात्रों का चित्रण करते समय भावुक और सहृदयता से भरकर फूट पड़ी है। उनकी भावुकता सर्वथा काल्पनिक या कवित्व पूर्ण नहीं, बल्कि सच्ची भावाभिव्यक्ति उनके गद्य में विद्यमान है। इसका मूल कारण था उनके हृदय की दया, करुणा, ममता, वात्सल्य, सहानुभूति, संवेदना आदि वृत्तियाँ। निःसंदेह संसार दुःखों का अगार है, उसमें भी मानव अधिक दुःखी है। परंतु मानवों में नारी वर्ग का दुख गहन है। सदा से ही पुरुष प्रधान समाज में नारी उपेक्षिता, शोषिता, समर्पिता व विपन्ना रही है। बाल विधवा

मारवाड़िन भाभी, सबिया, बिट्टो, लछमा आदि के अबला जीवन की दुर्भाग्य पूर्ण कथा से लेखिका का मन आक्रोश से भर गया। जब वे अठारह वर्षीया बालविधवा को देखती है, जिसे किसी नरपिशाच की घृणित वासना का शिकार होना पड़ा और समाज ने उसे पतिता घोषित कर दिया तो लेखिका की आँखों से अश्रू प्रवाहित होने लगे। उसका हृदय चीत्कार हो उठा।

''यदि ये स्त्रियाँ अपने शिशुओं में गोद से लेकर साहस से कह सकें कि बर्बरों, तुमने हमारा नारीत्व–पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी तो समस्या तुरंत सुल जाए।'' इस भावुकता का कारण उनका अपना एकाकी जीवन नहीं, बल्कि समाज में व्याप्त शोषण वृत्ति है। नारियों की दुर्दशा और उनके प्रति किया गया घोर अन्याय है। नारी–हृदया होने के कारण वे नारी की पीड़ा को भली भाँति जानती है। वे स्वयं को ''मैं नीर भरी दुःख की बदली'' कहती हैं। यह उनकी करुणा कोरी कल्पना नहीं, बल्कि सच्च तथा हृदय से निकली हुई संवेदना है। उनकी यही भावना उन्हें भावुक बना देती है।

3. कवित्व – लेखिका ने कवित्व हृदय पाया था। वे छायावादी परम्परा की कवयित्री मानी जाती हैं। अतः उनका कवित्व रूप गद्य रचनाओं में छिपाए नहीं छिपता। कहीं–कहीं उनका गद्य ही पद्यात्मक सा प्रतीत होता है। जैसे–

(क) वसंत हो या होली, दशहरा हो या दीवाली।

(ख) बदलू अपने घड़ों का निर्विकार निर्माता तो था, अष्टावक्र जैसी रूप रेखा वाले बच्चों का निश्चिंत विधाता भी।

उनका कवि रूप प्रत्येक रेखाचित्र पर हावी है। कहीं अलंकृत शैली है तो कहीं कोमलकान्त, पदावली, कहीं व्यंग्य की मार्मिकता है तो कहीं लाक्षणिकता का समावेश। गद्य भी गीत के समान मधुर व कोमल भावनाओं के वाहक हैं। छायावादी कवि प्रकृति के चितेरे रहे हैं। महादेवी वर्मा ने प्रकृति का चित्रण आलम्बन रूप में उद्दीपन रूप में, भूमिका के रूप आदि अनेकों रूपों में प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए, प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण द्रष्टव्य है –

1. वैशाख नए गायक के समान अपनी अग्निवीणा पर एक से एक लम्बा आलाप लेकर संसार को विस्मित कर देना चाहता था।
2. तीसरा पहर थके यात्री के समान मानो ठहर ठहर कर बढ़ा, आ रहा था।

कहीं बिम्बात्मकता है, तो कहीं चित्रात्मकता। अलंकरणवृत्ति तो उनके गद्य में सर्वत्र व्याप्त है। लेखिका मूलतः करुणा और पीड़ा की कवयित्री रही है। सम्पूर्ण 'अतीत के चलचित्र' में उनकी यह करुणा बिखरी हुई है। रामा, बिट्टो, सबिया, लछमा, बिंदा, विधवा भाभी, अंधा अलोपी, बदलू और रधिया आदि सभी पात्रों के प्रति उनका भावात्मक संबंध है। इनका मार्मिक और हृदय पर प्रभाव डालने वाला चित्रण उन्होंने किया है। कभी कभी पात्रों के लिए, अठारह वर्षीया शोषित नारी और उसके अभागे बालक के विषय में लेखिका लिखती हैं –

''मलय के झोंके के समान मुझे कण्टक वन में खींच लाकर उन्होंने जो दो फूल की धरोहर सौंपी थी, उससे मुझे स्नेह की सुरभि ही मिली।''

'कण्टकवन', 'फूलों' आदि में प्रतीकात्मकता है। लेखिका का कवि हृदय गद्य में आद्यन्त किसी न किसी रूप में दिखाई पड़ता है। उनकी रचना 'अतीत के चलचित्र' में ग्यारह रेखाचित्र हैं, जिनमें आत्माभिव्यक्ति सौन्दर्यभावना, पीड़ा व वेदना का समावेश, प्रेम का प्रवाह, भावप्रणवता, सहज अभिव्यंजना, लाक्षणिकता, चित्रात्मकता, प्रकृति का चित्रण, प्रतीकात्मकता, बिम्बात्मकता आदि सभी छायावाद की विशेषताएँ हैं। जिस आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'अतीत के चलचित्र' में महादेवी वर्मा का कवित्व रूप भी परिलक्षित होता है।

4. यथार्थ चित्रण – 'अतीत के चलचित्र' महादेवी वर्मा की संस्मरणात्मक रेखाचित्र प्रस्तुत करने वाली कृति है।

सर्वथा काल्पनिक या मनोरंजकनात्मक रचना नहीं। लेखिका ने जो जीवन में देखा है, अनुभव किया है, उसका यथार्थ चित्रण उनकी प्रस्तुत कृत में है। रामा उनकी बाल्यावस्था का घरेलू सेवक रहा है। अंधा अलोपी, बालिका वधू, घीसा आदि पात्र उनके छात्रावास के समय में उनके जीवन में आए पात्र हैं। बिंदा व विधवा भाभी उनके बाल्यकाल के परिचित पात्र हैं। बदलू और रधिया का घर उनके आने जाने के घर के रास्ते में ही पड़ता था। लेखिका ने रेखाचित्रों में ही सहज रूप से इन पात्रों का अपने जीवन के साथ संबंध स्पष्ट कर दिया है। उदाहरण के लिए वे लिखती हैं –

1. बिंदा मेरी उस समय की बाल्य सखी थी।
2. पहली बार लछमा को देखकर मेरे मन में उसे प्रयाग लाकर पढ़ाने लिखाने का विचार उठा।
3. रामा के आगमन की कथा हम बड़े होकर सुन सकें। यह भी उसी के समान विचित्र थी।
4. यह नहीं कह सकती कि परदे से निकलकर कब उन आँखों की स्वामिनी ने मुझे आँगन में खींच लिया।

लेखिका ने इन पात्रों के साथ अपने जीवन में आगमन का संकेत करके उनका संस्मरणात्मक यथार्थ चित्रण किया है। संस्मरण या रेखाचित्र सर्वथा काल्पनिक या कवि निर्मित नहीं होते। वे तो जीवन में प्राप्त और दृष्टि पात्र होते हैं। लेखिका ने उनके जीवन को जीवन्त बनाने के लिए यथार्थवादी भावना या प्रगतिवाद को अपनाया है। प्रत्येक पात्र का चित्र उसकी आकृति, वेशभूषा, रहन–सहन, उस पर आने वाली विपदा व संकट को लेखिका ने अपनी तूलिका से रंग दिया है। यद्यपि पात्रों का समस्त जीवन तो रेखाचित्रों में अंकित नहीं है, परंतु कुछ मार्मिक घटनाएँ या क्षणों को प्रस्तुत करके लेखिका ने उनको यथार्थ धरातल पर अंकित किया है। पाठक–वृंद उनकी इस यथार्थता पर किसी प्रकार चिह्न नहीं लगाते। पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में रामा, बिंदा, लछमा, सबिया, अलोपी, बदलू जैसे पात्र आज भी विद्यमान हैं। यह बात दूसरी है कि सभी शोषित–वृत्ति के शिकार या दया के पात्र हैं, परन्तु उनमें असंभावनीयता नहीं है।

5. चित्रात्मकता – 'अतीत के चलचित्र' में लेखिका ने पात्रों का सृजन करते समय उनके यथावत् चित्र प्रस्तुत किए हैं। वस्तुतः यह रचना रेखाचित्र है। अतः ये तूलिका से बनाए या कैमरे से खींचे चित्र नहीं हैं, बल्कि शब्द चित्र हैं। इनका प्रभाव पाठकों पर वास्तविक चित्रों से भी अधिक पड़ता है। लेखिका के समक्ष जैसे ही कोई पात्र आता है तो उसकी बाह्य आकृति का संक्षिप्त खाका लेखिका ने अवश्य अंकित किया है, जिसमें उनकी दशा, परिस्थिति व वृत्ति का अनायास ही आभास हो जाता है। चित्रात्मकता में लेखिका सिद्धहस्त है। उदाहरण के लिए, प्रथम रेखाचित्र में रामा की बाह्यकृति का चित्र प्रस्तुत करती हुई लेखिका लिखती है –

''रामा के संकीर्ण माथे पर की खूब घनी भौंहें और छोटी छोटी स्नेह तरल आँखें.....अनगढ़ मोटी नाक, सांस के प्रवाह से फैले हुए नथुने, मुक्त हँसी से भरकर फुले हुए से ओंठ और काले पत्थर की प्याली में दही की याद दिलाने वाली सघन और सफेद दंत पंक्ति।''

रामा के शारीरिक गठन या बनावट के विषय में ही नहीं बल्कि उसके पहनावे के विषय में भी लेखिका ने स्पष्ट कर दिया है तथा विशेष अवसर पर वह किस प्रकार की सुंदरतम पोशाक पहनता था, उसका भी संकेत किया है –

केवल एक मिर्जई और घुटनों तक ऊँची धोती पहनकर अपनी सुडौलता के अधिकांश की प्रदर्शनी करता रहता था। उसके पास सजने की उपयुक्त सामग्री का अभाव नहीं था। क्योंकि कोठरी में अस्तर लगा हुआ लंबा कुरता, बंधा हुआ साफा, बुन्देलखण्डी जूते और गंठीली लाठी, किसी शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा करते जान पड़ते थे।

केवल रामा का ही नहीं बल्कि सभी पात्रों की बाह्य स्थिति, पहनावा, उनकी मुखाकृति तथा उनकी आंतरिक

वृत्ति का भी यथावत् चित्र इन रेखाचित्रों में प्राप्त है। इसका मूल कारण है कि लेखिका ने इन्हें पास से देखा है। इनके जीवन की आशा–निराशा, सुख–दुःख, उतार–चढ़ाव आदि मानसिक वृत्तियों को ठीक प्रकार से जाना है। उनकी बाह्यकृति का विवेचन करना ही लेखिका के लिए पर्याप्त नहीं रहा। बल्कि उनकी मानसिक वृत्ति, उनका आचार व्यवहार व रहन–सहन का भी यथावत् चित्रण किया है, जो पाठकों के हृदय पटल पर अंकित हुए बिना नहीं रहता। इसी कारण 'अतीत के चलचित्र' की चित्रात्मकता बेजोड़ है।

6. शोषण के प्रति विद्रोह – लेखिका जहाँ अपने पात्रों के प्रति स्नेहिल, दयालु, संवेदनशील तथा करुणा से व्याप्त रही है, वहीं शोषकों के विरूद्ध उनका आक्रोश भी रहा है। समाज में वे जहाँ अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि देखती हैं वहीं उनका मन विक्षिप्त हो जाता है। वे भारत में समाज व परिवार को मानवतावादी भावना से व्याप्त देखना चाहती थी। मानव है तो उसमें मानवीयता अवश्य रहनी चाहिए। उनको दानववृत्ति शोभनीय नहीं है। यह तो अभिशाप है ओर मानवजाति का अपमान है। नारियों पर किसी प्रकार के अत्याचार को वे समाज का कलंक मानती थी, क्योंकि समाज की निर्मात्री और कर्त्री नारी है। उनका समर्पण, सेवा, त्याग और करुणा महान् है। मानव जाति के लिए अमृत है। फिर वह उपेक्षित शोषित और पतिता क्यों है; उनका कथन है –

''युगों से पुरुष स्त्री को उसकी शक्ति के लिए नहीं, सहन शक्ति के लिए दण्ड देता आ रहा है।'' वास्तव में उनका विद्रोह स्वर सर्वथा न्यायसंगत है, क्योंकि जब दीनहीना, अबला और कोमलांगना नारी के प्रति समाज में अकारण और अनावश्यक रूप से घोर अन्याय किया जाता है तो नारी के हृदय में आक्रोश क्यो ंन पैदा हो? दुर्भाग्य तो इस बात का है कि पुरुष वर्ग तो नारी के साथ अन्याय करता ही है, परन्तु नारी वर्ग न तो उसका विरोध करता है और न पुरुष वर्ग के अमानवीय व्यवहार की निंदा करता है। बल्कि नारी ही विपत्ति के समय पुरुष के साथ हो जाती है। ग्यारहवें रेखाचित्र में वे लछमा के प्रसंग में कहती है –

''एक पुरुष जाति के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम का प्रमाण पाकर भी स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाए बिना नहीं रहती हैं।''

लेखिका नारियों का शोषण देश, समाज, परिवार या व्यक्तिगत किसी भी रूप में नहीं चाहती। समाज के दो पक्ष–नारी और पुरुष, में से एक पक्ष ही नारी का शोषण उस समाज का दुर्भाग्य व पुरुष की तुच्छता मानती है। उनकी दृष्टि में नारी का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान है–

''स्त्री में माँ का रूप ही सत्य, वात्सल्य ही शिव और ममता ही सुंदर है।''

इस प्रकार की नारी का पुरुष अपमान करे, लेखिका को सहनीय नहीं है।

7. उदात्त भाषा शैली – शिल्प की दृष्टि को यदि देखा जाए तो 'अतीत के चलचित्र' का कलापक्ष अत्यंत उदात्त है। इसकी भाषा व शैली इतनी सरल व सुबोधगम्य नहीं जो साहित्य से अनभिज्ञ व्यक्ति इसकी गहनता को जान सके। लेखिका ने प्रायः दीर्घवाक्यों का प्रयोग करके संक्षेप में भावाभिव्यक्ति की है। प्रायः संस्कृत के शब्दों का प्रयोग है। लेखिका स्वयं हिंदी और संस्कृत की विदुषी थी तथा सफल शिक्षित थी। मूलतः वे कवयित्री थी, अतः भाषा में शब्दों को तोल–तोलकर प्रयोग करना जानती थी। उनकी भाषा में प्रसंगानुकूल सरलता व सरसता भी है तो साहित्यिकता भी। एक ही अनुच्छेद में वे बहुत गहन और गंभीर भावों को भर देती है। सुविधा पाठक ही इनकी गहराइयों को छने का अधिकारी है। इनकी काव्यात्मकता भाषा रस संचार करने में सक्षम है तथा भावाभिव्यक्ति का दस्तावेज है। भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था तथा उनकी शैली प्रसंग के अनुसार स्वयं नए–नए रूप धारण करती जाती है। इसके लिए लेखिका को प्रयास करना नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए विधवा भाभी का चित्रण करते समय द्वितीय रेखाचित्र में वे लिखती हैं –

''घर के सब उजले–मैले, सहज–कठिन कामों के कारण, मलिन रेखाजाल से गुंथी और अपनी शेष लाली को कहीं छिपा रखने का प्रयत्न सा करती हुई, कहीं कोमल कहीं कठोर हथेलियाँ, काली रेखाओं में जड़े कांतिहीन नखों से कुछ भारी जान पड़ने वाली पतली उंगलियाँ, हाथों का बोझ संभालने में भी असमर्थ सी दुर्बल, रूखी पर गोरी बाहें और मारवाड़ी लहंगे के भारी घेर से थकित से एक सहज सुकुमारता का आभास देते हुए कुछ लंबी उंगलियों वाले दो छोटे–छोटे पैर, जिनकी एड़ियो के आंगन की मिट्टी की रेखा मटमैले महावर सी लगती थी, भुलाए भी कैसे जा सकते हैं।''

यह एक वाक्यात्मक अनुच्छेद है, जिसमें चित्रात्मकता, बिम्बों का विधान, लाक्षणिकता, व्यंग्यात्मकता, आलंकारिता आदि की सहज योजना है। लेखिका ने मानो गागर में सागर भर दिया है। रेखाचित्र में जो विशेषताएँ व आकांक्षाएँ होनी चाहिए वे सभी इनकी भाषा के माध्यम से व्यक्त हैं। लेखिका के गद्य में उनका कविरूप, छायावादी शैली व गहन भावों की अभिव्यक्ति एक साथ दिखाई पड़ती है। अतः कलापक्ष की दृष्टि से भी अतीत के चलचित्र महत्वपूर्ण कृति है।

इस प्रकार महादेवी वर्मा के रेखाचित्र कथ्य व शिल्प दोनों ही रूपों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

3.4 चरित्र–चित्रण

अतीत के चलचित्र' का प्रथम रेखाचित्र रामा से संबंधित है, जो महादेवी वर्मा के बाल्यकाल का घरेलू नौकर था। उस समय तो यह विवाहित होने के पश्चात् लेखिका का घर छोड़कर चला गया था। परन्तु पर्याप्त अंतराल के पश्चात् ज बवह मादेवी वर्मा को मिला तो उसका पूर्व जीवन ही लेखिका के स्मृति पटल पर अंकित हो गया। महादेवी वर्मा ने 'अतीत के चलचित्र' में 'अपनी बात' शीर्षक में लिखा है–''सन् 30 में उसी भृत्य को देखकर मुझे अपना बचपन और उसे अपनी ममता से घिरे हुए रामा इस तरह स्मरण आए कि अतीत की अधूरी कथा लिखने के लिए मन आकुल हो उठा। प्रस्तुत कृति में लेखिका ने रामा की स्मृति के आधार पर ही आलोच्य रेखाचित्र लिखा था। इस रेखाचित्र के आधार पर रामा का चरित्र चित्रण इस प्रकार किया जा सकता है –

1. रामा का रूप और व्यक्तित्व–रामा बुन्देलखण्ड का रहने वाला एक अशिक्षित बालक था जो अपनी सौतेली माँ के व्यवहार से दुखी होकर, घर छोड़कर चल दिया था तथा भिक्षा वृत्ति के आधार पर इन्दौर में महोदवी वर्मा के घर के दरवाजे की देहली पर आकर बैठ गया था। लेखिका की माँ ने जब उसे भिखारी समझकर उससे पूछा तो वह बोला–एक मताई, ए रामा तो भूखन के मारे जो चलो। (ह माता यह रामा तो भूख के कारण कर रहा है।) माँ ने उसे भोजन कराया और उसका परिचय जानकर उसे अपने घर में नौकर रख लिया। उसके शारीरिक गठन का चित्रण करती हुई लेखिका लिखती है –

''रामा के संकीर्ण माथे पर की घनी भौंहें और छोटी छोटी स्नेह तरल आँखें.....अनगढ़ मोटी नाक.....फैले हुए नथुने... .....फूले हुए से ओंठ.....सघन और सफेद दन्तपंक्ति।''

छोटे–छोटे बाल, लंबी चोटी, सफेद हथेली, गाँठदार उंगलियों वाले हाथ रामा के थे। इस प्रकार वह कुरूप था और वैसी ही उसकी वेशभूषा थी। वह हर समय मिर्जई और घुटनों तक की धोती पहनता था। बाह्य आकृति से कुरूप होकर भी वह अंतरंग की भावधारा से स्नेहिल, सरल, मृदुभाषी था। बाल्यकालीन लेखिका ओर उसके भाई बहनों के प्रति शांत और सच्चे मन से सेवा करने वाला सेवक था।

2. कर्त्तव्यपरायण –रामा अपने कर्त्तव्यों का शत–प्रतिशत पालन करने वाला था। वह प्रातः जल्दी उठता था। पूजा घर साफ करके उसके बर्तनों को रगड़कर चमका देता था। तत्पश्चात् बच्चों को स्नेह से बहलाकर जगाना, उनके हाथ मुँह धोना, उन्हें नाश्ता कराना, दिनभर उनका मन बहलाना और उनके साथ कभी हाथी बनकर तो कभी घोड़ा

बनकर खेलना और रात्रि में उन्हें कहानी सुनाकर सुला देना। यह उसका घर में दैनिक कार्य था। जिसे वह बड़ी कुशलता, कर्तव्यपरायण व तत्परता से करता था। उसके कार्य में कभी भी कमी नहीं आती थी। सभी बच्चे भी उससे इतना स्नेह करने लगे थे कि लेखिका की माँ जब कभी अपने पिता के घर जाती तो घर का सम्पूर्ण दायित्व रामा पर छोड़कर निश्चिंत हो जाती थी। वह प्रत्येक कार्य को तन–मन से करता था, जिसका चित्रण करते हुए लेखिका कहती है –

''खाते समय भोजन की मात्रा और भोक्ता की सीमा में अन्याय न होने देना, खेलते समय यथावश्यकता हमारे हाथी, घोड़ा, उड़न खटौला'' आदि के अभाव को दूर करना ओर सोते समय हम पर पंख जैसे हाथों को फैलाकर कथा सुनाते हुए हमें स्वप्ननालों के द्वार तक पहुँचा आना रामा का ही कर्त्तव्य था।''

3. सच्चा सेवक –रामा घर के कार्य बड़ी निष्ठा के साथ करता था तथा बच्चों से अतीव ममत्व रखता था। घर के व बच्चों के जो भी कार्य उसे दिए जाते थे, वे सभी तत्परता के साथ करता था। एक बार दशहरे के अवसर पर रामा को बच्चों को मेला दिखाने का अवसर मिला। वह बड़ी सावधानी व उत्तरदायित्व के साथ उन्हें मेला दिखा रहा था। एक शिशु को कंधे पर बैठाकर, दूसरे को गोदी में लेकर महादेवी को उंगली पकड़ाकर बार–बार कहता था–''उंगरिया जिन छोड़ियो राजा भईया।' परन्तु महादेवी को एक शरारत सूझी कि वह धीरे से रामा की उंगली छुड़ाकर मेला देखने लगी और भटक गई। रामा के चिंता के कारण मानो प्राण सूख गए। अपनी कर्त्तव्यहीनता पर वह बहुत दुःखी हुआ। महादेवी को एक मिठाई की दुकान पर पाकर उसकी जो दशा हुई, उसका चित्रण करते हुए लेखिका कहती है–

''रामा के कुम्हालए मुख पर ओस के बिंदु जैसे आनन्द के आँसू ढुलक पड़े। वह मुझे घुमा घुमाकर सब ओर से इस प्रकार देखने लगा, मानो मेरा कोई अंग मेले में छूट गया हो।''

4. अनपढ़ किंतु व्यवहारज्ञ– रामा अशिक्षित था, परन्तु व्यवहार में कुशल था। बच्चे उसे परेशान करते थे, तो भी वह परेशान नहीं होता था बल्कि उन्हें व्यवहार की बातें समझाता रहता था। एक बार रामा ने बच्चों को चोरी न करने का उपदेश दिया। अपनी व पराई वस्तु के अंतर को सूक्ष्मता से समझाया। परन्तु बच्चे समझकर भी चंचल स्वभाव के कारण कुछ वस्तु चुराने के लए और रामा को निराश करने की सोचने लगे। ऊपर छत के संकीर्ण मार्ग से वे पड़ोसी के फूल तोड़ने गए। जब रामा को ज्ञात हुआ, तो उसने महादेवी के कान पकड़ कर कहा –

''कहो जू कहो जू, किते गए थे।'' रामा ने महादेवी को चोरी न करने के लिए ऐसा किया था, परन्तु रामा पर डाँट पड़ी। फिर भी उसने महादेवी का मन बहलाने के लिए यह गीत गाया–''ऐसा सिय रघुवीर भरोसो।'' रामा बच्चों को मनाना, बहलाना, समझाना आदि सभी व्यवहार का ज्ञाता था।

5. बालमनोविज्ञान का ज्ञाता –अशिक्षित रामा महादेवी व उसके भाई–बहनों को अपने स्नेह, ममता व मीठी बातों से आकर्षित रखता था। वह सभी को 'राजा भइया' कहकर पुकारता था। कभी कभी महादेवी को प्यार से बड़े राजा भइया कहता था। महादेवी की माँ जब दस पन्द्रह दिन के लिए अपने घर जाती थी तो बच्चे रामा के बिना वहाँ भी जाने को तैयार नहीं थे। वह बच्चों को गाना गाकर सुनाता। कभी कंधे पर बैठाता तो उन्हें विभिन्न प्रकार के खेल खिलाकर उनका मन बहलाता था। वह जानता था कि किस प्रकार बच्चों के मन को जीता जा सकता है। लेखिका के शब्दों में –

''उसके पास कथा, कहानी ओर कहावत आदि का जैसा बृहत् कोष था, वैसा सौ पुस्तकों में भी नहीं समता।''

महादेवी को बाल्यावस्था में घर पढ़ाने जब पण्डित जी मौलवी साहब, संगीत शिक्षक व ड्राईंग मास्टर आते थे तो कदाचित् रामा जानता था कि इतना भार महादेवी से न सम्भल सकेगा।

6. बच्चों का संरक्षक –महादेवी वर्मा का कथन है– ''रामा के बिना भी संसार का काम चल सकता है, यह हम नहीं मान सकते।'' वास्तव में उस समय रामा बच्चों का सच्चा संरक्षक था। एक बार महादेवी के छोटे भाई को चेचक निकल गई। तब उसे घर के ऊपर के खण्ड में लेकर रामा ही रहा, जिससे दूसरों को चेचक न निकले। उन्हीं दिनों इन्दौर में प्लेग फैल गया था। महादेवी की माँ व छोटे भाई उस प्रकोप में आ गए। उस समय रामा ने घर के कार्य व सभी सदस्यों की इतनी देखभाल की –ऐसे अवसरों पर रामा अपने स्नेह से हमें इस प्रकार घेर लेता था और किसी अभाव की अनुभूति ही असंभव हो जाती थी।''

एक बार महादेवी को बाल्यावस्था में कान के पास गिल्टी निकल आई, तब रामा ने दो तीन दिन उसकी बहुत सिंकाई की। सेंकते समय वह कभी देवी, कभी हनुमान और कभी किसी भगवान का नाम लेता था। शायद उसी की दुआ से महादेवी दो तीन दिन में ठीक हो गई। अपने जीवन को खतरे में डालकर बच्चों की सेवा करना और उन्हें दुखों से मुक्ति दिलाकर प्रसन्न होना, रामा का स्वभाव सा बन गया था, जिसके कारण यह कहा जा सकता है कि रामा ही बच्चों का सच्चा संरक्षक था।

7. विवाहित जीवन से अभिशप्त– कभी–कभी महादेवी की माता रामा से विवाह करने की बात कह देती थी। एक दिन रामा अपने बुन्देलखझडी नए कपड़े पहनकर घर गया और वहाँ से विवाहित होकर वापिस आए। उस पुराने कमरे में उसकी पत्नी रहती थी और रामा बच्चों के खेल में मस्त हो जाता था, परन्तु रामा की पत्नी नहीं चाहती थी कि वह उसके अतिरिक्त और कहीं भी अपना प्रेम बांटे। अतः प्रायः नाराज रहती थी और एक दिन इसी नाराजगी में वहाँ से भाग गई। महादेवी की माँ के समझाने पर जब रामा उसे मनाने गया तो, फिर वापिस नहीं आया। रामा के अभाव में बच्चे उदास रहने लगे, उनके खेल शून्य हो गए। वे रामा की निरंतर प्रतीक्षा करते थे। माँ ने उसे पत्र लिखे। रुपये भेजे। परन्तु सभी प्रयास निरर्थक रहे। रामा का विवाहित जीवन मानो बच्चों के लिए एक अभिशाप बन गया। वह भी शायद इतनी खुशी का जीवन व्यतीत न कर सका।

रामा सरल, स्नेहिल और ममता से भरा हुआ सच्चा मानव था। वह बाहर से कितना ही कुरूप हो, अंदर से उसमें गुणों की सुरभि थी, जिस कारण बच्चे उसको कभी नहीं भुला सके। उसकी सेवा का फल अनुपम था। उसकी सच्ची मानवता को देखकर महादेवी उसे दीर्घ अंतराल के पश्चात् भी नहीं भुला सकी। अतः वह सत्य ही कहती है –

''रामा आज भी सत्य है, सुन्दर है और स्मरणीय है।''

विधवा भाभी का चरित्र–चित्रणः

महादेवी आठ वर्ष की बाल्यावस्था में उन दिनों इन्दौर में मिशन स्कूल में पढ़ने आती थी। पढ़ाई की एकरसता व नित्य एक ही क्रियाकलाप से लेखिका का मन पढ़ाई से कुछ विरक्त सा हो रहा था। परन्तु इन दिनों वह कल्लू की बूढ़ी माँ के साथ स्कूल जाती थी और वे ही स्कूल से घर छोड़ जाती थी। इससे महादेवी को कुत्ते, पिल्ले, बिल्ली, तोता, बत्तख व तीतर आदि पशु–पक्षियों के दर्शन हो जाते थे, जिससे उनका मन प्रसन्न हो जाता था। उसी मार्ग में एक सेठ की दुकान पड़ती थी। उसी के पीछे उसका घर था जिसमें सेठ की पुत्रवधू विधवा का जीवन व्यतीत कर रही थी। जिससे लेखिका ने भाभी के रूप में संबंध बना रखा था। प्रस्तुत रेखाचित्र का कोई नाम न होने के कारण और उस पुत्रवधू का कोई भी नाम न दिए जाने के कारण इस रेखाचित्र को–'मारवाड़ी विधवा भाभी' का नाम दिया जा रहा है। विधवा भाभी के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

1. वेशभूषा व व्यक्तित्व –विधवा होने के कारण भाभी की वेशभूषा सफेद ओढ़नी व काला मारवाड़ी लहंगा था। विवाह के कुछ समय पश्चात् ही उसका पति चल बसा था। सन्तति व पतिविहीना वह बंद मकान में अकेली रहती थी। उसे अपने वृद्ध ससुर के कहे अनुसार एक समय ही भोजन करना पड़ता था। सेठ उसे कहीं नहीं आने देते थे

और न किसी को घर आने की अनुमति थी। सेठ का व्यवहार इतना कठोर था कि वह सदा डरी डरी रहती थी। वह अनाथिनी भी थी और अभागिनी थी। उसका गोल मुख, चौड़ा माथा, जंबी बोरोनियाँ, भारी पलकें, छोटी व सीधी नाक, कुछ खुले ओठ, दुबले पतले–पतले हाथ पैर थे। उसकी शारीरिक आकृति का चित्रण करती हुइ लेखिका कहती है –

''घर के सब उजले मैले, सहज कठिन कामों के कारण, मलिन रेखा जाल से गुँथी और अपनी शेष लाली को कहीं छिपा रखने का प्रयत्न सी करती हुई कहीं कोमल, कहीं कठोर हथेलियाँ, काली रेखाओं में जड़े जान पड़ने वाली पतली उंगलियाँ, हाथों का बोझ सम्भालने में भी असमर्थ सी दुर्बल, रूखी पर गौर बाँहें, ...छोटे छोटे पैर।''

वह एकाकी घर में रहकर विधवा का कष्टप्रद जीवन व्यतीत करने को बाध्य थी। उसका ससुर सेठ ही मानो उसका संरक्षक था। वह अनपढ़ थी। अतः घरेलू कार्यों में लगी रहकर टाट के पर्दे में बने छिद्रों से आने जाने वालों को देखकर ही मन बहलाती थी। उसका जीवन नरक बन गया था।

2. वैधव्य जीवन की विडम्बना – भारत में नारी का विधवा जीवन अत्यंत कष्टप्रद तथा दुर्भाग्य से भरा रहता है। वह तो अल्प अवस्था में ही विधवा हो गई थी। फिर, न तो उसकी कोई संतान थी और न घर में कोई सगा साथी। उसका कोठ पितृपक्ष का संबंधी भी नहीं था। अतः वह कठोर ससुर के कुशासन में ही रहने को बाध्य थी। उसकी इस दीनता का चित्रण करते हुए महादेवी वर्मा कहती हैं –

''उस उन्नीस वर्ष की युवती की दयनीयता आज समझ पाती हूँ जिसके जीवन के सुनहरे स्वप्न गुड़ियों के घरौंदे के समान दुर्दिन की वर्षा में केवल बह ही नहीं गए, वरन् उसे इतना एकाकी छोड़ गए कि उन स्वप्नों की कथा कहना भी संभव न हो सका।''

वह निरंतर यही प्रयत्न करती थी कि किसी से मन बहलाने के लिए कुछ बातचीत कर ले। परन्तु ऐसा अवसर नहीं मिलता था। विधवा होने के कारण इसे आमोद प्रमोद करना तो सर्वथा वर्जित था। वह अपने इस अभिशाप भरे वैधव्य जीवन को बिता नहीं रही थी, बल्कि उसके लिए एक–एक दिन काटना कठिन हो रहा था।

3. घोर परिश्रमी – उसे घर का समस्त कार्य करना पड़ता था। कार्य चाहे सहज हो या कठिन, उजला हो या मैला, संभव हो या सामर्थ्य से बाहर, तो भी उसके लिए अनिवार्य था। उसे एक समय सामान्य मिताहार मिलता था, जिससे संयमित जीवन व्यतीत कर सके। इसका परिणाम उसकी दुर्बलता थी। वह दिन भर कार्य करती थी, फिर भी दिन नहीं कटता था। प्रातः स्नान, तुलसी पूजा, रसोई घर का काम, ससुर के लिए खाना बनाना व उन्हें खिलाना, चौका बर्तन, कूटना–पीसना ये सभी कार्य उसके अनिवार्य थे। लेखिका के शब्दों में – ''प्रायः निराहार और निरंतर मिताहार से दुर्बल देह से वह कितना परिश्रम करती थी, यह मेरी बालबुद्धि से भी न छिपा रहता था। जिस प्रकार उसका खंडहर जैसे घर और लंबे चौड़े आंगन को बैठ बैठकर बुहारना, आंगन के कुए से अपने और ससुर के स्नान के लिए ठहर–ठहर कर पानी खींचना और धोबी के अभाव में मैले कपड़ों को काठ की मोगरी से पीटते हुए रूक–रूकर साफ करना.....दिन में अंधेरी रसोई की कोठरी के घुटते हुए धुंए में रह रहक कर आता हुआ खांसी का स्वरूप .....शिथिल उंगलियों से छूटते हुए बर्तनों की झनझनाहट।''

इतना काम करके भी मन बहलाने के लिए वह टाट के छिद्रों से देखती रहती थी। एक दिन जब बालिका महादेवी उसके घर के सामने फिसल कर गर पड़ी, तब से उसका साथ पाकर प्रसनन थी। महादेवी गुड़ियों के लिए वस्त्र की सिलाई करती रहती थी। भाभी उसमें भी पूरा सहयोग देती थी। सभी काम, विधवा भाभी तन मन से करती थी। वह उसके भाग्य के लिए मानो सर्वथा वरदान था।

4. एकाकीपन – भाभी का जीवन विधवा होने के कारण एकाकी था। उसके ससुर सेठ उसे कठोर नियमों में उसे बांधक रखते थे, जिससे वह चंचल होकर विधवा जीवन के विरूद्ध प्रवृत्ति न कर सके। घर में कोई आने जाने वाला

नहीं था। ससुर की आज्ञा से केवल अमावस्या–पूर्णिमा को एक ब्राह्मणी आती थी, जिसे अपने सामने सेठ खड़े होकर दक्षिणा दिलाकर विदा करते थे। उसके सुनसान घर का चित्रण करते हुए महादेवी वर्मा लिखती हैं–

''वह घर, जिसमें न एक भी झरोखा था, न रोशनदान, न एक भी नौकर दिखाई देता था, न अतिथि और न एक भी पशु रहता था, न पक्षी..... उस समाधि जैसे घर में लोहे प्राचीन घिरे फूल के समान वह किशोरी बालिका बिना किसी संगी–साथी, बिना किसी प्रकार के आमोद प्रमोद के मानो निरंतर वृद्धा होने की साधना में लीन थी।''

यह सत्य है कि घर उसके लिए कारावास से कम न था। जीवन में इतना एकाकीपन शायद कारावास में भी संभव नहीं है। सभी कुछ काम अकेले करने पर भी उसके लिए समय को काटना बहुत कठिन था निरक्षर होने के कारण न कुछ पढ़ सकती थी और न कुछ लिख सकती थी। घर के सुनिश्चित कार्यों के अतिरिक्त, अन्य ऐसे कार्य करने का उसे आदेश नहीं दिया जाता था, जिससे वह मन बहला सके या किसी न किसी से कोई नाता जोड़ सके। वह घर में बंद रहकर रोए या हंसे, सोए या जागे, उठे या बैठे, मरे या जीवित रहे, इससे किसी को कोई लेना देना नहीं था। ससुर सेठ का कठोर पहरा सदा रहता था।

5. रंगीन कपड़ों का मोह –भाभी उन्नीस वर्षीया विधवा थी, परन्तु भारतीय परम्परा के अनुसार विधवा को रंगीन कपड़े पहनना निषेध होता है। उसके लिए भी यही विधान था। अतः वह सफेद कपड़े पहनती थी, कभी कभी काले कपड़े भी। वस्तुतः वह अभी बाल्यावस्था में थी। बाल–सुलभ चंचलता और रंगीन कपड़े के प्रति मोह उसका अभी भी छूटा नहीं था। उसे रंगीन कपड़े बहुत अच्छे लगते थे, परंतु विधवा होकर उनका प्रेयोग नहीं कर सकती थी। महादेवी वर्मा की गुड़िया के लिए अवश्य उसने रंगीन कपड़े बनाए थे। उसका मन सदा इस प्रकार के रंगीन कपड़े धारण करने के लिए ललचाता रहता था।

उन्हीं दिनों लेखिका स्कूल में कशीदा काढ़ना सीख रही थी और अपनी धानी रंग की साड़ी में बड़े बड़े नीले फूल निकाले थे, जिसे देखकर भाभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। बेचारी विवश और विधवा के अभिशाप से ग्रस्त होने के कारण कुछ भी कहने और करने में असमर्थ थी। महादेवी ने भाभी के लिए भी फूलों से निकली हुए होढ़नी तैयार की और उसे अचानक यह भेंट करना चाहती थी। सावन की तीज के दिन महादेवी गोटा लगी लहरियों की साड़ी पहनकर, हाथों में मेंहदी लगाकर भाभी के घर गई। दालान में दरवाजे की ओर पीठ किए हुए भाभी कुछ बीन रही थी। लेखिका ने दबे पाँव जाकर ओढ़नी भाभी के सिर पर डाल दी। लेखिका लिखती है –

''रंगों पर उसके प्राण जाते ही थे, उस समय मैंने गुड़िया और खिलौने से दूर अकेले बैठे बैठे अपने नन्हें हाथों से उसके लिए उतनी लंबी चोड़ी ओढ़नी काढ़ी थी। आश्चर्य नहीं कि क्षण भर के लिए अपनी उस स्थिति को भूल गई, जिसमें ऐसे रंगीन वस्त्र वर्जित थे और नए खिलौने से प्रसन्न बालिका के समान, एक बेसुधपन में उसे ओढ़े मेरी ठुड्डी पकड़कर खिखिला पड़ी।''

निःसंदेह रंगीन कपड़ों का मोह उसका अभी भी जीवित था। परन्तु सर्वथा निरर्थक और दुःखदपूर्ण था। इसका उसे इतना दुष्परिणाम भुगतना पड़ा कि बालिका महादेवी से देखा नहीं गया। वह रोई–चिल्लाई और कई दिन बीमार रही।

6. असह्य बर्बरता की शिकार– भाभी एक तो भारतीय विधवा होने के कारण अनेक सामाजिक बंधनों से बंध गई थी। दूसरी ओर घर में विवाहिता के रूप में आने से सेठ का एकाकी पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो गया था। अतः सेठ का अत्याचार भी उसके प्रति कम न था। इसके साथ ही सेठ की पुत्री अथवा भाभी की ननद जब कभी आती तो भाभी के लिए महान् कष्टों का प्रसाद लाती थी। लेखिका ने प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर कहा है –

''सबसे कठिन दिन तब आते हैं, जब वृद्ध सेठ की सौभाग्यवती पुत्री अपने नेहर आती थी। उसके चले जाने के बाद भाभी के दुर्बल गोरे हाथों पर जलने के लंबे, काले निशान और पैरों पर नीले दाग रह जाते थे।''

भाभी ने कभी भी अपने इस मार्मिक कष्ट की कहानी महादेवी को नहीं बताई और यही पूछी भी गई तो वह गुड़िया की किसी समस्या में महादेवी का मन अटकाकर उस संदर्भ को भुला देती थी, मानो अकेली ही उस कष्ट को सहन करना चाहती थी। सबसे कठोर यातना का शिकार तो भाभी तब हुई थी जब महादेवी ने तीज के दिन उसे रंगीन ओढ़नी सिर पर उढ़ा दी थी। इस दृश्य को ससुर व ननद ने देख लिया था। सेठ का पारा चढ़ गया था और ननद खुली तलवार सी कठोर होकर जब आगे बढ़ी तो दोनों ने उसे इतनी यातना दी, जितनी संभव हो सकी। प्रत्यक्षदर्शी लेखिका के शब्दों में –

''क्रूरता का वैसा प्रदर्शन मैंने फिर कभी नहीं देखा। बचाने का कोई उपाय न देखकर ही कदाचित् मैंने जोर जोर से रोना आरम्भ किया, परन्तु बच तो वह तब सकी, जब मन से नहीं शरीर से भी बेसुध हो गई थी।'' उसके बाद भाभी जीवित तो रही, परंतु उसका जीवन मानो वैधव्य के दुःख से भी अधिक ससुर सेठ और ननद की यातनाओं को सहन करने के लिए था। उसके लिए इस जीवन से बड़ा नरकीय जीवन और क्या हो सकता है।

इस प्रकार मारवाड़िन विधवा भाभी का चरित्र नारी जीवन की दुःखद व करुणा भरी कहानी है। यद्यपि इस घटना के कुछ समय पश्चात् लेखिका का परिवार इन्दौर चला गया था। लेखिका विधवा भाभी के विषय में जिज्ञासु रही। वह उससे मिलना भी चाहती थी। उसे ज्ञात हो गया था कि उसके ससुर संसार में नहीं रहे, परंतु उस विधवा भाभी को संसार ने और कौन–कौन से कष्ट दिए–यह लेखिका को ज्ञात न हो सका। महादेवी वर्मा स्वयं स्वेत वस्त्र धारण करती है। जब कभी कोई लेखिका से रंगीन वस्त्रों की विरक्ति का प्रश्न करता है, तो लेखिका कहती है –

''तो वह अतीत फिर वर्तमान होने लगता है। कोई किस प्रकार समझे कि रंगीन कपड़ों में जो मुख धीरे–धीरे स्पष्ट होने लगता है, वह.....मुख मेरे सामने आने वाले सभी क्लान्त मुखों में प्रतिबिम्बित होकर मुझे उसके साथ एक अटूट बंधन में बांध देता है।''

बिंदा का चरित्र–चित्रण :

'प्रयाग महिला विद्यापीठ' में प्राचार्या के पद पर जब महादेवी वर्मा कार्यरत थी, तब एक बालिका के प्रवेश पत्र को देखकर उसे आभास हुआ कि यह इतनी अधिक आयु की बालिका नहीं है। प्रश्न करने पर आगन्तुक बालिका के माता पिता ने बताया कि वह उसकी पूर्व पत्नी की संतति है। महादेवी वर्मा को यह समझते देर नहीं लगी कि विमाता के अत्याचार से पीड़ित यह बालिका इस प्रकार से दुर्बल और अविकसित है। तभी उन्हें अपनी बाल्यसखी बिंदा की याद आई जो पड़ोस में रहती थी। यद्यपि उम्र वे वह महादेवी से बड़ी थी, परंतु उसका जीवन अत्यंत कष्टमय था। महादेवी सामान्यतः माता पिता के लाड़ प्यार में पालित पोषित थी जबकि बिंदा पर विमाता और पिता के अत्याचार परिव्याप्त थे।

1. बिंदा का रूप व आकृति –बिंदा एक अल्पायु की बालिका थी। विमाता के दुःखद व्यवहार के कारण मानसिक व शारीरिक रूप से पीड़ित थी। कहीं से कुछ आहटें पाते ही वह चौंक पड़ती थी, क्योंकि उसे डर रहता था कहीं नई अम्मा न आ गई हो। बिंदा मैले कुचैले कपड़ों में ही दिनभर कार्य करती रहती थी। फिर भी उस पर डाँट पड़ना स्वाभाविक था। उसकी आकृति के विषय में लेखिका का कथन है –

''बिंदा मुझसे कुछ बड़ी रही होगी, परन्तु उसका नाटापन देखकर ऐसा लगता था, मानो किसी ने ऊपर से दबाकर उसे कुछ छोटा कर दिया हो। दो पैसों में आने वाली खंजड़ी के ऊपर चढ़ी हुई झिल्ली के समान पतले चर्म से मढ़े और भीतर की हरी हरी नसों की झलक देने वाले उसके दुबले हाथ पैर.....बिंदा की आँखें तो मुझे पिंजड़े में बंद चिड़िया की याद दिलाती थी।''

वह इतनी शोषित और घबराई हुई रहती थी कि पंडिताइन चाची या नई अम्मा का कान में स्वर पड़ते ही

वह घबरा जाती थी। दीना हीना बालिका बिन्दा के साथ प्यार व स्नेह के दो शब्द बोलने वाला घर में कोई नहीं था। लेखिका को अवश्य उसके प्रति ममत्व व अपनत्व था। उसका फूल सा चेहरा मुरझाया रहता था। बाल–सुलभ चंचलता उसमें नहीं थी।

2. मातृविहीना बालिका– बाल्यावस्था में ही माता का साया सिर से उठ जाने के पश्चात् विमाता ने उसे कष्ट देने प्रारंभ कर दिए थे। उसने अपनी पुरानी अम्मा को खुली पालकी में जाते देखा था और नई अम्मा को बंद पालकी में बैठाकर जाते हुए देखा था। सौतेली माँ को वह नई अम्मा कहती थी तथा व्यवहार में उसे पण्डिताइन चाची कहकर ही पुकारती थी। सौतेली माँ बिन्दा को बिल्कुल नहीं चाहती थी, इसी कारण बिन्दा अपनी माँ को चमकीले तारों में देखती थी। इतनी अबोध बालिका को माँ की याद आना स्वाभाविक था, फिर नई माँ जो उसे अनेक प्रकार से दुःख दे रही हो। वह बेचारी भाग्यहीनता थी। क्या कर सकती है? उसे कोई अपना कहने वाला नहीं, स्नेह या प्यार करने वाल नहीं था।

एक बार चमकीले तारे की ओर उंगली करके उसने अपनी सहेली महादेवी को बताया था–

''वह रही मेरी अम्मा'' वह बार–बार अपनी अम्मा को याद करती थी परन्तु निरर्थक था। अबोध महादेवी ने अपनी सखी बिन्दा को यह भी समझाने का प्रयत्न किया था कि वह नई अम्मा को पुरानी अम्मा क्यों नहीं मान लेती, इससे वह पुरानी अम्मा बनकर नहीं डांटेंगी, परन्तु सगी माँ और सौतेली माँ में धरती आसमान का अंतर है, अतः यह बात बिंदा ही जान सकती थी। उसकी माँ उसे कितना प्यार करती थी और सौतेली माँ कितना कष्ट देती थी, यह तो बिन्दा का हृदय ही जान सकता था। बिंदा की विमाता के अत्याचारों को ज्ञातकर एक बार बालिका महादेवी अपनी माँ से कहती है –

''उसकी कथा से मेरा मन तो सचमुच आकुल हो उठा, अतः उसी रात को मैंने माँ से अनुनयपूर्वक कहा–तुम कभी तारा न बनना, चाहे भगवान् कितना ही चमकीला तारा बनाये।'' वह विमाता के रूप, व्यवहार व कुटिलता को नहीं जानती थी। इसका कटु अनुभव तो बिंदा को ही था जो माता के अभाव में अंतरंग से व्याकुल थी, तो विमाता के अत्याचार के कारण बाहर से भी दुःखी थी।

3. कठिन परिश्रमी – बिन्दा अभी अबोध बालिका थी, परन्तु विमाता उससे खूब काम कराती थी। प्रातः उठकर वह काम में व्यस्त हो जाती थी और रात तक उसे निरन्तर कार्य करना पड़ता था। यदि वह थोड़ा भी आलस्य करती या ठीक काम न करती तो उसको दण्ड देने के हजारों उपाय उसकी नई अम्मा को ज्ञात थे। बिन्दा को डर रहता था कि नई अम्मा मारेगी। अतः निरन्तर काम में लगी रहती और यदा कदा बिना कारण भी बिना अपराध के भी दण्ड पाती रहती थी। घर के छोटे बड़े, मैले स्वच्छ, सहज कठिन कार्यों का भार उस पर था। लेखिका के शब्दों में –

''कभी–कभी जब मैं ऊपर की छत पर जाकर उस घर की कथा समझने का प्रयास करती, तब मुझे मैली धोती लपेटे हुए बिंदा ही आंगन से चौके तक फिरकनी सी नाचती दिखाई देती। उसको कभी झाड़ू देना, कभी आग जलाना, कभी आंगन के नल से कलसी में पानी लाना, कभी नई अम्मा को दूध का कटोरा देने जाना, मुझे बाजीगर के तमाशा जैसा लगता था।''

बेचारी बिंदा चुपचाप सभी कार्य करती थी। वह जानती थी कि उसके बिना उसकी खैर नहीं। कार्य करते करते ही जब उसे डांटा जाता था, पीड़ा भी दी जाती थी तो काम बिना किए उसे क्या दण्ड मिल सकता था? वह उस घोर यातना से डर कर कामों में जुटी रहती थी।

4. सौतेली माँ से पीड़ित– सौतेली माँ का व्यवहार उसके प्रति अत्यंत कड़ोर व पीड़ादायक था। स्वयं नई माँ या पण्डिताइन चाची दिन भर सजधज कर बैठी रहती या अपने इकलौते बेटे मोहन के छोटे–छोटे काम में व्यस्त रहती थी। बिंदा को वह नहीं चाहती थी क्योंकि यह उसकी सौतेली माँ थी। यह उससे खूब काम कराती और खूब कष्ट

देती थी। वह चाहती थी कि बिन्दा इस संसार में न रहे। वह सदा बिन्दा पर चिल्लाती रहती। उसका कठोर और कटु व्यवहार बिन्दा को सहन करना पड़ता था। यह उसकी माँ नहीं बल्कि नई माँ थी, इसलिए उसे नए नए कष्ट दिए जाते। दुत्कारा जाता। पीटा जाता और कठोर से कठोर दण्ड दिया जाता था। लेखिका बार–बार इसी उलझन में रहती थी कि ऐसा क्या अपराध बिन्दा करती है जो उसकी नई माँ कभी उठती है या आऊँ कभी बैल के से दीदे क्या निकाल रही है? कभी मोहन का दूध कब गर्म होगा' और कभी 'अभागी मरती नहीं' आदि वाक्यों का प्रयोग करती थी। महादेवी चाहे कितनी ही अबोध रही हो, परन्तु उस अवस्था में भी समझ जाती थी कि बिन्दा के साथ यह कटु व्यवहार किया जा रहा है। बिन्दा सौतेली माँ के सभी अत्याचार सहन करती थी। उसके लिए और कोई मार्ग न था। पिता कुछ दया कर सकते थे। परन्तु वे घर नहीं रहते थे, फिर बिन्दा की अपेक्षा उन्हें नई पत्नी प्रिय थी। अतः बिन्दा को प्यार के दो शब्द कहने वाला कोई नहीं था और वह सौतेली माँ के कठोर अत्याचारों से पीड़ित रहती थी तथा सिसकती रहती थी।

5. घोर अन्याय सहने वाली– बिन्दा का यह दुर्भाग्य था जो अपनी माँ के मरने के बाद विमाता से उसे घोर अन्याय सहन करने पड़े। उसने कोई अपराध चाहे किया हो या न किया हो, नई अम्मा का दण्ड उसे अवश्य सहन करना पड़ता था। गर्मी की दोपहर को जलती भूमि पर बिंदा को घण्टों खड़े कर दिया जाता था। वह बार–बार पैर उठाकर धरती की जलन को कम करना चाहती रही, परन्तु नई माँ की आज्ञा मानना आवश्यक था। कभी–कभी बिन्दा को चौक के खम्भे से बांध दिया जाता था और दिनभर वह बिना कुछ खाए भूखी प्यासी खम्भे से बंधी रहती थी। कभी–कभी भूखी रहकर गर्मियों में खटोले पर सोई हुई अम्मा व मोहन को पंखे से हवा करती रहती और मुरझाए मुख से दीनतापूर्वक इसी कार्य में उसे व्यस्त रहना पड़ता था। लेखिका उसके प्रति होने वाले अन्यायों का वर्णन करते हुए लिखती है –

''उसे अपराध के लिए ही नहीं, अपराध के अभाव का भी दण्ड सहना पड़ता था। इसी से पण्डित जी की थाली में पण्डिताइन चाची का ही काला मोटा और धुंधराला बाल निकलने पर भी दण्ड बिंदा को मिला। वह छोटी बालिका किसी अन्याय का विरोध नहीं कर सकती थी। बिंदा के छोटे–छोटे व भूरे–भूरे व मुलायम बाल थे। पण्डिताइन चाची ने उन्हें कैंची लेकर बड़े भद्दे ढंग से काट डाला था। बिन्दा के इस रूप को देखकर लेखिका की रूलाई आने लगी थी। परन्तु बिन्दा को वे बाल इस प्रकार कटवाने पड़े जैसे सिर और बाल दोनों नई अम्मा के ही हों। एक बार चूल्हे पर दूध रखा हुआ था, उसमें उफान आने पर बिंदा के नन्हें–नन्हें हाथों से दूध की पतीली उतारते समय हाथों से छूट गई। खोलते दूध से उसके पैर जल गए। वह रोती रही, परन्तु नई माँ ने उस पर दवा तो नहीं लगाई, बिंदा को इस अपराध का दण्ड अवश्य दिया। जब लेखिका ने बिंदा को सलाह दी कि वह नई अम्मा से कहकर दवाई लगवा ले तो बिंदा जानती थी कि यह प्रार्थना उसके लिए और भी कष्टदायक सिद्ध होगी। लेखिका को यह बात ज्ञात नहीं थी। जब महादेवी बिंदा सहेली को अपने घर ले गई और उसकी माँ ने बिन्दा के पैरों में तिल का तेल और चूने का पानी लगाया और उसकी पट्टी की तो इसका दुष्परिणाम भी बिंदा को भुगतना पड़ा। क्योंकि पण्डिताइन चाची के न्यायविधान में न क्षमा का स्थान था, न अपील करने का अधिकार।''

6. बिंदा की मृत्यु– बेचारी बालिका बिंदा अपनी नई अम्मा के घोर अन्यायों को सहती सहती एक दिन संसार से विदा हो गई। यह बात यद्यपि मुहल्लेभर में फैल गई थी, परन्तु बालिका महादेवी को नहीं बताई गई। महादेवी की माँ ने जब यह समाचार सुना तो आँखों में आँसू भरकर बिंदा के घर चली गई और महादेवी से यह कह गई कि घर से बाहर न जावे। जिज्ञासु बालिका महादेवी ने तब छत पर चढ़कर बिंदा के घर देखा तो मनुष्यों की भीड़ ने उसे इस प्रकार का आभास हुआ जैसा बिंदा के यहाँ किसी की शादी हो। क्योंकि उसकी दृष्टि में विवाह के अवसर पर ही इस प्रकार की भीड़ होती है। लेखिका के मन में इस बात का दुख हुआ कि बिन्दा ने उसे अपने विवाह में क्यों नहीं बुलाया। पण्डित चाचा का विवाह तो संभव नहीं और उनके घर मोहन बहुत छोटा है। अतः बालिका महादेवी

को निश्चय हो गया कि बिंदा का विवाह है। उसे दुःख हुआ। वह भी अपने किसी शुभ अवसर पर बिंदा को नहीं बुलाएगी। लेकिन लेखिका को क्या पता था कि उसका बिंदा से रूठना सर्वथा निरर्थक है। वह तो इस संसार में अब नहीं है। पण्डिताइन चाची का चिल्लाना, घर का सारा काम करना, निरर्थक दण्ड देना, अब मूल्यहीन हो गया था।

'सबिया का चरित्र–चित्रण :

''अतीत के चलचित्र'' के चतुर्थ रेखाचित्र की प्रमुखत्तम नारी पात्र सबिया है, जो मूलतः निम्नवर्ग से संबंधित है। उसके परिवार में उसका पति, अंधी वृद्धा सास, एक पाँच वर्ष की बचिया व नवजात शिशु है। पहले उसका पति मैकू नौकरी करता था और वह किसी बंगले में मेहतरानी का काम करती थी। तब उसके परिवार में एक ही बच्ची थी। परन्तु जैसे ही सबिया ने दूसरे बच्चे का जन्म दिया कि मैकू किसी नव विवाहिता सजातीय भाई की पत्नी गेंदा को बहला फुसलाकर ले भागा। अपने सुख के लिए, न तो उसने सबिया के स्वास्थ्य और तीन दिन के नवजात शिशु की चिंता की और न परिवार के अन्य सदस्यों के पालन–पोषण पर ध्यान दिया। बेचारी सबिया नवजात शिशु को लेकर ही नौकरी की तलाश में मारी मारी फिरती रही। सौभाग्यवश, महादेवी वर्मा के यहाँ छात्रावास का वृद्ध जमादार संसार से कूच कर गया था। अतः वह स्थान सबिया को मिल गया। प्रथम बार तो लेखिका को विश्वास नहीं हुआ कि इस छोटे से शिशु को लेकर वह इतनी देर, इतना कार्य कैसे कर सकेगी, परन्तु जब उसने विश्वास दिलाया और शिशु की रक्षा का दायित्व रखने वाली बचिया को बताया, तो लेखिका ने उसकी दीनता पर दया करके उसे जमादारिन के रूप में नियुक्त कर दिया। महादेवी वर्मा ने देखा कि वह कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं रखती तथा सबिया बड़ी स्फूर्ति से काम करती दिखाई दिखाई पड़ती है। चलचित्र के आधार पर उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

1. सबिया की आकृति और वेशभूषा– सबिया अपनी जाति, दीनता और कार्य के अनुरूप ही पुरानी और कहीं से फीके तथा कहीं से गहरे लाल रंग की मैली धोती पहने हुए थी। एक मलिन और फटे हुए वस्त्र में अपने नवजात शिशु को लपेटे हुए थी। उसका मुख इतना काला जान पड़ता था, जैसे चिकनी काली मिट्टी से बना हुआ हो, पर उसमें चमक थी। उसकी आंखें गोलाकार थीं जिनमें भय और आश्चर्य दोनों एक साथ थे। उसकी शेष आकृति का चित्रण करती हुई लेखिका कहती है –

''कुछ कम चौड़ी ललाट पर जुड़ी भौंहों के ऊपर लगी पीली कांच की टिकुली में जो श्रृंगार था वह भटकटैया के फूल से घूरे के श्रृंगार का स्मरण दिलाता था।''

वह ऐसी प्रतीत होती थी जैसे किसी अपटु शिल्पी की सयत्न गढ़ी मिट्टी की मूर्ति हो। जिस प्रकार उसकी आकृति थी, वैसे ही उसकी पुत्री बचिया थी। उसकी जुगनू जैसी आंखें थी सिके शरीर का पूरी तरह विकास न हो सका था। महादेवी वर्मा ने दोनों का परिचय देते हुए लिखा है –

''माँ के दुबले शरीर में सूखी लकड़ी की कठिनता न होकर हरी टहनी का लचीलापन रहता था, जो दुर्बलता से अधिक जीवन का परिचय देता है और बालिका के सूखे शरीर में नए पत्ते की चंचलता न होकर पाले से न खिल सकने वाले बंधे किशलय–कोरक का अवश हिलना डुलना था, जो विकास का सूचक न होकर जड़ता का परिचय देता है।''

इस प्रकार सबिया जहाँ लचीले शरीर वाली थी, वहीं बचिया का शरीर बाल सुलभ चंचलता से रहित था।

2. कठोर परिश्रमी –सबिया ने जीवन में कठिन परिश्रम करके बच्चों के पालन–पोषण का दायित्व अपने ऊपर ले लिया था। उसका पति इतना स्वार्थी, कर्त्तव्यहीन और निर्लज्ज था कि एक दिन जाति भाई की नवविवाहिता पत्नी को लेकर भाग गया। बहत दिनों तक वह नहीं आया। तभी सबिया ने नौकरी की। वह छात्रावास के नीम के नीचे

प्रातः ही अपने नवजात शिशु को कंकरीली भूमि पर एक कपड़े पर लिटाकर उसकी देखरेख के लिए बचिया को छोड़कर काम में लग जाती थी। फटी हुई पिछौरी से कमर कसकर वह झाड़ू देने लगती थी। बड़ी कुशलता व स्फूर्ति के साथ छात्रावास के एक कोने से दूसरे कोने को साफ करती थी। इधर उसकी बच्ची बचिया भी अपने भाई के ऊपर से मक्खियाँ उड़ाती और उसके आसपास ही रहकर भाई का ध्यान रखती थी। जब वह रोटी का टुकड़ा खोलकर खाने का प्रयत्न करती तो वहाँ कुतिया, पूसी, गिलहरी, चिड़िया आदि की दृष्टि लगी रहती। दस बजे तक सबिया सफाई का कार्य पूरा कर पाती थी और तब वह अपनी थाली को साफ करके भोजन के लिए भोजनालय में पहुँचती थी। उस समय की परंपरा के अनुसार भंगन को झूठन ही दी जाती थी, परन्तु महादेवी के आदेशानुसार सभी झूठन बैलों को दी जाती थी और भंगन सबिया को झूठन रहित खाना मिलता था। जिससे छात्रावास का महाराजिन, कहारी आदि सबिया से जलते थे, परन्तु सबिया किसी का भी बुरा नहीं मानती थी। लेखिका का कथन है –

सबिया तो किसी शिकायत करने में इतना हिचकिचाती थी, मानो ऐसे किसी शब्द से उसके मुहँ में दाह भरे छाले पड़ जाएंगे। वह कठिन परिश्रम करके अपना कार्य परिपूर्ण करती थी जिससे किसी को शिकायत करने का अवसर न मिलता था।

3. कर्त्तव्यपरायणा– सबिया अपने कर्त्तव्य को पूरा करने वाली नारी थी। वह छात्रावास का कार्य करने जब घर जाती तो बच्चों से लदी हुई, खाने की थाली को बड़ी कठिनता से संभाल पाती थी। महादेवी वर्मा ने उसे सलाह दी थी कि वह बच्चों को और अपने आप वहीं खाना खा लिया करे। उसे भोजन घर ले जाने में कठिनाई होती है तो उसने उत्तर दिया था –

''बचाया के आंघर घूंधर आजी है, मालकिन! ओहका बिना खियाये पियाये कसत खाव। अर्थात् बचिया की अंधी बड़ी बूढ़ी दादी है, पहले उसे ही भोजन कराया जाएगा, फिर वह स्वयं भोजन करेगी। वह इस नियम का पूर्णतः पालन करती है। उसका पति भले ही अपनी वृद्ध माँ के प्रति कर्त्तव्य पालन न कर रहा हो, परन्तु वह अपनी सास का सम्मान भी करती है और उसका भरण पोषण भी। इस प्रकार वह अपने पति के अभाव में भी परिवार के प्रति अपने कर्त्तव्य को नहीं भूली थी।''

4. उदात्त पतिव्रता – यद्यपि उसकी जाति में नारी को आजीवन पतिव्रता रहना आवश्यक नहीं। वहाँ पर विवाह, सामाजिक या धार्मिक बंधन नहीं है। वहाँ विधवा–विवाह, तलाक, परनारी से विवाह आदि सभी स्वीकार्य है। इस वर्ग में पुरुष के समान नारी भी यथाशक्ति कार्य करती हैं और आजीविका उपार्जन करती हैं। इसी कारण पुरुष दूसरी पत्नी भी रख सकता है। नारी भी पहले पति को त्याग कर दूसरे पति को स्वीकार कर सकती है। सबिया का पति मैकू जाति भाई की नवविवाहिता पत्नी को ले भागा तो उस जाति भाई ने सबिया से विवाह का प्रस्ताव रखा था, परन्तु सबिया ने स्वीकार नहीं किया था। अतः उस जाति भाई ने अपने घर की विधवा भाभी से विवाह कर लिया था। परन्तु सबिया ने अपने पति के लौटने की आशा रखी थी। कुछ प्रतीक्षा के पश्चात् मैकू घर लौट आया तो सबिया ने सुःख की साँस ली। परन्तु स्वार्थी मैकू गैंदा को स्टेशन के पास किसी के घर छोड़ आया था। अतः सबिया से गैंदा को घर लाने के लिए खुशामद करने लगा। किसी भी स्त्री के लिए सपत्नी सबसे बड़ा अपमान है और उसके प्यार का तिरस्कार है, परन्तु सबिया ने पति की प्राप्ति के लिए गैंदा को घर ले आना स्वीकार कर लिया। साथ ही, मैकू के कहने से अपनी नीली रेशमी साड़ी भी गैंदा के लिए दे दी। उसे सबसे अधिक दुःख तब हुआ जब मैकू ने न तो सबिया का सुख–दुख पूछा और न बच्चों पर ही ध्यान दिया। लेखिका के शब्दों में –

5. सती सावित्री – सावित्री ने तो अपने सतीत्व की रक्षा के लिए यमराज से अपने पति को बचाया था, परन्तु सबिया ने इससे भी भिन्न यह कार्य किया कि अपने पति को प्राप्त करने के लिए व उसी के सुख के लिए अपनी सौंत गैंदा को भी घर रखना स्वीकार कर लिया। गैंदा को प्राप्त करने के लिए उसका पहला पति मैकू झगड़ता

रहता था, अतः इस झगड़े को निपटाने या हिसाब करने के लिए पंचों को रोटी देना आवश्यक था। मैकू के पास पैसे नहीं थे। सबिया इस कार्य के पाँच माह के वेतन की अग्रिम राशि पचास रुपये महादेवी वर्मा से ले आई थी। शेष रुपयों का प्रबंध उसे अपनी मृत माता की अंतिम निशानी रुपयों वाली हमेल बेचकर पूरी की। इससे वह अपने पति की विपत्ति को दूर कर सकी। परन्तु सबिया का कष्ट इतने से ही दूर नहीं हुआ। लेखिका का कथन है –

''वह जैसे अपने नादान बच्चों के उत्पात की चिंता नहीं करती, उसी प्रकार पति की हृदयहीन, कृतघ्नता, सपत्नी के अनुचित व्यंग्य और साख की अकारण भर्त्सना पर भी ध्यान नहीं दिया। उसके निकट मानो सब बच्चे हैं, इसी से उनका कर्त्तव्य से जी चुराना उसे कर्त्तव्य विमूढ़ नहीं बनाता। मैकू कोई काम नहीं करता था, बल्कि सारा ध्यान गैंदा पर केंद्रित था। सजातीय लोग सबिया को मैकू के विरूद्ध भड़काते थे और उससे अलग रहने तथा अन्य विवाह करने पर जोर देते थे, परन्तु उसने सती सावित्री बनकर कभी भी पति के विरूद्ध आवाज नहीं उठाई, बल्कि बहकाने वालों को यह कह दिया कि यदि उसका पति भयानक रोग से पीड़ित हो जाता या पागल हो जाता तो उसका क्या कर्त्तव्य था? उसके इस उत्तर के विरूद्ध कोई तर्क नहीं था। सबिया की इस महानता और सतीत्व की प्रशंसा करते हुए लेखिका कहती है –

''वह उन महिलाओं में नहीं है, जो पति के हल्केपन को उसके बंगले, कार, वैभव आदि के पासंग रखकर, भारी कर सकती है। उसकी गणना न उनमें हो सकती है जिसके यातना मंदिर के द्वार पर स्वयं धर्म के कठोर और सजग पहरेदार हैं।''

लेखिका की दृष्टि में सबिया तो पारसमणि के समान नारी थी, जिसके स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है। वह सच्चे अर्थों में सती सावित्री के रूप को प्राप्त हो चुकी थी।

6. त्याग और सहनशीलता की मूर्ति –अपने पति के लिए सबिया का त्याग महान् था। वह पति के कहने से अपनी सभी वस्तुएँ सौत गैंदा तक को देने को तत्पर रहती थी। गैंदा उससे निरंतर लड़ती रहती थी, परन्तु सबिया उसके विरूद्ध कभी भी पति से शिकायत नहीं करती थी। न कभी गैंदा को काम पर जाने को कहती। वह उसके लिए भी भोजन लाती थी। एक बार वह गैंदा को भी महादेवी वर्मा से मिलाने भी ले गई थी। उसने दूसरों का दुःख स्वयं उठाना सीखा था, परन्तु अपने दुःख स्वयं सहन करती थी। अपने पति के लिए इससे बड़ा समर्पण और सेवाभाव और क्या हो सकता है? मैकू सबिया का नहीं, बल्कि गैंदा के सुखों का ध्यान रखता था। एक बार मैकू नई पत्नी गैंदा को मेला दिखाने ले गया। सबिया के ऊपर मानो पहाड़ टूट पड़ा। वह बहुत उदास हुई ओर रोती हुई महादेवी वर्मा के पास गई और बोली– ''अब हमार पत न बची मालकिन।'' अर्थात् अब हमारा कोई सम्मान शेष नहीं रह गया। लेखिका की दृष्टि में सबिया का इसमें कोई दोष नहीं था। अतः जब वकील की पत्नी ने महादेवी वर्मा के पास आकर कहा– ''आप चोरों की औरतों को क्यों नौकर रख लेती हैं? तो लेखिका चुप नहीं रह सकी। उन्होंने कहा– ''यदि दूसरे के धन को किसी न किसी प्रकार अपना बना लेने का नाम चोरी है, तो मैं जानना चाहती हूँ कि हममें से कौन सम्पन्न महिला चोर–पत्नी नहीं कही जा सकती?'' वह उत्तर पाकर शिकायत करने वाली चुप हो गई थी। परन्तु सबिया इस चोरी के अपमान भरे दुख को सहन कर गई। वह पति के लिए सभी कुछ त्याग करने को तत्पर थी।

7. सार्थक नाम वाली –इस रेखाचित्र का प्रमुख पात्र सबिया है। 'सबिया' वह शब्द पौराणिक सती सावित्री का विकृत रूप है, जैसा कि स्वयं लेखिका ने इस रेखाचित्र के प्रारम्भ में कहा है –

''सबिया न शबनम का संक्षिप्त है न शबरात का। वह तो हमारे पौराणिक सावित्री का अपभ्रंश है।''

'सबिया' का नाम भले ही सावित्री का अपभ्रंश रूप हो, परन्तु सबिया सावित्री का अपभ्रंश नहीं थी। वह तो स्त्री मर्यादा की उच्च श्रेणी तक पहुँच गई थी। वह सच्चे अर्थों में सती सावित्री थी। लेखिका उसकी मुक्तकंठ से

प्रशंसा करती हुई कहती है –

सच तो यह है कि मैं सबिया को उस पौराणिक नारीत्व के निकट पाती हूँ जिससे जीवन की सीमा रेखा किसी अज्ञात लोक तक फैला दी थी। उसे यदि जीवन के लिए मृत्यु से लड़ना पड़ा, तो यह न मरने के लिए जीवन से संघर्ष करती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सबिया भले ही निम्नवर्ग से उत्पन्न निम्न स्तर का कार्य करने वाली नारी है। उसका पति भले ही उसकी व परिवार की उपेक्षा करता हो और अपने सुख के लिए नई पत्नी ले आया हो, परन्तु सबिया अपने घर व परिवार के लिए व अपने पति के सुख लिए पूर्णतः समर्पित है। उसने दूसरों को सुख देकर स्वयं कष्ट सहन करना सीखा है। उसने अपने कर्त्तव्य व परिश्रम से कभी भी मुहँ नहीं मोड़ा। उसका परित्याग व समर्पण पौराणिक सावित्री से कम नहीं। नाम भले ही सावित्री शब्द का अपभ्रंश रूप हो, परन्तु उसका काम बहुत उदात्त, उच्च व महान् है। वह सच्चे अथो में सावित्री है, परन्तु निम्नवर्ग की महानता सदा अज्ञात ही रहती है महादेवी जैसी मर्मज्ञा लेखिका ही उसकी आंतरिक त्याग और सेवावृत्ति को समझ सकती है।

'बिट्टो का चरित्र–चित्रणः

भारतीय समाज में नारी सदा पराश्रिता और आजीवन पराधीन रहती है। जन्म से लेकर विवाह पर्यन्त उसके माता–पिता या भाई आदि उसका पालन करते हैं। विवाह के पश्चात् उसका पति ही मानो इसका इष्टदेव होता है। यद्यपि वह पति, पति के परिवार व सन्तान के लिए दिन रात कार्य करती है, परन्तु उसका पालन करने वाला, अन्न प्रदान करने वाला व अधिकारी, उसका पति ही है। पति के घर आते ही उसका माता–पिता के घर से मानो नाता टूट जाता है। दुर्भायवश, यदि वह विधवा हो जाती है, तब न तो ससुराल में ही वह रह पाती है और न मायके में ही। दोनों घरों के लिए वह बोझ बन जाती है। बिट्टो भी इसी प्रकार की बाल विधवा थी। ससुराल से आकर वह अपने माता पिता के घर रहने लगी थी। माँ बाप ने उसे बड़े स्नेह से रखा। माता की मृत्यु हो जाने पर पिता ने ममता से पालन किया, परन्तु पिता के स्वर्गवासी होने पर वह उन भाइयों और भाभियों के लिए बोझ बनी गई थी। सबसे बड़ा भय तो यह था कि यदि किसी कारण वह कुमार्ग पर चलने लगी तो सारी इज्जत धूल में मिल जाएगी। भाई भले ही, उसके प्रति कुछ स्नेह रखते हों, परन्तु भाभियों ने धीरे–धीरे उसी के कंधों पर घर के सभी कामों का भार डाल दिया था और उसके बदले दो समय रोटियाँ देना भी उन्हें बोझ लगता था। अतः उन्होंने यही निश्चय किया कि किसी प्रकार उसका पुनर्विवाह कर दिया जावे। इससे उसका जीवन और अधिक कष्टों से भर जाता है। रेखाचित्र के आधार पर उसके चरित्र में मुख्य रूप से निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं –

1. बिट्टो की बाह्य रूप रेखा– बिट्टो माता पिता के समक्ष भले ही, सुखी व प्रसन्नचित्त रही हो, परन्तु उनके परलोक सिधारते ही उसका सुख भी दुख में बदल गया था। भाभियों ने उसे इतना कष्ट दिया था कि उसका वैधव्य का दुख अंक अनन्त गुणा हो गया था। अब उसे एकाकीपन का अनुभव होने लगा था। वह बुखार से पीड़ित व बेहोशी के दौरे से दुखी हो गई थी। उसको पहली बार जब लेखिका महादेवी वर्मा ने देखा तो उसके विषय में लिखा है –

''वह मुझे बहुत दुर्बल, कृश और रोगिणी जैसी जान पड़ी.....आँख बड़ी थी, पर उस पर सूखे मुख और रूखी पलकों में ऐसी जान पड़ती थी मानो ऊपर से रख दी गई हो और पलक मारते ही निकल पड़ेगी। नीचे के दो दाँत कदाचित गिरने से टूट गए थे।''

उसकी अवस्था पैतीस वर्ष की थी। वह दुखों से टूट चुकी थी। अत्यंत दुर्बल थी मानो हड्डियों का ढाँचा हो। पीला व झुरियोंदार चेहरा, पिचके गाल, न रूप, न स्वास्थ्य। मानो उसे जीवन में कोई उमंग व लालसा ही न रह गई हो। उसने गले में पुराने रिवाज के कुण्डल अवश्य पहन रखे थे, जो उसके शरीर पर असुन्दर लग रहे थे। भाव यह है कि उसकी बाह्य रूपरेखा अत्यंत करुणा और विषाद युक्त थी।

2. भाभियों के अत्याचारों से पीड़ित–बिट्टो का प्रारंभिक जीवन जितने स्नेह और प्यार से भरा था, माता पिता की मृत्यु के पश्चात् भाई व भाभियों की छत्र–छाया में उतना ही दुखी हो गया। भाभियाँ उस पर व्यंग्य करती थीं और पति की मृत्यु का कारण उसे ही मानती थी। उसे शारीरिक और मानसिक यातनाएँ देती थीं। धीरे–धीरे घर के नौकर चाकर कम करके बिट्टो पर ही घर का समस्त कार्य भार लाद दिया गया। घर के विषैले वातावरण में घिर क रवह इतनी कमजोर और दुखी रहने लगी कि कोई कहता कि इसे मिरगी का रोग है। कोई कहता कि क्षय रोग है। ये रोग चाहे उसे न रहे हों, परन्तु भाभियों के अत्याचारों के समक्ष वह कुछ कहने में असमर्थ थी। ससुराल वाले उसे रखना नहीं चाहते थे, क्योंकि जिस वर्ष उसका विवाह हुआ था उसी वर्ष उसके पति की मृत्यु हो गई थी। अतः ससुराल वाले भी उसके पति की मृत्यु का कारा उसे ही मानते थे। माता पिता ने उसे इतने अधिक स्नेह से डुबो दिया था, मानो वह वैधव्य के दुख को भूल चुकी थी। लेखिका के शब्दों में –

''दुदैव के इस आघात को कुछ सहज बनाने के लिए माता पिता ने अपना समस्त स्नेह उडेलकर उसे किसी अभाव का बोध ही नहीं होने दिया, इसी से अनिशप्त, पर शाप से अनजान, किसी परी देश की राजकन्या के समान वह अपने आप में पूर्ण रहने लगी।''

परन्तु भाभियों ने रानी को मानो निम्नतम नौकरानी बना दिया था। उसका जीवित रहना भी दूभर हो गया था। अंत में उसे घर से निकालने का और कोई रास्ता न मिलने पर उसका पुनर्विवाह निश्चित कर दिया।

3. विपत्ति–ग्रस्त – भारतीय समाज में नारी की सबसे अधिक दुर्दशा विधवा के रूप होती है और यदि बाल विधवा हो तो वह वैधव्य का महाभयंकर रूप है। बेचारी बिट्टो बाल विधवा थी। ससुराल वालों ने बिट्टो को ही पति की मृत्यु का कारण मना था और उसे उसके माता पिता के पास भेजकर कह दिया गया था –

''वे लोग उसे पहचानते ही नहीं।''

माता पिता की मृत्यु के पश्चात् उससे घर का समस्त कार्य कराया जाता था। उसके बदले उसे भोजन और वस्त्र देना भी भाइयों और भाभियों को बहुत भार दिखाई पड़ता था। जबकि माता पिता की पर्याप्त जमीन जायदाद थी। एक बड़े भाई ही नौकरी करते थे। शेष दोनों भाई बिट्टो के पिता की सम्पत्ति से ही गुजारा करते थे। उनकी दृष्टि में उस सम्पत्ति पर बिट्टो का कोई अधिकार नहीं था। इसी कारण उसे कष्टों के समुद्र में धक्का दे दिया था। वह बेचारी न तो ससुराल में रह सकती थी, न भाइयों के घर। उसे घुट घुट कर मर जाने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं दिखाई देता था, परन्तु मृत्यु भी बुलाने पर नहीं आती। वह भी अपनी इच्छानुसार आती है। वह दुर्दशा की चरम सीमा प्रापत कर चुकी थी। उसे बाध्य किया गया था कि इस प्रकार के जीवन से तो वह पुनः विवाह के लिए तैयार हो जावे। विवशा, पराश्रिता, दीना, दुर्भाग्यशालिनी उस बेचारी की चाहे कैसी भी दशा कर दी जाए, उसे कुछ अस्वीकार नहीं था।

4. पुनर्विवाहिता बिट्टो की दुर्दशा–बिट्टो को घर में कोई नहीं रखना चाहता था। माता पिता होते तो उसे किसी प्रकार का कष्ट न होता। उनके मरने के पश्चात् भाई–भाभियों ने उसे किसी प्रकार से सुखी न रहने दिया। घर से निकालने का और कोई साधन न ज्ञात कर उसका विवाह 54 वर्षीय वृद्ध से कर दिया गया। बिट्टो को विश्वास नहीं था कि उसका पुनर्विवाह इस प्रकार से किया जाएगा कि 32 वर्ष की उस बिट्टो को ऐसे पति से बांध दिया जाएगा तो इतना रूग्ण व अस्वस्थ है और जिसकी निकट भविष्य में मृत्यु अवश्यंभावी है। बिट्टो इस प्रकार का संबंध नहीं चाहती थी। लेखिका के शब्दों में –

''जब भाभी ने यह सुखद समाचार सुनाया तब पहले तो यह सत्य उसकी बड़ी–बड़ी शून्य आंखों की दृष्टि को भेदकर हृदय तक पहुँच ही नहीं सका और जब अनेक प्रयत्न करने पर पहुँचा, तो उसका परिणाम विपरीत ही हुआ। बिट्टो ने बहुत करुण क्रंदन के साथ विवाह का विरोध किया, पर परोपकारियों का मार्ग न समुद्र रोक सकता

है और न पर्वत।''

बिट्टो को विवश होकर वृद्ध व्यक्ति को पति के रूप में स्वीकार करना पड़ा। वह इस विवाह का जितना विरोध करती थी, उतना ही उसे समझाया जाता था कि इसी में उसके भाई भतीजों का कल्याण है। उसे संक्रामक रोग है। उसका जर्जर शरीर निरर्थक है। अतः उसे विवाह करके ही अपना व अपने भाइयों का कल्याण करना चाहिए। परिणामस्वरूप बिट्टो–एक शुभ मुहूर्त में जलती हुई, पर सूखी आंखों से पितृगृह की देहली को अंतिम प्रणाम करके ससुराल चली गयी। उस घर में भी उसका स्वागत नहीं हुआ क्योंकि वृद्ध विवाह का वमर्थक वहाँ कोई भी नहीं था। इतना अवश्य है कि भाभियों ने बिट्टो का विवाह कर उससे छुटकारा पाया और बिट्टो को पग–पग पर दुख उठाने के लिए छोड़ दिया।

5. दुर्भाग्यशालिनी– यह बिट्टो का परम दुर्भाग्य था कि वृद्ध वर से विवाह करके भी वह सुखी न रह सकी। बिट्टो की उम्र पैंतीस वर्ष की थी और उसका यह दूसरा पति 54 वर्ष की अवस्था पार कर चुका था। लेखिका के शब्दों में –

''पैंतीस वर्ष की दीर्घ वैधव्य पार कर चिता में बैठे हुए वृद्ध वर के लिए पुनः स्वयंवरा बनने वाली वह दुर्बल और थकी हुई सी स्त्री मेरे लिए एक साकार विस्मय बन गई।''

उसका पति अत्यंत क्षीणकाय, दुर्बल व अस्वस्थ था। लेखिका को बिट्टो के इस विवाह पर आश्चर्य व गहन दुख हुआ। इससे पूर्व भी उसके पति के दो विवाह हो चुके थे, परंतु वे दोनों पत्नियाँ स्वर्ग–गामिनी हो चुकी थीं, जिनसे दो पुत्र थे। एक का कलकत्ते में व्यवासय था तो दूसरा ससुराल वालों के साथ रहता था। एकाकी वृद्ध ने अपनी कुछ सम्पत्ति के बल पर तीसरा विवाह रचा था। चार वर्ष पश्चात् लेखिका को ज्ञात हुआ कि बिट्टो का वृद्ध पति विषम ज्वर से पीड़ित है और अंतिम घड़ियाँ गिन रहा है। दोनों बेटे पिता की सम्पत्ति पर अधिकार कर रहे हैं। वे बिट्टो नामक विमाता को बिल्कुल नहीं चाहते। निश्चित है कि बिट्टो का जीवन अब और भी दुर्भाग्यपूर्ण हो गया। उसके लिए अब कोई आश्रयदाता, रक्षक व उपकारक नहीं रहा।

लेखिका को बिट्टो के इस प्रकार के जीवन पर हार्दिक कष्ट होता है कि आज समाज में नारी की कितनी विषम और हृदय विदारक सिथति है। पुरुष प्रधान समाज में नारी का कोई अधिकार नहीं कि वह पुरुषों के अन्यायों व समाज के अत्याचारें का विरोध कर सके। बेचारी बिट्टो को भी बाल विधवा होकर महान् यातनाओं को सहन करना पड़ा। उसे पिता की सम्पत्ति का भाग तो क्या मिलता, उसके स्थान पर भाई–भाभियों ने मनमाने अत्याचार किए और एक वृद्ध के साथ उसका जीवन इस प्रकार बांध दिया कि वह न जीवित रह सके और न मर सके।

घीसा का चरित्र–चित्रणः

'अतीत के चलचित्र' नामक रचना में महादेवी वर्मा ने ग्यारह संस्मरण प्रस्तुत किए हैं; जिनमें सातवें संस्मरण में 'घीसा' नामक बालक का संस्मरण है। महादेवी वर्मा गंगा पार झूंसी के खण्डहरों के समीप स्थित एक उपेक्षित और निर्धनों की बस्ती में पढ़ाने जाती थी। ग्रीष्मावकाश के दिनों में प्रायः प्रत्येक रविवार को वहाँ के बच्चों को लेखिका शिक्षा प्रदान करती थीं, जिससे ये दीन हीन बालक भी कुछ सीख सकें। सभी विद्यार्थी पीपल के पेड़ की छाया में एकत्रित हो जाते थे। लेखिका नौका से गंगा पार करके जाती थी। एक दिन घीसा की माँ ने भी लेखिका से आग्रह किया था कि वे उसके इकलौते पुत्र को पढ़ा दिया करें। वह व्यर्थ में घूमता रहता है। लेखिका ने उसे पढ़ाने की स्वीकृति प्रदान कर दी थी। तभी घीसा महादेवी वर्मा के पास पढ़ने आने लगा था और उसका परिचय लेखिका से हो गया था। प्रस्तुत रेखाचित्र के आधार पर घीसा के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

1. घीसा का नाम व रूपरेखा – घीसा कोरी जाति का बालक था। उसके पिता की मृत्यु उसके जन्म से ही पूर्व हो

गई थी। घर में माँ के अतिरिक्त कोई नहीं था। घीसा की माँ मजदूरी करके बच्चे का पालन करती थी। मजदूरी करते समय वह बालक को एक ओर लिटा देती थी। तब बच्चा पेट के बल घिसट घिसटकर बड़ा होने लगा था तो इसका नाम माँ ने घीसा रख दिया था।

लेखिका के पास जब यह बालक पढ़ने आया तो एक ओर, सबसे पीछे दुबककर बैठ गया। एक तो यह बालक कोरी जाति का था, जो अत्यंत तुच्छ मानी जाती है। दूसरे ओर, एक दीन हीना मजदूरनी का दुर्बल व कुरूप पुत्र था, अतः सर्वथा उपेक्षित था। उसका पक्का रंग मैले मुख पर चमकती हुई दो पीली आंखें तथा छोटे छोटे सूखे बाल थे। वह अपने ओंठों को कसकर बंद रखता था। उसके मुख पर संकोच रहता था। लेखिका के शब्दों में –

''उभरी हड्डियों वाली गर्दन को संभाले हुए झुके कंधों से, रक्तहीन मटमैली हथेलियों और टेढ़े मेढ़े कटे हुए नाखूनों युक्त हाथों वाली पतली बाँहें ऐसी झूलती थीं, जैसे ड्रामा में विष्णु बनने वाले की दो नकली भुजाएँ।''

घीसा का शरीर लचीला था। वह दौड़ता रहात था। अतः उसके पैर अवश्य पुष्ट थे। इस प्रकार उस दीन–हीन बालक घीसा की रूप–रेखा थी।

2. ज्ञान–प्राप्ति का इच्छुक – जब लेखिका के पास घीसा पढ़ने आया, तब उसकी अवस्था नौ वर्ष की थी। घीसा पढ़ाई पर विशेष ध्यान देता था। वह महादेवी वर्मा को 'गुरुजी' कहता था, परन्तु उनकी प्रत्येक बात को सबसे पहले समझता था। अपना पाठ याद करता था। पुस्तकों को मैली न होने देता था। उसकी स्लेट सदा स्वच्छ रहती थी। अपने प्रत्येक काम को बड़े मनोयोग से करता था। जब लेखिका उसे पढ़ाती थी तो वह अपना पाठ ध्यान से सुनता था। लेखिका का उसके विषय में कथन है –

''पर उसकी सचेत आंखों में न जाने कौन सी जिज्ञासा भरी थी, वे निरंतर घड़ी की तरह खुली मेरे मुख पर टिकी रहती थी, मानो मेरी सारी विद्याबुद्धि को सीख लेना ही उनका ध्येय हो।''

उसकी इस विद्या प्राप्ति की जिज्ञासा व चतुराई को देखकर ही लेखिका चाहती थी कि घीसा को उसकी माँ से मांग ले और अपने पास रखकर उसके विकास की व्यवस्था करे। परन्तु वह अपनी माता का अकेला पुत्र था और माँ के पास घर में घीसा के अतिरिक्त कोई नहीं था। अतः उसका जीवन घर में ही माता के साथ व्यतीत हुआ। यह अधिक संभव था यदि उसे पढ़ने का अवसर मिलता तो वह निःसन्देह अवश्य ज्ञान के उच्च शिखर तक पहुँच सकता था।

3. कठिन परिश्रमी– घीसा अत्यंत कर्त्तव्यपरायण और परिश्रमी था। वह अपना पाठ तो याद करता ही था और पढ़ने–लिखने का अभ्यास भी करता था। साथ ही वह उस स्थान को भी साफ रखता था जहाँ पर लेखिका पढ़ाती थी। लेखिका रविवार को पढ़ाने आती थी। घीसा शनिवार को ही उस स्थान को गोबर मिट्टी से लीप देता था। रविवार को फिर वह उस स्थान को झाड़ू से साफ करता था। इसके पश्चात् वह गंगा के तट पर बैठकर लेखिका की प्रतीक्षा करता था। वह दूर तक दृष्टि दौड़ाता तथा जैसे ही उसे नौका आती दिखाई देती तो वह अपने साथियों को चिल्ला चिल्लाकर गुरुजी के आगमन की सूचना दिया करता था। पेड़ की डाल पर रखी हुई शीतलपाटी बार–बार झाड़कर बिछा देता था और उनकी दवात कलम भी नहीं रखता था, बल्कि तनम न से वह लगा रहता था। वह गुरुजी की सेवा में अपने को समर्पित रखता था तथा पढ़ाई का कार्य हो या सफाई का–सभी को बड़े परिश्रम से करता था जिससे गुरुजी को उसके विरूद्ध कोई बात कहने का अवसर न मिल सके। स्वयं लेखिका कहती है –''उस थोड़े से समय और इने गिने दिनों में मुझे उस बालक हृदय का जैसा परिचय मिला, वह चित्र के एलबम के समान निरंतर नवीन सा लगता है।''

4. परम शिष्य –लेखिका के पास यद्यपि उस गाँव के अनेक बालक पढ़ते थे, परन्तु महादेवी वर्मा ने घीसा में ही गुरु

भक्ति विशेष रूप से देखी थी। महादेवी वर्मा की प्रत्येक बात को वह ध्यान से सुनता था और उस पर यथावत् आचरण भी करता था। उसके जीवन में मानो गुरुजी का उपदेश ही एकमात्र ध्यान का केन्द्र था। उन्हीं बातों को सीखना उसका परम लक्ष्य था, जो गुरुजी ने उसे बताई है। उसकी धारणा थी कि गुरुजी को भगवान ने उसके पास भेजा है। अतः गुरुजी का एक–एक वाक्य भगवान की वाणी है। एक बार महादेवी वर्मा ने बच्चों को स्वच्छ कपड़े रखने का पाठ पढ़ाया और समझाया कि वे आगे से साफ कपड़े पहने और अपने शरीर को स्वच्छ रखें। आगामी रविवार को सभी बच्चे गंगा में खूब रगड़–रगड़ कर अपने शरीर के मैल को उतार कर आएं। लेखिका ने जब उन्हें देखा–कुछ गंगा जी में मुंह इस तरह धोकर आए थे कि मैल अनेक रेखाओं में विभक्त हो गया था, कुछ के हाथ पाँव ऐसे घिसे थे कि शेष मलिन शरीर के साथ वे अलग जोड़े हुए से लगते थे।

वस्तुतः उन निर्धनों के पास अपर्याप्त कपड़े थे। अधिकांश बच्चों के पास वे ही फटे पुराने कपड़े थे, जिन्हें वे पहने हुए थे। कुछ बच्चे तो अपने कुरते आदि को घर छोड़कर बिना कुरते या कमीज के ही आ गए थे। क्योंकि यदि वे उन कपड़ों को धोकर साफ करने का प्रयत्न करते तो यह निश्चित था कि वे कपड़े फट जाते। घीसा के पास भी वही कुरता जिसे वह पहने रखता था। आज वह पढ़ने नहीं आया था। जब लेखिका ने घीसा के विषय में पूछा तो ज्ञात हुआ कि उसकी माँ के पास साबुन खरीदने के पैसे नहीं थे। आज पैसे मिलने पर उसने साबुन खरीदा है और घीसा कपड़े धो रहा है। तभी घीसा नहाकर गीला अंगोछ लपेटे और धुला हुआ भीगा कुरता पहने हुए वहाँ आया, तो वह अपने को अपराधी के समान अनुभव कर रहा था। परंतु लेखिका का मन उसे देखकर भर गया। उसकी शिष्यता व गुणवत्ता को जानकर महादेवी वर्मा को अत्यंत आश्चर्य हुआ।

6. गुरु के प्रति ममता– यहाँ महादेवी वर्मा घीसा के प्रति अत्यंत दयालु, करुणा तथाममता से भरी थी, वहाँ घीसा भी महादेवी वर्मा के प्रति श्रद्धालु व भक्ति भावना से व्याप्त था। महादेवी वर्मा यदि घीसा का ध्यान रखती तो घीसा महादेवी वर्मा के प्रति अतीव अपनत्व रखता था।

एक बार होली के अवसर पर हिंदू मुस्लिम साम्प्रदायिक झगड़ा बढ़ता चला जा रहा था। तभी घीसा दो सप्ताह से ज्वरग्रस्त था। महादेवी वर्मा ने दवा तो अवश्य भिजवा दी थी, परन्तु घीसा की देखभाल करने वाला कोई न था। रविवार को संध्या–समय बच्चों को पढ़ा लेने के पश्चात् लेखिका घीसा की दशा जानने के लिए चल दी। वह कुछ ही दूर गई थी कि घीसा डगमगाता उधर ही आता दिखाई दिया। लेखिका को डर था कि कहीं उसे सन्निपात रोग न हो गया हो। वास्तव में घीसा को महादेवी वर्मा की चिंता थी। उसे पता चलता था कि शहर में भयंकर दंगा हो गया है तो घीसा ने सोचा कि वह आज गुरुजी को ऐसी दशा में शहर न जाने देगा। अतः वह तेज बुखार में भी पेड़ों व मकान आदि का सहारा लेता हुआ जब लेखिका के पास आया और शहर न जाने की प्रार्थना करने लगा, तो लेखिका के समक्ष जटिल समस्या आ गई। उसे बहुत समझाया, परन्तु वह न माना। अंत में लेखिका ने एक बहाना बनाया कि उसके पास दूर दूर से आए हुए अनेक विद्यार्थी हैं जो अपनी माँ के पास वर्ष में एक ही बार जाते हैं। महादेवी वर्मा के बिना वे अकेले घबरा जाएंगे। यह बात सुनकर ही घीसा ने अपना हठ त्याग दिया।

घीसा की अपने पति इस अपार ममता व श्रद्धा को देखकर लेखिका की अथाह करुणा जाग्रत हो गई। वह घीसा को उसके घर छोड़कर ही वापिस शहर आई।

7. अद्‌भुत गुरु–दक्षिणा – लेखिका प्रायः ग्रीष्म के अवकाश में ही गाँव में पढ़ाने जाती थी, परन्तु इस बार अस्वस्थ थीं। उनके पेट में फोड़ा होने की आशंका थी। अतः जढ़ाई समाप्त करके वहाँ से चलने लगी तो कुछ बालक तो महादेवी वर्मा के जाने से उदास थे, कुछ प्रसन्न थे कि उन्हें खेलने की छुट्‌टी मिल गई, कुछ अपनी पुस्तक वर्षा या चूहों से सुरक्षा करने के लिए चिंतित थे, परन्तु उस दिन घीसा वहाँ नहीं था। अतः महादेवी वर्मा कुछ चिन्तित सी वहाँ से चल दी। वे गंगा के तट पर ही पहुँची थी कि घीसा एक लाल तरबूज लेकर दौड़ता हुआ आया और उसने यह हार्दिक प्रार्थना की कि यदि गुरु साहब यह तरबूज नहीं लेंगे तो वह रात भर रोएगा, छुट्‌टी भर रोएगा, और

यदि स्वीकार कर लें तो रोज नहा धोकर पाठ पढ़ेगा और छुट्टियों के पश्चात् पूरी किताब लिखकर दिखा देगा। लेखिका को यह भी ज्ञात हुआ कि वह इस तरबूज को अपने एक मात्र कुरते को देकर लाया है। उसे गर्मी में कुरते की आवश्यकता नहीं है। उसके इस अनुपम उपहार को देखकर लेखिका भावुक हो गई और सोचने लगी –

''उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिाा मिली होगी, ऐसा मुझे विश्वास नहीं परन्तु उस दक्षिणा के सामने संसार में अब तक सारे आदान–प्रदान फीके जान पड़े।''

निःसन्देह घीसा एक दीन, हीन, उपेक्षित, पितृविहीन तथा अभावों में पालित पोषित बालक था, परन्त उसकी गुरुजी के प्रति अगाध श्रद्धा थी। वह अपनी पढ़ाई के प्रति अत्यंत सजग और ईमानदार था। सच्चे अर्थों में वह मानवतावादी आदर्शवादी, परिश्रमी व गुरुभक्त बालक था। वह चतुर सत्यवादी व विचित्र प्रतिभावान था, जिसकी मृत्यु के पश्चात् भी लेखिका उसे नहीं भुला सकी। वे कहती है– अभी मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है कि मैं अन्य मलिन मुखों में उसकी छाया ढूँढती हूँ।''

अलोपी का चरित्र–चित्रण :

'अतीत के चलचित्र' के नवम पाठ में अंधा अलोपी का चित्रण किया गया है। अलोपी एक दिन महादेवी वर्मा के छात्रावास में आया था। जबकि लेखिका गर्मियों को दोपहर में परीक्षाओं में उत्तरपुस्तिकाओं का मूल्यांकन कर रही थी। तेज लू चल रही थी। प्रायः ऐसे अवसर पर सभी अपने बंद मकान में बिजली के उपकरणों से ठंडक प्राप्त करते हुए आराम करते हैं। गर्मी के वातावरण में घर से बाहर नहीं निकलते। ऐसे ही अवसर पर अंधा अलोपी महादेवी वर्मा से मिलने आया था। उसे भिखारी समझकर पहले तो लेखिका को क्रोध आया, परन्तु अपनी माता के भिक्षुक के प्रति ममत्व भरे उपदेशों को याद करके लेखिका अपना कार्य छोडकर जब अलोपी से मिलने गई तो उन्हें बड़ा विचित्र अनुभव हुआ। वे कहती हैं –मैंने उसे कब देखा, यह कहानी भी उसी के समान अपनी विचित्रता में करूण है।''

1. अलोपी की रूपरेखा व नामकरण – लेखिका के पास जब अलोपी पहली बार आया तब उसकी अवस्था लगभग तेईस वर्ष की थी। एक दुबला पतला 11–12 वर्ष का बालक अलोपी की लाठी के एक भाग को पकड़े हुए था और आगे–आगे चल रहा था। अलोपी ने ऊँची धोती व मैली बंडी पहन रखी थी और टटोल–टटोल पर बालक के पीछे आ रहा था। बालक का संकेत पाकर अलोपी ने महादेवी वर्मा को नमस्कार किया। अलोपी की ओर देखने पर उसकी दशा का चित्रण करती हुई लेखिका कहती है– ''धूल के रंग के कपड़े और धूल भरे पैर तो थे ही, उस पर उसके छोटे–छोटे बालों, चपटे से माथे, शिथिल पलकों की विरल बरूनियों, बिखरी सी भौंहों, सूखे, पतले ओठों और कुछ ऊपर उठी हुई ठुडडी पर राह की गर्द की एक पर्त....जम गई थी।

वह अंधा था। उसकी आँखें ऐसी प्रतीत होती थीं जैसे कच्चे काँच की मैली गोलयाँ। उसका पिता काठी था। बहुत दिनों तक कोई सन्तान न होने पर उसने अलोपी देवी के मंदिर में उपासना की थी और संतान की बलवती इच्छा शक्ति व्यक्त की थी। तभी एक पुत्र का जन्म हुआ। अलोपी देवी की कृपा से यह बालक पैदा हुआ था अतः इसका नाम अलोपीदनी रख दिया।

2. कर्त्तव्यपरायण – अलोपीदीन जन्म से अंधा था। बचपन में ही उसके पिता की मृत्यु हो चुकी थी। माँ तरकारियाँ बेचती थीं। इस प्रकार अलोपी की अवस्था तेईस वर्ष की हो गई थी और माँ वृद्ध हो चली थी। तभी अलोपी को यह आभास हुआ कि उसकी वृद्ध माँ परिश्रम करती है और वह आराम से भोजन करता है। वह महादेवी वर्मा के विषय में सुनकर उनके पास काम प्राप्त करने की इच्छा से आया था। इसने अपने जीवन की करुण कथा को महादेवी वर्मा के समक्ष रखा और यह भी विश्वास दिलाया कि वह देहात के खेतों से सस्ती और अच्छी तरकारी छात्रावास की छात्राओं के लिए और महादेवी वर्मा के लिए प्रतिदिन लेकर आएगा।

वह अंधा भले ही हो, कार्य करने की उसमें क्षमता तथा लगन थी। वह इस युवावस्था में खाली बैठकर खाना नहीं चाहता था। उसने इस कार्य के लिए अपने फुफेरे भाई रग्घू की ओर संकेत करके बता दिया कि इस कार्य में यह उसका सहायक सिद्ध होगा। यद्यपि यह प्रस्ताव स्वीकार्य तो न था, परन्तु लेखिका ने संवेदना से भर कर उसकी बात मान ली और देखा–दूसरे दिन सबेरे ही एक हाथ से रग्घू की लाठी का छोर थामे और दूसरे से सिर पर रखी बड़ी सी छाबड़ी संभाले हुए अलोपी, मालिक हो! मालिक हो! पुकारने लगा।

3. अत्यंत परिश्रमी – अलोपी छात्रावास की तरकारी लाने के कार्य को बड़े परिश्रम व लगन के साथ करने लगा। वह कम से कम पैसों में अच्छी से अच्छी व अधिक से अधिक तरकारी लाता था। कितनी ही वर्षा हो, तूफान हो, बिजली की कड़क या बादलों का गर्जन अलोपी निरंतर अपने कार्य में बिना रूकावट के लगा रहता था। साथ ही, वह रग्घू को भी इस कार्य से जी न चुराने देता था। सर्दी के रोमांचकारी बर्फीले दिन भी अलोपी कभी अपने कार्य में विमुख नहीं हुआ। रग्घू भले ही सर्दी से दांत बजाता हो या ठिठुरता हो, परन्तु अलोपी अपने पैरों को नाप तोलकर रखता था और तरकारी की टोकरी मजबूती से पकड़े रखता था। इसी प्रकार गर्मी में भी अलोपी अपने पैरों को बार–बार उठाकर चलता था। परन्तु अलोपी आँखें बंद करके, धर्य के साथ चलता हुआ अपने कार्य को बिना बाधा के पूरा किया करता था। उसके इस अकथनीय परिश्रम को जानकर लेखिका कहती है – वसन्त या होली, दशहरा हो या दीवाली, अलोपी के नियम में कोई व्यक्तिक्रम कभी नहीं देखा गया।

4. विचित्र साहसी –अलोपी परिश्रमी ही नहीं, बल्कि अंधा होकर अदम्य व अद्‌भुत साहस का परिचय देता था। एक बार हिंदू मुस्लिम साम्प्रदायि झगड़ा हो गया। जिसमें घर से बाहर निकलना मृत्यु को बुलावा देना था, परन्तु अलोपी इस विषम वातावरण में भी पहले से दुगुनी बड़ी टोकरी भरकर तरकारी लेकर आया और एक बड़ी गठरी उसने रग्घू की पीठ पर लाद रखी थी। उसके इस दुस्साहस को देखकर लेखिका क्रोधित होकर बोली– तुम हृदय के भी अंधे हो, ऐसी अंधेरी गलियों में प्राण देकर कुछ स्वर्ग नहीं पहुँच जाओगे। लेखिका के आक्रोश भरे वचनों को वह चुपचाप सुनता रहा। वास्तव में, वह दो दिन की तरकारी लेकर आया था। उसे मेट्रन से ज्ञात हो चुका था कि छात्रावास में अचार नहीं है और केवल दाल से छात्राएँ खाना नहीं खा सकती हैं। उसे विश्वास था कि दो तीन दिन पश्चात् यह झगड़ा समाप्त हो जाएगा, तब तक ये तरकारियाँ पर्याप्त रहेंगी। अलोपी के इस दुस्साहस व समझादारी की बातें को जानकर लेखिका के मन में संवेदना जाग्रत हो गई। वे कहती हैं –अलोपी को ऐसे समय भी रोके रखना संभव नहीं हो सकता।

5. कोमल हृदय – अलोपी कोमल हृदय वाला व्यक्ति सहृदयता के कारण ही लेखिका की सेविका भक्तिन से यह पूछता रहता था कि लेखिका को करेला अच्छा लगता है या कटहल, कचनार की फली या सहजन की फली, मैथी या पालक, नींबू या संतरा। रुचिकर सामान व महादेवी के लिए विशेष रूप से लाता था, इसी प्रकार वह छात्रों के लिए अच्छी तरकारी भी लाता था। वहाँ उनके लिए अमरूद, बेर आदि भी लाता था, जो बिना दामों के उन्हें बाँट देता था। इस पर कॉलेज के फल वालों ने शिकायत की थी। उनके फल वह कालेज के समय नहीं बेचता। अतः हानि का प्रश्न ही नहीं। दूसरी बात यह है कि वह इन फलों को दाम देकर नहीं लाता है, बिना दामों के लाता है ओर बिना दामों के छात्राओं को दे देता है। इसके अतिरिक्त उसने करुण स्वर में यह भी बताया कि उसकी आठ नौ वर्ष की एक चचेरी बहिन थी जिसकी मृत्यु हो चुकी है। इन्हीं बालिकाओं में वह बहिन की ध्वनि को पाता है। अतः यही ममत्व उसे अमरूद, बेर, जामुन आदि प्रदन करने को बाध्य करता है।

6. लेखिका के प्रति ममत्व – अलोपी छात्रावास के लिए तरकारी लाकर जहाँ अपनी आजीविका प्राप्त करता था, वहाँ उसका लेखिका के प्रति अपार स्नेह था। लेखिका चाहे बरामदे में हो या नहीं, वह अंधा अलोपी प्रतिदिन उस दिशा में नमस्कार करता था। वह लेखिका के प्रति अत्यंत कृतज्ञ था। एक बार लेखिका ज्वर से पीड़ित थी। अलोपी को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने लेखिका के दर्शन की अभिलाषा व्यक्त की है तो रूग्णावस्था में उन्हें हँसी आ

गई। क्योंकि अंधा अलोपी बिना नेत्रों के उनके क्या दर्शन करेगा? जब अलोपी को दर्शन करने की आज्ञा मिल गई तो वह लेखिका के लिए देवी अलोपी की विभूति लेकर आया और कहा यदि लेखिका उसे जीभ पर रख लें व माथे पर लगा लें तो वह ठीक हो जाएंगी। लेखिका को यद्यपि आश्चर्य हुआ कि जो देवी, अलोपी का ही भला न कर सकी वह महादेवी वर्मा का क्या भला करेगी। परन्तु लेखिका समझ गई थी कि वह सभी अलोपीदीन की ममता का परिणाम है।

अंधे अलोपी का लेखिका के प्रति अगाध अपनत्व व ममत्व था। अंत में जब एक बार अलोपी दशहरे के अवसर पर छात्रावास में आया तो ममता से तराजू का स्पर्श करता, स्नेह से पूसी को सहलाता, लेखिका की कुतिया को मुरमुरे देकर गया, हिरनी सोना को मूली की पत्तियाँ दे गया। इस प्रकार उसकी ममता अपूर्व और व्यापक थी।

7. दृढ़ विश्वासी – अलोपी ने किसी को धोखा देना या विश्वासघात करना नहीं सीखा था। वह भी सभी पर विश्वास करता था। छात्रावास में कितनी तरकारी आती हैं महादेवी वर्मा के लिए क्या–क्या सामान आता है, इसका हिसाब वह नहीं रखता था। उसे मेट्रन और महादेवी वर्मा पर पूर्ण विश्वास था। अलोपी अब पैसा कमाने लगा तो उसने विवाह कर लिया। यद्यपि उसकी माँ इस विवाह के पक्ष में नहीं थी। अलोपी को विश्वास था कि वह अपनी माँ को मना लेगा। इसने नव–विवाहिता अपनी पत्नी पर इतना विश्वास किया कि उसे अपनी आमदनी के साध नही नहीं बता दिए, बल्कि अपनी पूर्व अर्जित सम्पत्ति से भी उसे अवगत करा दिया।

दुर्भाग्यवश उसकी चतुर पत्नी सभी सम्पत्ति लेकर भाग गई और अंधा अलोपी पछताता रह गया। उसे विश्वास था कि वह अवश्य आएगी। वह निरंतर उसकी प्रतीक्षा करता रहा। उसे इतनी निराशा दुख व पीड़ा हुई कि वह अब अस्वस्थ रहने लगा। उसे यह भी राय दी गई कि वह अपनी पत्नी की रिपोर्ट पुलिस में करा दे। तब वह विश्वास के साथ बोला –

''अपनी स्त्री की हुलिया लिखवाकर पकड़ मंगाना नीच का काम है।''

यद्यपि उसमें पहले जैसा जीवन नहीं रहा, परन्तु उसका विश्वास जीवन में समाप्त नहीं हुआ था। इस प्रकार अलोपी अंधा होकर भी कठोर परिश्रमी, साहसी, कर्त्तव्यपरायण, दृढ़ विश्वासी, कोमलहृदय वाला व्यक्ति था। उसकी करुण कथा को लेखिका कभी नहीं भुला सकी।

लछमा का चरित्र–चित्रण :

लछमा एक अभागिनी पर्वतीय युवती थी, जिसका विवाह एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। परंतु उसका पति विक्षिप्त या मानसिक रूप से अविकसित था। यद्यपि उसके सास ससुर लछमा को बहुत प्यार करते थे, परन्तु उसके देवर, जेठ आदि उसके शत्रु थे, क्योंकि वे चाहते थे कि यदि लछमा न रहेगी तो वे अपने पागल भाई की सभी सम्पत्ति छीन सकेंगे। उन्होंने लछमा पर अनेक प्रकार से अत्याचार किए, उसे पीड़ित किया, परन्तु लछमा तो इन अत्याचारों से न घबराई और न अपने पति को छोड़कर मायके गई। एक बार उसे इतना पीटा कि उसे मरी हुई जानकर एक खड्डे में फेंक दिया। वास्तव में लछमा मरी नहीं थी, वह बेहोश हो गई थी। होश आने पर खड्डे से बाहर पहुँचने में समर्थ हो गई। प्रस्तुत रेखाचित्र में इस दुखिता व प्रताड़िता लछमा का चरित्रांकन इस प्रकार किया गया है–

1. लछमा की बाह्य रूपरेखा – लछमा पहाड़ी स्त्री थी, अतः उसका कद छोटा और गोरा था। धूप की गर्मी को निरंतर सहन करने के कारण वह मुरझा गया था। पलके सूखी और आंखें गीली थीं। सर्दी के कारण ओठ नीले रहते थे। दन्तावली अवश्य स्वच्छ, स्वस्थ व श्वेत थी। बहुत कार्य करते रहने से हथेली कठोर और निरंतर चलने से पैर सुदृढ़ तथा पैर के तलुए कठोर हो गए थे। कहीं काँटे चुभे रहते थे तो कहीं पत्थरों के घावों का चिह्न रहता था। अतः हाथ पैर कटे–फटे व घायल रहते थे।

वह काला लहंगा पहनती थी। मैली पुरानी फटी ओढनी ओढे रहती थी। बाल सदा बिखरे और उलझे रहते थे। उनमें तेल तो शायद ही कभी लगाया हो। महादेवी वर्मा के शब्दों में –

''धूप से झुलसा हुआ मुख ऐसा जान पड़ता है जैसे किसी के कच्चे सेब को आग की आंच पर पका लिया हो। सूखी–सूखी पलकों में तरल–तरल आँखें ऐसी लगती थीं मानो नीचे आसुओं के अथाह जल में तैर रही हों।''

2. कष्ट सहिष्णु – लछमा पर निरंतर दुखों का पहाड़ टूटता रहा। विवाह के पश्चात् ससुराल में उसके देवर और जेठ उसे दुखी करते रहे और उसे इतनी कठोर पीड़ा दी कि मृत समझकर खड्डे में फेंक दिया था। परंतु उसके दुर्भाग्य ने उसे मरने न दिया। किसी प्रकार घास मिट्टी आदि खाती हुई वह अपने माता–पिता के घर आई तो वहाँ भी मानो कष्ट उसका स्वागत कर रहे थे। पिता की आँखें खराब थी, माँ का हाथ टूट गया था। लछमा के घर आते ही उसकी भाभी एक लड़की और एक माह के बच्चे को छोड़कर चल बसी थी। लछमा का एक मात्र भाई संसार से विरक्त हो संन्यासी बन गया था। अतः घर के सभी अवशेष सदस्यों का दायित्व लछमा पर था। लछमा भी बेचारी ससुराल वालों से प्रताड़ना से इतनी पीड़ित थी कि उसके प्रत्येक अंग दुखते थे। बैठने से रीढ़ में दर्द होता था। खड़े रहने से घुटने पीड़िते हो उठते थे। फिर भी बेचारी अपने कष्टों की घूँट पीकर भाभी के बच्चों और अपने माता–पिता की तन–मन से सेवा करती थी। घर में सम्पत्ति का सर्वथा अभाव था। इतने सदस्यों के लिए पेट भरने को अन्न और पहनने को वस्त्र आदि का प्रबंध करना दुखिता लछमा जैसी नारी के लिए टेढ़ी खीर थी। फिर भी वह मुसीबतों की मारी इस महत उत्तरदायित्व को उठाए हुए थी। लेखिका उसके कष्टों को ज्ञात करके कहती है –

''लछमा की जीवन गाथा उसके आँसुओं से भीग–भीग कर इतनी भारी हो गई है कि कोई अथक कथावाचक और अचल श्रोता भी उसका भार वहन करने को प्रस्तुत नहीं।''

3. मर्यादा रक्षिका– लछमा अन्याय सहन करने की मानो आदी हो गई थी। ससुराल में उसके देवर व जेट उसे खूब प्रताड़ित करते, पीठते, अनेक प्रकार की यातनाएँ देते, परन्तु वह इसके विपरीत उन्हें बुरा न कहती थी। उनसे बदला लेने की भावना कभी भी उसके मन में नहीं थी। जब वह खड्डे से निकल कर घिसट–घिसट कर बाहर आई और मार्ग में भूख लगने पर मिट्टी खाती हुई मृत्यु रूपी नदी को पार करके घर पहुँची तो उसने अचानक शिला से फिसल जाने का बहाना बनाया। ससुराल वालों की क्रूरता को व्यक्त नहीं किया। उसका विचार था कि इससे उसके घर की मर्जाद चली जाती। ससुराल वालों की यथार्थता का ज्ञान जब मायके वालों को हो गया और उन्होंने क्रोध में आकर लछमा के अन्याय का बदला लेने की इच्छ व्यक्त की, तो लछमा ने इसका तीव्र विरोध किया। वह कष्ट सहने को तत्पर थी, परन्तु ससुराल की मर्यादा भंग नहीं होने देना चाहती थी। अतः बेचारी कष्टों के भार से लदती चली गई। लेखिका के शब्दों में –

''इस अभागी स्त्री की छाया में दुःख स्थायी रूप में बस गया था।'

4. लेखिका के प्रति अपार ममता – महादेवी वर्मा अस्वस्थ रहती थी, अतः स्वास्थ्य लाभ के लए पहाड़ों पर उन्हें रहना पड़ता था। इसी समय उनका लछमा से परिचय हो गया था। वह महादेवी वर्मा के प्रति इतना आकर्षित थी कि सदा निस्वार्थभाव से महादेवी वर्मा के चारों ओर मंडराती रहती। वह महादेवी वर्मा की अभिन्न सहेली बन गई थी। लछमा महादेवी वर्मा को वे सभी पदार्थ प्रदान करती थी, जो पर्वतीय प्रदेश में उपलब्ध हो जाते हैं। ताजा शहद, काले अंगूर, भैंस का ताजा दूध, स्वादिष्ट दही, मक्खन आदि को लेकर लछमा सदा महादेवी वर्मा के पास आती थी और थोड़ा सा खा लेने के लिए निरंतर अनुरोध करती थी। महादेवी वर्मा को उसके इस आग्रह को देखकर अपना बचपन याद आ जाता था। फिर भी लछमा का बार–बार महादेवी वर्मा के पास आना उन्हें अध्ययन और लेखन में बाधा पहुँचाता था। एक बार लेखिका ने झुझला कर उससे कहा था कि इसके बाद जब भी पहाड़ पर आएगी तो सुनसान पर्वत की चोटी पर जाकर रहेगी जहाँ उसके पास कोई न पहुँच सके। लछमा का ममत्व इससे

भी कम न हुआ। उसने कहा कि वह वहाँ जाकर दरवाजे पर खाने–पीने का सामान रख आया करेगी, वह तब तक न बोलेगी और न उनकी तरफ देखेगी जब तक उनकी मोटी पोथी पूरी न हो जाएगी। बाद में वह तुरंत उनके पास पहुँच जाएगी और सारे सामान सहित उन्हें नीचे ले आएगी। उसकी इस अपार ममता को देखकर लेखिका कहती है– ''तब मैं विस्मय से बोल न सकी। एकान्त और निर्जन सहज प्राप्त है, मोटे–मोटे पोथे लिख लेना भी कठिन नहीं पर लछमा जैसा अकारण ममतालु सहायक दुर्लभ ही रहेगा।''

5. अशिक्षित परन्तु चतुर –लछमा अशिक्षित थी, परंतु मूर्ख नहीं थी। उसकी बुद्धिमता को देखकर महादेवी वर्मा ने उसे पढ़ाने–लिखाने का प्रस्ताव रखा। तब लछमा ने स्पष्ट कह दिया कि वह घर के इतने प्राणियों को किसके सहारे छोड़ेगी? जंगल में पढ़ना–लिखना व्यर्थ है। यहाँ तो इसी वातावरण के अनुरूप कार्य करने की क्षमता होनी चाहिए। उसका यह कथन सत्य था।

एक बार महादेवी वर्मा हिमालय का चित्र बना रही थी तो लछमा ने कहा कि उसे बड़ा सा नीला कागज, सफेद, हरे रंग मिल जाएं तो वह हिमालय का सुंदर चित्र बना सकेगी। इतना अवश्य है कि लछमा को फूल पत्तियाँ बनाना आता था। वह चावल व गेहूँ से घरों में विभिन्न चित्र बनाती थी। वह स्वेटर बुनना भी सीख गई थी। पिता के लिए उसने एक स्वेटर भी बनाया था। सामान्यतः पर्वतीय जीवन में इनका अभाव पाया जाता है। लेखिका उसकी चित्र–रचना को देखकर कहती है –

''उसकी चित्र रचना में चाहे अर्थ कुछ न रहे, पर बनाने वाली उंगलियों पर अपटु परिश्रम और साधनहीनता तो प्रत्यक्ष हो ही जाती है।''

6. स्वच्छ हृदय – लछमा के चरित्र में यह भी विशेषता थी वह हृदय की स्वच्छ थी। किसी ने उसके साथ कैसा व्यवहार किया है? वह उसे छिपाती न थी और न किसी के प्रति द्वेष भावना उसमें व्याप्त थी। एक बार अवश्य उसने अपने ऊपर कुदृष्टि डालने वालों के प्रति धूप दीप जलाकर अमंगल कामना की थी, परन्तु जब लेखिका ने कहा– ''वास्तविक पवित्रता का प्रमाण तो यही है कि मलिन सी दृष्टि भी उसका स्पर्श कर पवित्र हो जावे।'' इस सत्य को उसने अपने मस्तिष्क में उतारकर अपने अन्तस्थल को इतना स्वच्छ कर लिया कि वह अब धूप दीप में सभी की मंगल कामना करने लगी थी। यद्यपि उसके चरित्र पर लांछन लगाया गया, उसने अपने कानों से भी असत्य व अशुभ चर्चा को सुना, परन्तु उसने सदा बुराइयों की उपेक्षा की थी। यदि उसके समक्ष कोई असद् या अवांछनीय बातें कहता तो वह सरलता और सहजता से कह देती–रहने दो जैसा करेगा वैसा पाएगा। वास्तव में, उसके मन में दुर्भावना नहीं थी। यह उसके हृदय की पवित्रता, स्वच्छता व निर्मलता थी। लेखिका के शब्दों में – 'उसका दर्पण जैसा मन स्वयं ही अपनी स्वच्छता का प्रमाण है।''

इस प्रकार लछमा एक ऐसी पहाड़ी नारी थी जिसका जीवन अनन्त दुखों और अभावों से व्याप्त था। फिर भी, वह न दुखों से भयभीत थी और न अभावों से चिन्तित रही। वह सदा हँसती थी। अपने कष्टों को कहना, किसी की बुराई भलाई करना या सुनना उसे अभीष्ट न था। वह तो मानवता की मूर्ति और मर्यादा की मानो संरक्षिका थी। यही कारण है कि महादेवी वर्मा उसे कभी नहीं भुला सकी।

इकाई–4 कहानी संग्रह

इकाई की रूपरेखा

4.1 पाठ्यक्रम में निर्धारित कहानियाँ

4.2 उसने कहा था (चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी')

4.3 कफ़न (मुंशी प्रेमचंद)

4.4 आकाशदीप (जयशंकर प्रसाद)

4.5 पत्नी (जैनेन्द्र)

4.6 वापसी (उषा प्रियंवदा)

4.7 गैंग्रीन (अज्ञेय)

4.8 लालपान की बेगम (फणीश्वरनाथ रेणु)

इकाई 1 उसने कहा था (चन्द्रध शर्मा 'गुलेरी')

इकाई की रूपरेखा

1.0 परिचय

1.1 इकाई के उद्देश्य

1.2 हिंदी कहानी की यात्रा

1.3 कहानी 'उसने कहा था' यथावत

1.4 व्याख्या

1.5 चरित्रचित्रण

1.5.1 लहनासिंह

1.5.2 सुबेदारनी

1.5.3 सूबेदार हजारासिंह

1.6 आलोचना

1.7 सारांश

1.8 मुख्य शब्दावली

1.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.0 परिचय

चंद्रधर शर्मा गुलेरी की यह प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण रचना है। फौजी जीवन एवं बचपन के प्रेम का अनोखा, गरिमामय एवं मर्मस्पर्शी संगम इस कहानी में जीवंत हुआ है। गुलेरी जी की तीन कहानियों में यह वह रचना है जो लेखक को कभी विस्मृति के लोक में जाने नहीं देगी। राष्ट्रभक्ति, संघर्ष, बलिदान, त्याग और सादगी से भरपूर 'उसने कहा था' कहानी पाठकों को झकझोर देती है।

1.1 इकाई के उद्देश्य

इस कहानी को पढ़कर विद्यार्थी –

- फौजी जीवन के संघर्ष को जानेंगे;
- प्रेम के गरिमामय स्वरूप से परिचित होंगे;
- राष्ट्र प्रेम और राष्ट्रभक्ति के स्वरूप से अवगत होंगे;
- सादगीपूर्ण जीवन, बलिदान एवं त्याग का संदेश समझेंगे।

1.2 हिंदी कहानी की यात्रा

टिप्पणी : सृष्टि में मनुष्य ने जबसे बोलना सीखा है, तभी से उसने कहानी सुनना तथा कहना भी सीखा। मनुष्य के रहस्यपूर्ण हृदय में दूसरों को जानने और अपने–आत्म कथ्य को अभिव्यक्त करने की उत्सुकता ने ही 'कहानी' को जन्म दिया। 'कहानी' तो कालजयी है, अपने युग की संचेतना को सजीव रूप में अत्यंत ही करुण–स्वर से मुखरित करने की, सृष्टि के आदि से चलने वाली यह प्रक्रिया सृष्टि के अंत तक सतत एवं निरंतर चलती रहेगी। मानव–मन के ज्ञान–अज्ञात रहस्यपूर्ण परिवेश के रहस्यों का अन्वेषण अनादिकाल से कहानीकार करता आ रहा है। कहानी अपने युग के शाश्वत सत्यों को युग आदर्शों, सामाजिक जीवन के ठोस व सजीव यथार्थों, मानव–मन के अंतर्द्वंद्वों, वर्ग–वैषम्यों, आर्थिक व सामाजिक शोषणों व सिंगतियों को अत्यंत ही विश्वसनीयता के साथ रेखांकित करती है। कहानी की अंतरंग पहचान व परख मानवीय मूल्यों को जीवंत सौंदर्ययुक्त सशक्त सत्य को उद्घाटित करने में होती है। मानवीय सहिष्णुता एवं करुणा को सापेक्षिक स्वरूप में प्रतिष्ठित कराना कहानी का धर्म है। 'कहानी' मानव की एक अक्षय सिद्ध निधि है और इसकी परिसमाप्ति अत्यंत ही दुरुह है।

कहानी तो सर्वकालिक है, संसार के किस देश में सर्वप्रथम इसका जन्म हुआ, यह कहना अत्यंत ही दुष्कर है। कहानी के कहने, सुनने व सुनाने की प्रक्रिया मानव–मन में अनादिकाल से रही है। समाज का सभी वर्ग–क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या पंडित, क्या मूर्ख, क्या धनवान, क्या निर्धन– कहान के रसास्वादन के लिए प्रत्येक क्षण आतुर रहते हैं। ऐसी स्थिति में कहानी के जन्म के लिए, स्थान विशेष या काल–विशेष का निर्धारण करना अत्यंत कठिन कार्य है। कहानी साहित्य की सशक्त एवं सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। अनेक विद्वानों का यह मत है कि प्राचीन काल से ही भारत कहानी साहित्य का प्रमुख स्थान रहा है। डॉ॰ राधेश्याम गुप्त के मतानुसार– ''ऐतिहासिक दृष्टि से 5000 वर्ष से भी पूर्व भारत में कहानी प्रचलित थी।'' पाश्चात्य विद्वान भी इस मत को मानते हैं कि 'कहानी' का उद्गम स्थल भारत ही है। श्री एन.एम.पेजर के मतानुसार– ''भारत से ही कहानी की रचना का विधान फारस के निवासियों ने सीखा, जहाँ से इस कला को अरब, मध्यपूर्व एशिया, कुस्तुनतुनिया, वेनिस आदि देशों के साहित्य में स्थान प्राप्त हुआ। बुकेशियो, चौसर, फौंटेन आदि साहित्यकारों की रचनाएँ इसके प्रमुख उदाहरण हैं।'' डॉ0 राइस डेविस और आंटो किलट भी भारतीय कहानियों की प्राचीनता को स्वीकार करते हैं।

प्राचीन कथा–साहित्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि भारत का कथा साहित्य अत्यंत ही समृद्ध रहा है। वस्तुतः पूर्व और पश्चिमी देशों में भारतीय लोक कथाएँ अत्यंत प्रचलित हो चुकी थी, उसकी प्रकार पश्चिमी देशों की लोकप्रिय कहानियाँ–'सहस्र रजनी चरित', 'लैला–मंजनू', 'शीरी–फरहाद' इत्यादि लोकाख्यान भारत में भी लोकप्रिय हुए। पाश्चात्य साहित्य प्रभाव एवं संपर्क के कारण भारतीय कहानी तर्कातीत, अतिप्राकृत और अतिरंजित आस्थाओं के घनीभूत आवरण से निकलकर तर्क संगत विचारों के आलोक में गतिशील होने लगी।

हिंदी कहानी का विकासः

हिंदी साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा कहानी है। यद्यपि कहानी अपने आधुनिक रूप में पश्चिम की देन है किंतु कथा–कहानी की परंपरा प्रत्येक देश में बड़ी पुरानी है। मनोरंजन एवं उपदेश इन दो तत्त्वों को केंद्रित करके कहानी आदिम काल से ही कही सुनी जाती रही है। इसका संबंध अंग्रेजी की छोटी कहानी से बताया गया है। हिंदी कहानी के उद्गम के स्रोत–'वेदों', 'पुराणों', 'रामायण', 'महाभारत', जैन गाथाओं, 'जातक कथाओं', 'हितोपदेश', 'पंचतंत्र–कथाओं', 'वेताल–पंचविंशति', 'सिंहासनद्वात्रिंशिका', 'शुक–सप्तति', 'बृहत–कथा', 'कथा सरित सागर में मिलते हैं। वस्तुतः हिंदी कहानी के निर्माण में एक ओर भारतीय आख्यायिकाओं की परंपरा सहायक एवं प्रेरणा–स्रोत के रूप में कार्य करती है, दूसरी ओर पाश्चात्य रूप विधन का उस पर पूरा प्रभाव परिलक्षित होता है। हिंदी कहानियों का प्रारंभ अंग्रेजी और बंगला के प्रभाव एवं माध्यम से हुआ है। वाशिंगटन इरविंग, अलेक्जेंडर पुश्किन,

एडगर एलेन पो, किपलिंग, गाल्सवर्दी, एच.जी. वेल्स, अरनाल्ड बेनेट, मोपासां, चेखव आदि पाश्चात्य कहानीकारों का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव हिंदी कहानी के विकास में सहायक हुआ है।

कहानी के ही हिंदी गद्य को आविर्भाव का श्रेय प्राप्त है। इस परंपरा में लल्लूलाल की कहानियाँ यों तो अनूदित हैं या उन पर प्राचीन कहानियों की छाया, फिर भी उनमं ''सिंहासन बत्तीसी', 'बेताल पच्चीसी', 'राजनीति', 'माधवानल कामकंदला' आदि कहानियों का कहानी–कला के विकास में विशिष्ट स्थान है। इंशाअल्लाह खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' वर्तमान कहानी से भिन्न प्रकार की है। सदल मिश्र की 'नासिकेतोपाख्यान' अनूदित रचना है। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' की प्रसिद्ध कहानियाँ हैं– 'राजा भोज का सपना', 'वीरसिंह का वृतांत', 'आलसियों का कोड़ा' आदि। हिंदी कहानी का यह निर्माण काल है। लेखकों ने कहानी लिखने का प्रयास और प्रयोग किए, किंतु उनमें कहानी की पूर्णता नहीं पाई जाती। कहानी के तत्वों की दृष्टि से प्रारंभिक युग की ये कहानियाँ बहुत पीछे हैं। इन कहानियों में कौतूहल और कल्पना का विशेष स्थान है। इन कहानियों में हिंदी गद्य का प्रारंभिक अव्यवस्थित रूप ही देखने को मिलता है।

गद्य युग के प्रारंभ में लिखी गई 'रानी कैतकी की कहानी', 'नासिकेतोपाख्यान' (अनूदित), 'मदालसोपाख्यान', 'बेताल पच्चीसी' की कहानियाँ, भारतेंदु की 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न', राधचरण गोस्वामी की 'यमलोक की यात्रा' को हिंदी की आरंभिक कहानियाँ कहा जा सकता है, किंतु इनमें कहानी कला के तत्त्वों का अभाव मिलता है। सन् 1990 में प्रयाग में ''सरस्वती'' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसी पत्रिका के उदय से कहानी की उत्पत्ति, प्रयोग एवं विकास की कहानी आरंभ होती है। हिंदी की पहली मौलिक कहानी का विवाद अभी भी सुलझा नहीं है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'सरस्वती' में प्रकाशित कुछ मौलिक कहानियों का उल्लेख किया है। जिनमें किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' (1990) और 'गुलबहार' (1902), मास्टर भगवानदास की 'प्लेग की चुड़ैल' (1902), रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903), गिरिजा दत्त बाजपेयी की 'पंडित और पंडितानी' (1903), बंग महिला की 'दुलाईवाली' (1907) प्रमुख हैं।

इनमें मार्मिकता, भाव प्रधानता और मौलिकता की दृष्टि से क्रमश–'इंदुमती', 'ग्यारह वर्ष का समय' एवं 'दुलाईवाली' को हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी का दावेदार माना गया है। 'इंदुमती' पर किसी बंगला कहानी की छाया है। इसी तरह बंग महिला की कहानी 'दुलाईवाली' की मौलिकता भी संदिग्ध मानी गई है। अतः 'ग्यारह वर्ष का समय' को प्रथम मौलिक कहानी कहा जा सकता है, लेकिन नई खोज से पता चला है कि माधव राव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901) हिंदी की प्रथम कहानी मानी जा सकती है। यह तकनीक और प्रतिपाद्य दोनों ही दृष्टियों से 'आधुनिक कहानी' से सादृश्य रखती है। इस कहानी का मुख्य बिंदु एक गरीब विधवा और स्वार्थी जमींदार की टकराहट है।

'सरस्वती' पत्रिका में गोस्वामी किशोरी लाल, भगवानदास, रामचंद्र शुक्ल, गिरिजादत्त बाजपेयी, बंग महिला, वृंदावन लाल वर्मा आदि की कहानियाँ प्रकाशित हुई। सन् 1909 में काशी में 'इंदु' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसमें जयशंकर प्रसाद की भावानात्मक कहानियाँ प्रकाशित हुई। उर्दू को छोड़कर प्रेमचंद भी हिंदी में कहानियाँ लिखने लगे, जो 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित होने लगीं। जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' (1911), चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की सुखमय जीवन', राधिका रमण सिंह की 'कानों में कंगना' (1913), विशंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' की 'रक्षा बंधन' (1913), चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' (1915), प्रेमचंद की 'पंचपरमेश्वर' (1916) उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। सन् 1912 से 1920 तक कहानी की दो नितांत भिन्न शैलियों का प्रणयन हुआ। प्रेमचंद जीवन की वास्तविक घटनाओं और समस्याओं को लेकर आदर्श की प्रतिष्ठा कर रहे थे। दूसरी ओर जयशंकर प्रसाद मनुष्य के भतरी भाव–द्वंद्व को काव्यमयी अलंकृत तत्सम भाषा में अभिव्यक्त कर रहे थे। हिंदी कहानी के परवर्ती विकास–काल में प्रेमचंद प्रवर्तित समाजोन्मुखी और प्रसाद प्रणीत व्यक्ति अंतर्मुखी धाराएँ प्रमुख रही हैं। इस काल का कहानी साहित्य

'प्रेमचंद–प्रसाद काल' कहलाया जाएगा। प्रेमचंद जी कहानी क्षेत्र में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परंपरा के प्रतिष्ठापक हैं और जयशंकर प्रसाद भावमूलक परंपरा के उद्‌गायक हैं। प्रेमचंद एक मानवतावादी एवं आदर्शवादी कहानीकार हैं, इसलिए उन्होंने सभी प्रकार की, घटनाप्रधान, चरित्रप्रधान, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं– इन कहानियों में माननीय मूल्यों का सशक्त समर्थन है। उनके गुण हैं– प्रेम, सहानुभूति, तपस्या, सेवा–भाव। ग्रामीण जीवन का सजीव व सशक्त चित्रण उनकी कहानियों में समाहित है। उनकी कहानियों में सामाजिक रूढ़ियों का विखंडन, जमींदार, महाजन, अधिकारी वर्ग से शोषित किसान की छटपटाहट, नारी की विविध संकटमय स्थितियाँ, विषमता की समस्याओं के यथार्थ को प्रेम, करुणा व त्याग के माध्यम से प्रकट किया है। 'पूरा की रात', 'शतरंज के खिलीड़ी' 'नमक का दरोगा', 'पंच परमेश्वर', 'मंत्र', 'बड़े घर की बेटी', 'कफन', 'सद्‌गति', 'बड़े भाई साहब', 'ईदगाह', 'बूढ़ी काकी' आदि उनकी अनेक कहानियाँ हिंदी साहित्य की कालजयी कहानियाँ हैं।

प्रेमचंद के समान ही कथा शिल्प और कथ्य लेकर लिखने वाले कहानीकारों में सुदर्शन ('हार की जीत', 'अलबम', 'आशीर्वाद', 'न्याय–मंत्री', 'कवि की स्त्री' आदि), विशंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' ('ताई', 'रक्षा बंधन', 'माता का हृदय', 'कृतज्ञता') वृंदावन लाल वर्मा ('शरणागत', 'कटा–फटा झंडा', 'कलाकार का दंड', 'शेरशाह का न्याय', 'तिरंगेवाली राख'), आचार्य चतुरसेन शास्त्री ('दुखवा मैं कासे कहूं', 'सफेद कौआ', 'सिंहगढ़ विजय', 'ककड़ी की कीमत', 'मास्टर साहब'), ज्वाला दत्त शर्मा ('विधवा', 'अनाथ बालिका'), गोविंद वल्लभ पंत ('वासवदत्ता'), सियारामशरण गुप्त ('बैल की बिक्री'), भगवती प्रसाद वाजपेयी (मिठाईवाला', 'निंदिया लागी', 'खाली बोतल', 'मैना'), उषा देवी मित्र ('मंदिर का देवता', 'नीम–चमेली') रामवृक्ष बेनीपुरी, जहूरबख्शआदि अनेक कहानीकारों की रचनाएँ इस समय बहुत प्रसिद्ध हुई। चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने मात्र तीन कहानियाँ लिखी हैं– 'उसने कहा था', 'सुखमय जीवन' व 'बुद्धू का कांटा'। इन्हीं तीन कहानियों के कारण वे इस युग के विशिष्ट कहानीकार हैं।

इस काल की दूसरी प्रमुख धारा जयशंकर प्रसाद द्वारा प्रवर्तित भाव–मूलक या स्वच्छंदता बोधक रही है। प्रसाद की कहानियों में स्वर्णिम अतीत के गौरव, भावुकता, कल्पना की ऊंची उड़ान तथा काव्यात्मक चित्रण की प्रधानता है। प्रसाद जी ने लगभग 70 कहानियाँ लिखी हैं, इनमें पात्रों के अंतर्द्वंद्व और काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। कहानियों के विषय प्रायः सामाजिक और ऐतिहासिक हैं। प्रसाद की प्रसिद्ध कहानियों में– 'ममता', 'बिसाती', 'मधुआ', 'आंधी', 'पुरस्कार', 'आकाशदीप', 'प्रतिशोध', 'दासी', 'छोटा जादूगर' हैं। प्रसाद जी के पाँच कहानी–संग्रह हैं।– 'प्रतिध्वनि', 'छाया', 'इंद्रजाल', 'आंधी' और आकाशदीप। जयशंकर प्रसाद के समान प्रवृत्ति को लेकर चलने वाले कहानीकारों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। जिसमें रायकृष्ण दास ('गहुला', प्रसन्नता की प्राप्ति', 'अंतःपुर का प्रारंभ', 'कला और कृत्रिमता') चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' (कहानी संग्रह–'नंदन निकुंज', 'वनमाला') विनोद शंकर व्यास ('कल्पनाओं का राजा', 'विधाता', 'अपराध') राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह ('कानों में कंगना') आदि प्रमुख कहानीकार हैं।

आधुनिक काल के विद्रोही प्रवृत्ति के प्रसिद्ध कहानीकार पांडेय बेचन शर्मा उग्र हैं। 'उग्र' जी ने अपनी कहानियों में रूढ़िवादिता, परंपरा व अंधविश्वासों के प्रति विरोध किया था। इस युग के अन्य कहानीकारों में वाचस्पति पाठक, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला बहुत महत्वपूर्ण हैं। महिला कहानीकारों में सुभद्रा कुमारी चौहान, कमला देवी चौधरी, उषा देवी मित्र और होमवती देवी आदि प्रमुख हैं। इस युग में प्रेमचंद ने सम्पूर्ण कहानी का दृष्टिकोण ही बदल दिया है। उन्होंने हिंदी कहानी को काल्पनिक लोक में वास्तविक धरातल पर खड़ा कर दिया था। प्रेमचंद का रचना काल 1911 से 1936 तक फैला हुआ था। इस अवधि में हिंदी कहानी वस्तु और रूप की दृष्टि से न केवल प्रौढ़ हुई है बल्कि उसमें एक समृद्ध विविधता भी आई है। कहानी का सर्वतोमुखी विकास हुआ। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की स्थापना हुई। 'आधुनिकता' का बीजारोपण प्रेमचंद–प्रसाद काल में हुआ था किंतु प्रेमचंदोत्तर काल में ही यह पल्लवित हुआ। 'आधुनिकता–बोध का मार्ग प्रशस्त करने वाले प्रेमचंद एवं प्रसाद युग–पुरुष थे।

प्रेमचंद के रचनाकाल की इस अवधि में कहानी लेखन आरंभ करने वाले और स्वत्रंता प्राप्ति तक के दशकों में सजग रहने वाले कहानीकारों में एक ओर हैं– यशपाल, अमृतलाल नागर, राहुल सांकृत्यायन, उपेंद्रनाथ 'अश्क', रांगेय राघव, भगवती चरण वर्मा, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, निर्गुण और अमृतराय आदि। दूसरी ओर प्रमुख हैं– सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', जैनेंद्र कुमार, इलाचंद जोशी, चंद्रकिरण सौनरेक्सा, होमवती देवी आदी।

स्वतंत्रता के बाद हिंदी कहानी में परिवर्तन हुए हैं। मानव के आधुनिक जीवन की संघर्षपूर्ण विविध समस्याओं का यथार्थ चित्रण कहानी में हुआ है। समस्याएँ नाना प्रकार की हैं– निम्न वर्गीय व्यक्ति के विकासार्थ यत्नों में अवरोध व संकट, उच्चवर्गीय जीवन में विद्यमान विसंगति, कुंठा, शहरी जीवन में व्यक्ति का अकेलापन, शिक्षितों की बेरोजगारी की समस्या, राजनीतिक भ्रष्टाचार, परिवारों का सहसा विघटन इत्यादि वे सभी कहानियों के वर्ण्य विषय बन गए हैं। शैली की विविधता, विषय क्षेत्र की व्याप्ति, शैली भेद, कथ्य की बहुरूपता के कारण कहानी साहित्य का स्वरूप विशाल हो गया है। कहानीकार जीवन के विघटित हुए मूल्यों के कारण पैदा हुए परिवेश का स्वतः ही शिकार बना हुआ है। संवेदना के स्तर पर मानवीय संबंधों का विश्लेषण कहानी का वर्ण्य विषय बन गया है। व्यक्ति और समाज के संबंध को पुनः स्थापित करने की चेष्टा कहानी की जागरूकता का संकेत है। कहानी युगबोध को संवेदना के स्तर पर व्यक्त कर रही है। कहानी का जीवन यथार्थ, परिवेश, अनुभव सब कुछ पुरानी कहानी की अपेक्षा अलग है। कहानी में स्थानीय आचार विचार, रीति–नीति, भाषा, विशिष्ट शब्दावली का समावेश, कलात्मक वैशिष्टय उत्पन्न कर रहा है। कहानियों में जीवन की आशा–निराशा, भग्न आकांक्षाएँ, विषमता, विशैलापन व कटुताएँ हैं। कहानीकार, अनुभूति की प्रामाणिकता के साथ जीवन की समग्रता को कहानी में रूपायित कर रहे हैं। कहानी का धरातल सहसा ही मानवीय हो जाता है। खंडित हो गई परंपरा पर आज आंतरिक एवं बाह्य संकटबोध के संदर्भ–सत्यों के आधार पर कहानी विकसित हो रही है। कहानी ने हमारी दार्शनिक धारणाएँ बदल दी हैं। 'प्रसाद–प्रेमचंद परंपरा' के पात्र आज की कहानी में व्यक्तित्वहीन दृष्टिगोचर होते हैं।

1950–60 के दशकों में पत्रिकाओं, परिचर्चाओं, संवादों आदि के माध्यम से हिंदी साहित्य की लगभग पूरी चेतना कहानी पर केंद्रित हो गयी। 'कहानी' और 'नई कहानियाँ' आदि अनेक कहानी पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई और नए कहानीकारों की एक पूरी की पूरी पीढ़ी रचनात्मक स्फूर्ति, समृद्ध वैविध्य और कलात्मक उत्कृष्टता के साथ दृश्य पर आई। हिंदी कहानी की एक विशिष्ट सृजनात्मक पहचान निर्मित हुई, जिसे 'नयी कहानी' के नाम से जाना जाता है। इस दौर के उल्लेखनीय कहानीकारों में एक ओर हैं– भीष्म साहनी, हरिशंकर परसाई, गजानन माधव मुक्तिबोध, वनमाली, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, अमरकांत, मार्कंडेय, फणीश्वर नाथ 'रेणु', मन्नू भंडारी, शेखर जोशी, शिवप्रसाद सिंह, शैलेश मटियानी, शानी और कृष्णा सोबती तो दूसरी ओर हैं – धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, रामकुमार, नरेश मेहता, कृष्ण बलदेव वैद्य, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, श्रीकांत वर्मा, रमेश बख्शी, उषा प्रियवंदा आदि।

इस अवधि से हानी आलोचना का भी स्वतंत्र विकास हुआ। कहानी की पाठ प्रक्रिया, आस्वाद और मूल्यांकन के नए प्रतिमान स्थापित हुए। कहानी आलोचकों की एक पीढ़ी सामने आयी जिसने हंदी कहानी साहित्य को एक स्वतंत्र विधा और गंभीर कलाकृति के रूप में व्याख्यायित और विश्लेषित किया।

कहानी की इस विकास यात्रा में जो प्रतिनिधि कहानियाँ पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं उनमें से क्रमशः 'उसने कहा था', 'कफन', 'आकाशदीप', 'पत्नी', 'वापसी', गैंग्रीन और लालपान की बेगम कहानियों का अध्ययन इस इकाई से सातवीं इकाई तक अध्येय हैं।

1.3 कहानी 'उसने कहा था' यथावतः

बड़े–बड़े शहरों के इक्के–गाड़ी वालों की जुबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगाएँ। जब बड़े–बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट संबंध स्थापित करते हैं,

कभी राह चलते पैदलों की आंखों के न रहने पर तरस खाते हैं, कभी उसके पैरों की अंगुलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध में चले जाते हैं, अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में हर एक लड़ढ़ी वाले के लिए ठहरा कर सब्र का समुद्र उमड़ा कर 'बचो खालसा जी', 'हटो माई जी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लाला जी', 'हटो बाछा' कहते हुए सफेद फेंटो, खच्चरों और बतखों, गन्ने खोमचे और भाड़े वालों के जंगल में रह लेते हैं, क्या मजाल कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढ़िया बार–बार चिनौती देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी बचनावली के ये नमूने हैं– हट जा जीणे जोगिए, हट जा करमा वालिए, हट जा पुत्ता प्यारिए, हट जा लम्बी उमर वालिए। समष्टि में इसका अर्थ है तू जीने योग्य है, तू भाग्यों वाली है, पुत्रों को प्यारी है लंबी उमर तेरे सामने है तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है? बच जा।

ऐसे बम्बूकार्ट वालों की बीच में होकर एक लड़का और लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और उसके ढ़ीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिक्ख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दुकानदार एक परदेशी से गुंथ रहा था, जो सेर भर पीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

'तेर घर कहाँ है?'

'मगरे में ! और तेरा

'मांझे में; – यहाँ कहाँ रहती है?'

'अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु बाजार में है।''

इतने में दुकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ–साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा– तेरी कुड़माई हो गई? इस पर लड़की कुछ आंखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुंह देखता रह गया।

दूसरे–तीसरे दिन सब्जी वाले के यहाँ या दूध वाले के यहाँ, अकस्मात् दोनों मिल जाते हैं। महीने भर यही हाल रहा। दो–तीन बार लड़के ने फिर पूछा–'तेरी कुड़माई हो गई? और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हंसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की संभावना के विरूद्ध बोली– हां, हो गई।

'कब'

'कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू'।

लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ी वाले की दिन–भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले ठेले में दूध उंड़ेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई, तब कहीं घर पहुंचा।

राम–राम, यह भी कोई लड़ाई है? दिन–रात खन्दकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गई लुधियाने से दस गुना जाड़ा, मेह और बरफ। ऊपर से पिंडलियां तक कीच में धंसे हुए हैं। गनीमत कहीं दिखती नहीं, घण्टे दो घण्टे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ–सौ गज धरती उठल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई नहीं। नगरकोट का जलजला सुना था, वहाँ दिन में पच्चीस जलजले होते हैं। जो कहीं खन्दक के

बाहर साफा या कुहनी निकल गई, तो चटाक–से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लिपटे हुए हैं या पास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।

'लहनासिंह, तीन दिन और हैं। चार तो खन्दक में बिता दिए। परसों रिलीफ आ जाएगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर भरकर सो रहेंगे। उस फिरंगी मेम के बाग में मखमल की–सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।'

'चार दिन तक पलक नहीं झंपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाए। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के , कलों के घोड़े–संगीन देखते ही मुंह फाड़ देते हैं और पटकने लगते हैं, यों अंधेरे में तीस–तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था–चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था।

पीछे जनरल साहब ने हट जाने का कमान दिया, नही ंतो –

'नहीं' तो सीधे बर्लिन पहुंच जाते। क्यों? सूबेदार हजारासिंह ने मुस्कराकर कहा– 'लड़ाई के मामले जमादा या नायब के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा?''

''सूबेदार जी, सह है।'' लहनासिंह बोला– 'पर करें क्या? हड्डियों में तो जाड़ा धंस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाए तो गरमी आ जाए।''

'उदमी उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। लहनासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदल दे।'' यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे। वजीरासिंह पल्टन का विदूषक था बाल्टी में गन्दा पानी भरकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला– 'मैं पाधा बन गया हूँ।' करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण! इस पर सब खिखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा– 'अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।'

'हां, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस गुना यहाँ मांग लूंगा और फलों के बूटे लगाऊंगा।'

'लाड़ी होरां को भी यहाँ बुला लोगे! या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम।

'चुप कर। यहां वालों को शरम नहीं।'

'देस–देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तमाकू नहीं पीते। वह सिगरेट पीने में हट करती है, ओठों में लगाना चाहती है और मैं पीछे हटता हूं तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुलक के लिए लड़ेगा नहीं।'

'अच्छा, अब बोधासिंह कैसा है?'

'अच्छा है।'

'जैसे मैं जानता ही न होऊं। रात भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में

पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और 'निमोनियाँ' से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।'

वजीरासिंह ने त्योरी चढ़ाकर कहा– क्या मरने की बात लगाई है? मरें जर्मन और तुरक!

'हां भाइयो, कुछ गाओ।'

कौन जानता था कि दाढ़ियों वाले दरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गाएंगे, पर सारी खन्दक गीत से गूंज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गए, मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते हों।

दो पहर रात बीत गई है, अंधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिस्कुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और दो बरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आंख खाई के मुंह पर और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

'क्यों बोधा भाई, क्या है?'

'पानी पिला दो!'

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुंह से लगाकर पूछा–'कहो कैसे हो!'

पानी पीकर बोधा बोला– 'कंपकंपी छूट रही है। रोम–राम से तार छौड़ रहे हैं। दांत बज रहे हैं।

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।' 'और तुम?'

'मेरे पास सिगड़ी है, मुझे गरमी लगती है, पसीना आ रहा है।'

'ना मैं नहीं पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए–

'हा, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलाएत से मेमें बुन–बुनकर भेज रही है। गुरु उनका भला करें।' यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो?'

'और नहीं झूठ?' यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता–भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुंह से आवाज आई–'सूबेदार हजारासिंह।'

'कौन? लपटन साहब? हुकुम हुजूर', कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

'देखो इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें 50 से ज्यादा जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे–नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन–चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ हैं, वहां पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले, उनसे मिलो। खन्दक छीनकर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेंगे।'

'जो हुक्म।'

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उंगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझकर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा–बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुंह फेरकर खड़े हो गए और जब से सिगरेट निकालकर सुलगाने

लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ उठाकर कहा–

'लो, तुम भी पियो।'

आंख मारते–मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुंह का भाव छिपाकर बोला–'लाओ, साहब।' हाथ आगे करते ही सिगड़ी के उजाले में साहब का मुंह देखा, बाल देखे, तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गए और उनकी जगह कैदियों के से कटे हुए बाल कहां से आ गए?'

शायद साहब पिए हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है। लहनासिंह ने जांचना चाहा। लपटन साहब पांच वर्ष से उसकी रेजीमेंट में थे।

'क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जाएंगे।'

'लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, यह देश पसन्द नहीं?'

'नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहां कहाँ?' याद है, परसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी जिले में शिकर करने गए थे– हां–हां वहीं जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था? बेशक पाजी कहीं का–सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में से निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था? आपने कहा था कि रेजीमेंट की मेस में लगाएंगे।' 'हां, पर मैंने वह विलाएत भेज दिया।' ऐसे बड़े–बड़े सींग!' दो–दो फुट के तो होंगे।'

'हां, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?'

'पीता हूं साहब, दियासलाई ले आता हूं।' कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था और उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अंधेरे में किसी सोने वाले से वह टकराया।

'कौन? वजीरासिंह?'

'हां, क्यों लहना? क्या कयामत आ गई? जरा तो आंख लगने दी होती?'

'होश में आओ! क्यामत आई और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है।'

'क्या?'

लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने उसका मुंह नहीं देखा। मैंने देखा है और बातें की हैं, सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।'

'तो अब?'

'अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो पलटन के पैरों के निशान देखते–देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आएं। खन्दक की बात झूठ है। चले आओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ, पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।'

'हुक्म तो यह है कि यहीं.....

'ऐसी–तैसी हुक्म की! मेरा हुक्म–जमादार लहनासिंह का, जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर है, उसका हुक्म है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ।'

'पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।'

आठ नहीं दस लाख। एक–एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपट गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह–जगह पर खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार–सा बांध दिया। तारे के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ एक दियासलाई गुत्थी पर रखने.....

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक को उठाकर साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा और साहब 'आंख मीन गौदृ (जर्मन भाषा में– हे मेरे भगवान) कहते हुए चित्त हो गए। लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन–चार लिफाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्च्छा हटी। लहनासिंह हंसकर बोला – 'क्यों लपटन साहब? मिजाज कैसा है?' आज मैंने बहुत–सी बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नीलगाएं होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो हो, ऐसा साफ उूर्द कहाँ से सीख के आए। हमारे लपटन साहब तो बिना 'डैम' के पाँच लफ्ज भी नहीं बोला करते।

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए दोनों हाथ जेब में डाले।

लहनासिंह कहता गया –'चालाक तो बड़े हो, पर मांझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आंखें चाहिए। तीन महीने हुए, एक तुर्की मौलवी मेरे गांव में आया था। औरतों को बच्चे होने की ताबीज बांटता और बच्चों की दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनी वाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़–पढ़कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं।

गौर को नहीं मारते। हिंदुस्तान में आ जाएंगे, तो गौ–हत्या बन्द कर देंगे। मण्डी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपए निकाल लो, सरकार का राज्य जाने वाला है। डाकबाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूंड दी थी और गांव के बाहर निकालकर कहा था जो मेरे साथ में अब पैर रक्खा तो.....।

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जांघ में गोली लगी। इधर लहना की हेनरी मार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल क्रिया कर दी। धमाका सुनकर सब दौड़ आए।

बोधा चिल्लाया– 'क्या है?

लहनासिंह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया, औरों से सब हाल कर दिया, बन्दूकें लेकर सब तैयार हो गए। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बांधी। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका, दूसरे को रोका, पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह ताक–ताककर मार रहा था– वह खड़ा था और लेटे हुए थे) और वे सत्तर अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुस आते थे। थोड़े से मिनटों में वे.....

अचानक आवाज आई, 'वाह गुरुजी दी फतह! वह गुरुजी दा खालसा! और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी ओर– 'अकाली सिक्खां दी फौज आई। वाह गुरुजी दी फतह! व गुरुजी दा खालसा! थ्सरि अकाल पुरुष!!! और लड़ाई खत्म हो गई। तिरसत जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गए। सूबेदार के कन्धे में से गोली आ–पार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट दिया। किसी को खबर न हुई कि लहना के दूसरा घाव भारी लगा है।

लड़ाई के समय चांद निकल आया था। ऐसा चांद, जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी, जैसे कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन–मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा–दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार, लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर, उसकी तुरतबुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मर जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट डॉक्टर और बीमार होने की दो गाड़ियाँ चली, जो कोई डेढ़ घंटे के अंदर–अंदर वहाँ आ पहुंची। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते–होते पहुंच जाएंगे, इसलिए मामूली पट्टी बांधकर एक गाड़ी में घायल लिटाए गए और दूसरी में लाशें रक्खी गई। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँच में पट्टी बंधवानी चाही, पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सबेरे देखा जाएगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं। यह देख लहना ने कहा– 'तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है, इस गाड़ी में चले जाओ'।

'और तुम?'

'मेरे लिए वहाँ पहुंचकर गाड़ी भेज देना और जर्मन मुर्दों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ। वजीरासिंह मेरे पास है ही।

'अच्छा पर–''

बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला, आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदार जी हीरा को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था, वह मैंने कर दिया।''

गाड़ियाँ चल पड़ी थी। सूबेदार ने चलते–चलते लहना का हाथ पकड़कर कहा– तैंने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेरादनी से तुम ही कह देना। उसने क्या कहा था?

'अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा वह लिख देना और कह भी देना।'

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया। 'वजीरा पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।'

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति साफ हो जाती है। जन्म–भर की घटनाएँ एक–एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुन्ध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्जीवाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। ज बवह पूछता कि तेरी कुड़माई हो गई तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा,

'हां कल हो गई। देखते नहीं, रेशम के फूलों वाला शालू?' सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

'वजीरासिंह पानी पिला दे।'

पच्चीस वर्ष बीत गए। अब लहनासिंह नं. 77 राइफल्स में जमांदार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्या नही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकद्दमें की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजीमेंट अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है। फौरन चले जाओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं, लौटते हुए हमारे घर होते जाना? साथ चलेंगे। सूबेदार का गांव रास्ते में पड़ता था और सुबेदार उसे बहुत चाहता था, लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुंचा।

जब चलने लगा, तब सूबेदार बेड़े में से निकलकर आया। बोला 'लहना, सूबेदारनी तुझको जानती है। बुलाती है, जा मिल आ। लहनासिंह भीतर पहुँचा? सूबेदारनी मुझे जानती हैं? कब से, रेजीमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं।

दरवाजे पर जाकर मत्था टेकना' कहा असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

'मुझे पहचाना'?

'नहीं'

'तेरी कुड़माई हो गई। धत्... कल हो गई... देखते नहीं, रेशमी बूटों वाला सालू....अमृतसर में....'

'भावों की टकराहट से मूर्च्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

'वजीरा पानी पिला....उसने कहा था।'

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है– 'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुर का खिताब दिया है। लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की घघरिया पलटन क्यों न बना दी, जो मैं भी सुबेदार जी के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भरती हुए उसके एक ही वर्ष हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।'सूबेदारनी रोने लगी, 'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग। तुम्हें याद है, एक दिन तांगेवाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़ों की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना, यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आंचल पसारती हूँ।'

रोती–रोती सुबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आंसू पोंछता हुआ बाहर आया।

'वजीरासिंह पानी पिला.....उसने कहा था।'

लहना का सिर अपनी गोदी पर रक्खे वजीरासिंह बैठा है। जब मांगता है पानी पिला देता है। आध घंटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला.....

'कौन? कीस्तसिंह?

वजीरा ने कुछ समझकर कहा, 'हाँ।'

'भइया, मुझे कुछ ऊंचा कर ले। अपने पट्टे पर मेरा सिर रख ले।

वजीरा ने वैसा ही किया।

'हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अदके हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा–भतीजा यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने मैंने इसे लगाया था।'

वजीरासिंह के आंसू टप–टप टपक रहे थे।

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा –

फ्रांस और बेल्जियम– 68वीं सूची –मैदान में घावों से मरा– नं. 77 सिख राइफल्स जमांदार लहनासिंह।

1.4 व्याख्या

बड़े–बड़े शहरों के .....राह खेते हैं।

संदर्भ – प्रस्तुत पंक्तियाँ चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी उसने कहा था' से ली गई है।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियों में गुलेरी जी भारत के बड़े–बड़े शहरों के इक्के, तांगे वालों की और अमृतसर के तांगे वालों की प्रकृति में अंतर बताते हुए अमृतसर के तांगेवालों की प्रशंसा कर रहे हैं।

व्याख्या – गुलेरी जी कहते हैं कि ऐसे लोग जो बड़े–बड़े महानगरों के इक्के, गाड़ी वालों से त्रस्त हो चुके हैं, गालियाँ सुन चुके हैं और जिनके मस्तिष्क में इक्के वालों की बुरी छवि बन गई है, वे अमृतसर अवश्य आएं और आकर यहाँ के इक्कों में बैठ कर घूमें तो उनकी धारणा बदल जाएगी कि सभी इक्केवाले बुरे होते हैं। बड़े शहरों में इक्के वाले बुरी तरह से, ऊबड़–खाबड़ रास्तों को देखे बिना, सवारियों की तकलीफ की चिंता किए बिना तीव्र गति से इक्का चलाते हैं तथा आस–पास से गुजरने वालों, अचानक सामने आ जाने वालों को ऐसी गालियाँ देते हैं जैसे– जबन के हाथों से कोड़े मार रहे हों, पीछे से इक्के वालों की गाली सुनकर उसकी चोट से लोगों की पीठ छिल जाती है। वे कभी गुजरने वालों को अंधे की उपाधि देते हैं, कभी लोगों की उंगलियों को कुचलते चले जाते हैं और कुछ कहने पर ऐसा दिखावा करते हैं जैसे संसार में सबसे दुखी, निराश, खिन्न और सताए हुए प्राणी वे ही हैं। गुलेरी जी कहते हैं ऐसे इक्के वालों से सताए हुए घायल लोगों का अमृतसर आकर यहाँ के इक्के वालों का व्यवहार देखना चाहिए। ये बम्बूकार्ट वाले सदा 'जी' लगाकर बोलते हैं, इनकी मीठी बोली व्यंग्यात्मक होती है, लेकिन मलहम का काम करती है। 'मीठी बोली' शब्दों में कहानीकार का व्यंग्य बहुत गहरा है। यह मिठाई मिर्चों से भरी है। ये सामने किसी व्यक्ति, गाड़ी या माल–भार ढ़ोने वाले के आ जाने पर ठहर जाते हैं और बचो खालसा जी, हटो, भाई जी, ठहरना भाई, जाने दो लाला ली, हटो बाछा आदि बोलकर लोगों का दिल लूट लेते हैं और व्यक्तियों खोमचों, खच्चरों, बतखों की भीड़ में भी अपने लिए रास्ता बना लेते हैं। गुलेरी जी ने यहाँ 'मीठी बोली' का प्रयोग करके असली कड़वाहट के परदे को अपनी लेखनी से उघाड़कर रख दिया है।

एक दिन जब फिर लड़के ने.....कहीं घर पहुंचा।

संदर्भ – उपरोक्त

प्रसंग – बारह वर्ष का लड़का यानि लहनासिंह और आठ वर्ष की लड़की अर्थात् सूबेदारनी के बचपन की उस घटना का चित्रण है जब ये अमृतसर में अपने–अपने मामा के घर आए हुए थे। महीने भर में उनकी कई मुलाकातों अलग–अलग दुकानों पर होती रहीं। लड़के ने बिगड़े हुए घोड़े से लड़की की जान बचाई तो दोनों में आकर्षण और निकटता बढ़ी। लड़के ने बार–बार लड़की को छेड़ते हुए पूछा– 'तेरी कुड़माई हो गई।' और लड़की हर बार 'धत्' कहकर भाग जाती लेकिन एक बार लड़के के पूछने पर लड़की ने कहा– 'हाँ, हो गई देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा सालू।' बस इतना कहकर लड़की तो लज्जाकर भाग गई लेकिन लड़के की जो स्थिति हुई उसी का चित्रण गुलेरी जी ने यहाँ किया है।

व्याख्या– अमृतसर में मामा के यहां आई हुई और बार–बार दुकानों पर मिल जाने वाली उस लड़की से लड़के यानि लहनासिंह ने हमेशा की तरह छेड़ते हुए पूछा कि –'तेरी कुड़माई हो गई?' उसे लगा लड़की हमेशा की तरह धत् कहकर जलाकर भाग जाएगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। लड़की ने कहा– हाँ हो गई।' लड़की के जाने के बाद लड़का भी घर जाने के लिए मुड़ा लेकिन अ बवह वही लड़का नहीं था जो कुछ देर पहले था। लड़की की सगाई की बात सुनकर उसे दुःख हुआ। उसे अपने–आप पर क्रोध आया कि उसके होते, उसके सामने से उसकी पसंद की यह लड़की पराई हो गई और वह कुछ नहीं कर पाया। उसे शायद इस बात पर भी धक्का लगा हो कि उसे छोड़कर किसी दूसरे से सगाई करके भी यह लड़की इतनी प्रसन्न है अर्थात् उसका लगाव एकतरफा था लड़की को उसकी फ्रिक नहीं है। लड़का दुःख और क्रोध में अपने होश खो बैठता है, विवेक शून्य होकर अपनी प्रकृति के विपरीत आचरण करता है। रास्ते में चलते हुए असभ्यता और क्रूरता का परिचय देता है जैसे वह संसार से बदला ले रहा हो और कह रहा हो कि 'जब मैं सभ्य था तो मुझे क्या मिला?' मेरी प्रिय से मेरा बिछोह हो गया। इसलिए अब मैं उद्दण्ड बनूंगा।' वह राह चलते लड़के को नाली में फेंक देता है, एक छाबड़ी वाले की दिन भर की कमाई बिखेर देता है। कुत्ते को पत्थर मारता है। गोभीवाले के ठेले में दूध उड़ेल देता है और सामने से नहाकर आती हुई वैष्णवी जो सबके स्पर्श से स्वयं को बचाकर चल रही थी उससे जानबूझ कर टकरा जाता है ताकि वह अपवित्र हो जाए। वह वैष्णवी उसे अंधा कहती है तो सुनकर चुपचाप घर पहुंच जाता है। गुलेरी जी दर्शाना चाहते हैं कि बारह वर्ष का बच्चा प्रेम के स्वरूप को तो नहीं जानता, लेकिन अपनी प्रिय चीज के खो जाने पर किस तरह दुःखी और क्रोधित होकर विपरीत आचरण का प्रदर्शन करता है। लहनासिंह के मन में दबे प्रेम के दुख के इस बीज पर जब सूबेदारनी की प्रार्थना की एक बूंद पड़ती है तब इससे कर्त्तव्यपरायणता के जिस विशाल वट–वृक्ष का जन्म होता है वह आज भी साहत्य इस मर्मज्ञों को छाया दे रहा है।

बिना फेरे घोड़ा.....नसीब न हो।

संदर्भ – उपरोक्त

प्रसंग – लहनासिंह युद्ध के मैदान में चार दिन से खंदक के अंदर बैठे–बैठे शत्रुओं के वार की प्रतीक्षा करता हुआ उकता गया है उसे लगता है कि या तो इधर से उसके अधिकारी हुक्म दे ंतो वह खंदक से निकलकर शत्रुओं से भिड़ जाए या शत्रु ही उधर से हमला बोल दे ंतो वह लड़ाई कर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे। इस तरह बैठे–बैठे तो पैर जंग खा जाएंगे। इसी तारतम्य में वह उपरोक्त पंक्ति कहता है –

व्याख्या – लहनासिंह कहता है कि घोड़े को यदि अपने अनुसार न चलाओ, रोज उस पर हाथ न फेरो, उसे आदेश–निर्देश न दो और खुला स्वतंत्र छोड़ दो तो वह बिगड़ जाता है, मालिक को भूलकर सीधा–सरपट मनमाने ढंग से दौड़ता है। इसी तरह सिपाही को यदि निष्क्रिय छोड़ दिया जाए, उसे युद्ध करने का अवसर न मिले तो वह आलसी, अकर्मय और बीमार अनुभव करता है उसके हाथ–पैरों से स्फूर्ति और जीवंतता गायब हो जाती है। वे चार

दिन से बिना लड़े चुपचाप खंदक में छिपे बैठे हैं। शत्रुओं के हमले की प्रतीक्षा कर रहे हैं। न अधिकारी उन्हें उन पर आक्रमण करने का हुक्म दे रहे हैं, न शत्रु उन पर आक्रमण कर रहे हैं, इसलिए बैठे–बैठे निष्क्रियता का अनुभव हो रहा है। बेचैनी हो रही है। वह चाहता है कि यदि अधिकारी हुक्म दे ंतो वह अकेला ही अपनी संगीन से सात जर्मनों को मार कर लौटे। वह अपने साथियों को अपनी बात का विश्वास दिलाने के लिए कहता है कि सच कह रहा हूँ कि अकेला सात जरमनों को मार कर जीवित लौट सकता हूँ यदि ऐसा न कर पाऊं तो मुझे कभी दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। अर्थात् यदि मैं अकेले सात जवानों को न मार सकूं तो मुझे मृत्यु मिले और कभी भी मैं दरबार साहब के दर्शन न कर पाऊं। उसके इस कथन में सच्ची शूरता के दर्शन होते हैं। गद्य में वीर रस का यह सुंदर संचार हुआ है। यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार स्पष्ट है।

मैं पाधा बन.....तर्पण।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – युद्ध स्थल पर वजीरा सिंह खंदकों में भरा गंदा पानी बाल्टी से बाहर निकालकर फेंकते समय यह व्यंग्योक्ति कहता है।

व्याख्या – भारतीय परंपरा के अनुसार पुत्र और सगे संबंधी अपने मृत पितरों को शुद्ध पानी, काले तिल आदि चढ़ाकर तर्पण करते हैं ताकि वे पितर संतुष्ट होकर इस माया–मोह के संसार से मुक्त हो जाएं। यह तर्पण की क्रिया पंडित, धर्माधिकारी आदि कराते हैं। वजीरासिंह अपने शत्रु जर्मनों पर व्यंग्य करता हुआ उन्हें मृतकों की श्रेणी में रखता है और कहता है कि पाधा (यजमान) बनकर खड़ा हूँ यानि तर्पण करने के लए यह खंदकों का गंदा पानी बाल्टी से चढ़ा रहा हूँ तुम लोग मंत्रोच्चार करके जर्मनों का तर्पण करो और उनके बादशाह का भी ताकि ये मृतप्राय शत्रु संपूर्ण रूप से यहाँ से चले जाएं और हम शत्रुओं पर विजयी हों।

रातभर तुम अपने.....मुरब्बे नहीं मिला करते।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – युद्ध स्थल में लहनासिंह बिमार बोधा की दिन–रात देख रेख करता है। उसे अपना स्वेटर, कंबल उढ़ाकर स्वयं ठंड में पड़ा रहा है ताकि सूबेदारनी को दिया वचन निभा सके। उसके इस आचरण को देखकर वजीरासिंह ने उपरोक्त पंक्त्यिाँ कही।

व्याख्या – लहनासिंह ने कहा कि बोधासिंह अब अच्छा है उसका स्वास्थ्य पहले से ठीक है। इस पर वजीरासिंह ने आत्मीयता के साथ लहना सिंह से कहा कि अच्छा क्यों नहीं होगा तुम अपना कंबल उसे ओढ़ा देते हो और स्वयं सिगड़ी (छोटी अंगीठी) के पास बैठकर रात काटते हो। उसके स्थान पर स्वयं पहरा देते हो ताकि वह आराम कर ले। उसे सूखे लकड़ी के तख्ते पर सुला देते हो और स्वयं कीचड़ में पड़े रहते हो। देखना कहीं इतनी, सेवा करते–करते तुम बीमार मत पड़ जाना। यहाँ ठंड बहुत है। हम लड़ाई के लिए आए हैं। शत्रुओं से लड़कर मरने वाले को या जीतने वाले को इनाम में जमीन, स्मृद्धि, यश मिलता है। बीमार पड़कर, ठंड में निमोनिया से मरने वाले सैनिकों को इनाम या पुरस्कार नहीं मिलता। वजीरासिंह भावना के वशीभूत होकर कर रहा है, परंतु इस प्रसंग की गहराई पाठक को भी आगे चलकर लहनासिंह की मरणकाल की पुरानी स्मृतियों के अध्ययन से प्राप्त होती है। गुलेरी जी का यह शिल्प–कौशल इस कहानी को बार–बार पढ़ने के लिए बाध्य कर देता है।

कयामत आई.....आई है।

संदर्भ –पूर्ववत।

प्रसंग – युद्ध क्षेत्र में रात के गहन अंधकार में एक जर्मन सैनिक लैफ्टिनेंट साहब का वेश धारण कर कमपटपूर्ण

हमला करने आता है तब लहनासिंह वजीरासिंह को नींद से जगाते हुए उपरोक्त पंक्ति कहता है।

व्याख्या – युद्ध क्षेत्र में बोधा बीमार है। रात में जर्मन शत्रु लैफ्टिनेंट का रूप धारण कर लहनासिंह के कैंप में घुस आता है और उन्हें उनका लैफ्टिनेंट बनकर आदेश देता है कि यहाँ केवल दस लोग रहें बाकी लोग जाकर हमला करें और जर्मनों को मारकर उन की खंदकों को लूट लें। सूबेदार सभी को लेकर चला जाता है। कैंप में लहनासिंह अपने कुछ साथियों के साथ रूका रहता है। लहनासिंह बीमार बोधा की देख–रेख भी करता है और लैफ्टिनेंट से बातें करते हुए उसके प्रकृति के विपरीत आचरण करने पर यह जान लेता है कि उनके असली लैफ्टिनेंट को मारकर यह गिरफ्तार करके उनका रूप धारण करके यह शत्रु घुस आया है। अतः वह सोते हुए वजीरासिंह को उठाकर कहता है कि लैफ्टिनेंट का वेश धारण करके यह कमयात यानि प्रलय आ गई है, उठो और सतर्कता से इस कपट युद्ध में डट जाओ। परिस्थितियों की भयावहता को एक ही शब्द 'कयाम' द्वारा लेखक ने व्यक्त कर दिया है। इससे कहानी की शिल्प–कौशल का परिचय प्राप्त हो रहा है।

लड़ाई के समय .....कहलाती।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – युद्ध की रात्रि में लेखक ने प्रकृति का चित्रण किया है।

व्याख्या – युद्ध समाप्त हो गया। जर्मनी फौजें हार गई। उनके कुछ सैनिक मृत्यु को प्राप्त हुए, कुछ गिरफ्तार हुए। लड़ाई के समाप्त होने के बाद लहनासिंह अपने साथियों के साथ बात कह–सुन रहा था। उस समय अंधकार को दूर करने के लिए आसमान पर चंद्रमा उदित हो गया था, लेकिन वह वर्षा ऋतु धुंध और बादलों की भाग–दौड़ के पीछे पीला और धुंधला दिखाई दे रहा था। जैसे पीलिया नामक रोग से ग्रस्त हो। संस्कृत कवि ऐसे चांद को 'क्षयी' कहते हैं अर्थात् जो क्षयरोग से ग्रस्त हैं और जिसकी जीवन आभा कमजोर पड़ गई हो। उस समय हवा इतनी ठंडी थी कि उसके ठंडे झोंकों से दाँत किटकिटा रहे थे। दांतों के बनजे से जो संगीतात्मकता उत्पन्न हो रही थी उसे बाणभट्ट ने अपनी शैली में कहा है कि यह हवा ऐसी आचार्य है जो दांत रूपी वीणा को बजना सिखाती है। अतः 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती है। यह प्राकृतिक चित्रण युद्ध की विकरालता में भी कोमलता की और हास्य की सृष्टि करता है।

मृत्यु के कुछ.....हट जाती है।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – युद्ध क्षेत्र में मृत्यु के निकट पहुंचा लहनासिंह बचपन से बड़े होने तक के प्रसंगों को याद कर रहा है। बीता समय किसी फिल्म की तरह साफ–साफ उसके दिलोदिमाग पर उभर रहा है।

व्याख्या – लहनासिंह मृत्यु शैय्या पर है। स्मृतियाँ उसके मस्तिष्क में फिल्म की रील की तरह चल रही हैं। वह बड़बड़ाता है। वह वर्तमान को भूल चुका है और अतीत में विचरण करता हुआ अपना घर, भाई–भतीजा, अपना लगाया आम का पेड़ा, मामा के घर जाना, अमृतसर शहर, आठ वर्ष की वह लड़की, उसका बिछुड़ना सब कुछ साफ–साथ देख रहा है। उसकी अवस्था पर टिप्पणी करते हुए लेखक गुलेरी जी कहते हैं– 'मृत्यु के निकट पहुंचने पर स्मृतियाँ साफ हो जाती हैं। मरते समय मनुष्य उन सभी घटनाओं को स्पष्ट देख पाता है जो उसके जीवन में घटी, जिन घटनाओं से वह जुड़ा रहा। सारे बीते हुए क्षणों के दृश्य साफ दिखाई देते हैं। समय जो धुंध की तरह छा गया था और व्यक्ति धुंध की ओट में पड़े अपने अतीत से भागकर आगे बढ़ता गया था, इस अंतिम समय में वह धुंध हट जाती है। मनुष्य की देह निष्क्रिय और स्थिर पड़ी रहती है, लेकिन अतीत उसके सामने स्पष्ट खड़ा रहता है। कहानी में 'फ्लैश बैक' का प्रयोग करने के लिए कहानीकार ने इस अकाट्य सत्य का आश्रय लेकर उन

घटनाओं को पाठक के सामने एक रहस्य की तरह उद्‌घाटित कर दिया है जिनसे वह पहले पूरी तरह अपरिचित था। कथा के सारे टूटे तार अचानक जुड़ गए और करुण रस की वीणा झंकृत हो गई।

1.5 चरित्र–चित्रण

1.5.1 लहना सिंह

लहनासिंह श्रेष्ठ मनुष्य है और श्रेष्ठ प्रेमी भी। वह बचपन से ही पुरुषार्थी और संवेदनशील है। इस बात का प्रमाण है कि वह बारह वर्ष की आयु में घोड़े से उस लड़की की जान बचाता है और स्वयं घोड़े से भिड़ जाता है। उस आयु में ही उसके भतर संवदेनशील हृदय होने का प्रमाण मिलता है क्योंकि वह उस लड़की से प्रेम करने लगता है और उसकी सगाई होने का समाचार पाकर अपना क्रोध इधर–उधर तो निकाल देता है लेकिन मर्यादावश और सात्विक प्रेमभाव के कारण उस लड़की के साथ कोई अभद्र व्यवहार नहीं करता।

लहनासिंह कर्त्तव्यनिष्ठ है। ईमानदार है। उसके पास तीव्र और विलक्षण बुद्धि है जिसके कारण उसने रूप बदलकर रात के अंधेरे में आए हुए जर्मन सैनिक को पहचान लिया और विपरीत परिस्थितियों में कठिन परिस्थितियों में खंदकों, कीचड़, मच्छर, ठंड आदि का सामना करते हुए अपनी सेना को जीत का उपहार दिया।

लहनासिंह के भीतर त्याग की भावना है। वह सच्चा पुरुष है। वह सात्विक प्रेम के उत्कृष्ट स्वरूप को प्रदर्शित करता है। उसके प्रेम में गहनता, सघनता, गरिमा और मर्यादा की पराकाष्ठा है। सूबेदार और बोधा सिंह अंत तक नहीं जान पाते कि लहनासिंह और सूबेदारनी का परिचय कैसे हुआ और सूबेदारनी ने लहनासिंह से क्या था।

लहनासिंह की भाषा व्यंग्य मिश्रित है। वह हंसी–मजाक करके कठिन परिस्थितियों को सहज बनाना जानता है। जर्मन कमांडर पर छोड़े गए कटाक्ष वाक्य इसका प्रमाण है। वह श्रेष्ठ योद्धा है। युद्ध के सभी पैतरों से परिचित है। वह सामान्य मनुष्य है, इसीलिए उससे एक चूक भी हुई कि उसने जर्मन कमांडर की पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली। लहनासिंह देह और हृदय की पीड़ा सहन करना जानता है। वह सहनशील है। इंद्रिय–संयम, त्याग, कर्त्तव्य–परायणता , देश–भक्ति आदि से संयुक्त लहनासिंह एक श्रेष्ठ नायक है।

1.5.2 सूबेदारनी

सूबेदारनी आम भारतीय स्त्री की तरह अपने पति और पुत्र के जीवन की सुरक्षा के लिए चिंतित रहने वाली स्त्री है। वह अपनी गृहस्थी को सुखी, समृद्ध बनाने का निरंतर प्रयास करती रहने वाली स्त्री है। वह सच्ची अर्थात् सच बोलने वाली स्त्री है जो बेझिझक अपने पति से कह देती है कि वह लहनासिंह को पहचानती है और उससे कुछ कहना चाहती है। लहनासिंह को बचपन की घटनाएँ याद दिलाकर वह दो विशेषताओं को उजागर करती है। एक तो यह कि उसकी स्मरणशक्ति तीव्र और श्रेष्ठ है उसे सब कुछ याद है जो उस आठ वर्ष की लड़की और बारह वर्ष के लड़के के बीच वार्तालाप हुआ। दूसरा यह कि उस छोटी सी आयु में भी लड़के के भीतर उसके लिए प्रेम और आकर्षण का भाव है यह उसने जान लिया था इसलिए तेरी कुड़माई हो गई?' इस प्रश्न पर 'धत्' कहकर भागते हुए उसने लड़के की खुशी को भांप लिया था। जिस दिन 'कुड़माई हो गई' कहकर जा रही थी, तब लड़के के चेहरे पर छाए विषाद और विवशता से उत्पन्न क्रोध को भी वह जान गई थी। तभी तो इतने वर्षों तक वह स्मृति को संजो कर रख सकी।

भारतीय युवतियाँ माता–पिता के निर्देशन पर जहाँ कहें वहीं विवाह कर लेती थीं, उस परंपरा को यहाँ गुलेरी जी ने दर्शाया है। सूबेदारनी भी उस आयु में अपने माता–पिता के कहे अनुसार विवाह के बंधन में बंध जाती है। प्रेम को समझने का अवसर और सामर्थ्य उसके पास नहीं था, लेकिन उसे विश्वास था कि जिसने अपनी जान

जोखिम में डालकर उसकी जान बचाई है वह उससे अब भी प्रेम करता होगा तथा उसके पति–पुत्र की रक्षा भी अवश्य करेगा। यहाँ सूबेदारनी का व्यवहार एक गृहस्थ स्त्री का सा प्रतीत होता है जो लहनासिंह से 'अपना ध्यान रखना' न कहकर अपने पति–पुत्र के जीवन की सुरक्षा का दायित्व सौंपती है। विवाह के पश्चात् अपने पूर्व प्रेमी में डूबने जैसे छिछालेपन का उसमें सर्वथा अभाव है। इसी बात का सम्मान करते हुए लहनासिंह भी गौरवान्वित है और उसके पुत्र व पति की रक्षा का वचन देता है।

1.5.3 सूबेदार हजारासिंह

सूबेदार हजारासिंह कर्मठ और कर्त्तव्यनिष्ठ फौजी था। वह श्रेष्ठ मनुष्य था। मानवीय संवेदनाएँ उसमें कूट–कूट कर भरी हुई थी। वह घायल लहनासिंह को छोड़कर जाना नहीं चाहता, इस बात से उसकी कोमल प्रवृत्तियों का तो पता चलता ही है साथ ही उसके निश्छल, निःस्वार्थ और खुली मानसिकता का भी पता चलता है, ज बवह कहता है कि – 'तुमने मेरी और बोधा की रक्षा की है। यह बात मैं तो सूबेदारनी से कहूंगा ही, तुम भी साथ में चलकर खुद कह देना।' वह निर्विकार भाव से लहनासिंह और सूबेदारनी के परिचय संबंधों को स्वीकारता है। उसके मन में कोई प्रश्न नहीं उठा कि सूबेदारनी व लहनासिंह से कब और कहाँ उनका परिचय हुआ। सूबेदार युद्ध क्षेत्र में विपरीत परिस्थितियों में भी हंसी–मजाक करके वातावरण को हल्का बनाए रखता है साथ ही सतर्क, चुस्त–दुरूस्त होकर अपने फौजी कर्त्तव्यों का निर्वाह भी करता है। कहानी में लहनासिंह नायक के रूप में है और सूबेदार उसके सहायक की भूमिका में है। बहुत कम स्थान पाने पर भी कहानी में सूबेदार की भूमिका प्रभावशाली है। बोधा सिंह उनका एकमात्र जीवित बेटा है जो उसके साथ ही फौज में है। बाकी के चार पुत्र जीवित नहीं रहे लेकिन सूबेदार की देशभक्ति और देश प्रेम ने उसे बेटों की मृत्यु होने पर भी कमजोर नहीं किया। वह आत्मदृढ़ता के साथ अपने एकमात्र बेटे बोधा को भी फौज में भर्ती होने की आज्ञा देता है।

1.6 आलोचना

तात्विक विवेचन– 'उसने कहा था' के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी कहते हैं– इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यंत निपुणता के साथ संपुटित है। घटना इसकी ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है पर उसके भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झांक रहा है। केवल झांक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा। कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्ज प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स विकृति नहीं है। सरुचि के सुकुमार से सुकुमार स्वरूप पर कहीं आघात नहीं पहुँचता। इसकी घटनाएँ ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं। शुक्ल जी ने कहानी के स्वरूप, उद्देश्य एवं भावों को संपूर्णता के साथ दर्शाने वाली स्टीक टिप्पणी की है। डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार, 'उसने कहा था' कहानी का आरंभ चंचल, मधुर है पर अंत में जैसे सारी ही कहानी रस में डूब जाती है। शैशव की उस मीठी घटना से माधुर्य और लहनासिंह के पुरुषार्थी व्यक्तित्व से शक्ति प्राप्त कर अंत में उसके बलिदान की करुणा कितनी गंभीर हो जाती है। आप देखें कि रति, ह्रास, ओज, कारुण्य इनके मिश्रण से इसका जो परिचय होता है, वह अत्यंत प्रगाढ़ और पुष्ट है। जैनेन्द्र के लिए यह कहानी आनंद–विस्मय का कारण बनी रही। आनंद अपनी आस्वाद्यता के कारण, विस्मय अपनी संरचना के कारण। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी की मान्यता है– ''अपनी विशालता के बावजूद कहानी की पठनीयता कहीं क्षरित नहीं होती।''

डॉ0 बच्चन सिंह की मान्यता है कि पांच खंडों में बंटी यह कहानी एक 'कथा नाट्य है' इसका प्रत्येक शब्द ध्यान से पढ़ने योग्य है। यदि कहानी का अंत युद्ध के बाद ही हो गया होता तो कहानी एक प्रेम कहानी बनकर रह जाती और इसमें एक उदात्त पारिवारिक मूल्य, जो आज के युग में विरल होता जा रहा है, न जुड़ पाता। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'उसने कहा था' गुलेरी जी की एक कालजयी रचना है जो अपने कथ्य और

शिल्पगत विशिष्टता के लिए अपनी रचना के समय से ही सतत चर्चा में रही है। इस कहानी का स्थानीय रंग, परिवेश और उसके अनुकूल पात्र तथा भाषा कहानी को जीवंतता प्रदान करते हैं। गुलेरी जी ने आदर्श प्रेम को मूक भाषा और मर्यादित आवरण प्रदान किया है। बचपन का क्षणिक मिलन के दौरान हुआ अबोध प्रेम मर्यादा की जमीन पर गहरी जड़ें जमा लेता है, जो कालांतर में आत्मबलिदान के रूप में फलीभूत होता है। लहनासिंह 'उसके कहे को' पूरा करने के लिए, अपने वचन को निभाने के लिए उसके पति व बेटे का जीवन बचाकर अपने जीवन का बलिदान कर अनन्त यात्रा पर निकल पड़ता है। कहानी का प्रवाह पाठक को अपने साथ बहा ले जाता है, किंतु इसकी मर्मस्पर्शी जकड़न पाठक को बांधे रखती है। कहानी खत्म होने के बाद भी लंबे समय तक भीतर गूंजती रहती है। निश्चित रूप से गुलेरी जी की कहानी कला भावनाओं की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति के लिए चिरस्मरणी कही जा सकती है। लहनासिंह प्रेमचंद के होरी धनिया की तरह सुपरिचित और सर्वप्रिय पात्र बन गया है, तो इसके पीछे गुलेरी जी की कुशल, गहन–गंभीर, सरल–सरस भाषा और शैली का ही प्रभाव है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. वजीरा सिंह और बोधा सिंह कौन थे?
2. लहनासिंह कहाँ, लड़ाई के किस मैदान में था, उसकी मृत्यु किस तरह हुई?
3. 'उसने कहा था' कहानी का परिवेश कैसा है?
4. गुलेरी जी की कहानी 'उसने कहा था' का सदेश क्या है?
5. 'उसने कहा था' में किन भावों की प्रधानता है?
6. 'उसने कहा था' की संवाद योजना पर प्रकाश डालिए।

1.7 सारांश

कहानी का नायक लहनासिंह जब बारह वर्ष का बच्चा था तब अपने मामा के घर अमृतसर गया था। वहीं पर आठ वर्ष की एक लड़की जो उसकी तरह सिक्ख थी उससे दही वाले, सब्जी वाले के यहाँ अक्सर टकराती थी। वह भी अपने मामा के घर आई हुई थी। लहनासिंह ने एक बार दही की दुकान के सामने बिगड़े घोड़े से उस लड़की की जान बचायी थी। हुआ यूं था कि तांगे वाले का घोड़ा बिगड़ गया और उछलने कूदने लगा। लड़की उसके सामने पड़ गई तो वह उसे रौंदने वाला ही था कि लहनासिंह ने लड़की को उठाकर दुकान के तख्त पर खड़ा कर दिया और स्वयं घोड़े की लातें खाई और उसे काबू में किया। लहनासिंह की लड़की से बातचीत होने लगी। उसने उसे चिढ़ाने के लिए पूछा–'तेरी कुड़माई हो गई।' लहनासिंह के पूछन पर लड़की धत्त् कहती और भाग जाती, लेकिन एक दिन जब यही प्रश्न लहना ने पूछा तो बोली– 'हो गई, देखते नहीं रेशमी कढ़ाई वाला सालू।' और इतना सुनते ही लहनासिंह को धक्का लगा। वह क्रोधित हुआ, शायद स्वयं पर, लड़की पर, परिस्थितियों या नियति पर। लेकिन लौटते हुए उसकी मानसिक अस्थिरता बढ़ गई और उसने वह किया जो रोज नहीं करता था। उसने रास्ते में एक जाते हुए लड़के को नाली में धकेल दिया, एक छाबड़ी वाले की दिन भर की कमाई को उलटकर जमीन पर गिरा दिया, कुत्ते को पत्थर मारा, गोभीवाले के ढेले में दूध उड़ेल दिया और जानबूझ कर सामने से नहा कर आती हुई एक वैष्णवी से टकरा गया तो उसने उसे 'अंधा' कहा। लहनासिंह के मन में बचपन में उगा यह प्रेम का अंकुर झुलस कर उसी के हृदय की कोमल मिट्टी में दब गया।

25 वर्ष बाद लहनासिंह नं. 77 राइफल्स में जमादार हो गया, वह सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकद्दमें की पैरवी करने अपने गांव गया। लेकिन छुट्टियाँ खत्म होने से पहले ही सीमा पर जाने का आदेश मिल गया। उसे सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी भी मिली कि लौटते समय मेरे घर आ जाओ हम साथ चलेंगे। वह गया।

जब हजारासिंह और बोधासिंह तैयार होकर बाहर आ गए तो हजारासिंह ने लहनासिंह को सूबेदारी का बुलावा सुनाया। दरअसल सूबेदारनी वही बचपन वाली लड़की थी। सूबेदारनी लहनासिंह से मार्मिक प्रार्थना करती है कि जैसे उसने बचपन में उसे बचाया था वैसे ही उसके पति (सूबेदार) व पुत्र बोधासिंह की रक्षा करे। लहनासिंह वचन देता है और लाम पर चला आता है।

जर्मनों के साथ युद्ध करते दिन पर दिन बीतते जाते हैं। कीचड़ वाली खंदकों में, मच्छरों के बीच रहते–रहते बोधा बीमार पड़ जाता है तो लहनासिंह उसके हिस्से की ड्यूटी भी स्वयं करता है। अपने गरम कपड़े उसे दे देता है और स्वयं आग के पास बैठकर रात गुजारता है। जर्मन सिपाही छल–कपट करके रात में धावा बोलते हैं। लहनासिंह अपनी तीव्र बुद्धि से उन बहुरूपियों को पहचान कर पलटवार करता है, लेकिन घायल हो जाता है। जर्मनों को खदेड़कर विजयी होकर लहनासिंह अपने प्रेम को दिए गए वचन को निभाता है। घायलों को लेने गाड़ी आती है तो वह बोधासिंह और सूबेदार हजारासिंह को उसमें सवार करा देता है। किसी को नहीं बातता कि उसे पसली में गोली लगी है। उसे घाव है, वह मृत्यु के निकट है। हजारासिंह उसे छोड़कर जाना नहीं चाहता लेकिन लहनासिंह उसे उसके बेटे बोधा की कसम देता है और सूबेदारनी की भी तथा कहता है कि घर जाकर सूबेदारी को मेरा मत्था टेकना कह देना और कहना कि जो उन्होंने कहा था वह मैंने कर दिया।' हजारासिंह छटपटाते मन से, बुझे मन से लहनासिंह को छोड़कर चला जाता है।

वजीरासिंह मरणासन्न लहनासिंह को पानी पिलाता है। लहनासिंह के मस्तिष्क में बचपन की स्मृतियाँ घू रही हैं और वह उस लड़की को याद करता है। घटनाचक्र उसकी स्मृतियों में ताजा हो उठते हैं और वह बड़बड़ाता है उसे लगता है वह अपने घर में है। धीरे–धीरे स्मृतियों की धुंध लहनासिंह बिना इलाज कराए मृत्यु का वरण करता है।

लोग समाचार पत्रों में पढ़ते हैं– 'फ्रांस और बेल्जियम 68वीं सूची मैदान में घावों से मरा नं. 77 सिक्ख राइफल्स जमादा लहनासिंह।

1.8 मुख्य शब्दावली

- **बम्बूकार्ट** – टांगा
- **बाछा** – बादशाह
- **मुल्क** –देश
- **सालू** –शाल
- **हाड़** – आषाढ़

1.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. वजीरासिंह लहनासिंह का मित्र फौजी था। बोध सिंह, लहनासिंह के बचपन की परिचिता कुड़ी/कन्या (बाद में सूबेदारनी) का और सूबेदार का इकलौता जीवित पुत्र था।
2. लहनासिंह जर्मनी फौज के खिलाफ इंग्लैंड की युद्धभूमि में लड़ रहा था। पसली में लगी गोली की वजह से उसकी मृत्यु हो गई।
3. 'उसने कहा था' कहानी का परिवेश युद्ध का मैदान है, इसके पात्र पंजाबी ग्रामीण परिवेश से संबंधित है।
4. 'उसने कहा था' के माध्यम से गुलेरी जी फौजी जीवन की कठिनाईयों को दर्शाते हैं तथा लहनासिंह और

सूबेदारनी के बचपन के प्रेम को गरिमामय स्वरूप में प्रस्तुत कर प्रेम के त्याग पर आधारित स्वरूप को दर्शाते हैं।

5. 'उसने कहा था' में शौर्य, वीरता, व्यंग्य, करुणा, प्रेम के भावों का अधिक्य है।
6. 'उसने कहा था' की संवाद योजना सशक्त और प्रवाहमयी है। पंजाबी भाषा में हिंदी और अंग्रेजी का मिश्रण कर बोले जाने वाले छोटे और बड़े संवाद प्रभावशाली हैं जो सारे दृश्य को जीवंत कर देते हैं।

1.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. 'उसने कहा था' कहानी का सारांश लिखिए।
2. 'उसने कहा था' कहानी का तात्विक विवेचन कीजिए।
3. 'उसने कहा था' कहानी में किसने किससे क्या कहा था? जो कहा था वह माना गया या नहीं? उसका क्या परिणाम निकला?
4. 'उसने कहा था' के माध्यम से लेखक पाठकों को क्या बताना चाहते हैं? उद्देश्य स्पष्ट कीजिए?
5. चरित्र चित्रण कीजिए– (क) लहनासिंह (ख) सूबेदारनी (ग) सूबेदार हजारासिंह
6. नकली लेफ्टिनेंट कौन सी झूठी कहानियाँ सुना रहा था जिन्हें सुनकर लहनासिंह को उसके नकली होने का पता चला?
7. 'उसने कहा था' कहानी की भाषा शैली पर प्रकाश डालते हुए लेखक की व्यंग्य शैली का विवेचन कीजिए।

1.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. उषा प्रियवंदा – मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एंड संस नई दिल्ली–1974
2. जैनेंद्र– अभागे लोग तथा अन्य कहानियाँ – भाग–8, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली–1995
3. कमलेश्वर–कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ–प्राग प्रकाशन दिल्ली, 1976
4. निर्मल वर्मा–प्रतिनिधि कहानियाँ– राजकमल प्रकाशन प्रा. लि0– दिल्ली–1988
5. सं. शक्तिधर गुलेरी–गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, सरस्वती प्रेस बनारस–1945

इकाई 2 कफन (प्रेमचंद)

इकाई की रूपरेखा

2.0 परिचय

2.1 इकाई के उद्देश्य

2.2 कहनी 'कफन' यथावत

2.3 व्याख्या

2.4 चरित्रचित्रण

2.4.1 घीसू

2.4.2 माधव

2.5 आलोचना

2.6 सारांश

2.7 मुख्य शब्दावली

2.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

2.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0 परिचय

प्रेमचंद के यथार्थवादी दृष्टिकोण को अभिव्यंजित करती हुई यह कथा–'कफन' उनकी श्रेष्ठ रचनाओं में से एक है। इसमें प्रेमचंद का व्यंग्य विधान करुणा मिश्रित है। भाषा और संवाद की दृष्टि से यह बेजोड़ कहानी है। स्वतंत्रता पूर्व के ग्रामीण भारतीय जीवन के निम्न वर्ग तथा उच्च वर्ग के बीच संबंधों की सत्यता को उजागर करने वाली यह अद्‌भुत कहानी है।

2.1 इकाई के उद्देश्य

'कफन' कहानी के अध्ययन से विद्यार्थी

- स्वतंत्रता से पूर्व के भारतीय ग्रामीण समाज के जमींदार वर्ग की मानसिकता एवं प्रवृत्ति का दर्शन करेंगे;
- निम्न वर्ग के अभावग्रस्त जीवन को समझेंगे;
- स्त्रियों के दुर्दशाग्रस्त जीवन को समझ पाएंगे;
- घीसू, माव जैसे निम्न वर्ग के अकर्मण्य, स्वार्थी लोगों की पतित प्रवृत्ति पर व्यंग्य की गहराई जानेंगे।

2.2 कहानी 'कफन' यथावत

झोंपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने बैठे हुए थे और अंदर बेटे की जवान बीवी बुधिया प्रसव–वेदना से पछाड़ खा रही थी। रह–रहकर उसके मुंह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज निकलती थी कि दोनों कलेजा थाम लेते थे। जाड़े की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई, सारा गांव अन्धकार में लय हो गया था।

घीसू ने कहा, 'मालूम होता है, बचेगी नहीं। सारा दिन दौड़ते हो गया, जा देख तो आ।''

माधव चिढ़कर बोला ''मरना ही है, तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती? देखकर क्या करूँ?

'तू बड़ा बेदर्द है बे! सल–भर जिसके साथ सुख–चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई।'

''तो मुझसे तो उसका तड़पना और हाथ–पांव पटकना नहीं देखा जाता।'

चमारों का कुनबा था और सारे गांव में बदनाम। घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम। माधव इतना कामचोर था कि आध घण्टे काम करता तो घटे भर चिलम पीता। इसलिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थी। घर में मुट्ठी भर भी अनाज मौजूद हो तो उनके लिए काम करने की कसम थी। जब दो–चार फाके हो जाते तो घीसू पेड़ पर चढ़कर लकड़ियाँ तोड़ लाता और माध बाजार में बेच आता और जब तक वह पैसे रहते, दोनों इधर–उधर मारे–मारे फिरते। जब फांके की नौबत आ जाती, तो फिर लकड़ियाँ तोड़ते या मजदूरी तलाश करते। गांव में काम की कमी न थी। किसानों का गांव था, मेहनती आदमी के लिए पचास काम थे, मगर इन दोनों को लोग उसी वक्त बुलाते, जब दो आदमियों से एक का काम पाकर भी संतोष कर लेने के सिवा और कोई चारा न होता। अगर दोनों साधु होते, तो उन्हें संतोष और धैर्य के लिए संयम और नियम की बिलकुल जरुरत न होती।

यह तो इनकी प्रवृत्ति थी। विचित्र जीवन था इनका। घर में मिट्टी के दो चार बर्तनों के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढंके हुए लिए जाते थे। संसार की चिन्ताआं से मुक्त ! कर्ज से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मार भी खाते, मगर कोई भी गम नहीं। दीन इतने कि वसूली की बिलकुल आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ न कुछ कर्ज देते थे। मटर–आलू की फसल में दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते और भून–भानकर खा लेते या दस–पाँच ऊख उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकश वृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप ही के द चिह्नों पर चल रहा था, बल्कि उसका नाम और उजागर कर रहा था। इस वक्त भी दोनों अलाव के सामने बैठकर आलू भून रहे थे, जो कि किसी के खेत से खोद लाए थे। घीसू की स्त्री का तो बहुत दिन हुए देहान्त हो गया था। माधव का ब्याह पिछले साल हुआ था। जबसे औरत आयी थी, उसने इस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी। पिसाई करके या घास छीलकर वह सेर–भर आटे का इन्तजाम कर लेती थी और इन दोनों बे–गैरतों का दोजख भरती रहती थी। जब से वह आयी, ये दोनों और भी आलसी और आराम तलब हो गए थे। बल्कि कुछ अकड़ने भी लगे थे। कोई कार्य करने को बुलाता, तो निर्व्याज भाव से दुगुनी मजदूरी मांगते। वही औरत आज प्रसव–वेदना से मर रही थी और यह दोनों शायद इसी इंतजार में थे कि वह मर जाए, तो आराम से सोएं।

घीसू ने आलू निकालकर छीते हुए कहा, 'जाकर देख तो क्या दशा है उसकी?'

चुड़ैल का फिसाद होगा और क्या? यहाँ तो ओझा भी एक रुपया मांगता है।'

माधव को भय था कि वह कोठरी में गया, तो घीसू आलुओं का बड़ा भाग साफ कर देगा। बोला, 'मुझे वहाँ जाते डर लगता है।'

'डर किस बात का है? मैं तो यहाँ हूँ ही !'

'तो तुम्हीं जाकर देखो न?'

'मेरी औरत जब मरी थी, तो मैं तीन दिन तक उसके पास से हिला तक नहीं और फिर मुझसे लज्जा आएगी कि नहीं? जिसका कभी मुंह नहीं देखा, आज उसका उघड़ा हुआ बदन देखू! डसे तन की सुध भी तो न होगी? मुझे देख लेगी तो खुलकर हाथ–पांव भी न पटक सकेगी!'

'मैं सोचता हूँ, कोई बाल–बच हो गया तो क्या होगा? सौंठ, गुड़, तेल, कुछ भी तो नहीं घर में !'

'सब कुछ आ जायेगा। भगवान दें तो? जो लोग अभी एक पैसा नहीं दे रहे हैं, वे ही कल बुलाकर रुपये देंगे। मरे भी लड़के हुए, घर में कभी कुछ न था मगर भगवान ने किसी न किसी तरह बेड़ा पार ही लगाया।'

जिस समाज में रात–दिन मेहनत करने वालां की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान था और किसानों के विचारशून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था। हाँ, उसमें यह शक्ति न थी कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता। इसलिए जहाँ उसकी मण्डली के और लोग गांव के सरगना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गांव उंगली उठाता था। फिर भी उसे यह तसकीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम से कम उसे किसानों की सी जी तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग फायदा तो नहीं उठाते।

दोनों आलू निकाल–निकालकर जलते–जलते खाने लगे। कल से कुछ नहीं खाया था। इतना सब्र न था कि ठण्ठा हो जाने दें। कई बार दोनों की जबानें जल गयी। छिल जाने पर आलू का बाहरी हिस्सा तो बहुत ज्यादा गर्म न मालूम होता, 'लेकिन दांतों के तले पड़ते ही अंदर का हिस्सा जबान और हलक और तालू को जला देता था और उस अंगारे को मुंह में रखने से ज्यादा खैरियत इसी में थी कि वह अंदर पहुंच जाए। वहाँ ठण्डा करने के लिए काफी सामान थे। इसलिए दोनों जल्द–जल्द निगल जाते। हालांकि इस कोशिश में उनकी आंखों में आंसू निकल आते।

घीसू को उस वक्त ठाकुर की बारात याद आयी, जिसमें बीस साल पहले वह गया था। उस दावत में उसे जो तृप्ति मिली थी, वह उसके जीवन में एक याद रखने लायक बात थी और आज भी उसकी याद ताजी थी! बेला, 'वह भोज नहीं भूलता। तब से फिर उस तरह का खाना और भरपेट नहीं मिला। लड़की वालों ने सबको भरपेट पूड़ियाँ खिलायी थी, सबको ! छोटे–बड़े सबने पूड़ियाँ खायीं और असली घी की? चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, चटनी, मिठाई। अब क्या बताऊं कि उस भोज में क्या स्वाद मिला! कोई रोक–टोक नहीं थी। जो चीज चाहो मांगों और जितना चाहो खाओ। लोगों ने ऐसा खाया, ऐसा खाया, किसी से पानी न पिया गया। मगर परोसने वाले हैं कि पत्तल में गर्म–गर्म, गोल–गोल सुवासित कचौड़ियाँ डाल देते हैं। मना करते हैं कि नहीं चाहिए, पत्तल पर हाथ रोके हुए हैं मगर ये हैं कि दिए जाते हैं और जब मुंह धो लिया, तो पान–इलाइची भी मिली। मगर मुझे पान लेने की कहाँ सुध थी? खड़ा न हुआ जाता था। चटपट जाकर अपने कम्बल पर लेट गया। ऐसा दिल–दरियाद था, वह ठाकुर।

माधव ने इन पदार्थों का मन ही मन मजा लेते हुए कहा, 'अब हमें कोई भोज नहीं खिलाया।'

''अब कोई क्या खिलाएगा? वह जमाना दूसरा था। अब तो सबको किफायत सूझती है। शादी–ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया–कर्म में मत खर्च करो, पूछो, गरीबों का माल बटोर–बटोरकर कहाँ रखोगे? बटोरने में तो कमी नहीं

है। हाँ, खर्च में किफायत सूझती है।''

''तुमने कोई बीस पूरियाँ खायी होंगी?''

''बीस से ज्यादा खायी थी !''

''मैं पचास खा जाता!''

''पचास से कम मैंने न खायी होंगी। अच्छा पट्ठा था! तू तो मेरा आधा भी नहीं।''

आलू खाकर दोनों ने पानी पिया और वहीं अलाव के सामने अपनी धोतियाँ ओढ़कर पाँव पेट में डाले सो रहे। जैसे दो बड़े–बड़े अजगर गेड्डलियाँ मारे पड़े हों।

और बुधिया अभी तक कराह रही थी!

माधव भागा हुआ घीसू के पास आया। फिर दोनों जोर–जोर से हाय–हाय करने और छाती पीटने लगे। पड़ोस वालों ने यह रोना–धोना सुना, तो दौड़े आये और पुरानी मर्यादा के अनुसार इन अभागों को समझाने लगे।

मगर ज्यादा रोने–पीटने का अवसर न था। कफन की और लकड़ी की फिक्र करनी थी। घर में तो पैसा इस तरह गायब था, जैसे चील के घोंसले में मांस। बाप बेटे रोते हुए गाँव के जमींदार के पास गए। वे इन दोनों की सूरत से नफरत करते थे। कई बार इन्हें अपने हाथों पीट चुके थे, चोरी करने के लिए, वादे पर काम पर न आने के लिए। पूछा, 'क्या है बे घिसुआ, रोता क्यों है? अब तो तू कहीं दिखायी भी नहीं देता! मलूम होता है, इस आंव में रहना नहीं चाहता।''

घीसू ने जमीन पर सिर रखकर आंखों में आंसू भरे हुए कहा, 'सरकार ! बड़ी विपत्ति में हूँ। माधव की घरवाली रात को गुजर गयी। रात–भर तड़पती रही सरकार! ळम दोनों उसके सिरहाने बैठे रहे। दवा–दारू जो कुछ हो सका, सब कुछ किया, मग रवह हमें दगा दे गई। अब कोई एक रोटी देने वाला भी न रहा मालिक! त्बाह हो गए। घर उजड़ गया। आपका गुलमा हूं, अब आपके सिवा कौन उसकी मिट्टी पार लगायेगा? हमारे हाथ में तो जो कुछ था, वह सब तो दवा–दारू में उठ गया। सरकार ही की दया होगी तो उसकी मिट्टी उठेगी। आपके सिवा किसके द्वार पर जाऊं?''

जमींदार साहब दयालु थे। मगर घीसू पर दया करना काले कम्बल पर रंग चढ़ाना था। जी में तो आया, कह दें, चल, दूर हो यहाँ से, यों तो बुलाने से भी नहीं आता, आज जब गरज पड़ी तो आकर खुशामद कर रहा है। हरामखोर कहीं का, बदमाश! लेकिन यह क्रोध या दण्ड का अवसर न था। जी में कुढ़ते हुए दो रुपये निकाल कर फेंक दिए। मगर सांतवना का एक शब्द भी मुंह से न निकाला। उसकी तरफ ताका तक नहीं। जैसे सिर का बोझ उतारा हो।

जब जमींदार साब ने रुपये दिए, तो गांव के बनिये महाजनों को इंकार का साहस कैसे होता? घीसू जमींदार के नाम का ढिंढोरा भी पीटना जानता था। किसी ने दो आने दिए, किसी ने चार आने। एक घण्टे में घीसू के पास पाँच रुपये की अच्छी रकम जमा हो गई। कहीं से अनाज मिल गया, कहीं से लकड़ी और दोपहर को घीसू और माधव बाजार से कफन लाने चले। इधर लोग बांस–वांस काटने लगे।

गांव की नर्मदिल स्त्रियाँ आ–आकर लाश को देखती थीं और उसकी बेबसी पर दो बूंद आंसू गिराकर चली जाती थीं।

बाजार में पहुंचकर घीसू बोला, ''लकड़ी तो उसे जलाने–भर को मिल गयी है, क्यों माधव!''

माधव बोला, ''हां लकड़ी तो बहुत है, अब कफन चाहिए!''

''तो चलो, कोई हल्का सा कफन ले लें।''

''हाँ और क्या! लाश उठते–उठते रात हो जायेगी। रात को कफन कौन देखता है?

''कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते–जी तन ढंकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए।''

''कफन लाश के साथ ही तो जल जाता है।''

''और क्या रखा रहता है? यही पांच रुपये पहले मिलते, तो कुछ दवा–दारू कर लेते।''

दोनों एक दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे। बाजार में इधर–उधर घूमते रहे। कभी इस बाजार की दुकान पर गए, कभी उसकी दुकान पर। तरह–तरह के कपड़े रेशमी और सूती देखे, मगर कुछ जंचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गयी। तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुंचे असमंजस में खड़े रहे। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा, ''साहूजी, एक बोलत हमें भी देना।''

इसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछलियाँ आयीं और दोनों बरामदे में बैठकर शांतिपूर्वक पीने लगे।

कई कुज्जियाँ ताबड़–तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आ गए।

घीसू बोला, 'कफन लगाने से क्या मिलता? आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता।'

माधव आसमान की तरफ देखकर बोला, मानों देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो–''दुनिया का दस्तूर है, नहीं तो लोग बामनों को हजारों रुपए क्यों देते हैं कौन देखता है, परलोक मिलता है या नहीं।''

''बड़े आदमियों के पास धन है, फूंके! हमारे पास फूंकने को क्या है?''

''लेकिन लोगों को जवाब क्या दोगे? लोग पूछेंगे नहीं, कफन कहाँ है?''

घीसू हंसा, ''अबे, कह देंगे कि रुपए कमर से खिसक गए, बहुत ढूंढा मिले नहीं। लोगों को विश्वास तो न आयेगा, लेकिन फिर वही रुपए देंगे।''

माधव भी हंसा, इस अनपेक्षित सौभाग्य पर। बोला, ''बड़ी अच्छी थी बेचारी। मरी तो खूब खिला–पिलाकर।''

आधी बोतल से ज्यादा उड़ गयी। घीसू ने दो सेर पूड़ियाँ मंगायी। चटनी, अचार, कलेजियां। शराबखाने के सामने ही दुकान थी। माधव लपककर दो पत्तलों में सारा सामान ले आया। पूरा डेढ़ रुपया खर्च हो गया। सिर्फ थोड़े से पैसे बचे रहे।

दोनों इस वक्त शान से बैठे हुए पूरियां खा रहे थे जैसे जंगल में कोई शेर शिकार उड़ा रहा हो। न जवाबदेही का शौक था, न बदनामी की फिक्र। इन भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले ही जीत लिया था।

घीसू दार्शनिक भाव से बोला, 'हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है, तो क्या उसे पुण्य न होगा?''

माधव ने श्रद्धा से सिर झुकाकर तसदीक की, ''जरूर से जरूर होगा। भगवान, तुम अन्तर्यामी हो। उसे बैकुण्ठ ले जाना। हम दोनों हृदय से आशीर्वाद दे रहे हैं। आज जो भाजन मिला, वह कभी उम्र भर न मिला था।''

एक क्षण के बाद माधव के मन में एक शंका जागी, बोला, क्यों दादा, हम लोग भी तो एक न एक दिन वहाँ जाएंगे ही?

घीसू ने इस भोले–भाले सवाल का कुछ उत्तर न दिया। वह परलोक की बात सोचकर आनन्द में बाधा न डालना चाहता था।

''जो वहां वह हम लोगों से पूछे कि तुमने हमें कफन क्यों नहीं दिया, तो क्या कहोंगे?''

''कहेंगे तुम्हारा सिर।''

''पूछेगी तो जरूर।''

''तू कैसे जानता है कि उसे कफन न मिलेगा?'' तू मुझे ऐसा गधा समझता है? क्या साठ साल दुनिया में घास खोदता रहा हू? उसको कफन मिलेगा और इससे बहुत अच्छा मिलेगा।''

माधव को विश्वास न आया। बोला, कौन देगा? रुपए तो हमने चट कर दिए। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी मांग में तो सिंदूर मैंने डाला था।''

घीसू गर्म होकर बोला, मैं कहता हूं उसे कफन मिलेगा, तू मानता क्यों नहीं?''

''कौन देगा, बताते क्यों नहीं?''

''वही लोग देंगे, जिन्होंने अबकी दिया। हाँ अबकी रुपये हमारे हाथ न आएंगे।''

ज्यों–ज्यों अंधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक तेज होती थी, मधुशाला की रौनक भी बढ़ती जाती थी। कोई गाता था, कोई डींग मारता था, कोई अपने संगी के गले में लिपटा जाता था। कोई अपने दोस्त के मुंह में कुल्हड़ लगाये देता था। वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने यहाँ आकर एक चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए यह भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं या न जीते हैं, न मरते हैं।

और यह दोनों बाप–बेटे अब भी मजे ले–लेकर चुसकियाँ ले रहे थे। सबकी निगाहें इनकी ओर जमीं हुई थी। दोनों कितने भाग्य के बली हैं। पूरी बोतल बीच में है। भरपेट खाकर माधव ने बची हुई पूड़ियों का पत्तल उठाकर एक भिखारी को दे दिया, जो खड़ा इनकी ओर भूखी आंखों से देख रहा था और देने के गौरव, आनंद और उल्लास का अपने जीवन में पहली बार अनुभव किया।

घीसू ने कहा, 'ले जा, खूब खा और आशीर्वाद दे। जिसकी कमाई है, वह तो मर गयी। मगर तेरा आशीर्वाद उसे जरूर पहुंचेगा। रोयें–रोयें से आशीर्वाद दे, बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे हैं।''

माधव ने फिर आसमान की तरफ देखकर कहा, ''वह बैकुण्ठ में जायेगी दादा, बैकुण्ठ की रानी बनेगी।''

घीसू खड़ा हो गया और जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला, ''हां बेटा, बैकुण्ठ में जाएगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते–मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गयी। वह न बैकुण्ठ में जाएगी तो क्या वे मोटे–मोटे लोग जाएंगे जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं।''

ऋद्धालुता का यह रंग तुरंत ही बदल गया। अस्थिरता नशे की खासियत है। दुःख और निराशा का दौरा हुआ।

माधव बोला, ''मगर दादा, बेचारी ने जिन्दगी में बड़ा दुःख भोगा, ''कितना दुःख झेलकर मरी!''

वह आंखों पर हाथ रखकर रोने लगा, चीखें मार–मारकर।

घीसू ने समझाया, ''क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह मायाजाल से मुक्त हो गयी है। जंजाल से छूट गयी, बड़ी भाग्यवान थी, जो इतनी जल्दी माया–मोह से बंधन तोड़ दिए।'' और दोनों खड़े होकर गाने लगे –

''ठगिनी क्यों नैना झमकावे! ठगिनी!''

पियक्कड़ों की आंखें इनकी ओर लगी हुई थी और यह दोनों अपने दिल में मस्त गाए जा रहे थे। फिर दोनों नाचने लगे। उठले भी, कूदे भी, गिरे भी, मटके भी, भाव भी बताए, अभिनय भी किए और आखिर नशे से मदमस्त होकर वहीं गिर पड़े।

2.3 व्याख्या

1 अगर दोनों .....जरूरत न होती।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ प्रेमचंद की कहानी कफन से उद्धृत हैं।

प्रसंग – यह व्यंग्यात्मक कथन है। घीसू और माधव की जीवन–शैली देखकर लेखक यह पंक्तियाँ कहता है।

व्याख्या – प्रेमचंद घीसू और माधव की जीवन शैली पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि घीसू एक दिन काम करता था और तीन दिन आराम करता था, जब तक कि वह एक दिन की कमाई खत्म न हो जाए। माधव आधा घण्टे काम करता था तो एक घण्टा चिलम पीता था। घर में अगर एक मुठ्ठी अनाज भी हो तो दोनों बाप–बेटे काम न करने की कसम खा लेते थे जब एक दो दिन कुछ खाने को न मिले तो घीसू किसी के पेड़ पर चढ़कर लकड़ियाँ तोड़ता और माधव उन्हें बेच आता था। फिर जब तक ये पैसे रहते, दोनों मजदूरी नहीं करते थे। यहाँ–वहाँ मारे–मारे घूमते थे फिर जब भूखे रहने की नौबत आती तो फिर लकड़ियाँ तोड़ते या मजदूरी ढूंढते थे। गांव में काम की कमी नहीं थी लेकिन ये दोनो बाप–बेटे इतने कामचोर और आलसी थे कि जब बहुत मजबूरी हो तभी लोग इन्हें बुलाते थे क्योंकि जितना काम एक आदमी दिन भर में करता है उतना काम ये दोनों बाप बेटे मिलकर भी दो दिन में कर पाते हैं। घर में मिट्टी के दो चार बर्तन, फटे चीथड़ों जैसे कपड़े, सिर पर कर्ज का बोझ। लोग गालियाँ गालियाँ देते, मारते, डांटते हैं लेकिन ये दोनों बाप–बेटे निश्चिंत होकर संतोष और धैर्य के साथ जीवन बिताते हैं। किसी अपमान और अभाव का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, बस पेट भरने के लिए कुछ मिल जाए तो ये पड़े–पड़े दिन बिता देते हैं। इनकी इस निर्विकार प्रवृत्ति को देखकर ही प्रेमचंद जी व्यंग्य करते हैं कि अगर ये साधु हो जाते तो इनको संयम और नियम को सीखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, इनका धैर्य और संतोष इन्हें साधु जीवन की प्रतिकूलताओं से बचाता। साधुओं में जितना धैर्य और संयम की आवश्यकता होती है उतना उनमें पहले ही से मौजूद है। संयम नियम साधुओं से और आचरण तामसी प्रवृत्ति वाले राक्षसों जैसा ऐसा विरोधाभास यहाँ प्रकट हुआ है।

2 सब कुछ आ जाएगा.....पार ही लगाया।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग– झोपड़े के अंदर बुधिया प्रसव पीड़ा से कराह रही है और झोपड़े के बाहर अलाव के पास बैठे घीसू और माधव बातें कर रहे हैं। माधव चिंता व्यक्त करता है कि बच्चा हो गया तो सोंठ, गुड़, तेल आदि कुछ भी घर में नहीं है, क्या करेंगे।

व्याख्या – माधव अपनी पत्नी की पीड़ा और उसका छटपटना देखकर उक्ता गया है। वह सोचता है कि इसे मरना है तो जल्दी मर जाए ताकि वे चैन से सो जाएँ। बच्चे की जिम्मेदारी और कमाने के झंझट से मुक्ति मिलेगी। दूसरी ओर यह भी सोचता है कि यदि नहीं मरी और बच्चा हो गया तो घर में कुछ सामान नहीं है पैसे भी नहीं हैं, कैसे क्या होगा? इस पर उसका पिता घीसू उससे कहता है कि चिंता मत कर भगवान सब ठीक कर देंगे। वही बेड़ा पार लगा देंगे। बच्चे भगवान की कृपा से होते हैं और उनके भरण–पोषण की चिंता भी वही करते हैं। घीसू कहता है कि जो लोग हमें निकम्मा समझकर मांगने पर भी एक रुपया नहीं देते वे ही लोग बच्चे पर दया करके बुलाकर

रुपया देंगे। कहता है – मेरे नौ लड़के हुए और हर लड़के की पैदाइश के समय घर की स्थिति आज जैसी ही थी। घर में कुछ नहीं था न सामान न पैसा, लेकिन भगवान ने साथ दिया। तात्पर्य यह कि न बच्चे जीवित रहे, न उसकी पत्नी। नाकारा किस्म के लोग अपने निकम्मेपन का बहाना भगवान की व्यवस्था पर डाल कर किस तरह अपने दायित्वों से मुंह मोड़ लेते हैं, इसका चित्रण घीसू की इन उक्तियों के माध्यम से हुआ है। ऐसे लोगों की पत्नियों को क्या–क्या सहना पड़ता है इस पर भी यह एक सशक्त टिप्पणी है।

3 जिस समाज में.....जा मिला था।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – लेखक घीसू–माधव की प्रवृत्ति को स्वाभाविक सिद्ध करने के लिए अन्य ग्रामीणों तथा किसानों की अवस्था का चित्रण कर रहे हैं।

व्याख्या – घीसू और माधव को अकर्मण्य और अवसरवादी, चालाक और कुटिल बनाने के पीछे परिस्थितियों का हाथ है ऐसा लेखक कहना चाहता है। प्रेमचंद जी तत्कालीन सामाजिक स्थितियों एवं किसानों तथा जमींदारों की प्रकृति एवं आचरण पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि किसान और जमींदार मजदूरों से ज्यादा काम करवा कर कम मजदूरी देते थे अतः जो मजदूर और किसान दिन–रात काम करते थे उनकी स्थिति भी ज्यादा अच्छी नहीं थी। उन्हें भी कभी–कभी भूखे पेट सो जाना पड़ता था। इनकी तुलना में जो चालाक ओर चतुर मजदूर थे वे किसानों की दुर्बलताओं का लाभ उठाते थे जानते थे कि किसान का काम उनके बिना नहीं चल लाएगा, अतः वे किसानों से दुगुनी मजदूरी मांगते थे और काम करवाने के लिए किसानों को दोगुनी मजदूरी देनी पड़ती थी। इस तरह कोई–कोई मजदूर तो किसानों से अधिक अच्छी स्थिति में थे। यह देखकर घीसू–माधव की मनोवृत्ति का अवसरवादी और अकर्मण्य हो जाना स्वाभाविक था। लोक कहते हैं कि किसानों से ज्यादा विचारवान घीसू प्रतीत होता है क्योंकि जो बातें किसान नहीं समझता कि उसका लाभ उठाया जा रहा है, वह बात घीसू समझता है वह सोचता है काम करने और न करने से स्थिति में कोई अंतर नहीं आने वाला है, तो काम न करना ही ठीक है। वह गांव की बैठक मण्डली में जाकर बैठता है यद्यपि वहाँ उसे कोई सम्मान या पद नहीं मिला है क्योंकि बैठक मण्डली के सदस्यों को खिलाने–पिलाने लायक उसकी सामर्थ्य नहीं है, लेकिन उनके साथ बैठकर वह गांव के सरगना और मुखिया लोगों की गतिविधियों को देखता था और सोचता था कि कम से कम उसे काम तो नहं करना पड़ता, उसकी सरलता और निरीहता का कोई फायदा तो नहीं उठाता जैसे लोग किसानों का फायदा उठाते हैं। वह अपनी स्थिति से संतुष्ट था और लेखक तत्कालीन परिवेश में नायकत्व का औचित्य सिद्ध हुआ है। इनके इसी औचित्य में शोषणवादी व्यवस्था पर तीखी चोट की गई है।

4 आलू खाकर.....मरे पड़े हों।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – घीसू और माधव की स्वार्थी और संवेदनहीन प्रवृत्ति पर टिप्पणी की गई है।

व्याख्या – झोंपड़े के अंदर बुधिया जमीन पर पड़ी प्रसव पीड़ा से छटपटाती है, चीखती है, लेकिन दोनों पिता–पुत्र घीसू और माधव कोई उसके पास नहीं जाता। न माधव उसके लिए भोजन, पानी–दवाई की व्यवस्था करता है न उसके पास जाकर उसको तसल्ली देने का प्रयत्न करता है बल्कि झोंपडे के बाहर अलाव के पास बैठा घीसू के साथ बीस वर्ष पहले के विवाह समारोह में खाए गए व्यंजनों की बात रस ले लेकर सुनता है तथा दोनों बाप–बेटे आलू भूनकर खाते हैं और पानी पीकर संतुष्ट हो जाते हैं और वहीं अलाव की गर्मी में उसके पास ही धोतियाँ ओढ़कर जो जाते हैं। बुधिया की चिंता से बेखबर, उसकी चीखों का कोई प्रभाव उन पर नहीं पड़ता। जैसे अजगर पूरा बकरा निगल जाता है और उसे पचाने के लिए शांत पड़ा रहा है हिलता–डुलता नहीं उसकी तरह ये दोनों भी

पेट भरकर आलू खाते और पानी पीते हैं तथा चैन से अजगर की तरह नींद में डूबे पड़े रहते हैं और अंदर बुधिया तड़प–तड़प कर दम तोड़ देती है। पिता–पुत्र की भूख व स्वार्थ की भावना यहाँ उभर कर सामने आई है। 'कोई मरे कोई जिए', 'सुथरा घोल बतासे पिए' की कहावत दोनों पर लागू होती है। विडम्बना यह है कि यहाँ मरने वाला 'कोई' कोई और नहीं बल्कि उनके घर की अन्नपूर्णा है। कृतघ्नता का निहायत घिनौना रूप।

5 जमींदार दयालु.....चढ़ाना था।

संदर्भ – उपरोक्त।

प्रसंग –बुधिया के मरने पर उसके कफन आदि की व्यवस्था करने के लिए घीसू–माधव जमींदार के घर जाते हैं और रो–रोकर, झूठा किस्सा सुनाकर जमींदार से कहते हैं कि बहू के इलाज में सब पैसे खर्च हो गए लेकिन उसे बचा नहीं पाए। अब कफन–दफन के लिए पैसे नहीं हैं, मालिक दया कीजिए। उस पर जमींदार की घीसू के प्रति सोच को ये पंक्तियाँ व्यक्त करती हैं।

व्याख्या – घीसू माधव को रोते–गिड़गिड़ाते देखकर भी जमींदार का मन नहीं पसीजता क्योंकि वे दयालु होते हुए भी इन बाप–बेटे की सूरत से घृणा करते हैं। वे घीसू–माधव की अकर्मण्यता, अवसरवादिता, कपट और चालाकी से नफरत करते हैं। वे बुधिया के मार्मिक अंत से दुखी हैं। मानवतावश उसकी सहायता भी करना चाहते हैं लेकिन घीसू के प्रति उनकी घृणा कम नहीं होती। वे जानते हैं कि जैसे काले कंबल पर दूसरा रंग नहीं चढ़ सकता उसी तरह दया करने और सहायता करने पर भी घीसू अपनी आदतें नहीं बदलेगा। फिर भी वे मानवता के नाते सहायता करते हैं और कुढते हुए उसे दो रुपये निकालकर दे देते हैं। जमींदार की 'दयालुता' प्रेमचंद की नज़र में समर्थ व्यक्ति का पारंपरिक पोषित अहं है। इसलिए बाद में बाप बेटे से कहता है – जिसने पहले दिया वह कफन के लिए फिर देगा– समाज के आचार व्यवस्था पर गहरी मनोवैज्ञानिक टिप्पणी है। वे गरीब के लिए नहीं देंगे इसलिए देंगे कि लाश पड़ी न रहे, अपनी कुंठा से बचने के लिए मजबूरन देंगे। तीखा, पैना व्यंग्य है।

6 दोनों इस वक्त .....जीत लिया था।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – बुधिया का कफन खरीदने के लिए घीसू–माधव बाजार जाते हैं वहाँ कफन न खरीदकर उसी पैसे से शराब पी रहे हैं। इस समय उनकी प्रवृत्ति, स्थिति और व्यवहार का चित्रण किया गया है।

व्याख्या – बुधिया के मर जाने पर घीसू और माधव रोकर–गिड़गिड़ाकर गांव वालों से उसके अंतिम संस्कार के लिए चंदा मांगते हैं तथा गांव वालों की दी हुई राशि 'पांच रुपये' लेकर दोनों बाप–बेटे कफन खरीदने के लिए बाजार जाते हैं। वहाँ सूती, रेशमी कई तरह के कपड़े, कई दुकानों में देखने पर भी उन्हें कफन पसंद नहीं आता, क्योंकि वे पसंद नहीं करना चाहते ताकि उन पैसों से दावत उड़ाई जा सके, 'कफन की दावत'। अंततः वे एक शराब की दुकान में आ जाते हैं और वहाँ शराब के साथ मछली, पूड़ियाँ, अचार, चटनी इत्यादि खरीदकर ऐसे शान से बैठकर खाते हैं जैसे वे अपनी कमाई के रुपयों से मजे उड़ा हों। शेर स्वयं शिकार करके जिस शान से खाता है उसी शान से ये दोनों पिता–पुत्र पूरियां खा रहे थे, दोनों के बीच एक शराब की बोतल थी। उन्हें इस बात की ग्लानि नहीं थी कि वे जिस रुपये से पूड़ियाँ खा रहे हैं वह रुपया गांव वालों ने बुधिया के कफन के लिए दिया है। बुधिया जो घीसू की बहू और माधव की पत्नी थी, झोंपड़ी में उसकी लाश छोड़कर ये दोनों कफन खरीदने के लिए आए थे और कफन न खरीदकर बुधिया के कफन और अंतिम संस्कार की जिम्मेदारी गांव वालों पर छोड़कर वे शराब पी रहे थे। उन्हें यह चिंता नहीं थी कि कफन लेकर नहीं पहुंचे और गांव वालों ने पूछा तो क्या जवाब देंगे। उन्हें बदनामी का डर भी नहीं था। वे बहुत पहले ही यह सामाजिक डर, बदनामी, अपमान, ग्लानि जैसे भावों की चिंता छोड़ कर निर्विकार भाव से जीने की आदत डाल चुके थे। उन्हें पेट भरने से मतलब था, चाहे जैसे संभव हो।

7 वहाँ के वातावरण .....न मरते हैं।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – मधुशाला अर्थात् शराबखाने का चित्रण किया गया है।

व्याख्या – घीसू और माधव मृत बुधिया के कफन और अंतिम संस्कार की चिंता छोड़कर जिस शराबखाने में बैठे थे उसके वातावरण और वहाँ के व्यवहार का चित्रण लेखक ने यहाँ किया है। लेखक कहते हैं जैसे–जैसे रात का अंधेरा बढ़ता जाता है शराबखाने की रौनक बढ़ती जाती है। पीने वालों की भीड़ और पीकर बहके हुए लोगों की बहकी–बहकी बातों से वहाँ के वातावरण में, वहाँ की हवा में भी नशीलापन व्याप्त हो जाता है। कितने ही शराबी केवल एक चुल्लू पीकर मस्त हो जाते हैं और कितने ही लोग बोतलों पर बोतलें खाली करते जाते हैं। शराब के नशे से अधिक यहाँ की हवा और वातावरण का नशीलापन उन पर प्रभाव डालता है। जीवन की बाधाएं और परेशानियाँ भूलने के लिए वे इस शराबखाने में खिंचे चले आते हैं और पीकर वे सारी बातें भूलकर मस्त हो जाते हैं। नशे में वे यह भूल जाते हैं कि वे जिंदा हैं या मुर्दा। या न जिंदा हैं न मुर्दा। वे अपने अस्तित्व को ही भूल जाते हैं। कुछ बहककर रोते हैं, कुछ हंसते हैं, कुछ नाचते गाते हैं और कुछ आध्यात्मिक और दार्शनिक की तरह बातें करते हैं। दरिद्रता में व्यसन किस तरह 'कोढ में खाज' का काम करते हैं, इन पंक्तियों से समझा जा सकता है।

2.4 चरित्र–चित्रण

2.4.1 घीसू

घीसू माधव का पिता और बुधिया का ससुर है। वह घर का बड़ा सदस्य है, मुखिया है लेकिन उसके भीतर मुखिया जैसे कोई गुण नहीं हैं। वह आत्मसम्मान रहित, अशिक्षित, चालाक और स्वार्थी मनुष्य है। घीसू को मनुष्य कहते हुए भी संकोच होता है क्योंकि उसका आचरण पशुओं जैसा है। प्रसव पीड़ा से कराहती अपनी बहू के साथ और बहू के तड़प–तड़प कर मरने के बाद उसके कफन की व्यवस्था करते समय उसने जिस संवेदहीनता का परिचय दिया वह उसे अमानवीय ठहराती है। वह अकर्मण्य है तथा पराश्रित रहकर जीवन काट रहा है। मांग कर, चुरा कर खाते हुए उसने जीवन के साठ बर्ष बिता दिए। इस आकाश–वृत्ति यानि परमात्मा की कृपा से मिलने वाले अन्न से ही जीवन काटता हुआ वह संतोष और धैर्य से दिन बिताता है। वह चटोरा और भुक्कड़ है। खाते समय वह पुत्र से भी प्रतिस्पर्धा करता है। पुत्र को कीस वर्ष पूर्व विवाह समारोह में खाए गए ए–एक पकवान के संबंध में चटकारे ले लेकर बताता है और यह भूल जाता है कि झोंपड़े के अंदर बहू पीड़ा से छटपटा रही है। वह झूठा है। बहू की मृत्यु के बाद जमींदार के घर जाकर झूठ कहता है कि हमने उसकी दवा–दारू किया जिसमें सारे पैसे खर्च हो गए। वह निर्लज्ज, पर–जीवी है। स्वयं कुछ न करते हुए दूसरों के सहारे गृहस्थी चलाता रहा। जब उसके पुत्र ने कहा कि अगर बाल–बच्चा हो गया तो घर में सोंठ, गुड़, तेल कुछ नहीं है, कहाँ से लाएंगे। इस पर घीसू मक्कार की तरह कहता है– 'सब आ जाएगा। भगवान दे ंतो? जो लोग अभी एक पैसा नहीं दे रहे हैं, वे ही कल बुलाकर रुपये देंगे। मेरे नौ लड़के हुए, घर में कभी कुछ न था मगर भगवान ने बेड़ा पार लगाया। घीसू जिसे बेड़ा पार लगाना कह रहा है वह यह है कि भुखमरी, गरीबी और अभाव में लगातार बच्चों को जन्म देते–देते उसकी पत्नी बीमार होकर मर गई तथा माधव के अलावा शेष आठ संतानें भी काल के गाल में समा गई, लेकिन घीसू को कोई दुख नहीं है। वह अपनी कमजोरियों को उत्तरदायी नहीं मानता बल्कि उसे भगवान की लीला मानता है। बेटे–बहू को लेकर कभी–कभी वह गंभीर और संवेदनशील पिता की तरह टिप्पणी करता है जैसे माधव कहता है – 'मरना ही है तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती? तब घीसू कहता है – 'तू बड़ा बेदर्द है बे! सल भर जिसके साथ सुख चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई !' घीसू अवसरवादी और बेईमान था। बहू के आने के बाद से वह काम पर बुलाए

जाने पर मालिकों से दोगुनी मजदूरी मांगता था क्योकि वह जानता था कि मालिकों को जरूरत होगी तो अवश्य उसे दोगुनी मजदूरी पर काम देंगे और अगर नहीं देंगे तो घर पर बहू कमाकर लाती है उससे पेट भर ही जाएगा। प्रेमचंद सामाजिक विषमता पर व्यंग्य करते हुए उसे किसानों से अधिक विचारवान कहते हैं क्योंकि वह जानता है कि जो लोग उससे अधिक काम करते हैं उनकी हालत भी उसी के जैसी है फिर काम करने से क्या लाभ? घीसू दलित वर्ग का ऐसा प्रतिनिधि है जो अपनी कुटिलता, स्वार्थ, अकर्मण्य प्रवृत्ति के चलते शोषण का शिकार नहीं है बल्कि शोषक कहे जाने वाले समृद्ध वर्ग को न केवल परेशान करता है बल्कि उनसे भीख मांगकर या चीजें चुराकर लाभ उठाता है। इस तरह उसके इस व्यवहार के औचित्य निर्वाह कर दिया जाता है। इस औचित्य निर्वाह से यह पात्र अत्यंत घृणित होते हुए भी पाठकों के लिए ताज्य नहीं बनता।

2.4.2 माधव

माधव घीसू का पुत्र और बुधिया का पति है। वह न अच्छा पति सिद्ध होता है न पिता। उसका अजन्मा बच्चा बुधिया के पेट में ही मर जाता है, लेकिन वह न वैद्य को बुलाता है न किसी तरह का कोई इलाज करता है। वह अपने पिता के पद–चिह्नों पर चलता है अर्थात् वैसा ही अकर्मण्य, चोर, बेईमान, आत्म सम्मान रहित, कपटी, कुटिल और अवसरवादी है। काम पर जाता तो आधा घण्टा काम करता और एक घण्टा चिलम पीता जिससे मालिक लोग परेशान हो जाते। अपने पिता घीसू की तरह ही फटे चीथड़े पहने हुए, कर्ज से लदे हुए, लोगों की गाली सुनते और मार खाते हुए भी बेशर्मों की तरह चिंता मुक्त होकर जीता था। जबसे बुधिया उसकी पत्नी बनकर आई, वह और भी आलसी हो गया था क्योंकि वह जानता था कि बुधिया पास–पड़ोस में काम करके कुछ न कुछ ले आएगी जिससे उसका पेट भर जाएगा। वह सवार्थी और संवेदनहीन पति है क्योंकि जब बुधिया प्रसव पीड़ा से छटपटाती, चीखती है तो वह उसका इलाज कराने के बजाए उसके शीघ्र मरण की कामना करता है ताकि वह चैन से सो सके। भूखी, प्यासी, दर्द से छटपटाती पत्नी की चिन्ता छोड़कर बाहर अलाव के पास बैठा पिता के साथ गर्म–गर्म आलू खाकर पानी पीता है और विवाह समारोह में खाए गए पकवानों के किस्से चटकारे ले लेकर सुनता है। वह पिता के हर झूठ और फरेब में साथ देता है। पत्नी के मर जाने पर कफन खरीदने जाता है लेकिन पिता की धूर्तता में साथ देते हुए कफन न खरीदकर मांग कर इकट्ठे किए गए पैसों से शराब पीता है, मछली, पूरी, चटनी, अचार खरीदकर खाता है। घीसू उसे सिखाता है कि गांव वालों से कह देंगे– 'रुपये कमर से खिसक गए, बहुत ढूंढा नहीं मिले। लोगों को विश्वास तो न आएगा, लेकिन फिर वही रुपये देंगे। मरी भी तो खूब खिला–पिला कर।' कहता है– भगवान आज जो भोजन और शराब मिली वह कभी न मिली थी। मन तृप्त होकर आर्शीवाद दे रहा है कि भगवान उसे बैकुण्ठ ले जाना वह शराब पीकर बेखुदी में बड़बड़ाता भी है– 'मैंने उसकी मांग में सिंदूर डाला था। एक न एक दिन हम भी परलोक जाएंगे ही। जो वहाँ उसने पूछा कि तुमने मुझे कफन क्यों नहीं दिया था तो? कुछ देर बाद नशा और बढ़ता है तो कहता है –'मगर दादा, बेचारी ने जिन्दगी में बड़ा दुख भोगा, कितना दुख झेलकर मरी।' यह कह कर चीख–चीख कर रोने लगता है। यहाँ उसके भीतर का मानव पल भर के लिए प्रकट हुआ। लेकिन जैसे ही घीसू समझाता है कि बेटा खुश हो जा वह माया–मोह से मुक्त हो गयी है तो नाचते हुए पिता के साथ वह भी उछलते, कूदते, नाचने गाने लगता है। 'ठगिनी क्यों नैना झमकावे! ठगिनी।'' माधव इस कहानी का दूसरा पौरुष हीन पात्र है जो अमानीवय और संवेदनहीन ही नहीं पुरुषार्थहीन एवं विवेकहीन भी है। यह दलित वर्ग की नई पीढ़ी का प्रतिनिधि है जो आस्था, आदर्श, मूल्यों और परंपराओं से दूरी बनाए रखने का गुर अपने पिता से सीखता है।

2.5 आलोचना

तात्विक विवेचन

''कफन'' प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। उसमें घीसू–माधव जैसे सामान्यजन का क्रूर यथार्थ अपनी समग्रता के साथ चित्रित हुआ है। उसकी सांकेतिक अर्थवत्ता एक नये इतिहास का सृजन करती है और दृष्टिगत नवीनता मनुष्य के जीवन को समष्टि सत्य और समष्टि यथार्थ से जोड़ती है। यही कारा है कि कुछ समीक्षक उसे हिन्दी की 'पहली नई कहानी' मानते हैं। उनकी दृष्टि में ''कफन'' इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि उसमें कथाकार ने अपने को ही अतिक्रमित किया है। उसके आदर्श के फार्मूले कहीं दूर पीछे छूट गए हैं। ''न कहीं कौतूहल, न चरम सीमा, न परिणति और न हीं आदर्श–यथार्थ, बल्कि सीधी–तटस्थ, विदूषकत्व की सीमा को छूती हुई नंगी सच्चाई।' डॉ0 बच्चन सिंह कहते हैं –

वस्तुतः ''कफन'' प्रेमचंद की बदली हुई दृष्टि, भाव–सत्य, भाषा–शिल्प एवं बदले हुए मिजाज का प्रतिनिधित्व करने वाली कहानी है जो ''जीवन का ही कफन नहीं सिद्ध होती, बल्कि संचित आदर्शों, मूल्यों, आस्थाओं और विश्वासों का भी कफन सिद्ध होती है।'' इस कहानी में यथार्थ की तनी हुई रस्सी को कथाकार कहीं भी ढीली नहीं पड़ने देता और तनाव–मन की भीतरी गहराइयों तक जाने का प्रयत्न करता है। कहानी साधारण से पात्रों की कमजोरियों के साथ आगे बढ़ती है और अंत में सामाजिक ढांचे की विडम्बना एवं विसंगति का प्रतिरूप बन जाती है। वह ऐतिहासिक नैराष्य को यथार्थ का धरातल प्रदान करती है और उसे अमानवीयता की हद तक पहुंचा देती है।

मोहन राकेश ने इस कहानी की आंतरिक उपलब्धियों में सांकेतिकता को सर्वाधिक महत्व देते हुए लिखा है– ''कफन'' इसलिए श्रेष्ठ कहानी है कि वह एक विशेष क्षेत्र से उठाई गई है – आदर्शोन्मुखता की कसौटी से तो वह प्रेमचंद की परंपरा की कहानी ही नहीं है, उस कहानी की विशेषता उसके अंतर्निहित संकेत के कारण है। कहानी के चरित्रों में एक ''मार्बिडिटी'' (रुग्णता) है, परन्तु कहानी का संकेत ''मार्बिड'' नहीं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. 'कफन' कहानी का रचनाकाल बताइए?
2. 'कफन' कहानी के परिवेश पर प्रकाश डालिए।
3. बुधिया का जीवन परिचय लिखिए।
4. 'कफन' कहानी के इस शीर्षक का औचित्य स्पष्ट कीजिए?
5. 'कफन' कहानी में मुख्य पात्र कौन–कौन से हैं?

2.6 सारांश

प्रेमचंद की यथार्थवादी कहानियों की परम्परा में से यह एक श्रेष्ठ कहानी है जो अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसमें दलित वर्ग के दो पुरुषों की अकर्मण्यता, चालाकी, मक्कारी एवं स्वार्थी प्रवृत्ति को दर्शाया गया है। चमार जाति के ये पुरुष पिता और पुत्र हैं। पिता का नाम घीसू और पुत्र का नाम माधव है। घीसू की पत्नी मर चुकी है। माधव की पत्नी का नाम बुधिया है। गांव में चमारों का एक बदनाम कुनबा है ये अलग एक मुहल्ला बसाकर रहते हैं। इसी मोहल्ले में घीसू का भी झोपड़ा है। घीसू और माधव आलसी, अकर्मण्य, चोर और कामचोर हैं। घर में एक मुठ्ठी अन्न हो तो ये उसके खत्म होने तक काम पर नहीं जाते। किसी के भी खेत से आलू, मटर भरकर चैन, शांति से पड़े रहना ही इनका जीवन है। किसान और जमींदारों का गांव होने के कारण काम की कमी नहीं है, लेकिन लोग जानते हैं कि ये दोनों बाप–बेटे मिलकर भी किसी एक आम मजदूर जितना काम नहीं करते इसलिए कोई इन्हें काम पर बुलाना नहीं चाहता। जब बहुत मजबूरी हो तो ही इन्हें बुलाया जाता है। माधव आधा घण्टे काम करने के

बाद एक घण्टे चिल्म पीता रहता है और घीसू एक दिन काम पर जाता है तो तीन दिन आराम करता है। ये उधार लिया पैसा कभी वापस नहीं करते, ये जानते हुए भी कभी–कभी लोग इन्हें उधार दे देते हैं कारण यह कि इनकी दशा इतनी दीन–हीन है कि लोगों को इन पर दया आ जाती है। ये घुटे हुए चालाक हैं– गाली, मार का इन पर कोई नहीं पड़ता। सम्मान या आत्मसम्मान की परिभाषा ये नहीं जानते। किसी तरह भी पेट–भरने को कुछ मिल जाए तो इन्हें दूसरे वक्त की या अगले दिन की चिन्ता नहीं सताती।

माधव के विवाह को साल भर हुआ है, उसकी पत्नी गर्भवती है। कहानी में शीत ऋतु की एक रात का चित्रण है। कड़ाके की सर्दी है। झोपड़े के बाहर बुझते हुए अलाव के पास घीसू और माधव बैठे हैं। अलाव में कुछ आलू भूनने के लिए डाले गए हैं। अंदर माधव की पत्नी जमीन पर लेटी प्रसव पीड़ा से छटपटा रही है, चीख रही है, उसकी चीखें सन्नाटे में गूंज रही हैं वह हाथ–पैर पटक रही है। अकेली दर्द से छटपटाती इस स्त्री के पास न तो उसका पति माधव जाता है न ससुर घीसू। माधव सोचता है यदि मैं अंदर जाऊंगा तो उतनी देर में घीसू अलाव में से आलू निकालकर खा जाएगा और घीसू भी यही सोचता हुआ मर्यादा की बात कहता है कि मैं ससुर हूँ बहू की इस स्थिति में उसके सामने कैसे जाऊँ? दोनों एक–दूसरे से कहते हैं लेकिन आलुओं को छोड़ कर हिलते नहीं। न डॉक्टर, न वैद्य या किसी अन्य स्त्री को भी बुला कर लाते हैं। अंततः गर्म–गर्म आलू निकालकर जल्दी–जल्दी खाते हैं। जबान जल गई, आंखों में आँसू आ गए, मुंह में छाले पड़ गए लेकिन चिंता नहीं। बल्कि घीसू एक बारात का किस्सा माधव को सुनाता है कि वहाँ कितने पकवान बने थे और उसने कितना खाया था। माधव सुन–सुनकर तृप्ति का अनुभव करता हुआ उससे एक–एक पकवान की मात्रा और स्वाद के बारे में पूछता है। दोनों बातें करते–करते आलू खाकर, पानी पीकर वहीं अलाव के पास सो जाते हैं और अंदर से बुधिया के कराहने की आवाज आती रहती है।

कहानी के दूसरे भाग में बुधिया की मृत्यु का चित्रण है। अलाव के पास सोते हुए दोनों बाप बेटे रात चैन से काटते हैं और बुधिया तड़प–तड़प कर दम तोड़ देती है उसका बच्चा उसके पेट में ही मर जाता है। यह वह स्त्री थी जो विवाह के बाद दूसरों के घरों में पिसाई करके, घास छीलकर वह रोज सेर भर आटे का इंतजाम कर लेती थी ताकि इन दोनों के पेट का नर्क भर सके। बुधिया के आने के बाद से ये दोनों ज्यादा आलसी और कामचोर हो गए थे। लेकिन इन दोनों का संवेदनहीन हृदय इतने पर भी नहीं पसीजा। बुधिया के मरते ही दोनों जोर–जोर से रोने का नाटक करने लगे ताकि लोग आकर उनसे सहानुभूति जताएं और कफन, लकड़ी आदि की व्यवस्था के लिए पैसे दें। उनका नाटक सफल रहा। दोनों बाप–बेटे जमींदार के घर जाकर रोए। वे इनकी सूरत से घृणा करते थे, लेकिन मानवता के नाते उन्होंने दो रुपये दिए। जमींदार को देखकर गांव वालों ने भी कुछ दिया। इस तरह शाम तक दोनों ने पांच रुपये इकट्ठे किए, साथ ही अनाज और लकड़ी भी। गांव, बिरादरी के लोग क्रिया–कर्म की तैयारी करने लगे। स्त्रियाँ आकर बुधिया की लाश के पास बैठ गई और ये दोनों बाप–बेटे घीसू–माधव कफन खरीदने के लिए बाजार चले गए।

कहानी का तीसरा भाग अत्यंत मार्मिक यथार्थ को प्रस्तुत करता है। घीसू–माधव कई दुकानों पर जाकर रेशमी, सूती कपड़ा देखते हैं लेकिन उन्हें कोई कफन पसंद नहीं आता। कई तरह के प्रकट अप्रकट बहानेबाजी के बाद वे एक शराब की दुकान पर बैठकर एक बोतल शराब और मछली खरीदते हैं। दो किलो पूड़ियाँ, अचार, चटनी, कलेजियाँ खरीदते हैं। खा–पीकर नशे में अध्यात्म की बातें करते हैं। हँसते हैं, रोते हैं और अंत में घीसू समझाता है माधव को कि बेटा वह तो माया–मोह के बंधन से मुक्त हो गई और दोनों गाने लगते हैं –

''ठगिनी क्यों नैना झमकावे। ठगिनी!''

2.7 मुख्य शब्दावली

- कुनबा – परिवार
- तृप्ति – संतोष

- मिट्टी उठना – अंतिम संस्कार होना
- कुज्जियाँ – कुल्हड़
- दस्तूर – रिवाज
- बैकुण्ठ – वैकुण्ठ/भगवान विष्णु का धाम

2.8 'अपनी प्रगति जांचिए'

1. कफन कहानी स्वतंत्रता के पूर्व बीसवीं सदी के द्वितीय–तृतीय दशक के मध्य लिखी गई है।
2. कफन कहानी का परिवेश ग्रामीण है, जहाँ जमींदार प्रथा के कारण जमींदार और मजदूर के बीच तनाव बना रहता है।
3. बुधिया माधव की पत्नी थी। दिन भर दूसरों के घरों में काम करके कमाती और अपने निठल्ले ससुर तथा पति का पेट भरती थी। कड़ा संघर्ष और भरपेट भोजन न मिलने के कारण कमजोर थी अतः प्रसव पीड़ा के दौरान उसकी मृत्यु हो जाती है।
4. 'कफन' कहानी का शीर्षक उचित है क्योंकि कहानी का आरंभ बुधिया के प्रसव पीड़ा से छटपटाकर मरने से होता है। उसके कफन के लिए गांव वालों से चंदा एकत्रित करके घीसू, माधव शहर जाते हैं कफन खरीदने। लेकिन कफन के रुपयों से शराब पीते और बढ़िया खाना खाकर लुढ़क जाते हैं। घर पर बुधिया के शव के लिए कफन लेकर नहीं पहुंचते। अतः यह मर्मस्पर्शी कथा को स्पष्ट करने वाला शीर्षक है।
5. कफन कहानी में मुख्य पात्र घीसू, माधव और बुधिया तथा जमींदार हैं।

2.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. 'कफन' कहानी का सारांश लिखिए।
2. 'कफन' कहानी का तात्विक विवेचन कीजिए।
3. 'कफन' कहानी के द्वारा लेखक समाज को क्या बताना चाहता है?
4. 'घीसू' और 'माधव' का चरित्र चित्रण कीजिए।
5. 'बुधिया' के जीवन पर प्रकाश डालिए।
6. घीसू–माधव के प्रति गांव वालों के व्यवहार पर टिप्पणी कीजिए।

2.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. उषा प्रियवंदा – मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एंड संस नई दिल्ली, 1974
2. जैनेंद्र – अभागे लोग तथा अन्य कहानियाँ–भाग–8, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1985
3. कमलेश्वर – कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ–पराग प्रकाशन दिल्ली, 1976
4. सं. शक्तिधर गुलेरी–गुलेरी जी की अमर कहानियाँ–सरस्वती प्रेस बनारस, 1945

इकाई 3 आकाशदीप (जयशंकर प्रसाद)

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय

3.1 इकाई के उद्देश्य

3.2 कहानी 'आकाशदीप' यथावत

3.3 व्याख्या

3.4 चरित्रचित्रण

3.4.1 बुद्धगुप्त

3.4.2 चम्पा

3.5 आलोचना

3.6 सारांश

3.7 मुख्य शब्दावली

3.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

3.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

3.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.0 परिचय

जयशंकर प्रसाद जी की यह अविस्मरणीय और विश्व प्रसिद्ध कहानी है जो समुद्री डाकुओं के जीवन पर लिखी गई है। ऐतिहासिक कहानियों में इसका मुख्य स्थान है। इस कथा पर फिल्म का भी निर्माण हुआ है। राष्ट्र प्रेम और व्यक्तिगत प्रेम की तुलनात्मक स्थिति प्रस्तुत करने में जयशंकर प्रसाद सिद्धहस्त हैं, यह बात इस कहानी से सिद्ध होती है।

3.1 इकाई के उद्देश्य

आकाशदीप कहानी को पढ़कर विद्यार्थी –

- 'आकाशदीप' के रूप में मानवीय आस्था की गरिमा का साक्षात्कार करेंगे;
- समुद्री डाकुओं की समस्या का स्वरूप जानेंगे;
- डाकुओं के जीवन के उजले मानवीय पक्ष को भी जान लेंगे;
- प्रेम का गरिमामय स्वरूप समझते हुए नायिका की मनःस्थिति के उदात्त भाव से परिचित होंगे।

3.2 कहानी 'आकाशदीप' यथावत

''बन्दी।''

''क्या है? सोने दो।''

''मुक्त होना चाहते हो?''

''अभी नहीं, निद्रा खुलने पर। चुप रहो।''

''फिर अवसर न मिलेगा।''

''बड़ा शीत है, कहीं से एक कम्बल डाल कर कोई शीत से मुक्त करता।''

''आंधी की संभावना है। यही अवसर है। आज मेरे बंधन शिथिल हैं।''

''तो क्या तुम भी बन्दी हो?''

''हां, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।''

''शस्त्र मिलेगा?''

''मिल जाएगा। पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे?''

''हाँ।''

समुद्र में हिलोरे उठने लगीं। दोनों बंदी आपस में टकराने लगे। पहले बंदी ने अपने को स्वतंत्र कर लिया। दूसरे का बंधन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक दूसरे को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा–स्नेह का असंभावित आलिंग्न। दोनों बंदी अन्धकार से मुक्त हो गए। दूसरे बंदी ने हर्षातिरेक से, उसको गले से लगा लिया। सहसा उस बंदी ने कहा–''यह क्या? तुम स्त्री हो?''

''क्या स्त्री होना कोई पाप है?'' – अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा।

''शस्त्र कहाँ हैं? तुम्हारा नाम?''

''चम्पा।''

तारक–खंचित नील अम्बर और नील समुद्र के आकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अंधकार से मिल कर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आन्दोलन था। नौका लहरों में विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढ़कने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकाल कर, फिर लुढ़कते हुए, बंदी के समीप पहुंच गई। सहसा पोत से पथप्रदर्शक ने चिल्ला कर कहा–''आंधी!''

आपत्ति–सूचक तूर्य बजने लगा। सावधान होने लगे। बंदी युवक उसी तरह पड़ा रहा। किसी ने रस्सी पकड़ी, कोई पाल खोल रहा था। पर युवक बंदी लुढक कर उस रज्जु के पास पहुंचा जो पोत से संलग्न थी। तारे ढंक गये। तरंगे उद्वेलित हुई, समुद्र गरजने लगा। भीषण आंधी, पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कन्दुक–क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी।

एक झटके के साथ ही नाव स्वतंत्र थी। उस संकट में भी दोंनों बंदी खिलखिला कर हंस पड़े। आंधी के हाहाकर में उसे कोई न सुन सका।

अनंत जलनिधि में उषा का मधुर आलोक फूट उठा। सुनहली किरणों और लहरों की कोमल सृष्टि मुस्कराने

लगी। सागर शांत था। नाविकों ने देखा, पोत का पता नहीं। बंदी मुक्त हैं।

नायक ने कहा– ''बुद्धगुप्त'' तुमको मुक्त किसने किया?''

कृपाण दिखाकर बुद्धगुप्त ने कहा– ''इसने।''

नायक ने कहा– ''तो तुम्हें फिर बंदी बनाऊंगा।''

''किसके लिए? पोताध्यक्ष मणिभद्र अतल जल में होगा–नायक! अब इस नौका का स्वामी मैं हूँ।''

''तुम? जलदस्यु बुद्धगुप्त? कदापि नहीं।'' चौंककर नायक ने कहा और अपना कृपाण टटोलने लगा। चम्पा ने इसके पहले उस पर अधिकार कर लिया था। वह क्रोध से उछल पड़ा।

''तो तुम द्वन्द्वयुद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ, जो विजयी होगा, वही स्वामी होगा।'' इतना कह, बुद्धगुप्त ने कृपाण देने का संकेत किया। चम्पा ने कृपाण नायक के हाथ में दे दिया।

भीषण घात प्रतिघात आरंभ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गतिवाले थे। बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण दांतों से पकड़कर अपने दोनों हाथ स्वतंत्र कर लिए। चम्पा, भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गये। परंतु बुद्धगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाण वाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुंकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा। नायक की कायर आंखें प्राण–भिक्षा मांगने लगीं।

बुद्धगुप्त ने कहा– ''बोलो अब स्वीकार है कि नहीं?''

''मैं अनुवर हूं, वरुणदेव की शपथ। मैं विश्वासघात न करूंगा।''

बुद्धगुप्त ने उसे छोड़ दिया।

चम्पा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना–विहीन कर दिया। बुद्धगुप्त के सुगठित शरीर पर रक्त–बिन्दु विजय–तिलक कर रहे थे।

विश्राम लेकर बुद्धगुप्त ने पूछा– ''हम लोग कहाँ होंगे?''

''बालीद्वीप से बहुत दूर, संभवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का बहुत कम आना जाना होता है। सिंहल के वणिकों का वहाँ प्राधान्य है।''

''कितने दिनों में हम लोग वहाँ पहुंचेंगे?''

''अनुकूल पवन मिलने पर दो दिन में। तब तक के लिए खाद्य का अभाव न होगा।''

सहसा नायक ने नाविकों को डांड़ लगाने की आज्ञा दी और स्वयं पतवार पकड़ कर बैठ गया। बुद्धगुप्त के पूछने पर उसने कहा–''यहाँ एक जलमग्न शैलखण्ड है। सावधान न रहने से नाव के टकराने का भय है।''

''तुम्हें इन लोगों ने बंदी क्यों बनाया?''

''वणिक मणिभद्र की पाप–वासना ने।''

''तुम्हारा घर कहाँ है?''

''जाह्न्वी के तट पर। चम्पा–नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा

घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मारकर जल समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इस नील नभ के नीचे, नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनन्तता में निस्सहाय हूँ–अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियाँ सुनाई। उसी दिन से बंदी बना दी गई।'' –चम्पा रोष से जल रही थी।

''मैं भी ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय हूं चम्पा, परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बनकर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी?''

''मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूंगी। वह जहाँ ल जाए।'' चम्पा की आंखें निस्सीम प्रदेश में निरूद्देश्य थीं। किसी आकांक्षा के लाल डोने न थे। धवल अपांग में बालकों के सदृश विश्वास था। हत्या–व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर कांप गया। उसके मन में एक सम्भ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। समद्र–वक्ष पर विलम्बमयी राग–रंजित संध्या थिरकने लगी। चम्पा के असंयत कुन्तल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरुणबालिका! वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नई वस्तु का पता चला। वह थी–कोमलता!

उसी समय नायक ने कहा–''हम लोग द्वीप के पास पहुंच गये।''

वेला से नाव टकराई। चम्पा निर्भीकता से कूद पड़ी। मांझी भी उतरे। बुद्धगुप्त ने कहा–''जब इसका कोई नाम नहीं है तो हम लोग इसे चम्पाद्वीप कहेंगे।''

''चम्पा हँस पड़ी।

पाँच बरस बाद–

शरद के धवल नक्षत्र नील गगन में झिलमिला रहे थे। चन्द्र के उज्ज्वल विजय पर अन्तरिक्ष में शरदलक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया।

चम्पा एक उच्च सौध पर बैठी हुई तरुणी चम्पा दीपक जला रही थी। बड़े यत्न से अभ्रक की मज्जूषा में दीप धरकर उसने अपनी सुकुमार उंगुलियों से डोरी खींची। वह दीपाधार ऊपर चढ़ने लगा। भोली–भाली आंखें उसे ऊपर चढ़ते बड़े हर्ष से देख रही थी। डोरी धीरे–धीरे खींची गई। चम्पा की कामना थी कि उसका आकाशदीप नक्षत्रों से हिलमिला जाए; किंतु वैसा होना असंभव था। उसने आशभरी आंखें फिरा लीं।

सामने जलराशि का रजत शृंगार था। वरूण–बालिकाओं के लिए लहरों से हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैलमालाएँ बना रही थीं और वे मायाविनी छलनाएं अपनी हंसी का कलनाद छोड़ कर छिप जाती थीं। दूर–दूर से धीवरों की वंशी–झनकार सुनके संगीत सा मुखरित होता था। चम्पा ने देखा कि तरल संकुल जलराशि में उसके कंडील का प्रतिबिम्ब अस्तव्यस्त था! वह अपनी पूर्णता के लिए सैंकड़ों चक्कर काटता था। वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई। किसी को पास न देखकर पुकारा–''जया!''

एक श्यामा युवती सामने आकर खड़ी हुई। वह जंगली थी। नील नभोमण्डल से मुख में शुभ्र नक्षत्रों की पंक्ति के समान उसके दांत हंसते ही रहते। वह चम्पा को रानी कहती; बुद्धगुप्त की आज्ञा थी।

''महानाविक कब तक आवेंगे, बाहर पूछो तो।'' –चम्पा ने कहा, जया चली गई।

दूरागत पवन चम्पा के अंचल में विश्राम लेना चाहता था। उसके हृदय में गुदगुदी हो रही थी। आज न जाने क्यों वह बेसुध थी। एक दीर्घकाय दृढ़ पुरुष ने उसकी पीठ पर हाथ रख चमत्कृत कर दिया। उसने फिर कर कहा– ''बुद्धगुप्त!''

''बावली हो क्या? यहाँ बैठी हुई अभी तक दीप जला रही हो, तुम्हें यह काम करना है?''

''क्षीरनिधिशायी अनन्त की प्रसन्नता के लिए क्या दासियों से आकाशदीप जलवाऊ?''

''हंसी आती है। तुम किसको दीप जला कर पथ दिखलाना चाहती हो? उसको, जिसको तुमने भगवान् मान लिया है?''

''हाँ वह भी कभी भटकते हैं, भूलते हैं, नही ंतो बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते?''

''तो बुरा क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चम्पा रानी!''

''मुझे इस बंदीगृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य केवल तुम्हारे ही अधिकार में है महानाविक! परन्तु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पण्य लाद कर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे– इस जल में अगणित बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रभात में–तारिकाओं की मधुर ज्योति में–थिरकती थी। बुद्धुगुप्त! डस विजन अनन्त में जब मांझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे, हम तुम परिश्रम से थक कर पालों में शरीर लपेट कर एक दूसरे का मुंह क्यों देखते थे। वह नक्षत्रों की मधुर छाया–''

''तो चम्पा! अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते हैं। तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।''

''नहीं नहीं, तुमने दस्युवृत्ति छोड़ दी, परंतु हृदय वैसा ही अकरूण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान् के नाम पर हंसी उड़ाते हो। मेरे आकाशदीप पर व्यंग्य कर रहे हो। नाविक! उस प्रचण्ड आंधी में प्रकाश की एक एक किरण के लिए हम लोग कितने व्याकुल थे। मुझे स्मरण है, जब मैं छोटी थी, मेरे पिता नौकरी पर समुद्र में जाते थे– मेरी माता, मिट्टी का दीपक बांस की पिटारी में भागीरथी के तट पर बांस के साथ ऊँचे टांग देती थी। उस समय वह प्रार्थना करती–''भगवान्! मेरे पथ–भ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठीक पथ पर ले चलना।'' और जब मेरे पिता बरसों पर लौटते तो कहते–''साध्वी! तेरी प्रार्थना से भगवान् ने भयानक संकटों में मेरी रक्षा की है। वह गद्‌गद् हो जाती मेरी माँ! आह नाविक! यह उसी की पुण्यस्मृति है। मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण जलदस्यु! हट जाओ।'' –सहसा चम्पा का मुख क्रोध से भीषण होकर रंग बदलने लगा। महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था। वह ठठा कर हंस पड़ा।

''यह क्या चम्पा? तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो!''–कहता हुआ चला गया। चम्पा मुट्ठी बांधे उन्मादिनी सी घूमतीं रही।

निर्जन समुद्र के उपकूल में वेला से टकरा कर लहरें बिखर जाती हैं। पश्चिम का पथिक थक गया था। उसका मुख पीला पड़ गया। अपनी शांत गंभीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था। वह जैसा प्रकाश की उन्मलिन किरणों से विरक्त था।

चम्पा और जया धीरे–धीरे उस तट पर आकर खड़ी हो गई। तरंग से उठते हुए पवन ने उनके वसन को अस्तव्यस्त कर दिया। जया के संकेत से एक छोटी–सी नौका आई। दोनों के उस पर बैठते ही नाविक उतर गया। जया नाव खेने लगी। चम्पा मुग्ध सी समुद्र के उदास वातावरण में अपने को मिश्रित कर देना चाहती थी।

''इतना जल! इतनी शीतलता!! हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूंगी? नहीं। तो जैसे वेला से चोट खाकर सिन्धु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ? या जलते हुए स्वर्ण गोलक सदृश जल में डूब कर बुझ जाऊं?'' –चम्पा के देखते–देखते पीड़ा और ज्वलन से आरक्त बिम्ब धीरे–धीरे सिन्धु में, चौथाई–आधा फिर सम्पूर्ण विलीन हो गया। एक दीर्घनिश्वास लेकर चम्पा ने मुंह फेर लिया। देखा तो महानाविक का बजरा उसके पास है। बुद्धगुप्त ने झुक कर हाथ बढ़ाया। चम्पा उसके सहारे बजरे पर चढ़ गई। दोनों पास–पास बैठ गये।

''इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं। पास ही वह जलमग्न शैलखण्ड है। कहीं नाव टकरा जाती या ऊपर चढ़ जाती चम्पा, तो?''

''अच्छा होता बुद्धगुप्त! जल में बन्दी होना कठोर प्राचीरों से तो अच्छा है।''

''आह चम्पा, तुम कितनी निर्दयी हो! बुद्धगुप्त को आशा देकर देखो तो, वह क्या नहीं कर सकता। जो तुम्हारे लिए नये द्वीप की सृष्टि कर सकता है, नई प्रजा खोज सकता है, नये राज्य बना सकता है, उसकी परीक्षा लेकर देखो तो....कहो चम्पा! वह कृपाण से अपना हृदय–पिण्ड निकाल अपने हाथों अतल जल में विसर्जन कर दे!'' –महानाविक –जिसके नाम से बाली, जावा और चम्पा का आकाश गूंजता था, पवन थर्राता था–घुटनों के बल चम्पा के सामने छलछलाई आंखों से बैठा था।

सामने शैलमाला की चोटी पर, हरियाली में विस्तृत जल देश में, नील पिंगल संध्या, प्रकृति की सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया, स्वप्नलोक का सृजन करने लगी। उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण नीलजाल का कुहक स्फुट हो उठा। जैसे मदिरा से सारा अंतरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों से भर उठी। उस सौरभ से पागल चम्पा ने बुद्धगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिए। वहाँ एक आलिंग्न हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिन्धु का, किन्तु उस परिरम्भ में सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने अपनी कन्चुकी से एक कृपाण निकाल लिया।

''बुद्धगुप्त! आज मैं अपना प्रतिशोध का कृपाण अतल जल में डुबा देती हूँ। हृदय ने छल किया, बार–बार धोखा दिया!'' –चमक क रवह कृपाण समुद्र का हृदय बेधता हुआ विलीन हो गया।

''तो आज से मैं विश्वास करूँ? क्षमा कर दिया गया?''–आश्चर्य–कम्पित कण्ठ से महानविक ने पूछा।

''विश्वास? कदापि नहीं बुद्धगुप्त! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ! मैं तुम्हें घृणा करती हूं फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अन्धेर है जलदस्यु! तुम्हें प्यार करती हूँ।''–चम्पा रो पड़ी।

वह स्वप्नों की रंगीन संध्या, तुम से अपनी आंखें बन्द करने लगी थी। दीर्घनिश्वास लेकर महानाविक ने कहा–'इस जीवन की पुण्यमत घड़ी की स्मृति में एक प्रकाश–गृह बनाऊंगा चम्पा! यहीं उस पहाड़ी पर। सम्भव है कि मेरे जीवन की धुंधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाए।''

चम्पा के दूसरे भाग में एक मनोरम शैलमाला थी। वह बहुत दूर तक सिन्धु–जल में निमग्न थी। सागर का चंचल जल उस पर उछलता हुआ उसे छिपाए था। आज उसी शैलमाला पर चम्पा के आदि–निवासियों का समारोह था। उन सबों ने चम्पा को वनदेवी सा सजाए था। ताम्रलिप्ति के बहुत से सैनिक और नाविकों की श्रेणी में वन–कुसुम–विभूषिता चम्पा शिविकारूढ़ होकर जा रही थी।

शैल के एक ऊंचे शिखर पर चम्पा के नाविकों को सावधान करने के लिए सुदृढ़ दीप–स्तम्भ बनवाया गया था। आज उसी का महोत्सव है। बुद्धगुप्त स्तम्भ के द्वार पर खड़ा था। शिविका से सहायता देकर चम्पा को उसने उतारा। दोनों ने भीतर पदार्पण किया था कि बांसुरी और ढोल बजने लगे। पंक्तियों में कुसुम–भूषण से सजी वन–बालायें फूल उछालती हुई नाचने लगीं।

दीप–स्तम्भ की ऊपरी खिड़की से यह देखती हुई चम्पा ने जया से पूछा–''यह क्या है जया? इतनी बालिकाएँ कहाँ से बटोर लाई?''

''आज रानी का ब्याह है न?'' –कह कर जया ने हंस दिया।

बुद्धगुप्त विस्तृत जलनिधि की ओर देख रहा था। उसे झकझोर कर चम्पा ने पूछा– ''क्या यह सच है''?

''यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यह सच भी हो सकता है चम्पा! कितने वर्षों से मैं ज्वालामुखी को अपनी छाती से दबाए हूँ।''

''चुप रहो महानाविक! क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जानकर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा?''

''मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ चम्पा! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।''

''यदि मैं इसका विश्वास कर सकती! बुद्धगुप्त वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय! आह! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान होते!''

जया नीचे चली गई थी। स्तम्भ के संकीर्ण प्रकोष्ठ में बुद्धगुप्त और चम्पा एकान्त में एक दूसरे के सामने बैठे थे।

बुद्धगुप्त ने चम्पा के पैर पकड़ लिए। उच्छवसित शब्दों में वह कहने लगा–'चम्पा' हम लोग जन्मभूमि भारतवर्ष से कितनी दूर इन निरीह प्राणियों में इन्द्र और शंची के समान पूजित हैं, पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किए है। स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश! वह महिमा की प्रतिमा! मुझे वह स्मृति नित्य आकर्षित करती है; परन्तु मैं क्यों नहीं जाता? जानती हो, इतना महत्त्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूँ! मेरा पत्थर सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चन्द्रकान्त मणि की तरह द्रवित हुआ।

''चम्पा! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे एक बहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गई हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निबिड़तम में मुस्कराने लगी। पशु बल और धन के उपासक के मन में किसी शांत और कान्त कामना की हंसी खिलखिलाने लगी, पर मैं न हँस सका।

''चलोगी चम्पा? पोतवाहिनी पर असंख्य धनराशि लाद कर राज–रानी सी जन्मभूमि के अंक में? आज हमारा परिणय हो, कल ही हम लोग भारत के लिए प्रस्थान करें। महानाविक बुद्धगुप्त की आज्ञा सिन्धु की लहरें मानती है। वे स्वयं उस पोत–पुत्र को दक्षिण पवन के समान भारत में पहुंचा देंगी। आह चम्पा! चलो।''

चम्पा ने उसके हाथ पकड़ लिए। किसी आकस्मिक झटके ने एक पल भर के लिए दोनों के अधरों को मिला दिया। सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने कहा– ''बुद्धगुप्त! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है; सब जल तरल है; सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ, वैभवों का सुख भोगने के लिए और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले–भोले प्राणियों के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिए।''

''तब मैं अवश्य चला जाऊंगा, चम्पा! यहाँ रह कर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूं – इसमें संदेह है। आह! किन लहरों में मेरा विनाश हो जाए।'' महानाविक के उच्छ्वास में विकलता थी। फिर उसने पूछा–''तुम अकेली यहाँ क्या करोगी?''

''पहले विचार था कि कभी–कभी इस द्वीप–स्तम्भ पर से आलोक जलाकर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूंगी। किन्तु देखती हूँ मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाशदीप।''

एक दिन स्वर्ण रहस्य के प्रभात में चम्पा ने अपने दीप स्तम्भ पर से देखा– सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी म्पा का उपकूल छोड़ कर पश्चिम उत्तर की ओर महा जल व्याल के समान संतरण कर रही हैं। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।

यह कितनी ही शताब्दियों पहले की कथा है। चम्पा आजीवन उस दीप स्तम्भ में आलोक जलाती ही रही। किन्तु उसके बाद भी बहुत दिन, द्वीप–निवासी, उस मायाममता और स्नेह सेवा की देवी की समाधि सदृश उसकी पूजा करते थे।

एक दिन काल के कठोर हाथों ने उसे भी अपनी चंचलता से गिरा दिया।

3.3 व्याख्या

1 विश्वास?.....करती हूँ।

संदर्भ – प्रस्तुत पंक्तियाँ जयशंकर प्रसाद की 'आकाशदीप' कहानी से ली गई हैं।

प्रसंग – इन पंक्तियों में प्रसाद ने प्रेम और घृणा को एक साथ दो विरोधी प्रवृत्ति का सामंजस्य चित्रित कर एक नई कलात्मक उपलब्धि को स्पर्श किया है।

व्याख्या – बुद्धगुप्त चम्पा के प्रेम की प्राप्ति के लिए लालायित है। वह जानता है कि चम्पा के हृदय में उसके प्रति एक ही साथ प्रेम और घृणा दोनों ही भाव चरम सीमा पर आते हैं। वह चम्पा पर किसी प्रकार का दबाव डालकर उसे अपना बनाने के पक्ष में नहीं है। इसलिए वह चम्पा में परिवर्तन की प्रतीक्षा करता है। उधर चम्पा भी राग–विराग के भाव से हर पल उद्वेलित रहती है। एक संध्या को चम्पा बुद्धगुप्त के हृदय की कोमलता देख उससे प्रतिशोध लेने की भावना का परित्याग करती है तथा बदला लेने को छिपा रखा कृपाण जल में फेंकती हुई अपने मानसिक द्वन्द्व पर खीझ व्यक्त करती है। बुद्धगुप्त के यह पूछे जाने पर कि क्या उसने उसे क्षमा कर दिया है? यदि ऐसा है तो अब उसका उसे विश्वास कर लेना चाहिए। चम्पा अपने मानसिक द्वन्द्व को व्यक्त करती है। वह उसे स्पष्ट शब्दों में विश्वास नहीं करने को कहती है क्योंकि स्वयं उसे अपने पर विश्वास नहीं रहा। पुनः चम्पा कहती है कि वह अपने पिता के हत्यारे से न चाहकर भी प्रेम करती है। पर उससे घृणा भी वह करती रहती है चम्पा बुद्धगुप्त के लिए जान तक देने की बात कहती है। उसे अपनी चंचल मानसिक स्थिति पर आश्चर्य होता है तथा उसे प्यार करने पर वह पश्चाताप भी करती है। वह अपने हृदय के सामने विवश है कि वह न चाहते हुए भी बुद्धगुप्त को भूल नहीं पाती।

प्रस्तुत गद्यांश मे प्रसाद ने प्रेम और घृणा–इन दो परस्पर विरोधी भावों के अंतर्द्वन्द्व के मुखर स्वरूप को एक स्थान पर दिखाया है जो कला की उत्कृष्टता की चरम सीमा है।

चम्पा के हृदय में एक साथ प्रेम और घृणा के भाव चरम बिन्दु पर पहुंचकर उसे हिन्दी साहित्य की अविस्मरणीय नायिका के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

प्रस्तुत गद्यांश की भाषा तत्सम प्रधान है, जो प्रसाद की विशेषता है।

2 चम्पा हम लोग.....द्रवित हुआ है।

संदर्भ – पूवर्वत।

प्रसंग – इन पंक्तियों में प्रणय–भाव की मादकता पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या – बुद्धगुप्त से विवाह करने के प्रस्ताव को चम्पा स्पष्ट रूप से अस्वीकृत कर देती है। वह अपनी लाचारी का वर्णन मार्मिक शब्दों में करती है। उसके उत्तर को सुनकर बुद्धगुप्त अपने पर नियंत्रण नहीं रख पाता और अपने हृदय की समस्त भावनाओं को एक बार उसके समक्ष खोल देना चाहता है। बुद्धगुप्त मार्मिक शब्दों में अपने महान् भारत देश के सौंदर्य और आकर्षण की चर्चा करता है। सम्पूर्ण वैभव और ऐश्वर्य के बीच भी वह जिस दीनता का अनुभव करता है, वह उसे कंगाल बना देता है। वह चम्पा से स्पष्ट शब्दों में कहता है कि वह केवल उसी के प्रेम

के कारण अपने देश को लौटने में विलम्ब कर रहा है। चम्पा ने उसके पत्थर जैसे कठोर हृदय को भी अपने प्रेमरूपी चंद्रिका से द्रवित कर दिया है। अर्थात् उसे प्रेम में वह क्रूरता छोड़ विनयशील हो उठा है।

बुद्धगुप्त कहता है – चम्पा हमारी जन्मभूमि भारतवर्ष है। भारत से असंख्य मील दूर इस चम्पा द्वीप में इन भोलेभाले निरीह जन समुदाय के बीच हमारी प्रतिष्ठा है। ये भटके हुए, अभाव ग्रस्त लोग हमें इन्द्र और शची की तरह इस सुंदर देवलोक के समान द्वीप के राजा–रानी मान कर पूजते हैं, लेकिन वास्तव में अब तक हमारा मिलन नहीं हुआ है। पता नहीं वह कौन सा अभिशाप है जिसके कारण एक दूसरे को चाहते हुए भी हम मिल नहीं पा रहे हैं। मैं तुम्हारे प्रेम में पड़कर अपना देश छोड़ कर बैठा हूँ। न तूम्हें पा सका हूँ न देश लौट सकता हूँ। उस दार्शनिकों के देश भारत की बहुत याद आती है, उसकी महिमा अपार है। प्रतिदिन अपने देश की गौरवमयी परंपरा, संस्कृति, इतिहास और वर्तमान मुझे आकर्षित करते हैं, लेकिन मैं जा नहीं पाता हूँ। तुम जानती हो कि क्यों नहीं जा रहा हूँ। यहाँ सभी मुझे राजा जैसा सम्मान और प्रेम देते हैं, लेकिन मैं स्वयं को कंगाल अनुभव करता हूँ। मेरा हृदय पत्थर–सा था। जलदस्यु था मैं, भावनाहीन डाकू। लेकिन एक दिन नौका पर तुम्हारा स्पर्श ऐसा लगा जैसे किसी चन्द्रकांत मणि का स्पर्श हो गया हो, जिससे मेरे हृदय रूपी पत्थर में भी द्रवित होने की क्षमता उत्पन्न हो गई। तुम्हारे स्पर्श ने मेरे हृदय के पत्थर को पिंघला दिया और उसमें प्रेम की कोमल भावनाएँ उत्पन्न हो गयी। मैं तुमसे बंध कर रहा गया हूँ।

3 तारक खचित .....आंधी।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – बुद्धगुप्त जो ताम्रलिप्ति का क्षत्रिय था, किसी कारण से दस्यु–वृत्ति स्वीकार कर लेता है। मणिभद्र के प्रहरी चम्पा के पिता ने उस समय अत्यधिक वीरता दिखाई थी, जब बुद्धगुप्त ने आक्रमण किया था और वे वहीं वीरगति को पाकर जलसमाधि में लीन हो गए, पर बुद्धगुप्त बंदी बना लिया गया था। जलपोत पर चम्पा उसे मुक्त कराती है। मुक्त बंदी अंधकार में उसे गले लगाता है और सहसा कह उठता है– यह क्या, तुम तो स्त्री हो! वह कहती है, स्त्री होना क्या कोई पाप है। नाव के रज्जू को काटकर मुक्त हो जाते हैं।

व्याख्या–समुद्र में उस समय तुफान उठ रहा था। तारों से युक्त आकाश में और नीले समुद्र के ऊपर हवा जोरों से चल रही थी। इसी अंधकार का साथ पाकर हवा और अधिक जोरों से चलकर दुष्टता दिखा रही थी। वायु के प्रकोप, लहरों की भीषणता के कारण नौका लड़खड़ा कर व्याकुल हो रही थी। स्त्री (चम्पा) बड़ी सतर्कता से लुढ़कने लगी। वह इस क्रम में एक मदमस्त नाविक के शरीर से (जो वहीं सो रहा था) टकरा भी गई पर उसने बड़ी सावधानी से उसका कृपाण हस्तगत कर लिया, फिर उसी प्रकार लुढ़कती हुई उस बंदी के समीप पहुंची, जिसे उसने अभी–अभी मुक्त किया था। उसी समय पोत का पथ–प्रदर्शक घोषणा करता है कि आंधी आ रही है। सभी सावधान हो जाते हैं।

4 सामने जल–राशि.....काटता था।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – चम्पा एक दीपाधार पर डोरी के सहारे आकाशदीप प्रतिष्ठित कर रही थी। उस समय सागर की लहरें पर्वत से टकराकर जो सौन्दर्य उत्पन्न कर रहीं थी, उसके सौन्दर्य का कलात्मक और काल्पनिक चित्रण प्रसाद जी ने इन पंक्तियों में किया है।

व्याख्या –चम्पा के सामने जल इस तरह सुशोभित था, मानों उसका चांदी से श्रृंगार किया गया है। लहराती और उछलती तरेंगों का जल परस्पर टकराकर जो जलकरण छितरा रहा था, वे ऐसे लगते थे मानों समुद्र में नीलम और

हीरे बिखरे हुए हों। दूर तक फैली जलराशि का विस्तार इतना सघन था कि उन्हें देखकर आंखें चौंधिया उठती थी। मानों नीलम और हीरों की पर्वत चोटियाँ उभर आई हों तथा वरूण–बालाओं के शृंगार हेतु उन हीरों और नीलमों को मुक्तहस्त से लूटा रही हैं। लहरों की ध्वनि और क्रीड़ा ऐसी लगती थी कि कोई मायावी छलना (रूप राशि) अपनी कल–कल हंसी बिखेरकर जल में छिप गई हो। सागर तट पर जो धींवर (मल्लाह) थे, वे इधर–उधर दूर–दूर थे। दूर से आती उनकी वंशी की झनकार ऐसी लगती थी मानों इन मायावी छलनाओं का मधुर संगीत मुखरित हो रहा हो। चम्पा ने देखा कि तरल जलराशि में उसके दीप का प्रतिबिम्ब स्थिर नहीं है। वह इधर–उधर हिलता हुआ ऐसा लग रहा था, मानो पूर्णता पाने के लिए वरूण–बालिकाएँ वात्सल्य की सुंदर सृष्टि की है।

5 निर्जन समुद्र .....विरक्त था।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग –चम्पा के जीवन की सबसे त्रासद घटना उसे पिता का वध है, जो कि उसे कचोटती रहती है। इसका कारण वह जलदस्यु बुद्धगुप्त को मानती है। पिता की स्मृति आते ही उसके मुखमण्डल पर जो अनेकानेक भाव उभरते हैं, उसका साम्य प्रकृति से करते हुए प्रसाद जी ने इन पंक्तियों में प्रकृति के वातावरण की सुंदर अवतारणा की है।

व्याख्या – उपरोक्त गद्यांश में प्रकृति का सुरम्य चित्रण करते हुए प्रसाद जी लिखते हैं कि निर्जन, समुद्र के किनारों से लहरें टकरा रही थीं। ये लहरें टकराकर इधर–उधर बिखर जाती थीं। पश्चिम का पथिक अर्थात् सूर्य अपनी दिनभर की यात्रा पूरी करने के उपरांत अब थक गया था। स्वाभाविक था कि अस्तांचलगामी सूर्य का फीका तेज उसकी थकान की स्थिति को स्पष्ट कर रहा था। उसका (सूर्य का) निस्तेज मुख पीताभा था, मानो गहरी थकान के कारण कष्ट और क्लेश के कारण उसका मुख पीला पड़ गया हो। यह अस्ताचलगामी सूर्य नासिका के जीवनाकाश से नायक के भावी प्रमाण का संकेत दे रहा है।

संध्या के शांत वातावरण में सागर की गंभीरता और बढ़ गई थी। सागर अपनी गंभीरता के लिए स्वतः प्रसिद्ध है। उसकी गंभीरता ऐसी लगती थी, मानो वह किसी गहन–गंभीर विचार में निमग्न है। अस्तःचलगामी सूर्य की किरणें उस पर पड़कर एक विशिष्ट सौन्दर्य की सृष्टि कर रही थी, पर वह सागर विचार–मग्नता के कारण उस सौन्दर्य से सर्वथा विरक्त था।

चम्पा अपनी सखी जया के साथ सागर–तट पर आकर खड़ी हुई है। जो स्थिति सागर की है। ठीक वही स्थिति और मनोदशा चम्पा की भी है। समस्त प्रकृति की श्री–शोभा, बुद्धगुप्त का ऐश्वर्य और चम्पा के प्रति उसका प्यार–उसे कुछ भी उद्वेलित नहीं कर पा रहा है, वह सब वैसे ही बिखर जाता है, जैसे लहरें समुद्र के किनारों से टकराकर बिखर जाया करती हैं।

6 इतना जल.....मुंह फेर लिया।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण में प्रकृति के अद्भुत वैभव की पराकाष और बुद्धगुप्त के परिपूर्ण समर्पणयुक्त प्यार के प्रति चम्पा की विरक्ति की भावना व्यक्त की गई है। यह समस्त तत्व उसके हृदय को शीतलता देने में असमर्थ है। दूसरे अंश में सूर्य के डूब जाने से उसकी आन्तरिक पीड़ा की गहन वेदना व्यक्त हो रही है।

व्याख्या – प्राकृतिक सुषमा, चारों ओर विस्तृत अपार जलराशि, जल के कारा उत्पन्न वातावरण की शीतलता, मुग्धता, मधुरिमा चम्पा को कोई आनन्द नहीं दे रहे हैं; क्योंकि यह जल और उसकी शीतलता दोनों मिलकर भी उसके हृदय की प्यास नहीं बुझा सकते। प्यास जल–पान से बुझती है, पर क्या चम्पा अपने हृदय की प्यास बुझाने

को इस शोभाश्री, ऐश्वर्य, जल शीतलता को पी सकेगी, कदापि नहीं। हृदय की प्यास अन्तःकरण की शांति से बुझती है और चम्पा के मन में शांति नहीं है।

चम्पा का चिन्तन दूसरी ओर मुड़ता है। समुद्र की लहरें टकराकर तीव्र ध्वनि कर रही हैं, मानो समुद्र भी चम्पा के समान कुछ न कर पाने की विवशता के कारण रोदन कर रहा हो। चम्पा सोचती है कि क्या वह भी अपनी विवशता पर सागर के समान ही रोये। दूसरी ओर सूर्य डूबता दिखाई देता है। चम्पा सोचती है कि इसी स्वर्ण–गोलक (सूर्य) के समान अपनी सारी जलन लिए क्या मैं भी जल में डूबकर बुझ जाऊँ और अपने अस्तित्व को सदा के लिए समाप्त कर दूँ, ताकि अन्तर्द्वन्द्व की पीड़ा की जलन से छुटकारा मिल सके। धीरे–धीरे सूर्य अस्त होने लगा। लगता था जैसे वह भी अपनी आंतरिक पीड़ा और जलन से आसक्त हो उठा है। जलता हुआ लाल गोला बना सूर्य पहले चौथाई फिर आधा, फिर पूरा डूब गया और एक गहरी पीड़ा भरी निःश्वास लेकर चम्पा ने उधर से मुंह फेर लिया, क्योंकि इस दृश्य ने उसकी पीड़ा इतनी अधिक बढ़ा दी की वह उसे देख भी न सकी।

7 नील–पिंगल संध्या.....हाथ पकड़ लिए।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – ये पंक्तियाँ चम्पा और बुद्धगुप्त की मनोदशा को व्यक्त कर रही है। चम्पा अपने पिता की हत्या का कारण बुद्धगुप्त को मानती है, उधर बुद्धगुप्त ने उसके (चम्पा) प्रति पूर्ण समर्पण किया है और चम्पा का हृदय भी आहत हुआ है, उसका अन्तर्द्वन्द्व उसे कचोटता रहा है।

एक छोटी–सी नाव में चम्पा और उसकी सखी जया सागर में घूम रही हैं। सहसा महानाविक बुद्धगुप्त का बजरा आता है। बुद्धगुप्त ने झुककर हाथ बढ़ाया और चम्पा उस बजरे पर चढ़ गई। जब उसने चम्पा से यह कहा कि इस तरह घूमना उचित नहीं है, क्योंकि सामने शिलाखण्ड है, उससे टकरा जाने पर पता नहीं क्या होगा। इस पर चम्पा के मन में जीवन के प्रति जो उदासीनता है, उसका भाव सहसा प्रकट हो जाता है– वह अपने जीवन को कठोर प्राचीरों का बन्दी स्वीकार करती है। बुद्धगुप्त भावुक हो उठता है और उसकी वह भावुकता तथा प्रणय की निश्छलता सहसा चम्पा को क्षणभर के लिए बुद्धगुप्त के निकट ले आती है।

व्याख्या – चम्पा की उदाशीनता और इस जीवन के प्रति विराग जैसी स्थिति बुद्धगुप्त को व्याकुल और व्यथित कर देती है। उसकी यह पीड़ा चम्पा के प्रतिशोध की ज्वाला को कुछ कम करके उसके हृदय के कुछ करीब ले आती है। उस समय का सुरम्य वातावरण इन भावुकता के विशिष्ट क्षणों में चम्पा के मन में बुद्धगुप्त के प्रति प्रेम की भावना जगाने में समर्थ हो उठा है। प्रकृति का वातावरण निःसंदेह मादक है। सामने की पर्वतमाला की चोटियों पर फैली हरियाली पर सूर्य की किरणें एक विशेष प्रकार की आभा का सृजन कर रही थीं। वह दृश्य ऐसा लग रहा था–मानो कोई स्वप्नलोक उभर आया हो। वे सूर्य की किरणें जल पर पड़कर संध्या के संपूर्ण वातावरण को सुनहरा बना रही थीं। ऐसा लग रहा था, मानों प्रकृति अपने सम्पूर्ण हृदय की उदारता किरणों के रूप में चारों ओर बिखेर रही है। यह दृश्य स्वप्नलोक की आभा–सा प्रतीत हो रहा था। प्रकृतिरूपी मोहिनी मानों कुछ कहने को व्याकुल हो रही हो। आकाश और सागर के जल की नीलिमा और अस्ताचलगामी सूर्य की किरणों की पीली छटा ऐसा मादक वातावरण उपस्थित कर रही थी कि लगा, जैसे आकाश मदिरा से सिक्त हो उठा है, धीरे–धीरे अस्ताचल की ओर जा रहे सूर्य का क्षीण बिम्ब इस वातावरण में ऐसा सौन्दर्य उपस्थित कर रहा था, मानों सारी सृष्टि में सर्वत्र नीलकमल बिखर गए हों ऐसे रम्य–सौरभयुक्त वातावरण में चम्पा ने सहसा बुद्धगुप्त को ही थाम लिया अर्थात् ऐसे उन्मुक्त और मादक वातावरण में चम्पा स्वयं को रोक नहीं पाई और भावावेश में बुद्धगुप्त के समीप आकर उसको पाने के लिए उसके हाथ पकड़ लेती है। मादक वातावरण ने दोनों प्रेमी हृदयों को निकट आने का अवसर दिया है।

8 बुद्धगुप्त ने .....द्रवित हुआ है।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण में दर्शाया गया है कि जो चम्पा बुद्धगुप्त को अपने पिता का घातक समझती थी, उसकी वीरता और विश्वास को अपने प्रति देखकर उसे क्षण भर के लिए क्षमा कर देती है। इस पर बुद्धगुप्त उससे अपने मन के भावों को व्यक्त करता हुआ कहता है।

व्याख्या – जब स्तम्भ के संकीर्ण प्रकोष्ठ में बुद्धगुप्त और चम्पा एकान्त में एक–दूसरे के सामने बैठे थे तो भावुकता से द्रवित होकर बुद्धगुप्त ने चम्पा के पैर पकड़ लिए और भावावेगयुक्त उछ्वासित शब्दों में वह बोला–चम्पा हम लोग अपनी प्रिय जन्मभूमि भारत से कितनी दूर हैं और इन अपरिचित प्राणियों के बीच शची और इन्द्र के समान पूजे जाते हैं, पर न जाने किस भय और अभिशाप में हम साथ रहकर भी एक–दूसरे से अलग हैं (अर्थात् हम उस भाव से नहीं मिल सके, जिस भाव से हमें मिलना चाहिए था। मुझे अपना देश याद आता है, जो दार्शनिकों की भूमि है। वह देश साक्षात् महिमा की प्रतिमा है। अर्थात् उसकी महिमा अपार है। उस पावन देश की स्मृति मुझे नित्य आकर्षित करती है) फिर भी वहाँ नहीं जा पाता, न जाने कौन–सी विवशता मुझे वहाँ जाने से रोक रही है।

बुद्धगुप्त अपनी मानसिक गहन पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहता है कि वह इतना वैभव, ऐश्वर्य और सम्मान पाकर भी कंगाल है, उसे कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। वह अपनी कठोर दस्यु प्रवृत्ति को त्यागकर भी चम्पा के प्यार और हृदय की शांति के लिए तरस रहा है। उसका हृदय पाषाण के समान था, क्योंकि वह क्रूर–वृत्ति का जलदस्यु था, पर चम्पा के स्पर्श से उसका वह पत्थर जैसा हृदय ऐसे ही द्रवित हो गया था, जैसे शीतल चांदनी का स्पर्श पाकर चन्द्रकान्त मणि शोभाश्री युक्त हो उठती है। चम्पा के प्रेम ने बुद्धगुप्त के पाषाण हृदय को मोम बना दिया है। वह पिघल रहा है। उसमें प्रेम की आग है। उष्मा है।

9 चम्पा! मैं .....हंस सका।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – प्रसाद की इन पंक्तियों में चम्पा और बुद्धगुप्त के प्रेम के एक ऐसे पक्ष को प्रस्तुत किया गया है, जो सर्वथा स्वच्छन्द है। उसे 'विषम प्रेम' की संज्ञा भी नहीं दी जा सकती; क्योंकि दोनों ही एक दूसरे से प्यार करते हैं, पर चम्पा अभी भी पूर्णतः समर्पित नहीं है, क्योंकि वह बुद्धगुप्त को अपने पिता का हत्यारा मानती है। वह द्वेषमयी–प्रेम की अनुभूति से आहत है, उसी कारण वह अपने वक्ष में सदैव कटार रखती है।

इस स्थल पर बुद्धगुप्त चम्पा के पैर पकड़कर अपने हृदय के समस्त उद्गारों को उसके चरणों में समर्पित कर रहा है। वह कहता है कि वह निःसंदेह कठोर हृदय था, कभी उसने ईश्वर को स्वीकार नहीं किया, किंतु आज वह अपने हृदय को अत्यंत दुर्बल महसूस कर रहा है। दूसरी ओर उसके मन में रह–रहकर भारत की याद उभर रही है। वह चम्पा से वहाँ जाने की अनुमति मांग रहा है।

व्याख्या – बुद्धगुप्त का दस्यु–हृदय कठोर तो था ही। ऐसा कठोर हृदय पाप–पुण्य को स्वीकार नहीं करता। यदि वह ऐसा करे तो फिर हत्या और दस्युवृत्ति कैसे हो सकी है? जब व्यक्ति पाप–पुण्य को स्वीकार नहीं करता तो वह ईश्वर के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करता। बुद्धगुप्त अपनी इस वास्तविक स्थिति का उल्लेख इन पंक्तियों में करते हुए कहता है कि वह न तो पाप–पुण्य को स्वीकार करता है, न ही ईश्वर को; इसके साथ ही परलोक तथा पाप–पुण्य को स्वीकार करता है, न ही ईश्वर को; इसके साथ ही परलोक तथा पाप–पुण्य आदि की बातों को भी वह कदापि स्वीकार नहीं करता। अर्थात् उसका हृदय पूर्णरुपेण वज्र के समान कठोर है, पर इस कठोर हृदय में भी 'श्रद्धा' का उदय हुआ है। अर्थात् उसमें चम्पा के प्रति 'श्रद्धा' की भावना फूट चुकी है। शून्य में जैसे कोई तारिका उदित होकर उसे आलोकित कर देती है, उसी प्रकार चम्पा ने एक बहकी हुई तारिका के समान उदित होकर बुद्धगुप्त के अनतःस्थल, जो सूने आकाश के समान था, क्योंकि उसमें अब तक कोई 'कोमल भावना' नहीं थी, को

आलोकित कर दिया है। वह और अधिक भावुक होकर कह उठता है कि उसके हृदय में जो अंधकार व्याप्त था, उसमें अब एक आलोक की रेखा मुस्कुराने लगी है। वह अब तक पूर्ण आततायी था। पशुबल का उपासक था, दस्युवृत्ति वाला था, अतः धन ही उसके जीवन का सर्वस्व था। उसके मन में कभी कोमल, स्निग्ध भावना नहीं जगी थी, पर चम्पा के आगमन से या उसके जीवन में पदार्पण करने से उसके जीवन में भारी परिवर्तन आ गया है और जीवन में शांति की कामना ने अपने पैर फैला लिए हैं। एक पुलक विकसित हुई है, जिसने उसे गुदगुदाया है, पर वह हंस न सका; क्योंकि चम्पा का समर्पण अभी अधूरा है, उसका हृदय उसके लिए छटपटा रहा है, तड़प रहा है। चम्पा उससे प्रेम तो करती है लेकिन उसने स्वीकार नहीं किया है।

3.4 चरित्र–चित्रण

कथावस्तु की ही भांति पात्रों का भी कहानी में विशेष महत्त्व होता है। कहानीकार अपनी स्थापनाओं और मान्यताओं को इन्हीं पात्रों के माध्यम से प्रेषित करता है। जिससे कलात्मकता में वृद्धि होती है। 'आकाशदीप' कहानी में दो प्रमुख पात्र हैं– बुद्धगुप्त और चम्पा। प्रसाद जी ने अपनी स्थापनाओं को चम्पा के माध्यम से प्रस्तुत किया है पर बुद्धगुप्त के द्वारा भी उन्होंने एक विशेष दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। इन दोनों पात्रों के चरित्र पर ध्यान देने पर कई बातें उभरती हैं।

3.4.1 बुद्धगुप्त

ताम्रलिप्ति का क्षत्रिय बुद्धगुप्त जलदस्यु था जो चम्पा के प्रेम के कारण भावुक पुरुष में परिवर्तित हो गया और उसने बुरे कार्य छोड़ दिए। वह ईमानदार और नीतिवान था। वह निःशस्त्र शत्रु पर प्रहार नहीं करता तथा चम्पा से उसे कृपाण देने के लिए कहता है। वह शक्ति सम्पन्न, पौरुषयुक्त है। वह भावुक प्रेमी होने के साथ, देशभक्त है। वह मर्यादा का ध्यान रखते हुए चम्पा की इच्छा के विरूद्ध उसे पाने का कोई प्रयत्न नहीं करता। अंत में चम्पा को द्वीप पर छोड़कर जाता हुआ बुद्धगुप्त कमजोर मनुष्य लगता है जो अपनी प्रिय की रक्षा, और एकाकी जीवन का ध्यान न रखते हुए उसे छोड़कर चला जाता है।

बुद्धगुप्त के माध्यम से प्रसाद ने पुरुष–मन का बड़ा ही सटीक चित्रण किया है। बुद्धगुप्त एक वीर पुरुष है। उसमें सद्–असत् का विवेक सदा विद्यमान रहता है। तभी वह नायक से द्वन्द्व युद्ध के समय चम्पा को संकेत करता है कि उसे कृपाण दे दे। इसी प्रकार वह चम्पा के प्रति तीव्र आकर्षण का अनुभव करते हुए प्रणय की आग में जलता रहता है और अन्ततः निराश मन स्वदेश को लौट पड़ता है किन्तु वह चम्पा पर शक्ति–प्रयोग नहीं करता वरन् वह विनम्रता की चरम सीमा पर पहुँच जाता है। वह केवल चम्पा की निर्दयता का उल्लेख करके ही रह जाता है जो प्रायः हर प्रेमी करता है –

''आह चम्पा, तुम कितनी निर्दयी हो! बुद्धगुप्त को आज्ञा देकर देखो तो वह क्या नहीं कर सकता? जो तुम्हारे लिए नये द्वीप की सृष्टि कर सकता है, नई प्रजा खोज सकता है, नया राज्य बना सकता है, उसकी परीक्षा लेकर देखो तो....कहो चम्पा! वह कृपाण से अपना हृदय–पिण्ड निकाल अपने हाथों अतल जल में विसर्जन कर दे।''

बुद्धगुप्त उे कृतज्ञ पुरुष है। चम्पा की सहायता से ही वह जलदस्यु–लोगों की कैद से मुक्त हो पाया था। अतः वह चम्पा को 'प्राणदात्री' कहता है। यहाँ यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि प्रसाद ने बुद्धगुप्त के मन में चम्पा की चारित्रिक दृढ़ता के ही कारण और अधिक ललक पैदा की है। वास्तव में यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि पुरुष नारी के स्थूल शारीरिक सौंदर्य के प्रति जितनी तीव्रता से आकर्षित होता है उससे कहीं अधिक आकर्षण उसमें नारी की चारित्रिक दृढ़ता, वैचारिक उदारता आदि से उत्पन्न होता है। बुद्धगुप्त जब चम्पा में कोमलता के साथ ही कठोरता का भी मिश्रण पाता है तो उसका आकर्षण जैसे दुगुना हो उठता है। चम्पा जितनी ही दूर जाती है, बुद्धगुप्त उतना ही अधीर होकर उसकी प्राप्ति के लिए यत्न करता है।

बुद्धगुप्त के चरित्र की विनम्रता जितनी आकर्षक है, उसका चरित्र उतना विश्वसनीय रूप में उभर नहीं पाया है। सम्भवतः इसके मूल में प्रसाद की नारी–भावना ही सक्रिय है, जो नारी को सदा अधिक महत्त्व देना चाहती है। उदाहरणार्थ, शक्ति और सामर्थ्य से सम्पन्न बुद्धगुप्त का चम्पा के पैर पकड़कर प्रणय की भीख मांगना कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण एवं अस्वाभाविक लगता है। प्रणय में विफल होने पर नारी यदि विकराल रूप धारण कर सकती है तो पुरुष के विषय में भी यह बात उतनी ही सार्थक होनी चाहिए। पर बुद्धगुप्त बिना प्रतिक्रिया चम्पा के बिना चम्पा–द्वीप छोड़ देता है।

प्रसाद दी ने बाह्य संघर्ष की अपेक्षा मानसिक संघर्ष को सर्वाधिक महत्त्व दिया है।

3.4.2 चम्पा

चम्पा नगर की क्षत्रिय बालिका है। उसके पिता मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का कार्य करते थे। माँ की मृत्यु के बाद वह अपने पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी क्योंकि उसके कोई भाई–बहन नहीं थे। वह अकेली संतान थी। आठ वर्ष तक वह पिता के साथ नाव पर ही रही। वह सुशील, सुंदर और मर्यादित युवती थी। बुद्धगुप्त जो जलदस्यु था उसने नाव पर आक्रमण किया तब चम्पा के पिता उन जलदस्युओं को मारकर स्वयं भी मृत्यु को प्राप्त हुए। चम्पा अनाथ हो गयी तब मणिभद्र ने उसे घृणित प्रस्ताव देकर अपने अधीन करना चाहा लेकिन चम्पा ने उसे गालियाँ दी। उसका विरोध किया तो मणिभद्र ने उसे बंदी बनाकर नाव पर ही रखा जहाँ उसकी बुद्धगुप्त से मुलाकात हुई। समुद्र में अचानक तूफान आने से बुद्धगुप्त और चम्पा संघर्ष करके मुक्त हुए, नाव पर अधिकार किया और दूर जाकर चम्पा द्वीप बसाकर रहने लगे।

चम्पा क्या बुद्धगुप्त को पिता का हत्यारा मानकर उससे प्रतिशोध लेना चाहती है लेकिन स्त्री सुलभ कोमलता के कारण ऐसा नहीं कर पाती। चम्पा दृढ़ चरित्र की मर्यादित स्त्री है वह पूर्वजों की दी गई सीख और परंपरा का सम्मान करती है इसलिए माँ की तरह वह भी 'आकाशदीप' प्रज्ज्वलित करती और ऊंचे स्तम्भ पर टांग देती है ताकि रात्रि में भटके मुसाफिर को राह मिल सके। चम्पा बुद्धगुप्त से एकनिष्ठ प्रेम करती है। वह धन और सम्मान की लालची नहीं है। चम्पा प्रकृति प्रेमी है। कर्मठ और संघर्षशील होने के कारण ही वह नौका पर मणिभद्र के साथियों से मुकाबला कर स्वयं को और बुद्धगुप्त को मुक्त कराती है। चम्पा में स्त्रियोचित दर्प है। वह मानती है कि स्त्री प्रेम कर सकती है लेकिन अवसर आने पर कृपाण भी चला सकती है। अपनी मर्यादा की रक्षा के निमित्त स्त्री चंडी बन सकती है। उसमें घर बसाने की चाह है लेकिन त्याग और स्वाभिमान भी प्रबल है इसलिए वह द्वीप पर अकेली लोक सेवा के लिए रुक जाती है। चम्पा की आत्मदृढ़ता के पीछे एक कोमल–हृदय नारी भी है, इसलिए बुद्धगुप्त को जाते देखकर उसकी आंखें भर आती हैं।

चम्पा का चरित्र आकर्षक और मोहक है। वह एक संपूर्ण भारतीय नारी है। वह सच्ची और ईमानदार है तथा स्पष्ट वक्ता भी है। चम्पा प्रसाद जी की अनुपम सृष्टि है। इस कहानी में अनत तक चम्पा जिस अभूतपूर्व अन्तर्द्वंद्व से ग्रस्त रहती है उसके कारण वह हिन्दी कहानी–साहित्य की एक स्मरणीय नायिका बन गयी है। वास्तव में प्रसाद जी ने चम्पा को एक साथ प्रेम और घृणा के जिस अव्यक्त भाव से आकुल चित्रित किया है, वह उनके चरित्र–चित्रण में रचनात्मक कौशल को पराकाष्ठा पर पहुंचा देती है। चम्पा जब कहती है –

''मैं तुम्हें घृणा करती हूँ। अंधेर है जलदस्यु! तुम्हें प्यार करती हूँ।'' तब चम्पा का चरित्र अविस्मरणीय बन जाता है।

3.5 आलोचना

तात्विक विवेचन – कहानीकार, कवि, उपन्यासकार प्रसाद की यह कहानी अद्‌भुत है। भावात्मक अन्तर्द्वंद्व, कर्त्तव्य और रोमानी वातावरण की कहानी लिखने वालों में प्रसाद अग्रगण्य है। मूलतः तो प्रसाद कवि थे और उसके बाद

उनका नाटककार का रूप अधिक मुखर है। कविता उनके जीवन में इतनी व्याप्त थी कि उनकी कहानियों का वातावरण भी काव्यमय और भाषा भी काव्यात्मक होती है। उनकी कहानियों का आधार प्रायः ऐतिहासिक होता है। ऐतिहासिक श्रुतियों या तथ्यों के आधार पर वे कथानक की रचना करते हैं और फिर उसमें किसी आदर्श का आरोप कर देते हैं। मुंशी प्रेमचन्द की तुलना में इनकी कहानियों में यथार्थ नगण्य होता है और आदर्श अधिक। यथार्थवादी स्वर के अभाव में भी उन्होंने मार्मिक और सफल कहानियों की रचना की है। यह कहानी प्रेम के आदर्शवादी स्वरूप को प्रस्तुत करती है। यह हिन्दी कथा साहित्य के आरंभिक दौर की महत्त्वपूर्ण कहानी है। जो रोमांटिक आदर्शवादी रूप शिल्प के कारण एक नये भावनात्मक लोक की सृष्टि करती है। छायावादी काव्य की मूल विशेषता राष्ट्रीयता थी। इसी देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता के भावों का प्रेम के साथ अद्‌भुत सामंजस्य इस कहानी में दिखाई देता है कहानी में उदात्तता के भाव हैं, कवित्व–मयी दार्शनिकता है, चित्रात्मक वातावरण है जो कहानी को जीवंत बनाता है। इसकी विषय–वस्तु, पात्र–योजना, घटना–विधान, भाषा, परिवेश आदि सब कुछ कलात्मक एवं प्रवाहपूर्ण है। प्रसाद जी की कहानियों में त्याग, सेवा, बलिदान, सहानुभूति जैसे मानवीय मूल्यों की प्रचरता होती है। जो ऐतिहासिक घटनाओं की आधरशिला बनकर उन्हें नव जीवन देती है। नायिकाओं का अंतर्द्वंद्व उन्हें अंततः उच्च भाव भूमि पर प्रतिष्ठित करता है– वह चम्पा हो या मधूलिका। प्रसाद जी पात्रों को गरिमामयी व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। उनके पात्र कर्त्तव्य, प्रेम, व्यक्तिगत प्रेम और देशप्रेम के द्वन्द्व में घिरकर अंततः देशप्रेम को, कर्त्तव्य को ही महत्त्व देते हैं। इस द्वन्द्व की पराकाष्ठा उनकी कहानियों में दिखाई देती है।

प्रसाद का उद्देश्य प्रेम का उदात्तीकरण है। इसलिए उनकी नायिकाएँ असाधारण निजत्व का प्रदर्शन करती हैं। उनके पात्र कर्त्तव्यनिष्ठ, दृढ़, आत्मविश्वास से भरे मर्यादित, तेजस्वी होते हैं। शिल्प की दृष्टि से, प्रसाद जी की कथा संरचना में भाषा महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। तत्सम शब्दावली, चित्रात्मक ओजपूर्ण भाषा, कौतूहल, नाटकीयता, सूक्ष्म सांकेतिकता आदि प्रसाद जी की कहानियों को जीवंतता प्रदान करने के साथ रोचक एवं अविस्मरणीय बनाते हैं। प्रसाद की कहानी सामाजिकता के साथ सोद्देश्यता के गुणों से युक्त होती हैं उनमें कहीं कोई शिथिलता या अवरोध दिखाई नहीं देता। प्रसाद की कहानियों में 'आकाशदीप' का विशेष स्थान है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. 'आकाशदीप' शीर्षक का औचित्य स्पष्ट कीजिए।
2. चंपा द्वीप का नामकरण किसने और क्यों किया?
3. चंपा और बुद्धगुप्त का विवाह क्यों नहीं हो पाया?
4. चम्पा को 'आकाशदीप' जलाने की प्रेरणा किससे मिली?
5. 'आकाशदीप' कहानी का परिवेश कैसा है?

3.6 सारांश

'आकाशदीप' कहानी का आरंभ अत्यन्त मनोरंजक शैली में होता है। नायक बुद्धगुप्त और नायिका चम्पा दोनों बन्दी हैं दोनों एक नाव में बंधे हुए हैं। वे जलदस्युओं के अधीन हैं तथा छूटने का प्रयास कर रहे हैं। अचानक समुद्र में तूफान आता है, अफरातफरी मचती है और वह दोनों एक–दूसरे की सहातया कर बन्धन मुक्त हो जाते हैं। बुद्धगुप्त और चम्पा मुक्त होने की खुशी में आलिंगनबद्ध होते हैं। बुद्धगुप्त एक सुखद आश्चर्य से भरकर पूछता है– ''यह क्या? तुम स्त्री हो? ''क्या स्त्री कोई पाप है?'' अपने को अलग करते हुए चम्पा उत्तर देती है। दोनों मिलकर उस पोताध्यक्ष मणिभद्र, जिसने उन दोनों को बन्दी बना रखा था, को पोत सहित समुद्र में डुबाने में सफल होते हैं। नाविक–गण बन्दी बुद्धगुप्त को मुक्त हुआ देख पुनः उसे बन्दी बनाना चाहते हैं। बुद्धगुप्त स्वयं को नौका का स्वामी

घोषित करता है। फलतः नायक द्वन्द्व–युद्ध करने उतर पड़ता है। चम्पा ने पहले ही नायक का कृपाण चुरा लिया था, अतः नायक हतप्रभ हो उठता है वीर बुद्धगुप्त चम्पा को संकेत द्वारा नायक को कृपाण देने के लिए कहता है क्योंकि शस्त्रहीन पर प्रहार करना उसकी नीति के विरूद्ध है। कृपाण पाकर नायक सम्पूर्ण शक्ति से बुद्धगुप्त को परास्त करना चाहता है, पर उसकी एक नहीं चलती। बुद्धगुप्त उसे भूमिसात् कर कृपाण दिखाकर कम्पित कर देता है। नायक बुद्धगुप्त को स्वामी स्वीकार करता है तथा वरुणदेव की सौगन्ध खाकर विश्वासघात न करने का वचन देता है। चम्पा अपने सुखद आश्चर्य से, स्पर्श से बुद्धगुप्त के विक्षत शरीर को वेदना–रहित कर डालती है। वह नाव बाली द्वीप होती हुई एक अज्ञात द्वीप के निकट पहुंचती है। लंगर डाल दिया जाता है। यहाँ एक जलमग्न शिलाखण्ड की जानकारी पराजित नायक बुद्धगुप्त को देता है जिससे नाव टकराकर चूर हो सकती थी।

'आकाशदीप' कहानी का तीसरा खण्ड अत्यन्त संक्षिप्त है। बुद्धगुप्त को चम्पा बतलाती है कि उसे बंदिनी बनाने के पीछे मणिभद्र की पाप वासना थी। चम्पा वयह भी बतलाती है कि वह अपने पिता के साथ आठ वर्षों से समुद्र में रह रही थी। उसके पिता मणिभद्र के यहाँ प्रहरी थे। माँ के निधन के पश्चात् वह पिता के साथ ही नाव पर रहने लगी। जब पिता भी जलदस्यु लोगों से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए तो वह अनाथ हो गई। इसी अवस्था में एक दिन मणिभद्र ने उससे घृणित प्रस्ताव किया और चम्पा द्वारा फटकारे जाने पर उसे बन्दी बना लिया गया। बुद्धगुप्त का मन चम्पा के प्रति स्नेह और सहानुभूति से भर उठता है। वह भी अपना परिचय देते हुए कहता है–

''मैं भी ताम्रलिप्त का एक क्षत्रिय हूँ, चम्पा! परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बनकर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी?

चम्पा के व्यक्तित्त्व और विचारों ने बुद्धगुप्त को बड़ा प्रभावित किया। वह उसकी ओर आकृष्ट हुआ। इसी बीच नाविक सूचना देते हैं कि नाव द्वीप पर पहुंच गयी है। बुद्धगुप्त उस अज्ञात द्वीप का नाम रखता है– चम्पा द्वीप। चम्पा को अपार सुख की अनुभूति होती है।

चतुर्थ खण्ड के आरम्भ में कहानीकार पाँच वर्ष बीत जाने की सूचना देता है। चम्पा एक उच्च सौध पर बैठी बड़ी तन्मयतापूर्वक अभ्रक की मंजूषा में दीप रखे उसे आकाश में पहुँचाने का असफल प्रयास करती है। इसी समय चम्पा, बुद्धगुप्त को याद करती हुई उसके आगमन की जानकारी प्राप्त करने हेतु, जया नाम की एक जंगली युवती को पुकारती है। वह चम्पा को रानी कहकर सम्बोधित करती है। कारण, बुद्धगुप्त की यही आज्ञा थी। इसी बीच बुद्धगुप्त उपस्थित हो उसे अनजान स्पर्श से पुलकित कर जाता है–

''दूरगत पवन चम्पा द्वीप के अंचल में विश्राम लेना चाहता था। उसके हृदय में गुदगुदी हो रही थी। आज न जाने क्यों वह बेसुध थी। एक दीर्घकाय दृढ़ पुरुष ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर उसे चमत्कृत कर दिया।''

वार्ता के क्रम में बुद्धगुप्त चम्पा की उस आकाशदीप जलाने की क्रिया का उपहास करता है। चम्पा क्षुब्ध हो उठती है तथा अत्यंत भावपूर्ण शब्दों में आकाशदीप जलाने का रहस्य बताती हुई कहती है कि उसकी माँ उसके पिता की मंगलकामना करती हुई आकाशदीप जलाया करती थी। वह अपने माता–पिता की स्मृति को उस आकाशदीप के माध्यम से सजीव बनाए रखती है। इतना कहते–कहते चम्पा की मुद्रा बुद्धगुप्त के प्रति कठोर हो उठती है, क्योंकि वह चाहकर भी इस बात को विस्मृत नहीं कर पाती कि उसके पिता की हत्या में संभवतः बुद्धगुप्त का भी हाथ था।

पाँचवें खण्ड में चम्पा और बुद्धगुप्त को एक छोटी नाव में बैठे दिखाया गया है। बुद्धगुप्त की दीर्घकालीन समर्पण भावना के बाद भी चम्पा अपने को बुद्धगुप्त की बन्दी समझती है, पर उस दिन बुद्धगुप्त की कोमलता से चम्पा पिघल उठती है और बुद्धगुप्त से अपने पिता की हत्या का बदला लेने के निमित्त छिपाया कृपाण निकाल

समुद्र में डाल देती है। जब बुद्धगुप्त पूछता है –

'जो आज से मैं विश्वास करूँ, क्षमा कर दिया गया।''

चम्पा का कथन है –

''विश्वास? कदापि नहीं, बुद्धगुप्त? जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी। उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ! मैं तुमसे घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ अन्धेर है जलदस्यु! तुम्हें प्यार करती हूँ।

और वह रो पड़ती हैं

छठे और अंतिम खण्ड का आरंभ भी चम्पा की द्विधाग्रस्त मनःस्थिति से होता है। परिणय का चिर आकांक्षी बुद्धगुप्त चम्पा को शान्त करते हुए जब कहता है कि उसके पिता का घातक वह नहीं है तो चम्पा अपने को रोक नहीं पाती –

''यदि मैं इसका विश्वास कर सकती! बुद्धगुप्त, वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहीय! टाह! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते।''

अन्त में, बुद्धगुप्त चम्पा के पैर पकड़कर क्षमा चाहते हुए प्रणय की भीख मांगता है तथा चम्पा से भारत चलने के लिए कहता है, पर चम्पा राजी नहीं होती। वह कहती है –

''तुम स्वदेश लौट जाओ, वैभवों का सुख भोगने के लिए, और मुझे छोड़ दो। इन निरीह भोले–भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।''

निराश बुद्धगुप्त एक दिन स्वदेश को लौट पड़ता है। चम्पा अपने उस उच्च सौध पर से बुद्धगुप्त को लौटते हुए देखती है जहाँ से वह अपने आकाशदीप को नक्षत्रलोक में भेजने का प्रयास करती है। जाते हुए बुद्धगुप्त को देख उसकी आँख छलछला उठती हैं।

3.7 मुख्य शब्दावली

- **सम्बद्ध** – जुड़ा हुआ/जुड़ी हुई
- **तारक खचित** – तारों से सुशोभित
- **वणिक** – व्यापारी
- **वरुण** – जल का देवता
- **क्षीरनिधिशायी अनंत** – भगवान विष्णु

3.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. यह कथा समुद्री डाकू का हृदय परिवर्तन कर उसे सामान्य सभ्य मानवीय जीवन जीने के लिए प्रेरित करने वाले प्रेम और आस्था की कथा है। प्रेम और आस्था के प्रकाश से जीवन का, मन का अंधकार दूर होता है इसके प्रतीक स्वरूप 'आकाशदीप' को दिखाया गया है। अतः शीर्षक उचित है।
2. समुद्री तूफान में नाव में भटकते हुए बुद्धगुप्त और चम्पा एक अनाम द्वीप पर पहुंच जाते हैं। चम्पा से प्रथम भेंट और प्रथम बार इस द्वीप को देखने के कारण बुद्धगुप्त चम्पा के नाम पर इस द्वीप का नाम चम्पा रख देता है।

3. चम्पा बुद्धगुप्त को अपने पिता का हत्यारा समझती है और दोनों में प्रेम हो जाने के बाद भी वह मन से बुद्धगुप्त को क्षमा नहीं कर पाती, इसलिए उनका विवाह नहीं हो पाता।
4. चम्पा को आकाशदीप जलाने की प्रेरणा अपनी माँ से मिली। उसकी माँ भी 'आकाशदीप' जलाकर उसके पिता के लौटने की राह देखा करती थी।
5. आकाशदीप कहानी समुद्र किनारे बसे एक नगर की कथा है साथ ही कथा का आधा भाग निर्जन चम्पा द्वीप पर आधारित है।

3.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. 'आकाशदीप' कहानी का सारांश लिखिए।
2. 'आकाशदीप' कहानी का तात्विक विवेचन कीजिए।
3. 'आकाशदीप' कहानी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
4. 'आकाशदीप' कहानी में नायिका चम्पा का चरित्र चित्रण कीजिए।
5. बुद्धगुप्त का चरित्र चित्रण कीजिए।
6. चम्पा और बुद्धगुप्त कौन थे? उनका मिलन कहाँ और किन परिस्थितियों में हुआ?
7. चम्पा और बुद्धगुप्त के प्रेम का स्वरूप किस तरह का है?
8. प्रसाद जी की भाषा शैली 'आकाशदीप' कहानी के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
9. 'आकाशदीप' कहानी में प्रसाद जी ने प्रेम के परंपरागत और मर्यादित स्वरूप को चित्रित किया है। स्पष्ट कीजिए।
10. 'चम्पा द्वीप' की खोज, निर्माण और विकास की क्या कहानी है?
11. 'आकाशदीप' के कार्य और नाम का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।
12. चम्पा के पारिवारिक जीवन पर प्रकाश डालते हुए बताइए उसके लिए 'आकाशदीप' का क्या महत्त्व है?
13. 'आकाशदीप' दुखांत कहानी है। स्पष्ट कीजिए।

3.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. उषा प्रियवंदा – मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एंड संस नई दिल्ली–1974
2. जैनेंद्र – अभागे लोग तथा अन्य कहानियाँ–भाग–8 पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, 1985
3. कमलेश्वर–कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ, पराग प्रकाशन दिल्ली, 1976
4. निर्मल वर्मा–प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि0, दिल्ली–1988
5. सं. शक्तिधर गुलेरी–गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, सरस्वती प्रेस बनारस, 1945

इकाई 4 पत्नी (जैनेंद्र)

इकाई की रूपरेखा

4.0 परिचय

4.1 इकाई के उद्देश्य

4.2 कहानी 'आकाशदीप' यथावत

4.3 व्याख्या

4.4 चरित्रचिरण

4.4.1 कालिंदीचरण

4.4.2 सुनन्दा

4.5 आलोचना

4.6 सारांश

4.7 मुख्य शब्दावली

4.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

4.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

4.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.0 परिचय

जैनेंद्र की मनोवैज्ञानिक कहानियों में से यह एक श्रेष्ठ कहानी है जो स्त्री मनोविज्ञान पर आधारित है। सभ्य किंतु लापरवाह पति के साथ उपेक्षित सा जीवन जीते हुए एक पत्नी की दिनचर्या को इसमें बखूबी दिखाया गया है। जैनेंद्र मानव मन के पारखी हैं और राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत हैं। प्रसाद की ही तरह इनकी कहानियाँ साहित्य जगत में विशेष स्थान रखती हैं।

4.1 इकाई के उद्देश्य

'पत्नी कहानी के अध्ययन व आलोचना आदि से विद्यार्थी –

- वैवाहिक संबंधों में आस्था एवं विश्वास से परिचित होंगे;
- राष्ट्रभक्ति के पीछे गृहस्थ जीवन को नगण्य समझने की भावना से परिचित होंगे;
- स्त्री के एकाकीपन, अधूरे सपने, पीड़ा और अतृप्त इच्छाओं की मर्मस्पर्शी भावों की गहराई से अवगत होंगे।

4.2 कहानी 'पत्नी' यथावत

शहर के एक ओर तिरस्कृत मकान। दूसरा तल्ला। वहाँ चौके में एक स्त्री अंगीठी सामने लिए बैठी है। अंगीठी की आग राख हुई जा रही है। वह जाने क्या सोच रही है। उसकी अवस्था बीस–बाइस के लगभग होगी। देह से कुछ दुबली है और सम्भ्रान्त कुल की मालूम होती है।

एकाएक अंगीठी में राख होती हुई आग की ओर स्त्री का ध्यान गया। घुटनों पर हाथ देकर वह उठी। उठकर कुछ कोयले लाई। कोयले अंगीठी में डालकर फिर किनारे ऐसे बैठ गई मानो याद करना चाहती है कि अब क्या करूँ? घर में और कोई नहीं है और समय बारह से ऊपर हो गया है।

दो प्राणी इस घर में रहते हैं पति और पत्नी। पति सबेसे से गए हैं कि लौटे नहीं और पत्नी चौके में बैठी है।

वह सुनन्दा सोचती है–नहीं, सोचती कहाँ है, अलग–भाव से वह तो वहाँ बैठी ही है। सोचने को है तो यही कि कोयले न बुझ जाएं।....वे जाने कब आ जाएंगे। एक बज गया है। कुछ हो, आदमी को अपनी देह की फिक्र तो करनी चाहिए।...और सुनंदा बैठी है। वह कुछ कर नहीं रही है। जब वे आएंगे तब रोटी बना देगी। वे जाने कहाँ–कहाँ देर लगा देते हैं और कब तक बैठूं। मुझसे नहीं बैठा जाता। कोयले भी लहक आए हैं और उसने झल्लाकर तवा अंगीठी पर रख दिया। नहीं, अ बवह रोटी बना ही देगी। उसने जोर से खीझकर आटे की थाली सामने खींच ली और रोट बेलने लगी। थोड़ी देर बाद उसने जीने पर पैरों की आहट सुनी। उसके मुख पर कुछ तल्लीनता आई। क्षण–भर वह आभा उसके चेहरे पर रहकर चली गई और वह फिर उसी भांति काम में लग गई।

कालिंदीचरण पति आए। उनके पीछे–पीछे तीन और उनके मित्र भी आए। ये आपस में बातें करते चले आ रहे थ और खूब गर्म थे। कालिन्दीचरण अपने मित्रों के साथ सीधे अपने कमरे में चले गए। उनमें बहस छिड़ी थी। कमरे में पहुंचकर रुकी हुईबहस फिर से छिड़ गई। ये चारों व्यक्ति देशोद्धार के संबंध में कटिबद्ध हैं। चर्चा उसी सिलसिले में चल रही है। भारतमाता को स्वतंत्र कराना होगा– और नीति, अनीति हिंसा–अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है। मीठी बातों का परिणाम बहुत देखा। मीठी बातों से बाघ के मुंह से अपना सिर नहीं निकाला जा सकता। उस वक्त बाघ का मारन ही एक इलाज है। आतंक! ळाँ, आतंक! ळमें क्या आतंकवाद से डरना होगा? लोग हैं जो कहते हैं, आतंकवादी मूर्ख हैं, वे बच्चे हैं हाँ, वे बच्चे और मूर्ख। उन्हें बुजुर्गी और बुद्धिमानी नहीं चाहिए। हमें नहीं अभिलाषा अपने जीने की। हमें नहीं मोह अपने बाल–बच्चों का। हमें नहीं गर्ज धन–दौलत की। तब हम मरने के लिए आजाद क्यों नहीं हैं? जुल्म को मिटाने के लिए कुछ जुल्म होगा ही। उससे वे डरें जो डरते हैं। डर हम जवानों के लिए नहीं है।

फिर वे चारों आदमी निश्चय करने में लगे कि उन्हें खुद क्या करना चाहिए। इतने में कालिन्दीचरण को ध्यान आया कि न उसने खाना खाया है, न मित्रों को खाने के लिए पूछा है। उसने अपने मित्र से माफी मांगकर छुट्टी ली और सुनंदा की ओर चला।

सुनन्दा जहाँ थी, वहाँ है। वह रोटी बना चुकी है। अंगीठी के कोयले उलटे तवे से दबे हैं। माथे को उंगलियों पर टिकाकर वह बैठी है। बैठी–बैठी सूनी–सी देख रही है। सुन रही है कि उसके पति कालिन्दीचरण अपने मित्रों के साथ क्यों और क्या बातें कर रहे हैं। उसे जोश का कारण नहीं समझ में आता। उत्साह उसके लिए अपरिचित है। वह उसके लिए कुछ दूर की वस्तु है, स्पृहणीय और मनोरम और हरियाली। वह भारतमाता की स्वतंत्रता को समझना चाहती है, पर उसको न भारतमाता समझ में आती है, न स्वतंत्रता समझ में आती है। उसे इन लोगों की इस जोरों की बातचीत का मतलब ही समझ में नहीं आता। फिर भी, उत्साह की उसमें बड़ी भूख है। जीवन की हौंस उसमें बुझती–सी जा रही है, पर व जीना चाहती है।

उसने बहुत चाहा है कि पति उससे भी कुछ देश की बात करें। उसमें बुद्धि तो जरा कम है, फिर धीरे–धीरे क्या वह भी समझने नहीं लगेगी? सोचती है, कम पढ़ी हूँ तो इसमें मेरा ऐसा कसूर क्या है? अब तो पढ़ने को मैं तैयार हूँ। लेकिन पत्नी के साथ पति का धीरज खो जाता है। खैर, उसने सोचा है उसका काम तो सेवा है। बस, यह मानकर जैसे कुछ समझने की चाह ही छोड़ दी है। वह अनायास भाव से पति के साथ रहती है, और कभी उनकी राह के बीच में आने की नहीं सोचती! व्ह एक बात जानती है कि उसके पति ने अगर आराम छोड़ दिया है, घर का मकान छोड़ दिया है, जान–बूझकर उखड़े–उखड़े और मारे–मारे जो फिरते हैं, इसमें वे कुछ भला ही सोचते होंगे। इसी बात को पकड़क रवह आपत्तिशून्य भाव से पति के साथ विपदा–पर–विपदा उठाती रही है। पति ने कहा भी है कि तुम मेरे साथ क्यों दुःख उठाती हो। पर सुनकर वह चुप रह गई है। सोचती रह गई है कि देखो, यह कैसी बात करते हैं।

वह जानती है कि जिसे सरकार कहते हैं, वह सरकार उनके इस तरह के कामों से बहुत नाराज है। सरकार सरकार है। उनके मन में कोई स्पष्ट भावना नहीं है कि सरकार क्या होती है, पर यह जितने हाकिम लोग हैं, वे बड़े जबरदस्त होते हैं और उनके पास बड़ी–बड़ी ताकतें हैं। इतनी फौज, पुलिस के सिपाही और मजिस्ट्रेट और मुंशी और चपरासी और थानेदार और वायसराय ये सब सरकार ही हैं। इन सबसे कैसे लड़ा जा सकता है? हाकिम से लड़ना ठीक बात नहीं है, पर यह उसी लड़ने में तन–मन बिसार बैठे हैं। खैर, लेकिन ये सब–के–सब इतने जोर से क्यों बोलते हैं? उसको यही बहुत बुरा लगता है। सीधे–सादे कपड़े में एक खुफिया पुलिस का आदमी हरदम उनके घर के बाहर रहता है। ये लोग इस बात को क्यों भूल जाते हैं? इतने जोर से क्यों बोलते हैं?

बैठे–बैठे वह इसी तरह की बातें सोच रही है। देखो, अब दो बजेंगे। उन्हें न खाने की फिक्र, न मेरी फिक्र। मेरी तो खैर कुछ नहीं, पर अपने तन का ध्यान तो रखना चाहिए। ऐसी ही बेपरवाही से तो वह बच्चा चला गया। उसका मन कितना भी इधर–उधर डोले, पर अकेली जब होती है, तब भटक–भटक क रवह मन अंत में उसी बच्चे के अभाव पर आ पहुंचता है। तब उसे बच्चे की वही–वही बातें याद आती हैं– वे बड़ी प्यारी आंखें, छोटी–छोटी उंगलियाँ और नन्हें–नन्हें ओंठ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती हैं। सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है। ओह! यह मरना क्या है? इस मरने की तरफ उससे देखा नहीं जाता। यद्यपि वह जानती है कि मरना सबाके है– उसको मरना है, उसके पति को मरना है पर उस तरफ भूल से छन–भर देखती है तो भय से भर जाती है। यह उससे सहा नहीं जाता। बच्चे की याद उसे मथ उठती हैं तब वह विह्वल होकर आंख पोंछती है और हठात् इधर–उधर की किसी काम की बात में अपने को उलझा लेना चाहती है। पर अकेले में, वह कुछ करे, रह–रहकर वही वह याद–वही वह मरने की बात उसके सामने हो रहती है, और उसका चित्त बेबस हो जाता है।

वह उठी। अब उठकर बरतनों को मांज डालेगी, चौका भी साफ करना है। ओह! खाली बैठी मैं क्या सोचती रहा करती हूँ।

इतने में कालिन्दीचरण चौके में घुसे।

सुनन्दा कठोरता–पूर्वक शून्य को ही देखती रही। उसने पति की ओर नहीं देखा।

कालिन्दी ने कहा–सुनन्दा, खाने वाले हम चार हैं। खाना हो गया?

सुनन्दा चुन की थाली और चकला–बेलन और बटलोई वगैरह खाली बरतन उठाकर चल दी, कुछ भी बोली नहीं।

कालिन्दी ने कहा – सुनती हो, तीन आदमी मेरे साथ और हैं। खाना बन सके तो कहो, नही ंतो इतने में ही काम चला लेंगे।

सुनन्दा कुछ भी नहीं बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। यह उससे क्षमा–प्रार्थी से क्यों बात कर रहे हैं, हंसकर क्यों नहीं कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं गैर हूँ। अच्छी बात है, तो मैं भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके ही काम में रहूँ। मैं कुछ नहीं जानती खाना–वाना और वह चुप रही।

कालिन्दीचरण ने जरा जोर से कहा – सुनन्दा।

सुनन्दा के जी में ऐसा हुआ कि हाथ की बटलोई को खूब जोर से फैंक दे। किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं है। उसे तनिक भी सुध न रही कि अभी बैठे–बैठे इन्हीं अपने पति के बारे में कैसी प्रीति की और भलाई की बातें सोच रही थी। इस वक्त भीतर ही भीतर गुस्से से घुटकर रह गई।

''क्यों? बोल भी नहीं सकती?''

सुनन्दा नहीं ही बोली।

''तो अच्छी बात है। खाना कोई भी नहीं खाएगा।''

यह कहकर कालिन्दी तैश में पैर पटकते हुए लौट कर चले गए।

कालिन्दीचरण अपने दल में उग्र नहीं समझे जात, किसी कदर उदार समझे जाते हैं। सदस्य अधिकतर अविवाहित हैं, कालिन्दीचरण विवाहित ही नहीं हैं, वे एक बच्चा खो चुके हैं। उनकी बात का दल में आदर है। कुछ लोग उनके धीमेपन पर रूष्ट भी हैं। वे दल में विवेक के प्रतिनिधि हैं और उत्पात पर अंकुश का काम करते हैं।

बहस इतनी बात भर थी कि कालिन्दी का मत था कि हमें आतंक को छोड़ने की ओर बढ़ना चाहिए। आतंक से विवेक कुण्ठित होता है और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित ही रहता है या उसके भय से दबा रहता है। दोनों ही स्थितियाँ श्रेष्ठ नहीं है। हमारा लक्ष्य बुद्धि को चारों ओर से जगाना है, उसे आतंकित करना नहीं। सरकार व्यक्ति और राष्ट्र के विकास के ऊपर बैठकर उसे दबाना चाहती है। हम इसी विकास के अवरोध को हटाना चाहते हैं–इसी को मुक्त करना चाहते हैं। आतंक से वह काम नहीं होगा। जो शक्ति के मद में उन्मत्त है, असली काम तो उनका मद उतारने और उनमें कर्त्तव्य भावना का प्रकाश जगाने का है। हम स्वीकार करें कि उसका मद टक्कर खाकर, चोट पाकर ही उतरेगा। यह चोअ देने के लिये हमें अवश्य तैयार रहना चाहिए, पर यह नोचा–नोची उपयुक्त नहीं। इससे सत्ता का कुछ बिगड़ना तो नहीं, उल्टे उसे अपने औचित्य पर संतोष हो आता है।

पर जब सुनन्दा के पास से लौटकर आया, तब देखा गया कि कालिन्दी अपने पक्ष पर दृढ़ नहीं है। वह सहमत हो सकता है कि हाँ, आतंक जरूरी भी है। 'हाँ' उसने कहा, 'यह ठीक है कि हम लोग कुछ काम शुरू कर दें।' इसके साथ ही कहा, 'आप लोगों को भूख नहीं लगी है क्या? उनकी तबीयत खराब है, इससे यहाँ तो खाना बना नहीं। बताओ क्या किया जाए? कहीं होटल चले?

एक ने कहा कि कुछ बाजार से यहीं मंगा लेना चाहिए। दूसरे की राय हुई कि होटल ही चलना चाहिए। इसी तरह की बातों में लगे थे कि सुनन्दा ने एक बड़ी थाली में खाना परोसकर उनके बीच ला रखा। रखकर वह चुपचाप चली गई। फिर आकर पास ही चार गिलास पानी के रख दिये और फिर उसी भांति चुपचाप चली गई।

कालिन्दी को जैसे किसी ने काट लिया।

तीनों मित्र चुप ही रहे। उन्हें अनुभव हो रहा था कि पति–पत्नी के बीच स्थिति में कहीं कुछ तनाव पड़ा हुआ है। अंत में एक ने कहा, ''कालिन्दी, तुम तो कहते थे खाना नहीं है।''

कालिन्दी ने झेंपकर कहा – मेरा मतलब काफी नहीं है।

दूसरे ने कहा – बहुत काफी है। सब चल जाएगा।

देखूं कुछ और हो तो – कहकर कालिन्दी उठ गया।

आकर सुनन्दा से बोला – यह तुमसे किसने कहा था कि खाना वहाँ ले आओ? मैंने क्या कहा था?

सुनन्दा कुछ न बोली।

चलो, उठा लाओ थाली। हमें किसी को यहाँ नहीं खाना है। हम होटल जाएंगे।

सुनन्दा नहीं बोली। कालिन्दी भी कुछ देर गुम खड़ा था। तरह तरह की बातें उसके मन में और कंठ में आती थीं। उसे अपना अपमान मालूम हो रहा था और अपमान असह्य था।

उसने कहा – सुनती नहीं हो कि कोई क्या कह रहा है? क्यों?

सुनन्दा ने मुंह फेर लिया।

क्या मैं बकते रहने के लिये हूँ?

मैं पूछता हूँ कि जब मैं कह गया था तब खाना ले जाने की क्या जरूरत थी? सुनन्दा ने मुड़कर और अपने को दबाकर धीमे से कहा – खाओगे नहीं? एक तो बज गया।

कालिन्दी निरस्त्र होने लगा। यह उसे बुरा मालूम हुआ। उसने मानो धमकी के साथ पूछा खाना और है।

सुनन्दा ने धीमे से कहा अचार लेते जाओ।

खाना और नहीं है? अच्छा लाओ अचार।

सुनन्दा ने अचार ला दिया और लेकर कालिन्दी भी चला गया।

सुनन्दा ने अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा था। उसे यह सूझा ही न था कि उसे भी खाना है। अब कालिन्दी के लौटने पर उसे जैसे ही मालूम हुआ कि उसने अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा है। वह अपने से रूष्ट हुई। उसका मन कठोर हुआ। इसलिए नहीं कि क्यों उसने खाना नहीं बचाया। इस पर तो उसमें सवाभिमान का भाव जागता था। मन कठोर यों हुआ कि वह इस तरह की बात सोचती ही क्यों है? छिः। यह भी सोचने की बात है और उसमें कड़वाहट भी फैली। हठात् यह उसके मन को लगता ही है कि देखो, उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी। क्या मैं यह सह सकती थी कि मैं तो खाऊँ और उनके मित्र भूखे रहें। पर पूछ लेते तो क्या था। इस बात पर उसका मन टूटता–सा है। मानो उसका जो तनिक–सा मान था वह भी कुचल गया हो। पर वह रह–रहकर अपने को स्वयं अपमानित कर लेती हुई कहती है कि छिः! छिः! सुनन्दा, तुझे ऐसी जरा–सी बात का अब तक ख्याल होता है। तुझे तो खुश होना चाहिए कि उनके लिए एक रोज भूखे रहने का तुझे पुण्य मिला। मैं क्यों उन्हें नाराज करती हूँ? अब से नाराज न करूंगी। पर वह अपने तन की भी सुध तो नहीं रखते। यह ठीक नहीं है। मैं क्या करूँ?

एक मित्र ने कहा – अचार और है? अचार और मंगाओ यार।

कालिन्दी ने अभ्यासवश जोर से पुकारा–अचार लाना भाई, अचार। मानो सुनन्दा कहीं बहुत दूर हो। पर वह तो बाहर लगी खड़ी ही थी। उसने चुपचाप अचार लाकर रख दिया।

जाने लगी तो कालिन्दी ने तनिक स्निग्ध वाणी से कहा – थोड़ा पानी भी लाना।

और सुनन्दा ने पानी ला दिया। देकर लौटी और फिर बाहर द्वार से लगकर ओट में खड़ी हो गई। जिससे कालिन्दी कुछ मांगे तो जल्दी से ला दे।

4.3 व्याख्या

1 भारतमाता को स्वतंत्र.....नहीं चाहिए।

संदर्भ – प्रस्तुत पंक्तियाँ जैनेंद्र की 'पत्नी' कहानी से ली गई हैं।

प्रसंग – कालिंदीचरण अपने मित्रों के साथ घर आता है। घर में प्रवेश करने के साथ ही उनमें देश की स्वतंत्रता के प्रयत्नों पर बहस छिड़ जाती है। कोई कहता है कि आतंक फैलाकर स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं, कोई कहता है नहीं विनम्रता से।

व्याख्या – कालिंदीचरण एवं उसके मित्र घर में प्रवेश करते हैं सुनंदा भोजन के लिए पति की प्रतीक्षा में बैठी है। वह सुनती है। वे सब बहस कर रहे हैं। एक कहता है–भारत माता को स्वतंत्र कराना है और यही हमारा एकमात्र उद्देश्य है, लक्ष्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए हम कोई भी मार्ग चुन लेंगे। चाहे वह मार्ग नीति का हो या अनीति का, हिंसा का हो या अहिंसा का, हमें इससे कोई मतलब नहीं है। इस विषय में सोचकर हम अपना समय नष्ट नहीं कर सकते। सरकार का आतंब बढ़ता जा रहा है। जनता शोषित और पीड़ित है। भारत माता अर्थात् भारत भूमि अपने बच्चों का, भारतवासियों का यह हाल देखकर दुखी है, अतः हमें परतंत्रता की बेड़ियों को काटना ही होगा। अंग्रेज सरकार बाघ की तरह है। लेकिन बाघ के मुंह में यदि सिर चला जाए तो बाघ को मारकर ही उसे निकाला जा सकता है। मीठी बातें करने से, निवेदन करने से बाघ सिर को नहीं छोडता। उसी तरह सरकार हमारी, हम भारतवासियों की विनम्रता का लाभ उठा रही है। अब इस सरकार का एक ही इलाज है कि आतंक फैलाकर इसे यहाँ से खदेड़ दें। जो लोग आतंक फैलाने की भावना को मूर्खता कहते हैं तथा ये कहते हैं कि अज्ञानी हैं उनमें बचपना है। तो हमें यह मूर्खता ही पसंद है हम बचपना ही करना चाहते हैं। हमें ऐसी बुजुर्गी और बुद्धिमानी नहीं चाहिए जिसका लाभ सरकार उठाती रहे और हम परतंत्र बने रहें। हमें आतंक फैलाकर, जान की परवाह न करते हुए देश को स्वतंत्र कराना है।

यहाँ लेखक देश के युवा वर्ग के देशभक्ति के जुनून को दर्शा रहा है।

2 उसे जोश का.....धीरज खो जाता है।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश सुनन्दा का आत्मकथन है। इससे उसकी दबी हुई इच्छाओं का पता चलता है कि वह कैसी है और क्या चाहती है।

व्याख्या – सुनंदा चौके में बैठी हुई अपने पति और उनके मित्रों की बातों को सुनती है। बातों में जोश है। वह सोचती है कि कितना भी बड़ा और महत्त्वपूर्ण काम हो उसे शांति और धैर्य से किया जा सकता है, बातें भी शांति से की जा सकती हैं, फिर ये लोग इतने जोश में आकर क्या बातें करते हैं? जोश में क्यों भरे रहते हैं? उसे अपने पति और उनके मित्रों के जोश में आने का कारण समझ में नहीं आता। वह जोश और उत्साह की भावनाओं से अपरिचित है, उसका जीवन एक ही लीक पर ठंडेपन से बढ़ता रहा है इसलिए जोश और उतह उसके लिए दूर की बातें हैं उसने कभी किसी क्षण इन्हें अनुभव नहीं किया। लेकिन वह इस मनोरम चीज को पाना चाहती है। उसे लगता है जैसे हरियाली मन को ठंडक पहुंचाती है, प्रसन्नता देती है वैसी ही चीज का नाम उत्साह होगा। वह उत्साहित होकर जीना चाहती है। उसे भारतमाता, स्वतंत्रता और इन पर की जाने वाली बहसों का अर्थ नहीं मालूम, क्योंकि वह कम पढ़ी–लिखी है। अपनी अज्ञानता, एकाकीपन, पति की उपेक्षा ने उसके भीतर जीवन जीने की आशा को, इच्छा को क्षीण कर दिया है, लेकिन इन लोगों की जोश में भरी बहसों को सुनकर वह भी इसका एक हिस्सा बनना चाहती है। उसके भीतर उत्साह, जोश की भावना के लिए, पढ़ने के लिए भूख बहुत है, लेकिन पति के

असहयोग और उदासीनता के कारण वह कुछ नहीं जान पाती। वह सोचती है– पति बाहर के लोगों को सीख देते हैं, सहयोग देते हैं लेकिन पत्नी को समझाने और पढ़ाने के लिए उनमें धैर्य और कामना की कमी होती है। पति को लगता है बाहर के लोग सब कुछ सीख–समझ सकते हैं लेकिन पत्नी को न तो इसकी आवश्यकता है न वह इस योग्य है कि कुछ समझ–पढ़ सके। वह उसे हीन मानता है, उसका दायरा घर की चारदीवारी तक सीमित मानता है। सुनंदा की इच्छा और उसके अभावों की पीड़ा इन पंक्तियों में चरम पर प्रकट होती है।

3 वह जाती है.....बुरा लगता है।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – घर में पति और उसके मित्रों की जोर–शोर से चलने वाली बहस को सुनकर सुनंदा डरती है कि बाहर घूमता हुआ जासूस उनकी बातें सुन सकता है। वह पति के लिए चिंतित होकर मन ही मन तर्क–वितर्क करती है जिसका चित्रण यहाँ किया गया है।

व्याख्या – सुनन्दा जानती है कि उसके पति और उनके मित्र स्वतंत्रता की लड़ाई में संलग्न हैं। वे तरह–तरह की सरकार विरोधी गतिविधियाँ करते हैं। सरकार को इन लोगों पर संदेह है और उसने उसके घर के बाहर एक जासूस तैनात किया हुआ है। वह पति और उनके मित्रों की जोश में भरी बहस सुनकर चिंतित हो जाती है कि कहीं वह जासूस इनकी बातें न सुन ले वरना सरकार उसके पति के लिए कोई मुसीबत खड़ी कर सकती है। वह सोचती है कि उसके पति और उनके मित्रों को सावधान और सतर्क रहकर धीरे–धीरे बात करनी चाहिए ताकि जासूस उनकी बात सुन न सके। उसे इन लोगों की यह लापरवाही और निडरता अच्छी नहीं लगती। वह ठीक–ठीक तो नहीं जानती है कि सरकार का मतलब क्या होता है लेकिन यह जानती है कि सरकार, सरकार है और वह शक्तिशाली होती है। जितने बड़े हाकिम हैं, फौज, सिपाही, मुंशी, चपरासी, मजिस्ट्रेट, थानेदार, वायसराय ये सब सरकार हैं और इनके आस–पास की ताकतें बड़ी जबरदस्त होती हैं, कुछ भी कर सकती हैं। इन से कैसे लड़ा जा सकता है? हाकिम से अर्थात् मालिक से, अधिकारी से लड़ना अच्छी बात नहीं है, पर उसके पति हैं कि इन्हीं से लड़ने में तन–मन भुला बैठे हैं। न गृहस्थी की चिंता है, न स्वयं की। उसे इन लोगों का जोर–जोर से बोलना बुरा लगता है। वह नहीं जानती कि उसके पति और उनके मित्र इतना जोर से, जोश से क्यों बोलते हैं? स्वतंत्रता और सरकार का आपस में क्या संबंध है? सुनन्दा एक सीधी, सादी, अज्ञानी स्त्री की तरह अपनी सीमित सोच को व्यक्त करती है।

4 मेरी तो खैर.....भय से भर जाती है।

संदर्भ–पूर्ववत।

प्रसंग – सुनन्दा पति के स्वास्थ्य और सुरक्षा की चिंता करती है। चिंतन प्रक्रिया के दौरान अपने मृत बच्चे को याद करके दुखी हो जाती है।

व्याख्या – घर में दो ही सदस्य हैं पति और पत्नी। बच्चे की मृत्यु हो चुकी है जिसका कारण सुनन्दा पति की लापरवाही को मानती है। पत्नी सुनन्दा से पति कोई बातचीत, हंसी मजाक, विचार–विमर्श नहीं करता अतः चारदीवारी के बीच सुनन्दा एकाकीपन में अपने आप से ही बातें करती हैं। दो बजे तक पति भोजन करने नहीं आए, वह भी भूखी बैठी है। वह सोचती है कि मेरी भूख प्यास की चिंता तो इन्होंने कभी की नहीं, खैर कोई बात नहीं, ना करें। लेकिन स्वयं के स्वास्थ्य का, खान–पान का ध्यान तो रखना चाहिए। वह कहती है पति की ऐसी ही लापरवाह प्रवृत्ति के कारण बच्चे की मृत्यु हुई है। वह मन को इधर–उधर की बातों में लगाना चाहती है, लेकिन क्या करे। पति बात करते नहीं वह बाहर जाती नहीं, कोई उसकी मित्र साथी नहीं है। वह बाहर की दुनियादारी की बातों से अनभिज्ञ है। अतः घर में रहकर लौट–लौट कर मन उसी बच्चे की स्मृतियों में डूब जाता है। बच्चे की प्यारी बातें,

छोटी–छोटी आंखें, उंगलियाँ, होंठ, अठखेलियाँ याद आती हैं। वह छटपटा जाती है कि बच्चा उससे असमय दूर चला गया है। वह इतना तो जानती है कि एक न एक दिन सबको मरना है। उसको, उसके पति को, सबको लेकिन जिस तरह से अकाल मृत्यु उसके बच्चे की हुई है वह उसे सह नहीं पाती। वह क्षण उसकी स्मृति में ठहर गया है। इस पीड़ा को उसके पति की लापरवाही और बढ़ा देती है जब वे न उसकी तरफ ध्यान देते हैं, न उसका सुख–दुख पूछते हैं। वह पति के असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से आहत अनुभव करती है।

5 आतंक के विवेक.....संतोष हो जाता है।

संदर्भ–पूर्ववत।

प्रसंग–कालिंदीचरण स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आतंक फैलाने के तरीके को अनुचित मानते हुए अपने विचार मित्रों के सामने प्रकट कर रहा है।

व्याख्या – कालिन्दीचरण के मित्र कहते हैं कि सरकार बाघ की तरह है यह विनम्रता से नहीं मानेगी, इसके लिए आतंक आवश्यक है। इस पर कालिंदी चरण कहता है। आतंक की भावना गलत है। आतंक से मनुष्य का विवेक कुंठित हो जाता है उसके सही सोचने समझने की शक्ति खत्म हो जाती है। आतंक की भावना से दो तरह की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं–एक तो व्यक्ति डर कर दब जाता है और निष्क्रिय हो जाता है तथा दूसरा कि वह सदैव उत्तेजित बना रहता है। उसकी शांति से विचार करने की शक्ति खत्म हो जाती है। ये दोनों ही स्थितियाँ ठीक नहीं हैं। आतंक फैलाने से केवल सरकार की नहीं आम जनता की भी हानि होती है। जनता डर जाएगी, तो संघर्ष के लिए उठेगी कैसे? हमारा लक्ष्य चारों ओर चेतना जागृत करना है, बुद्धि और ज्ञान का प्रसार करना है। लोगों को स्वतंत्रता प्राप्ति का अर्थ समझाकर उसके लिए प्रेरित करना है। हम जनता को डराना और कुंठित करना नहीं चाहते। वरना सरकार में और हम में क्या अंतर रह जाएगा। सरकार व्यक्ति और राष्ट्र के विकास की बाधा बन रही है, वह जनता को डरा दबा कर विकास की गति अवरूद्ध करना चाहती है। हम सरकार की इस इच्छा को विफल करना चाहते हैं। जनता को आतंक से मुक्त करना चाहते हैं ताकि निडर होकर वे स्वतंत्रता प्राप्ति के यज्ञ में सहयोग कर सकें। जिन लोगों को अपनी ताकत का घमंड है हम उनके घमंड को चूर करके उन्हें उनका कर्त्तव्य याद दिलाना चाहते हैं। सत्ता के मद में डूबे लोगों के हृदय में कर्त्तव्य का स्मरण दिलाकर प्रकाश भरना चाहते हैं।

कालिंदीचरण कहता है कि मैं जानता हूँ कि सरकार विनम्रता से नहीं मानेगी। चोट खाकर ही उसका घमंड चूर होगा और हमें यह चोट करने के लिए तैयार भी रहना चाहिए लेकिन इसके लिए आतंक का मार्ग ठीक नहीं है। यह तो जीवन–मृत्यु का प्रश्न होना चाहिए। नोचा–नाची करके छोड़ देना ठीक नहीं है। आतंक फैलाना नोचा–नाची करना है, इससे सरकार सतर्क होकर अपनी ताकत को और बढ़ा लेती है। हम चोट करेंगे तो सोच–समझकर निर्णायक चोट करेंगे।

6 अब कालिंदी के .....कुचल गया हो।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – सुनन्दा ने पति और उसके मित्रों को पूरा भोजन करा दिया। उसके लिए कुछ बचा नहीं। पति ने उससे पूछा नहीं कि उसने भोजन किया या नहीं। पति की उपेक्षा से आहत पत्नी का मान जाग उठा जिसका चित्रण इन पंक्तियों में किया गया है।

व्याख्या – कालिंदीचरण और उसके मित्र बैठक में भोजन कर रहे हैं। सुनन्दा को पति के मित्रों के आने की सूचना नहीं थी अतः उसने अतिरिक्त भोजन नहीं बनाया था। उसने कुछ नहीं कहा, नाराज भी नहीं हुई कि अचानक आ गए मित्रों को कैसे भोजन कराएगी बल्कि उसने पति–पत्नी दोनों के लिए बनाया गया पूर भोजन उन्हें परोस दिया।

पति जब दोबारा उससे अचार मांग कर ले गए तब उसे ध्यान आया कि उसने अपने लिए कुछ बचाया नहीं है। उसे पहले अपने–आप पर गुस्सा आया कि उसने अपने लिए कुछ क्यों नहीं बचाया। उसने मन ही मन कठोरता से सोचा कि पति को उसके भूखे बैठे होने की चिंता नहीं, उसने उसे पूछा तक नहीं, अचानक मित्रों को ले आए भोजन पर, उसकी असुविधा का ध्यान भी नहीं रखा तो ऐसे पति के लिए वह क्यों भूखी बैठी है, क्यों नहीं खाना बचाया, क्यों नहीं फिर से बना लेती भोजन! लेकिन नहीं, एक ही क्षण में उसका स्वाभिमान जाग गया और वह पछताने लगी कि क्यों उसने ऐसा सोचा। ऐसा सोचने से मन में कड़वाहट फैलती है उसे ऐसा नहीं सोचना चाहिए। वे (पति) मुझे नहीं पूछते तो न पूछें, मैं यह नहीं दिखा सकती कि मैं भूखी हूँ या उनसे नाराज हूँ या मुझे उनसे कोई अपेक्षा, कामना है। लेकिन अगले क्षण फिर उसका मन बदलता है। उदास और दुखी होता है। सोचती है– देखो तो, सुबह से भूखे रहकर, भोजन बनाकर उनकी प्रतीक्षा करती रहती हूँ और ये देर से आने पर भी न तो उसे कोई कारण बताते हैं न उससे खाने–पीने की बात पूछते हैं। एक बार भी नहीं पूछा कि तुमने खाना खाया कि नहीं? पूरा खाना हम लोगों को दे दोगी तो तुम क्या खाओगी? या फिर से कुछ बना लो ही कह देते। सुनन्दा का मन आहत होता है– सोचती है कि मैं ऐसा तो कर नहीं सकती थी कि मैं अपने लिए बचा लूँ और उनके मित्र भखे रह जाएँ। पर एक बार कह देते तो मन को अच्छा लगता कि किसी अपने ने, पति ने मेरी चिंता की। उसका मन दुख से टूटने लगा। उसका स्वाभिमान आहत होने लगा कि उसकी अहमियत केवल एक रसोइए के बराबर है बल्कि उससे भी कम। क्योंकि हम उससे भी पूछ लेते हैं कि उसने कुछ खाया–पिया या नहीं। लेकिन पति को उसकी, उसके अभाव, आवश्यकताओं, दुख–दर्द से कोई लेना–देना नहीं है। उसका जीवन गुलामों से भी बदत्तर है यह सोचकर उसकी उदासी और दुख और बढ़ जाते हैं और वह स्वयं को तसल्ली देने के लिए रोज की तरह कोई नया तर्क सोचने लगती है।

4.4 चरित्रचित्रण

4.4.1 कालिंदीचरण

कालिंदीचरण सुनन्दा का पति है। यह गृहस्थ जीवन से उदासीपन एवं स्वार्थी प्रवृत्ति का प्रतीत होता है। वह केवल अपनी इच्छाओं को महत्त्व देता है, पत्नी की इच्छाओं, उसके जीवन, अभाव एवं आवश्यकताओं के संबंध में विचार नहीं करता इसलिए आत्मकेंद्रित प्रतीत होता है। कालिदी परंपरागत भारतीय पुरुष की भूमिका में दिखाई देता है। जो पत्नी की भूमिका केवल घर की दहलीज के अंदर तक ही मानते हैं। कालिंदी स्त्री को इस योग्य नहीं मानता कि उनसे देश–दुनिया की बातें की जा सकें, इसलिए वह अपनी पत्नी से कभी भी स्वतंत्रता के लिए किए जा रहे प्रयत्नों की चर्चा नहीं करता। कालिदी स्त्री शिक्षा को महत्व नहीं देता इसलिए पत्नी की पढ़ने की इच्छा को जानने या पूरा करने का उसने कभी प्रयत्न नहीं किया। वह देश भक्त है। कालिंदी आतंक फैलाकर स्वतंत्रता प्राप्त करने के पक्ष में नहीं है। वह बाहर विनयशील एवं उदार पुरुष के रूप में जाना जाता है। लेकिन घर पर जब सुनन्दा उसकी बातों का उत्तर नहीं देती तो वह उपेक्षा से तिलमिलाकर मित्रों के बीच जाता है और आतंक का समर्थन करता है। यहाँ जैनेंद्र जी सांकेतिक अर्थ प्रकट करते हैं कि जब अंग्रेज सरकार नर्मी और विनय से नहीं मान रही है तो आतंक से ही काम लेना होगा। वह अच्छा मित्र है, नागरिक है लेकिन अच्छा पति नहीं है। वह अच्छा पिता भी नहीं बन सका क्योंकि उसके उदासीन रवैये के कारण ही बच्चे की मृत्यु हो गई। वह पत्नी के प्रति विश्वास का भाव रखता है इसलिए समय–कुसमय मित्रों को लेकर चला आता है कि पत्नी उन्हें भोजन करा देगी। कालिंदी शिक्षित और सेचत पुरुष होते हुए भी पत्नी और घर के प्रति असहिष्णु है, यही उसकी नकारात्मक छवि है जो कहानी में उसके प्रति सहानुभूति के बदले खीझ का भाव उत्पन्न करती है। वह अंग्रेज सरकार का मद उतारने और उनमें तथा अचेत भारतीयों में चेतना जगाने, उन्हें उनका कर्त्तव्य याद दिलाने की बात जोश से कहता है लेकिन अपनी पत्नी, गृहस्थी के प्रति कर्त्तव्यों का उसे भान नहीं है इसलिए उसकी बातें पाठकों को प्रभावित नहीं करती।

सुनन्दा उसके देरी से आने के कारण उसकी बातों का जवाब नहीं देती, नाराज रहती है तो वह तिलमिला उठता है। पत्नी के उत्तर न देने से उसका पौरुष आहत होता है और वह अहंकारी पुरुष की तरह होटल में खाना खाने की बात कहता है लेकिन पत्नी से प्यार से उसकी नाराजगी या न बोलने का कारा नहीं पूछता। वह एक स्नेहलि पति की तरह नहीं, दंभी मालिक की तरह व्यवहार करता है कि उसकी हर आज्ञा का पालन होना ही चाहिए। कालिंदी इस कहानी का पूरक पात्र है जो नकारात्मक चरित्र की तरह छाया रहता है।

4.4.2 सुनन्दा

सुनन्दा कालिन्दीचरण की पत्नी है। उसके भीतर भरपूर गृहस्थी की चाह है, जहाँ पति हो, बच्चे हों, शोर–शराबा, बातचीत, प्रेम और शांति हो। लेकिन उसकी यह चाह अधूरी रह जाती है। पति है, लेकिन उससे और उसके घर से उदासीन है। जो प्रेम करना नहीं जानता, केवल यदा–कदा आज्ञा और आदेश देता है। जिसकी लापरवाही से उसका एकलौता बच्चा मृत्यु के मुख में चला गया। घर में शांति है, लेकिन यह शांति उसके एकाकीपन के कारण है। उसका पति देश की स्वतंत्रता के प्रयत्न में मित्रों के साथ भटकता है। कहाँ जाता है, क्यों जाता है, कब आएगा। उसे कुछ बता कर नहीं जाता। उसे बताने योग्य नहीं समझता।

सुनन्दा कम पढ़ी है। तत्कालीन समाज में स्त्री शिक्षा को महत्व नहीं दिया जाता था, बेटियों की कम आयु में ही उनका विवाह कर दिया जाता था। इसलिए वह पढ़ नहीं पाई। अब बच्चे के अभाव में दिन–भर, रात भर अकेले बैठी सोचा करती है। पति मित्रों के साथ बातें करते हैं तो उसका मन ललचाता है कि काश उसके पति उसके साथ भी यही सब बातें करें, उसे पढ़ने को कहें, उससे देश–दुनिया के समाचारों पर चर्चा करें तो वह भी जान लेगी, सीख जाएगी। त बवह भी उत्साह से जी सकेगी। उसका मन बैठा रहता है, बुझा रहता है, जीवन की आशा क्षीण हो रही है लेकिन वह औरों की तरह उत्साह से जीना चाहती है। उसे लगता है जिस उत्साह से भरकर उसके पति, उनके मित्र जोर–जोर से बातें और बहस किया करते है। वह जरूर हरियाली की तरह जीवनदायिनी होगा। सुंदर, सुखद और आकर्षक होगा। वह सोचती है कैसा होता होगा उत्साह?

जैनेंद्र जी इस बिंदु पर पाठक के मन को करुणार्द्र कर देते हैं सुनन्दा की दीनता, उसकी जिजीविशा की ललक, उसके अभाव पाठकों के मन को आच्छादित कर लेते हैं। सुनंदा पति–परायण स्त्री है। वह पति से एकनिष्ठ प्रेम करती है, पति के प्रति उसे श्रद्धा और विश्वास है कि वे जो कर रहे हैं ठीक कर रहे होंगे। सुनन्दा सहनशील स्त्री है, अपनी पीड़ा को पति के सामने प्रकट नहीं करती। सुनन्दा अच्छी भारतीय गृहणी है जो घर आए भूखे मेहमानों को भोजन कराना आवश्यक समझती है। पति के मित्रों को पूरा भोजन परोसते हुए वह अपने लिए कुछ नहीं बचाती। भूखी रह जाती है।

सुनन्दा के जीवन में प्रेम का अभाव है। वह पति से प्रेम और सहानुभूति की आकांक्षा रखती है जो पूरी नहीं होती। सुनन्दा पति की सहभागिनी बनना चाहती है कि पति उसे पढ़ा–लिखा कर मित्रों जैसा व्यवहार करें, उसके साथ बराबरी से बातचीत करें। लेकिन यह उसके जीवन का असंभव प्राप्य है। सुनन्दा विनम्र, मृदुभाषी, कर्मठ और उदार स्त्री है। घर में नौकर न रखकर सारा काम स्वयं करती है। धीमे सुर में बोलना पसंद करती है। सुनंदा सौम्य स्त्री है। जो स्वयं को भुला कर पति के स्वास्थ्य और सुरक्षा की चिंता करती है। जैनेंद्र जी ने सुनन्दा को कहानी की नायिका बनाकर भारतीय स्त्री की निरीह जीवन शैली और जीवन के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। पाठक की सहानुभूति आरंभ से अंत तक सुनन्दा के साथ बनी रहती है।

4.5 आलोचना

तात्विक विवेचन – जैनेंद्र कुमार प्रेमचंद–युग के अंतिम चरण के सर्वाधिक समर्थ कथाकार माने जाते हैं। देश की स्वतंत्रता के लिए कई आंदोलनों में भाग लिया, जेल गए। वे महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन से प्रभावित थे।

जैनेंद्र के चिंतन और साहित्य पर गांधी जी के सिद्धान्तों का बहुत प्रभाव पड़ा। इनकी कहानियों में मानव–मन का सूक्ष्म एवं गहन चित्रण मिलता है। हिंदी कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक कहानियों के आरंभ का श्रेय जैनेंद्र को ही दिया जाता है। जैनेंद्र जी की कहानियाँ सोद्देश्य होती हैं। उनकी कहानियों में प्रायः छोटे–छोटे संवाद, आत्म कथन, सूक्तियाँ और व्यंजनापूर्ण वाक्यों की उपस्थिति चरित्रों एवं कथा वस्तु को गहन–गूढ़, मनोरंजक, मर्मस्पर्शी एवं प्रभावशाली बनाती है। जैनेंद्र जी की भाषा अत्यंत सटीक, सजीव एवं सहज होती है। इनके महत्वपूर्ण कथा संग्रहों में– 'वातायन', 'एक रात', 'दो चिड़ियाँ', 'फांसी', 'नीलम देश की राजकन्या', 'त्यागपत्र', 'सुनीता' आदि हैं। इनकी अनेक कहानियाँ, उपन्यासों एवं निबंधों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद व प्रकाशन हुआ। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित जैनेंद्र जी के रचनात्मक कौशल को रेखांकित करते हुए प्रेमचंद जी लिखते हैं .....तुम गोर्की को जानत हो? हिंदुस्तान में कोई गोर्की है या हो सकता है तो वह जैनेंद्र है।'' मैथिलीशरण गुप्त जी कहते हैं–.....हिंदी साहित्य के कथा क्षेत्र में हमने जैनेंद्र में रवि और भरत बाबू को एक ही साथ पाया।'' किशोरलाल मशरूवाला लिखते हैं– ''जैनेंद्र के विचार पढ़कर मैंने ऐसा आनंद अनुभव किया जैसे टॉलस्टाय को पढ़ते समय हुआ, बल्कि उससे भी विशेष।

जैनेंद्र भारतीय साहित्य मनीषा, संस्कृति एवं लेखन की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति हैं। जैनेंद्र की कहानियों में स्त्री–पुरुष संबंधों की सूक्ष्म एवं गहन पड़ताल है, जैसा कि 'पत्नी' कहानी में दृष्टिगोचर होता है। वे चरित्र–वैशिष्ट्य, मानसिक–द्वंद्व, अवसाद एवं करुणा की अंतस्तल तक प्रवाहित स्निग्ध धारा, राष्ट्र प्रेम, प्रगतिवादी दृष्टिकोण, परंपरागत मानसिकता से ओतप्रोत जीवनों की स्थितियां, मानवेत्तर प्राणियों के प्रति सहानुभूति, प्रतीक योजना, नैतिकता संबंधी गहन चिंतन, शंकाएँ एवं समाधान प्रस्तुत करते हैं। वे व्यक्ति प्रधान कथाएं रचकर व्यक्ति को महत्व प्रदान करते हैं। जैनेंद्र का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण होने के कारण वे यह स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति के जीवन में बाह्य जीवन यथार्थ और अन्तर्जगत अर्थात् मनःस्थिति का गहरा और घनिष्ठ नाता होता है।

कहानी 'पत्नी' एक गूढ़ार्थ को आत्मसात किए है। इसमें पत्नी के प्रति पाठक करुणार्द्र बना रहता है। वह चौके में बैठी भोजन बनाती है, भूखे बैठे रहकर पति की प्रतीक्षा करती है। पति मित्रों के साथ आता है। मित्रों के साथ बैठकर भोजन करता है और देश को आजाद कराने के प्रयत्नों पर जोर–जोर से बहस करता है। पति पत्नी की भूख, अकेलेपन, अभावों एवं आवश्यकताओं के लिए चिंतित दिखाई नहीं देता। पत्नी के भीतर कसक है, पीड़ा है और मान भी, कि पति ने उसे खाने के लिए नहीं पूछा। वह उससे समाज एवं संसार की कोई बात नहीं करता। वह अनपढ़ है, पढ़ना चाहती है, जानना चाहती है कि स्वतंत्रता क्या होती है, भारत माता कौन है? लेकिन पति उसे इन बातों के योग्य नहीं समझता। पति के लिए पत्नी की भूमिका बस भूख मिटाने तक ही सीमित है। पत्नी परंपरागत मर्यादा और प्रेम के बंधन में बंधी, पति के प्रति एक निष्ठ प्रेम, श्रद्धा और समर्पण का भाव रखती है। अपनी पीड़ा और नाराजगी को छिपाकर पति को सुख और प्रसन्नता देना ही अपना कर्त्तव्य समझती है। वह सोचती है पति देश की स्वतंत्रता के प्रयत्न में लगे हैं, अच्छा काम कर रहे हैं, तो ठीक है वह उन्हें ठीक से भोजन ही करा दे, यही उसका कर्त्तव्य है। बच्चे के अभाव की पीड़ा इस कर्त्तव्य के पीछे छिप जाती है।

जैनेंद्र ने इस छोटी सी कहानी में परंपरागत भारतीय गृहस्थ जीवन के रेशे–रेशे को उजागर किया है। भारतीय पुरुष की पत्नी के संबंध मं मानसिकता तथा परंपरागत भारतीय स्त्री की पति और गृहस्थी के संबंध में विचार इस कहानी में स्पष्ट है। पत्नी के लिए पति, बच्चे और घर ही उसका सर्वस्व है जिसके नीचे सांसारिक हलचलों को जानने की उत्सुकता, स्वाभाविकता मानवीय जिज्ञासा की लहरें उठती भी हैं तो वह विवशता वश उन्हें दबा देती है क्योंकि उसके पति को उसकी यह जिज्ञासा नापसंद होगी।

टिप्पणी – 'अपनी प्रगति जांचिए'

1. 'पत्नी' कहानी का परिवेष कैसा है?
2. 'पत्नी' कहानी में कौन सी भाव धारा प्रवाहित है?
3. सुनन्दा बच्चे को याद करके क्यों रोती है?
4. सुनंदा पति और उसके मित्रों की आवाजें सुनकर क्या सोचती है?
5. 'पत्नी' कहानी की संवाद योजना पर प्रकाश डालिए।

4.6 सारांश

कहानी के आरंभ में यह बताया गया है कि शहर के एक ओर तिरस्कृत से मकान के दूसरे तल्ले पर एक पति–पत्नी का जोड़ा रहता है। मकान को तिरस्कृत कहने का तात्पर्य ही यह है कि मकान मालिक मकान की ओर से उदासीन है उसकी पुताई, सफाई, रंग–रोगन की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। मालिक की उदासीनता बताती है कि उस घर के भीतर रहने वालों का जीवन भी उदासीन है। उत्साह और जिज्ञासा का अभाव है। वह उदासीनता पति–पत्नी में अलग–अलग तरह से उभरकर आती है। पति कालिन्दीचरण और पत्नी सुनन्दा, साथ रहने वाले दो पड़ोसियों की तरह लगते हैं। पति के अंदर उत्साह और जोश है तो केवल देश की स्वतंत्रता के प्रति। पत्नी और घर–गृहस्थी के प्रति कालिन्दीचरण उदासीन दिखाई देता है। वह सुबह से भूखी बैठी पत्नी से पूछता ही नहीं कि उसने खाना खाया या नहीं। अचानक देर से चार मित्रों को लेकर आता है और वे सब मिलकर सारा भोजन समाप्त कर देते हैं लेकिन कालिन्दीचरण अपनी पत्नी से पूछता नहीं कि तुम्हारे लिए कुछ बचा है कि नहीं, या अगर नहीं बचा है तो कुछ बना लो और खा लो। घर में क्या है, क्या नहीं है, इस विषय में वह उदासीन है। इसी उदासीनता के भाव के कारण उसका एकलौता बच्चा मर गया। सुनन्दा को उसका मरना बार–बार याद आता है वह बच्चे की छटपटाहट याद करके छटपटा उठती है। उसके जीवन का यह अभाव उसके मन को सूना कर गया है। वह निर्विकार भाव से घर में पति के साथ रहती है। बनाती, खिलाती है और एकांत मिलते ही बच्चे को याद करके रोती है। फिर भी वह पति पर आरोप नहीं लगाती। मन में टीस उठती है नाराज होती है लेकिन नाराजगी को मन में ही दबा लेती है।

सुनन्दा कम पढ़ी है, लेकिन और पढ़ना चाहती है। वह जानना चाहती है कि उसके पति इतने जोश और उत्साह के साथ जिस आजादी और भारतमाता की बातें करते हैं वे क्या है। उत्साह क्या होता है? वह उत्साह की भावना से अपरिचित है उसे लगता है यह कोई सुंदर आकर्षक, मनोरम चीज है, हरियाली की तरह मन को ठंडक पहुंचाने वाली। उसे उत्साह पाने की बड़ी ललक है। जीवन के प्रति उसकी चाह समाप्त होती जा रही है लेकिन वह जीना चाहती है। वह चाहती है कि उसका पति उसे पढ़ाए, लिखाए, उसे उत्साह के साथ स्वतंत्रता, भारतमाता आदि के संबंध में वे सब बातें बताए जो वह अपने मित्रों से करता है लेकिन उसकी पति की सहभागिनी बनने की चाह घुटकर रह जाती है क्योंकि वह पति की दृष्टि में एक हीन, उपेक्षित पात्र है उसका दायरा चौका बर्तन, भोजन आदि घरेलू कामों तक ही है।

सुनंदा जानती है कि सरकार क्या होती है। हाकिम लोग शक्तिशाली होते हैं। उसके पति के देशभक्ति के कार्यों से सरकार नाराज है। उसके घर के बाहर चौबीसों घंटे जासूस घूमते रहते हैं। वह चाहती है कि पति उत्साहित होकर मित्रों के साथ जोर–जोर से बातें न करें, धीरे बोले ताकि बाहर घूमता जासूस सुन न पाए। उसे पति के स्वास्थ्य और सुरक्षा की चिंता है। वह सोचती है मेरी चिंता नहीं करते तो न करें लेकिन कम से कम अपना ध्यान तो रखें।

जैनेंद्र जी की यह छोटी कहानी एक दृश्य तक ही सीमित है। सुनन्दा चूल्हे के पास बैठी पति की प्रतीक्षा करती है, स्मृतियों एवं चिन्तन में डूबते–उतराते भोजन तैयार करती है। पति चार मित्रों को लेकर आते हैं, वह मौन रहकर भोजन परोसकर रख देती है और दरवाजे से सटकर खड़ी हो जाती है प्रतीक्षा में कि शायद भोजन के दौरान उन्हें किसी चीज की आवश्यकता हो। कहानी छोटी होते हुए प्रभाव छोड़ जाती है। तत्कालीन स्त्री जीवन पर चिंतन करने के लिए प्रेरित करती है। तथापि इस कहानी का अंत अन्ततोगत्वा निराशाजनक है। मौन की भाषा के बल का सकारात्मक प्रयोग करके कहानी के अंत को जीवंत बनाया जा सकता था। परंतु कहानीकार इस मौन के औचित्य को स्थापित करने में सफल नहीं हुआ।

4.7 मुख्य शब्दाली

- **कटिबद्ध** – पूरी तरह तैयार
- **स्पृहणीय** – चाहने योग्य
- **अनायास** – बिना प्रयत्न/स्वाभाविक रूप से
- **अंकुश** – नियंत्रण
- **स्निग्ध वाणी** – स्नेह भरे वचन

4.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. पत्नी कहानी स्वतंत्रता के लिए जूझते भारत के एक शहर की और शहर के एक मध्यवर्गीय परंपरागत परिवार की कथा है।
2. पत्नी कहानी में करुणा की भावधारा प्रवाहित है। सुनंदा की पीड़ा आदि से अंत तक अनुभव होती है।
3. सुनंदा का बच्चा बिमार था। पति की लापरवाही के कारण ठीक समय पर उसका इलाज न हो सका और उसकी मृत्यु हो गई। बच्चे का तड़पकर मरना सुनंदा को बार–बार याद आता है ओर वह रो पड़ती है।
4. सुनंदा सोचती है उसके पति और मित्रों के भीतर कितना अधिक उत्साह है, जोश है वह भी इतने ही उत्साह और जोश से भरकर जीवन जीना चाहती है। वह चाहती है कि उसका पति उससे बाहरी दुनिया की बातें करे, उसे आगे शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित करे।
5. पत्नी कहानी में कालिन्दी और उसके मित्रों के बीच जोश से भरा सार्थक संवाद है। वाक्य छोटे और सुसंगत हैं। सुनन्दा का आत्मालाप मौन लेकिन जीवंत है।

4.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. 'पत्नी' कहानी का सारांश लिखिए।
2. 'पत्नी' कहानी का तात्विक विवेचन कीजिए।
3. 'पत्नी' कहानी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
4. 'पत्नी' कहानी के माध्यम से जैनेंद्र की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए।
5. सुनन्दा एवं कालिंदी का चरित्र चित्रण कीजिए।
6. 'पत्नी' कहानी के माध्यम से तत्कालीन भारतीय पुरुष की मानसिकता पर प्रकाश डालिए?

7. 'पत्नी' कहानी के माध्यम से तत्कालीन स्त्री के जीवन पर प्रकाश डालते हुए शिक्षा एवं स्त्री शिक्षा की आवश्यकता को सिद्ध कीजिए।

4.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. उषा प्रियवंदा –मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली–1974
2. जैनेंद्र – अभागे लोग तथा अन्य कहानियाँ, भाग–8, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली–1986
3. कमलेश्वर–कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि0 दिल्ली–1988
4. सं. शक्तिधर गुलेरी–गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, सरस्वती प्रेस बनारस–1945

इकाई 5 वापसी (उषा प्रियंवदा)

इकाई की रूपरेखा

5.0 परिचय

5.1 इकाई के उद्देश्य

5.2 कहानी 'वापसी' यथावत

5.3 व्याख्या

5.4 चरित्रचित्रण

5.4.1 गजाधर बाबू

5.4.2 अमर

5.5 आलोचना

5.6 सारांश

5.7 मुख्य शब्दावली

5.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

5.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

5.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

5.0 परिचय

उषा प्रियंवदा स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज के परिवर्तन को गहन–सूक्ष्म निरीक्षण–परीक्षण के पश्चात् मार्मिक अभिव्यक्ति देने वाली सिद्धहस्त कथाकार है। 'वापसी' मध्यवर्गीय परिवार के आंतरिक द्वंद्व और टूटन की कहानी है। नगरीय जीवन के अभ्यस्त आत्मकेंद्रित बच्चे अपने पिता को परिवार का मुखिया और पिता न समझकर आय का साधन मानने लगते हैं। यह आधुनिक भारत की सामाजिक विकृति की जीवंत प्रस्तुति है।

5.1 इकाई के उद्देश्य

- प्राचीन और नवीन पीढ़ी के बीच असामंजस्य के कारणों को दर्शाना;
- नयी पीढ़ी की संवेदनहीनता को दर्शाना;
- परिवार में आधुनिकता के नाम पर अमर्यादा, भोग–विलास और अकर्मण्यता की उपस्थिति को दर्शाना;
- मध्यवर्गीय परिवार के आर्थिक संघर्ष को दर्शाना।

5.2 कहानी 'वापसी' यथावत

गजाधर बाबू ने कमरे में जमा किए हुए सामान पर एक नज़र दौड़ाई। दो बक्स, डोलची, बाल्टी.....। ''यह डिब्बा कैसा है, गनेशी?''—उन्होंने पूछा।

घर जाने की खुशी में भी गजाधर बाबू ने कुछ विषाद का अनुभव किया जैसे एक परिचित स्नेह, आदरमय, सहज संसार से उनका नाता टूट रहा हो।

''कभी—कभी हम लोगों की खबर लेते रहिएगा।'' गनेशी बिस्तर में रस्सी बांधता हुआ बोला।

गनेशी ने अंगोछे के छोर से आंखें पोंछी— ''अब आप सहारा न देंगे, तो कौन देगा? आप यहाँ रहते तो शादी में कुद हौसला रहता।''

गजाधर बाबू चलने को आतुर बैठे थे। रेलवे—क्वार्टर का वह कमरा, जिसमें उन्होंने कितने ही वर्ष बिताए थे, उनका सामान हट जाने से नग्न और कुरूप सा लग रहा था। आंगन में रोपे पौधे भी पास—पड़ोस के लोग उखाड़ ले गए थे, वहाँ जगह—जगह पर गहरे गड्ढे बन गए थे। पर बाल—बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह सब एक दुर्बल लहर की तरह उठकर लीन हो गया।

गजाधर बाबू खुश थे— बहुत खुश! पैंतीस साल की लंबी नौकरी के बाद वे रिटायर होकर घर जा रहे थे। इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वे अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। इसी आशा के सहारे वे अपने अभाव का बोझा ढो रहे थे। सांसारिक दृष्टि से उनका जीवन सफल कहा जा सकता था। उन्होंने शहर में मकान बनवा लिया था। बड़े लड़के अमर और लड़की कांति की शादियाँ कर दी थी। दो बच्चे ऊंची कक्षाओं में पढ़ रहे थे।

गजाधर बाबू प्रायः छोटे स्टेशनों पर रहे। बच्चों की पढ़ाई का प्रश्न उठा था, तो पत्नी बच्चों के साथ शहर में रहने लगी थी। गजाधर बाबू बहुत स्नेही थे और स्नेह के आकांक्षी भी। उन्होंने यह व्यवस्था बच्चों के भविष्य के विचार से ही स्वीकार की थी पर उनके चले जाने से उनके जीवन में गहन सूनापन भर उठा था। उनसे घर में टिका न जाता था। जब परिवार साथ था, तो ड्यूटी से लौटकर पत्नी से हँसते—बोलते, बच्चों से खेलते, उन्हें दुलारते। अब कवि—प्रकृति के न होने पर भी उन्हें पत्नी और उमा की बातें याद आतीं। पत्नी दोपहर में दो बजे तक आग सुलगाए रहती और उनके लिए खाना गरम रखती। उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा—सा और थाली में परोस देती और बड़े प्यार से आग्रह करती। जब वे बाहर से आते, तो उनकी आहट पा वह चौके के द्वार पर निकल आती और उसकी सलज्ज आंखें मुस्करा उठतीं।...। गजाधर बाबू को हर छोटी बात याद आती और वे उदास हो उठते। अब कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था जब वे फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे....।

टोपी उतारकर गजाधर बाबू ने चारपाई पर रख दी और कोट उतारकर कील पर टांग दिया। अन्दर से रह—रहकर कहकहों की आवाज आ रही थी। इतवार का दिन था। उनके सब बच्चे इकट्ठे होकर नाश्ता कर रहे थे। गजाधर बाबू के सूखे चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान आ गयी। उसी तरह मुस्कराते हुए वे घर के अन्दर चले गए। उन्होंने देखा नरेन्द्र कमर पर हाथ रखे नाच रहा था और बसंती हंस—हंसकर दोहनी हुई जा रही थी। अमर की बहू को अपने तन—बदन, आंचल या घूंघट का कोई होश न था। गजाधर बाबू को देखते ही वहाँ एक सकपकाहट—भरा सन्नाटा छा गया। बहू ने झट सर ढांप लिया और नरेन्द्र ने बैठकर चाय का प्याला ओठों से लगा लिया। केवल हंसी दबाने के प्रयत्न में बसंती का शरीर रह—रहकर हिलता रहा।

गजाधर बाबू ने मुस्कराते हुए पूछा—''क्यों नरेन्द्र? क्या नकल हो रही थी?''

''कुछ नहीं बाबूजी।'' –नरेन्द्र ने सिटपिटाकर कहा।

गजाधर बाबू ने चाहा था कि वे भी उस मनोविनोद में भाग लेते, लेकिन उनके आते ही सब चुप हो गए तो उनके में थोड़ी–सी खिन्नता उपज आयी। बैठते हुए बोले–''चाय मुझे भी देना बसंती। तुम्हारी अम्मा ने अभी पूजा खतम नहीं की?''

बसंती ने मां के कमरे की ओर देखा–''अब आती ही होंगी।'' फिर उसने एक प्याले में चाय बनाकर पिता को दे दी।

गजाधर बाबू ने दो घूंट पीकर कहा–''बिट्टो, चाय तो फीकी–सी है।''

''लाइये, चीनी और डाल दूं।''

''रहने दो, तुम्हारी अम्मा जब दुबारा बनाएगी, तब पी लूंगा।''

बहू पहले ही चली गयी थी। नरेन्द्र चुपचाप खिसक गया। केवल बसंती पिता के लिहाज से बैठी, मां के आने की राह देखती रही। कुछ देर में उनकी पत्नी हाथ में लौटा लिए निकली और अशुद्ध स्तुति कहते हुए तुलसी को पानी दिया। माँ को देख बसंती भी उठ गई। पत्नी ने गजाधर बाबू को देखा, तो चौंककर बोली –''अरे आप अकेले बैठे हैं? वे सब कहाँ गए?

गजाधर बाबू के गले में जैसे फांस–सी पड़ गयी। बोले– ''अपने–अपने काम में लग गए हैं आखिर बच्चे ही हैं।''

पत्नी चौके में आकर बैठी तो नाक–भौं चढ़ाकर चारों ओर फैले झूठे बरतनों को देखा। फिर कहा–''इस घर में धरम–करम कुछ नहीं। पूजा करके फिर वही झूठा–सकरा छुओ! थ्कसी से इतना भी नहीं होता कि खाये–पिए बरतन ही समेट दे। फिर उसने नौकर को पुकारा। जब उत्तर न मिला तो एक बार और उच्च स्वर में पुकारकर पति की ओर देखकर बोली – ''बहू ने भेजा होगा – बाजार!'' और एक लम्बी सांस लेकर चुप हो गयी।

गजाधर बाबू बैठकर चाय और नाश्ते का इन्तजार करते रहे। उन्हें अचानक ही गनेशी की याद आ गयी। पैसेंजर आने से पहले, रोज सुबह वह गरम पूरियाँ और जलेबी बनाया करता था। गजाधर बाबू तैयार हो चुकते थे, तो उनके लिए नाश्ता और चाय रख देता था। चाय कितनी बढ़िया, बिल्कुल उनकी पसंद की– तीन चम्मच चीनी, कांच के गिलास में ऊपर गाढ़ी मलाई। पैसेंजर भले ही रानीपुर लेट पहुंचे, मगर गनेशी की चाय में कभी देर न होती.....!

पत्नी का शिकायत–भरा स्वर सुन उनके विचारों को आघात पहुंचा। वह कह रही थी– ''सारा दिन इसी खिच–खिच में निकल जाता है। नौकर से किसी बात की मदद नहीं। इसी गृहस्थी का धन्धा पीटते–पीटते उमर बीत गयी। कोई जरा हाथ भी नहीं बंटाता।''

''बहू क्या करती है?''–गजाधर बाबू ने पूछा।

पत्नी ने पूरी बेलकर कढ़ाई में छोड़ी–''पड़ी रहती है। बसंती को तो, फिर कहो कि कॉलेज जाना होता है।

गजाधर बाबू ने जोश में आकर बसंती को आवाज दी। बसंती भाभी के कमरे से निकली।

तो उन्होंने कहा –''बसंती, आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी तुम्हारी है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनायेगी।''

बसंती मुंह लटकाकर बोली – ''बाबूजी, पढ़ना भी तो होता है।''

गजाधर बाबू ने बड़े प्यार से समझाया – ''तुम सुबह पढ़ लिया करो। यह भी तो सोचो कि तुम्हारी अम्मा के शरीर में अ बवह ताकत नहीं बची है। तुम हो, भाभी है, दोनों को मिलकर काम में हाथ बटाना चाहिए।''

बसंती चुप रह गयी। उसके जाने के बाद उसकी मां ने धीरे से कहा–''कभी पढ़ने में म नही नहीं लगता। लगे कैसे? शीला से ही फुरसत नहीं। बड़े–बड़े लड़के हैं, उस घर में। मना भी करूँ तो सुनती नहीं। इसकी शादी हो जाए तो मेरे सीने से बोझ उतरे।''

नाश्ता कर गजाधर बाबू बैठक में चले गए। घर छोटा था और उसमें ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी। जिसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबंध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक में कुरसियों को दीवार से सटाकर, बीच में गजाधर बाबू के लिए एक पतली–सी चारपाई डाल दी गयी। गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े–पड़े, कभी अनायास ही, इस अस्थायित्व का अनुभव करने लगते। उन्हें याद हो आतीं वे रेलगाड़ियाँ, जो आतीं और कुछ देर रुककर किसी और लक्ष्य की ओर चली जाती। उनकी पत्नी के पास एक छोटा–सा कमरा अवश्य था, जिसका एक कोना अचारों के मर्तबान, दाल–चावल के कनस्तरों और घी के डिब्बे से घिरा था। दूसरी ओर पुरानी दरियों में लपेटी और रस्सी से बंधी रजाइयाँ रखी थीं। बसंती और उसकी मां के बक्सों के अतिरिक्त एक टीन के बड़े–से बॉक्स में घर–भर के गरम कपड़े थे। बीच में अलगनी बंधी हुई थी, जिस पर प्रायः बसंती के कपड़े लापरवाही से पड़े रहते थे। गजाधर बाबू भरसक उस कमरे में नहीं जाते। घर का दूसरा कमरा अमर और उसकी बहू के पास था। तीसरा कमरा, जो सामने की ओर था, बैठक था। गजाधर बाबू के आने से पहले उसमें अमर की ससुराल से आयी बेंत की तीन कुरसियों का सैट पड़ा था। कुरसियों पर नीली गदि्दयों और बहू के हाथों के कढ़े हुए कुशन थे।

जब कभी उनकी पत्नी को कोई लम्बी शिकायत करनी होती, तो वह अपनी चटाई बैठक में डाल पड़ जाती थीं। उस दिन इसी प्रकार ज बवह आकर लेटी, तो गजाधर बाबू ने घर–गृहस्थी की बात छेड़ दी। वे घर का रवैया देख रहे थे। बहुत हल्के–से उन्होंने कहा, ''अब हाथ में पैसा कम रहेगा। कुछ खर्च कम होना चाहिए।''

सभी खर्च तो वाजिब–वाजिब हैं, किसका पेट काटूं? जोड़–गांठ करते–करते बूढ़ी हो गयी, न मन का पहना, न ओढ़ा।

गजाधर बाबू ने आहत, विस्मित दृष्टि से पत्नी की ओर देखा। उनसे अपनी हैसियत छिपी न थी। उनकी पत्नी तंगी का अनुभव कर उसका उल्लेख करती, यह स्वाभाविक था, लेकिन उनसे तो सहानुभूति का पूर्ण अभाव गजाधर बाबू को बहुत खटका। उनसे यदि राय की बात की जाती कि प्रबंध कैसे हो तो उन्हें चिन्ता कम, सन्तोष अधिक होता। लेकिन उनसे तो केवल शिकायत की जाती थी। जैस परिवार की सब परेशानियों के लिए वही जिम्मेदार थे।

''तुम्हें किस बात की कमी है, अमर की मां? घर में बहू है, लड़के–बच्चे हैं, सिर्फ रुपये से ही इंसान अमीर नहीं होता।''– गजाधर बाबू ने कहा, और कहने के साथ ही अनुभव किा कि यह उनकी आंतरिक अभिव्यक्ति थी, ऐसी कि उनकी पत्नी नहीं समझ सकती। इस तरह की बात करते ही वे गहरा अकेलापन अनुभव कर उठते थे।

''हां, बड़ा सुख है न बहू से! आज रसोई करने गयी है, देखा क्या होता है।''– बहकर पत्नी ने आंखें मूंदी और थोड़ी ही देर में सो गयी। गजाधर बाबू बैठे हुए पत्नी को देखते रह गए। यही थी क्या उसकी पत्नी जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहाँ खो गई, उसकी जगह आज जो स्त्री है वह उनके मन और प्राणों के लिए नितांत अपरिचित है। गाढ़ी नींद में डूबी हुई उनकी पत्नी का भारी शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था। चेहरा श्रीहीन और रूखा था। गजाधर बाबू देर तक पत्नी को देखते रहे, फिर लेटकर छत की ओर ताकने लगे।

अन्दर कुछ गिरा और उनकी पत्नी हड़बड़ाकर उठ बैठी–''लो, शायद बिल्ली ने कुछ गिरा दिया।'' –और वह अन्दर भागी।

थोड़ी देर में लौटकर आयी तो उसका मुंह फूला हुआ था – 'देखो तो बहू के ढंग रसोई खुली छोड़ आयी थी, बिल्ली ने दाल की पतीली गिरा दी। अभी, सभी खाने को हैं, क्या खिलाऊंगी?

वह सांस लेने को रुकी–''एक तरकारी और चार परांठे बनाने में आधा डिब्बा घी उड़ेलकर रख दिया। जरा भी दरद नहीं है। कमाने वाला तो हाड़ तोड़े यहाँ चीजें लुटें। मुझे तो मालूम था कि यह सब काम किसी के बसका नहीं है।''

गजाधर बाबू को लगा कि उनकी पत्नी कुछ और बोलेगी तो उनके कान झनझना उठेंगे। होंठ भींच, करवट ले, उन्होंने पत्नी की ओर पीठ कर ली।

रात को बसंती ने भोजन जान–बूझकर ऐसा बनाया कि कौर न निगला जा सके। गजाधर बाबू चुपचाप खाकर उठ गए, पर नरेन्द्र थाली सरकाकर उठ खड़ा हुआ– ''मैं ऐसा खाना नहीं खा सकता।''

बसंती तुलककर बोली – ''तो न खाओ! कौन तुम्हारी खुशामद करता है?''

''तुमसे खाना बनाने को कहा किसने था?''

''बाबू जी ने।''

''बाबू जी को बैठे–बैठे यही सूझता है।''

बसंती को उठाकर माँ ने नरेन्द्र को मनाया और अपने हाथ से कुछ बनाकर खिलाया। गजाधर बाबू ने बाद में पत्नी से कहा–''इतनी बड़ी लड़की हो गयी और उसे खाना बनाने तक का शऊर नहीं आया?''

''अरे आता सब कुछ है, करना नहीं चाहती''–पत्नी ने उत्तर दिया।

अगली शाम माँ को रसोई में देख, कपड़े बदलकर बसंती बाहर निकली तो बैठक से गजाधर बाबू ने टोक दिया–''कहाँ जा रही हो?''

''पड़ोस में, शीला के घर।''

''कोई जरूरत नहीं है, अंदर जाकर पढ़ो!–गजाधर बाबू ने कड़े स्वर में कहा। कुछ देर अनिश्चित खड़ी रहकर बसंती अन्दर चली गयी।

गजाधर बाबू शाम को टहलकर लौटे तो पत्नी ने कहा – ''क्या कह दिया बसंती से?'' शाम से मुंह लपेटे पड़ी है, खाना भी नहीं खाया।

गजाधर बाबू खिन्न हो गए। पत्नी के स्वर से लगा कि जैसे दोष उनका ही है। उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि बसंती की शादी जल्दी ही कर देनी है।

उस दिन के बाद बसंती पिता से बची–बची रहने लगी। जाना होता तो पिछवाड़े से जाती। गजाधर बाबू ने दो–एक बार पत्नी से पूछा तो उसने कहा–''रूठी हुई है।''

गजाधर बाबू को और रोष हुआ–''लड़की के इतने मिजाज जाने से रोक दिया तो पिता से बोलेगी ही नहीं।''

फिर उनकी पत्नी ने सूचना दी कि अमर अलग होने की सोच रहा है।

''क्यों?'' गजाधर बाबू के दिल पर धक्का–सा लगा।

डनकी पत्नी ने साफ–साफ उत्तर नहीं दिया। अमर और उसकी बहू की शिकायतें बहुत–सी थी। उनका कहना था कि पिता जी हरदम बैठक में पड़े रहते हैं, कोई आ जाए तो कहीं बैठाने की जगह तक नहीं। वे अभी तक अमर को छोटा समझते थे और मौके–बेमौके राय देते रहते थे। बहू को काम करना पड़ता था और सास जब–तब उसके फूहड़पन पर ताने देती रहती थी।

''हमारे आने के पहले भी ऐसी बात हुई थी?'' गजाधर बाबू ने पूछा।

पत्नी ने सिर हिलाकर जताया कि नहीं पहले अमर घर का मालिक बनकर रहता था, बहू को रोक–टोक न थी। अमर के दोस्तों का प्रायः यहीं अड्डा जमा रहता था और अन्दर से चाय और नाश्ता जाता रहता था। बसंती को भी वही अच्छा लगता था।

गजाधर बाबू ने बहुत धीरे–धीरे से कहा– ''अमर से कहो, जल्दबाजी की कोई जरूरत नहीं है।

अगले दिन वे सुबह घूमकर लौटे तो उन्होंने पाया कि बैठक में उसकी चारपाई नहीं है। अन्दर जाकर पूछने वाले ही थे कि उनकी दृष्टि रसोई में बैठी पत्नी पर पड़ी। उन्होंने यह पूछने को मुंह, खोला कि बहू कहाँ है, पर कुछ याद कर चुप हो गए। पत्नी की कोठरी में झांका तो अचार, रजाइयों और कनस्तरों के मध्य अपनी चारपाई लगी पायी। गजाधर बाबू ने कोट उतारा और कहीं टांगने को दिवार पर नजर दौड़ाई। फिर उसे मोड़कर अलगनी के कुछ कपड़े खिसकाकर, एक किनारे टांग दिया। वे कुछ खाए बिना ही अपनी चारपाई पर लेट गए। कुछ भी हो, तन आखिरकार बूढ़ा था। सुबह–शाम कुछ दूर टहलने अवश्य चले जाते थे, पर जाते–जाते थक जाते थे।

गजाधर बाबू को अपना बड़ा–सा खुला हुआ क्वार्टर याद आ गया। निश्चिंत जीवन, सुबह पैसेंजर ट्रेन आने पर स्टेशन की चहल–पहल, चिपरिचित चेहरे और पटरी पर रेल के पहियों की खट–खट जो उनके लिए मधुर संगीत की तरह थी। तूफान और डाक गाड़ी के इंजनों की चिंघाड़ उनकी अकेली रातों की साथी थी। सेठ रामजीमल की मिल के कुछ लोग कभी पास आ बैठते, वही उनका दायरा था; वही उनके साथी। वह जीवन अब उन्हें एक खोयी हुई निधि–सा प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वे जिन्दगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से उन्हें एक–एक बूंद भी न मिली।

लेटे हुए वे घर के अन्दर से आने वाले विविध स्वरों को सुनते रहे। बहू और सास की छोटी–सी झड़प, बालटी पर खुले नल की आवाज, रसोई के बरतनों की खटपट और उसी में दो गैरैयों का वार्तालाप.....। अचानक ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दखल न देंगे। यदि गृह–स्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह नहीं है, तो यहीं पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गयी तो वहीं चले जाएंगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं, तो अपने घर में परदेशी की तरह पड़े रहेंगे.....।

–और उस दिन के बाद सचमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले। नरेन्द्र मांगने आया तो बिना कारण पूछे उसे रुपये दे दिये। बसंती देर–देर तक पड़ोस में रहती तब भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। पर उन्हें सबसे बड़ा गम यह था कि उनकी पत्नी ने भी उनमें कोई परिवर्तन लक्ष्य नहीं किया। वह मन–ही–मन कितना भार ढो रहे हैं इससे वह अनजान ही बनी रही, बल्कि पति के घर के मामले में हस्तक्षेप न करने से शांति ही थी। कभी–कभी वह कह भी उठती– ''ठीक ही है, आप बीच में न बोला कीजिये, बच्चे बड़े हो गए हैं। हमारा जो कर्त्तव्य है, कर रहे हैं। पढ़ा रहे हैं, शादी कर देंगे।''

गजाधर बाबू ने आहत दृष्टि से अपनी पत्नी को देखा। उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चों के लिए धनोपार्जन के एक निमित्तमात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से पत्नी मांग में सिंदूर डालने की अधिकारी है, समाज

में उसका कुछ स्थान है, उसके सामने वह दो वक्त भोजन की थाली रख देने से अपने कर्त्तव्य से छुट्टी पा जाती है। वह घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई है कि वही उसकी सम्पूर्ण दुनिया बन गई है। गजाधर बाबू उसके केन्द्र नहीं हो सकते, उन्हें तो उसकी परिधि पर ही जीवित रहना है।

किसी बात में हस्तक्षेप न करने के निश्चय के बाद भी उनका अस्तित्व घर के वातावरण का कोई भाग न बन सका। उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी, जैसे कि सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई थी। उनकी सारी खुशी एक गहरी उदासीनता में डूब गई।

इतने निश्चयों के बावजूद वे एक दिन बीच में दखल दे बैठे। उनकी पत्नी स्वाभावानुसार नौकर की शिकायत कर रही थी कि वह कितना कामचोर है, बाजार की हर किसी चीज में पैसा बनाता है, खाने बैठता है तो खाता चला जाता है। गजाधर बाबू को बरारबर यह महसूस होता रहता था कि उनके घर का रहन–सहन और खर्च उनकी हैसियत से कहीं ज्यादा है। बात सुनकर लगा कि नौकर का खर्च बिल्कुल बेकार है। उन्होंने उसी दिन नौकर का हिसाब कर दिया।

अमर दफ्तर से आया तो नौकर पुकारने लगा। अमर की बहू बोली – ''बाबूजी ने नौकर छुड़ा दिया है।''

''क्यों?''

''कहते हैं खर्च बहुत है।''

वार्तालाप सीधा, पर बहू जिस टोन में बोली, गजाधर बाबू को खटक गया। उस दिन जी भारी होने के कारण गजाधर बाबू टहलने नहीं गए थे। इसी बात से बेखबर नरेन्द्र बोला– ''अम्मा, तुम बाबूजी से कुछ कहती क्यों नहीं? बैठे–बिठाए कुछ नही ंतो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर वे समझें कि मैं साइकिल पर गेहूं रखकर आटा पिसाने जाऊंगा तो यह मुझसे नहीं होगा।''

''हां अम्मा'' –बसन्ती का स्वर था – ''मैं कॉलेज भी जाऊं और लौटकर घर में झाड़ू भी लगाऊं, यह मेरे बस की बात नहीं।''

''बूढ़े आदमी हैं'', –अमर भुनभुनाया– ''चुपचाप पड़े रहें, हर चीज में दखल क्यों देते हैं?

बच्चों की माँ ने बड़े व्यंग्य से कहा– ''और कुछ नहीं सूझा, तो तुम्हारी बहू को ही चौके में भेज दिया। वह गयी तो पन्द्रह दिन का राशन पाँच दिन में खतम कर दिया।

बहू कुछ कहे, इससे पहले ही वह रसोई में घुस गई। कुछ देर बाद अपने कमरे में आई और बिजली जलाई, तो गजाधर बाबू को वहाँ लेटे देख बड़ी सिटपिटायी। पर गजाधर बाबू की मुख–मुद्रा से वह उनके भावों का अनुमान न लगा सकीं। वे आंखें बंद किए लेटे हुए थे।

गजाधर बाबू चिट्ठी हाथ में लिए अन्दर आए और पत्नी को पुकारा। वह भीगे हाथ लिए निकली और आंचल से पोंछती हुई पास आ खड़ी हुई।

गजाधर बाबू ने बिना किसी भूमिका के कहा –''मुझे सेठ रामजीमल की चीनी मिल में नौकरी मिल गई है। खाली बैठे रहने से चार पैसे हाथ में आएं वही अच्छा है। उन्होंने तो पहले ही कहा था, मैंने मना कर दिया था।''

फिर कुछ रुककर, जैसे बुझी हुई आग में एक चिनगारी चमक उठे, मंद स्वर में उनहोंने कहा–''मैंने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद अवकाश पाकर परिवार के साथ रहूंगा। खैर, परसों जाना है। तुम भी चलोगी?''

''मैं?'' पत्नी ने सकपकाकर कहा – ''मैं चलूं तो यहाँ का क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी.....फिर सयानी

लड़की..... ।''

बात बीच में काटकर गजाधर बाबू ने थके हताश स्वर में कहा ''ठीक है, तुम यहीं रहो। मैंने तो ऐसे ही कहा था'' –और गहरे मौन में डूब गए।

नरेन्द्र ने बड़ी तत्परता से बिस्तर बांधा और रिक्शा बुला लाया। गजाधर बाबू का टिन का बाक्स और पतला–सा बिस्तर उस पर रख दिया गया। नाश्ते के लिए लड्डू और मठरी की डलिया हाथ में लिए गजाधर बाबू रिक्शे पर बैठ गए। एक दृष्टि उन्होंने अपने परिवार पर डाली और फिर दूसरी ओर देखने लगे। रिक्शा चल पड़ा।

उनके जाने के बाद सब अन्दर आए। बहू ने अमर से पूछा–''सिनेमा ले चलिएगा न?''

बसंती ने उछलकर कहा– ''भैया, हमें भी!''

गजाधर बाबू की पत्नी सीधे चौके में चली गयी। बची हुई मठरियों को कटोरदान में रखकर अपने कमरे में ले आयी और कनस्तरों के पास रख दिया। फिर बाहर आकर कहा– ''अरे नरेन्द्र, बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।''

5.3 व्याख्या

1 गनेशी बिस्तर.....टूट रहा हो।

संदर्भ – प्रस्तुत पंक्तियाँ उषा प्रियंवदा की कहानी वापसी से ली गई हैं।

प्रसंग – गजाधर बाबू रेलवे की नौकरी से अवकाश प्राप्त करने के बाद अपने घर जा रहे हैं। उनका नौकर गनेशी उनका सामान बांध रहा है। वह साथ में अपनी पत्नी के बनाए बेसन के लड्डुओं का डिब्बा भी रख देता है। कहता है कि अब आपकी सेवा का अवसर तो मिलेगा नहीं इसलिए मेरी पत्नी ने आपके लिए आपकी पसंद के लड्डू बना दिए हैं। इन भावुक क्षणों का चित्रण इन पंक्तियों में किया गया है।

व्याख्या – गजाधर बाबू पैंतीस वर्षों तक रेलवे की नौकरी करने के बाद रिटायर हो गए और अपनी पत्नी तथा बच्चों के साथ रहने का सपना देखते हुए बड़ी प्रसन्नता से अपना सामान बंधवा रहे हैं। उन्हें अपने घर लौटने की जल्दी भी है और खुशी भी लेकिन अनेक वर्षों से इस स्टेशन पर रहने के कारण उन्हें इस जगह से, क्वार्टर से, पेड़–पौधों से, नौकर गनेशी और उसके परिवार से, चीनी मिल के रोज साथ बैठने वाले साथियों से लगाव हो गया है। अतः इन सबको छोड़कर जाने का दुख भी है। इस दुख पर घर जाने की खुशी ही भारी है लेकिन गनेशी की बातें उन्हें फिर अवसाद में डुबा देती हैं। वह बिस्तर बांधते हुए बोला ''बाबू जी मेरी घरवाली को मालूम है कि आपको बेसन के लड्डू पसंद हैं इसलिए उसने कुछ लड्डू बना कर रख दिए हैं, खा लिजिएगा। हम गरीब लोग हैं अब आपकी सेवा का अवसर हमें कहा मिलेगा। आप यहाँ थे तो जो भी जैसी भी सेवा बनती थी, करते थे। अब आप शहर जा रहे हैं। हम गरीबों के पास इतना पैसा तो है नहीं कि आपसे मिलने शहर जा सकें। उसे अपनी गरीबी पर दुख होता है और लज्जा आती है कि बाबू जी के जाते समय वह केवल घर के बने बेसन के लड्डू दे पा रहा है। लेकिन उसे अपनी पत्नी पर गर्व भी होता है कि वह गरीब है लेकिन कंजूस नहीं। जो भी वह कर सकती थी, उसने किया। बाबूजी के प्रति प्रेम और आदर को समझते हुए उसने अपने पति को लड्ड का डिब्बा थमा दिया ताकि वह अपने बाबूजी को विदा करने खाली हाथ न जाए। गजाधर बाबू उसकी भावनाओं को समझते थे इसलिए उन्हें लगा जैसे वे इस परिचित स्नेह के, आदर के और सरल जीवन की परिधि से दूर जा रहे हैं। यहाँ लोगों ने उन्हें जो प्रेम और आदर दिया वह उनके लिए अमूल्य निधि है। यहाँ जीवन की सहजता और सरलता ने उनके मन को सुख–शांति से लबालब भर दिया था। अतः इसे छोड़ने का दुख, घर जाने की खुशी को धुंधला कर गया।

2 रेलवे क्वार्टर का.....लीन हो गया।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – गजाधर बाबू का सामान बंध जाने के बाद उनके रेलवे के आवास की दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है।

व्याख्या – गजाधर बाबू रेलवे की नौकरी से अवकाश प्राप्त करने के बाद अपना सामान बंधवा रहे हैं। वे अपने घर जो शहर में है, जा रहे हैं। वे जब तक इस क्वार्टर में रहे, उनकी उपस्थिति, उनके सामान से यह क्वार्टर सजा और सुंदर लगता था। गनेशी उसकी देखभाल करता था। घर के बाहर फूलों और फलों के पौधे लगे थे जिनकी हरियाली और रंगों की छटा से पूरा वातावरण जीवंत बना हुआ था। लेकिन जैसे ही पास–पड़ोस के लोगों को पता चला कि गजाधर बाबू रिटायर हो चुके हैं और वे यह क्वार्टर खाली करके अपने घर शहर जा रहे हैं, उन्होंने सारे पेड़–पौधे उखाड़ लिए और ले जाकर अपने आंगनों में रोप दिए। पौधों के उखड़ने से जगह–जगह गड्ढे बन गए, जिन्हें देख कर गजाधर बाबू दुखी तो हुए लेकिन उन्होंने किसी को कुछ नहीं कहा। खाली कमरों की कुरूपता, सन्नाटे और उदासी तथा पेड़–पौधों के स्थान पर खाली गड्ढों को देखने से उत्पन्न दुख की लहर बहुत हल्की थी जो घर जाने की खुशी के समुद्र में विलीन हो गई।

3 इन वर्षों में .....पढ़ रहे थे।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – गजाधर बाबू अवकाश प्राप्त करने के बाद अपने जीवन पर चिंतन कर रहे हैं।

व्याख्या – पैंतीस वर्षों तक रेलवे की नौकरी करते हुए गजाधर बाबू छोटे–छोटे स्टेशनों पर एकाकी जीवन बिताते रहे। उनकी पत्नी बच्चों को लेकर शहर में रहती थीं ताकि बच्चे शिक्षा प्राप्त कर सकें। गजाधर बाबू पत्नी और बच्चों के साथ का अभाव अनुभव करते थे। ये अभाव हर क्षण उन्हें भारी बोझ की तरह लगते थे। लेकिन वे इसी सहारे एक–एक दिन काटते रहे कि जिस दिन वे रिटायर होंगे, फिर उनहें पत्नी और बच्चों के साथ रहने का सुख मिलेगा। इसलिए रिटायर होकर घर जाते हुए वे बेहद प्रसन्न हैं। एक मध्यवर्गीय व्यक्ति अपने जीवन की असफलता और सफलता को इस पैमाने पर ही तोलता है कि उसने नौकरी प्राप्त की या नहीं की तो उसके चलते उसने अपना मकान बनवाया या नहीं, बच्चों को उच्च शिक्षा दी या नहीं, बच्चों का विवाह कराया या नहीं। इस दृष्टि से गजाधर बाबू अपने जीवन को सफल मानते हैं कि उन्होंने पैंतीस वर्ष रेलवे में नौकरी की और अपना मान शहर में बनवाया। बच्चों का विवाह कराया और उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने की सविधाएँ दी। वे अच्छे पति और पिता की तरह परिवार के सुख को ही अपना सुख मानकर संतुष्ट हैं।

4 गजाधर बाबू के गले में.....बच्चे ही हैं।

संदर्भ –पूर्ववत।

प्रसंग – घर में बच्चों की उपेक्षा से गजाधर बाबू को चोट लगती है। उनकी दुखद मनःस्थिति का चित्रण किया गया है।

व्याख्या – रिटायर होकर घर लौटे गजाधर बाबू अपने बच्चों के साथ घुल–मिलकर रहना चाहते हैं लेकिन बच्चे उनसे दूरी बनाए रखते हैं। रविवार के दिन सभी बच्चे एक साथ बैठ कर नाश्ता कर रहे थे और मजाक–मस्ती भी कर रहे थे। छोटा बेटा नरेन्द्र कमर पर हाथ रखे किसी की नकल उतार रहा था। गजाधर बाबू इस महफिल में शामिल होकर हंसना चाहते थे लेकिन जैसे ही वे कमरे में दाखिल हुए सभी सकपकाकर चुप हो गए। बहू ने सिर ढंक लिया, नरेन्द्र चाय पीने लगा फिर सभी उठ–उठ कर चले गए, वे कमरे में अकेले रह गए। उनका मन खिन्नता

और उदासी से भर गया। वे बच्चों के साथ मनोविनोद में भाग लेना चाहते हैं लेकिन नयी पीढ़ी क्यों पुरानी पीढ़ी से यह उपेक्षा का व्यवहार करती है, क्यों बुजुर्गों की मनःस्थिति को समझने का प्रयत्न नहीं करती, वे समझ नहीं पाते। पत्नी चाय लेकर आई तो उन्हें अकेले बैठा देखकर पूछ बैठी कि अरे, आप अकेले बैठे हैं बच्चे कहाँ गए? गजाधर बाबू का मन रूआंसा हो गया। उनके गले में फांस–सी पड़ गई। भावनाएँ आहत हो गई तो वे कुछ नहीं बोल पाए, बस इतना ही कहा कि सब अपने काम में लग गए, बच्चे ही तो हैं। अर्थात् उन्होंने स्वयं को और पत्नी को यह दिलासा देने का प्रयत्न किया कि बच्चे नासमझ होते हैं, अबोध हैं उन्हें कहाँ इतनी समझ है कि इतने वर्षों बाद लौटे पिता के साथ कुछ समय बिताना चाहिए।

5 घर छोटा था.....ओर चली जातीं।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग–शहर के अपने मकान में गजाधर बाबू के रहने की व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या–गजाधर बाबू ने नौकरी करते हुए शहर में जो मकान बनवाया, वह छोटा था। चार बच्चे, पति, पत्नी और बहू के आने के बाद वह और भी छोटा पड़ने लगा था लेकिन चूंकि गजाधर बाबू अपनी नौकरी करते हुए बाहर ही रहे इसलिए उनकी अनुपस्थिति को शाश्वत मानकर बच्चों ने ऐसी व्यवस्था कर ली कि उनके लौटकर आने पर उनके लिए कोई कमरा नहीं था। अतः बैठक में कुर्सी–टेबल सरकाकर उनके लिए पलंग डाल दिया गया। यह ऐसी अस्थायी लगने वाली व्यवस्था थी जैसे हम किसी मेहमान के लिए करते हैं कि एक–दो दिनों की बात है बैठक में ही रह लेगा, उसके जाते ही फिर सब ठीक कर लेंगे। गजाधर बाबू उस बैठक में पतली सी चारपाई पर पड़े–पड़े स्वयं को मेहमान जैसा समझकर बेचैन और दुखी होने लगते हैं। उन्हें इस अस्थायित्व को अनुभव करके उन रेलों की याद आती है जो स्टेशन में हमेशा के लिए नहीं ठहरतीं। आती हैं, थोड़ा रुककर, यात्रियों को उतार–चढ़ा कर फिर आगे चली जाती हैं। उन्हें लगता है उनका जीवन भी इस घर में ऐसा ही अस्थिर है, जैसे उन्हें फिर कहीं चले जाना है।

6 गजाधर बाबू ने आहत .....वही जिम्मेदार थे।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग–गजाधर बाबू की पत्नी उनसे जिस तरह अभावों की चर्चा करती हैं, उसमें सहानुभूति का अभाव होता है। गजाधर बाबू को लगता है जैसे पत्नी अभावों के लिए उन्हें ही जिम्मेदार ठहरा रही हो। वे आहत होकर जो सोचते हैं उसी भावना का चित्रण इन पंक्तियों में किया गया है।

व्याख्या–गजाधर बाबू रिटायर होकर घर आए तो उन्होंने देखा कि अतिरिक्त नौकर रखकर, पार्टी करके घूमने–फिरने पर फिजूल खर्ची हो रही है। जब तक वे नौकरी पर थे तब तक तो ठीक था लेकिन अब उन्हें केवल पेंशन मिलेगी, इसलिए घर के हर सदस्य को फिजूलखर्ची बंद कर देना चाहिए। वे जानते थे कि रिटायर होने के बाद अब उनमें फालतू खर्च करने की सामर्थ्य नहीं है। वे सोचते थे कि पत्नी उनकी स्थिति और भावनाओं को समझती है, इसलिए नादान बच्चों से कुछ न कहकर उन्होंने पत्नी से अकेले में सलाह–मशविरा वाले अंदाज में यह बात कही। उन्हें लगा पत्नी उन्हें दिलासा देकर कहेगी कि आप चिंता न करें, मैं बच्चों से कहूंगी हम सब मिलकर सम्हाल लेंगे। लेकिन उनकी सोच के विपरीत पत्नी ने कहा ''सभी खर्च तो वाजिब हैं किसका पेट काटूँ?'' जोड़–गांठ करते बूढ़ी हो गई, न मन का पहना, न ओढ़ा?'' गजाधर बाबू पत्नी के इस आरोप और शिकायत वाली भाषा से आहत हो गए। उन्हें आश्चर्य हुआ कि जीवन भर दूर, अकेला रहकर कमाता और भेजता रहा, लेकिन पत्नी ने उनके अकेलेपन, स्वास्थ्य आदि की चिंता कभी नहीं की। जितनी सामर्थ्य थी उतना परिवार के लिए किया, अगर वह सामान्य रूप से अभावों की चर्चा करती तो गजाधर बाबू को उतना बुरा नहीं लगता, लेकिन जिस रूखे और

बेगानेपन से उसने कहा वह उनके मन को खटक गया। पत्नी अगर पति के साथ बैठकर सलाह करती कि कैसे सब व्यवस्था होगी तो उन्हें संतोष होता लेकिन वह तो इस भाषा में आरोप लगा रही है जैसे सारे अभावों के लिए गजाधर बाबू ही जिम्मेदार हैं। बच्चों की फिजूलखर्ची उसे नहीं दिखाई देती। उसे वह आवश्यकता लगती है, बस पति की अवसथा के प्रति उसके मन में कोई सहानुभूति नहीं है। गजाधर बाबू का इस परिवार के प्रति मोहभंग हो जाता है वे दुखी और विरक्त हो जाते हैं।

7 तुम्हें किस बात.....कर उठते थे।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग– गजाधर बाबू की अपनी पत्नी के प्रति आहत मानसिकता को चित्रित किया गया है।

व्याख्या – गजाधर बाबू की पत्नी अभावों का रोना रोती है। वह ऐसा दर्शाना चाहती है कि उसका जीवन अभावों से भरा है, उसकी कोई इच्छा पूरी नहीं हुई। इस पर गजाधर बाबू उसे समझाते हुए कहते हैं कि तुम्हें किस बात की कमी है। बेटे–बेटी से घर भरा है, अपना मकान है। घर में बहू भी आ गई है। मन के सुख के लिए और क्या चाहिए? केवल रुपयों से ही आदमी अमीर नहीं होता, अपनों के बीच रहकर, रिश्ते–नातों को निभाते हुए, बच्चों को हंसते–खेलते देखकर भी अमीरी का अनुभव होता है। पैसों से दुख कम नहीं होता, बच्चों के प्यार से अपनों के साथ से दुख कम होता है यह ऐसा धन है जो सदा सुख–दुख में साथ रहता है। रुपये तो आते–जाते हैं। फिर रिश्ते–नातों के इस धन के बीच भी तुम क्यों अभावों की बात करती हो? गजाधर बाबू ने भावुक होकर ऐसी बात कही लेकिन पूरी बात कहते–कहते रुक गए क्योंकि उन्हें यह अनुभव हो गया था कि उनकी आत्मिक भावनाओं को समझने की सामर्थ्य उनकी पत्नी में नहीं बची है। वह भी भौतिक सुख–सुविधाओं के बीच रहकर बच्चों जैसी ही स्वार्थपरता के रंग में रंग गई है। इसलिए अपने रिटायर पति को सहजता से नहीं स्वीकार रही है। वे ऐसा सोचते–सोचते अकेलेपन का अनुभव करके दुखी हो जाते हैं।

8 यही थी क्या .....ताकने लगे।

संदर्भ–पूर्ववत।

प्रसंग– जीवन के और घर के अभावों की बात करके सोती हुई पत्नी को देखकर गजाधर बाबू अपने अतीत को याद करके वर्तमान से उसकी तुलना निम्नलिखित पंक्तियों में कर रहे हैं।

व्याख्या – गजाधर बाबू की पत्नी उनकी चारपाई के पास चटाई डालकर बैठती है और अपने घरेलू अभावों की, रुपयों की तंगी की बात करती है, बहू की शिकायत करती है फिर थककर सो जाती है। पति से उसकी नौकरी के एकाकी दिनों का हाल–चाल भी नहीं पूछती। अपनी सोती हुई कुरुप और बेडौल हो गई पत्नी को देखकर गजाधर बाबू सोचते हैं कि इसका चेहरा भी कितना श्रीहीन, रूखा यानि असुंदर हो गया है। देह का, चेहरे का सारा लावण्य, सारी सुंदरता तो खो ही गई है, मन भी बदल गया है। अब यह पहले की तरह मेरी चिंता नहीं करती। अब इसकी आंखों में मेरे लिए प्रेम के स्थान पर शिकायत और आरोप हैं। वे सोचते हैं कि युवावस्था ही थी जब परिवार को शहर में छोड़ छोटे–छोटे स्टेशनों पर नौकरी करता रहा। इसी पत्नी के कोमल हाथों के स्पर्श को याद करके, इसकी मुस्कान को याद करके जीवन काट दिया। यह पहले की तरह मुस्कुरा कर स्वागत करेगी, प्रतीक्षा में चिंतित होगी, लेकिन अब यह वह स्त्री नहीं रही। यह जो सो रही है मेरी वह पत्नी नहीं है जो मेरी हर सांस को पहचानती थी। यह तो मेरे हृदय और भावनाओं से अपरिचित कोई अन्य स्त्री ही बन गई है। अतीत को याद कर, वर्तमान से उसकी तुलना करते हुए उनका मन रो उठा। वे लेट गए और छत को एकटक ताकने लगे, जैसे और कोई काम जीवन में बा ही न हो।

9 वह जीवन .....न मिली।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – भंडार घर में डिब्बों–कनस्तरों के बीच पड़ी चारपाई पर लेटे गजाधर बाबू अपने रेलवे क्वार्टर को याद कर रहे हैं।

व्याख्या – भंडार गृह में चारों तरफ डिब्बे और कनस्तर हैं। उनकी पत्नी का यही कमरा है जिसमें अब उनकी चारपाई भी डाल दी गई है। चारों तरफ अलगनी पर कपड़े लटक रहे हैं। गजाधर बाबू का इस वातावरा में दम घुट रहा है। इतना छोटा सामान से भरा कमरा उन्हें दिया गया है। उनकी यहाँ टेबल–कुर्सी जितनी भी हैसियत नहीं है। वे फालतू सामान की तरह पड़े हैं। बच्चे उनके साथ प्यार से बात नहीं करते, उनके साथ समय नहीं बिताते। पत्नी व बच्चों के लिए वह एक धनोपार्जन के एक निमित्त मात्र हैं। एक ऐसा तत्व जिसके होने से घर में रुपया आता है। केवल उनके अस्तित्व से पत्नी अपनी मांग में सिंदूर डालने की अधिकारी है। बच्चों और पत्नी के साथ सुखपूर्वक जीने के लिए उन्होंने इन्हीं अवकाश के दिनों की जीवन भर प्रतीक्षा की। हर क्षण उदासी और एकाकीपन को ढोते रहे कि बस कुछ समय और लेकिन नहीं, गजाधर बाबू को लगता है जिंदगी उनसे लेती रही, दिया कुछ नहीं....। ये बच्चे और पत्नी ही उनका जीवन थे, जीवन की पूंजी थे जिनके लिए उन्होंने सारी पूंजी गंवाई, कभी अपनी ओर देखा ही नहीं, सोचा ही नहीं कि उन्हें भी सुख–सुविधा और ऐश्वर्य के साथ जीना चाहिए। पत्नी और बच्चों के सुख का ही ध्यान रहा, अब वे ही उपेक्षा कर रहे हैं। पत्नी घी–चीनी के डिब्बों में इतनी रम गई है कि पति का ध्यान उसकी सोचों की परिधि के बाहर ही रहता है। उपेक्षित और एकाकी गजाधर बाबू को लगता है कि वे ठगे गए हैं। जीवन के सौदे में उन्हें ठग लिया गया है। जिन्दगी से उन्होंने जो चाहा उसकी एक बूंद भी उन्हें नहीं मिली। उन्हें अपनी नौकरी वाला जीवन, संगी–साथी याद आते हैं जिन्होंने निःस्वार्थ भाव से उनका साथ दिया। अब उन्हें लगता है वही लोग, वह समय ही उनकी अमूल्य निधि थे जिन्हें वे छोड़ आए हैं। यहाँ भी कुछ नहीं मिला। उनके दोनों हाथ खाली हैं।

5.4 चरित्र चित्रण

5.4.1 गजाधर बाबू

'वापसी' कहानी के एकमात्र नायक गजाधर बाबू हैं। बाकी के पात्र अर्थात् उनकी पत्नी बच्चे सभी सहायक की भूमिका में उनके चरित्र को उभारते हैं। तीन बेटे और दो बेटियों के पिता गजाधर बाबू कर्त्तव्यनिष्ठ रेलवे कर्मचारी और सच्चे गृहस्थी हैं। नौकरी के दायित्वों को निष्ठापूर्वक निभाते हुए वे गृहस्थी के दायित्वों को भी निष्ठापूर्वक निभाते रहे।

सादगी भरा जीवन, जीवन की सीमित आवश्यकताएँ, अनुशासन और संयम गजाधर बाबू की विशेषताएँ हैं। अपने ऊपर कम–से–कम खर्च करके सारा रुपया परिवार के लिए भेजते रहे ताकि बच्चे अच्छी शिक्षा प्राप्त कर सकें, उन्हें अभावों का सामना न करना पड़े। शहर में मकान बनवाना, दो बच्चों का विवाह करवाना, दो बच्चों को उच्च शिक्षा दिलवाना इन सभी कर्त्तव्यों को निभाते हुए वे बेहद भावुक, संवेदनशील, स्नेहाकांक्षी पिता और पति की छवि प्रस्तुत करते हैं। वे श्रेष्ठ मानवीय संवेदनाओं से युक्त मनुष्य हैं क्योंकि घर लौटने के समय वे अपने नौकर गनेशी को दिलासा देते हैं और कहते हैं 'इस साल बेटी का विवाह कर देना कोई जरूरत हो तो मुझे बता देना।' नौकर के साथ उनकी यह आत्मीयता और सहृदयता उनके श्रेष्ठ मानवीय गुणों का परिचय देती है।

गजाधर बाबू मर्यादावान पुरुष हैं। वे आम परम्परागत भारतीय गृहस्थ व्यक्ति की तरह चाहते हैं कि उनकी बेटी बेवजह यहाँ–वहाँ ना घूमे, लड़कों से मित्रता न करे। वे समय पर बेटी का विवाह करा देना चाहते हैं ताकि वह

सम्मान सहित वह अपने गृहस्थ जीवन में प्रवेश करे। वे चाहते हैं कि बहू घर सम्हाले ताकि उनकी पत्नी को भी इस वृद्धावस्था में आराम मिल सके। बहू मर्यादा से पहन–ओढ़ कर घर में बहुओं की तरह रहे। इन बातों से पता चलता है कि गजाधर बाबू परम्परागत भारतीय पुरुष हैं। सामान्य मनुष्य की तरह छोटे–छोटे सपने देखते हैं और उनके पूरा होने की आकांक्षा रखते हैं। वे घर में बहू–बेटी के होते पराए व्यक्तियों का आना–जाना पसंद नहीं करते।

गजाधर बाबू फिजूलखर्ची पसंद नहीं करते इसलिए अतिरिक्त नौकर रखने के बजाय वे स्वयं काम करते हैं और बच्चों से भी यही अपेक्षा रखते हैं कि वे अपने कुछ काम स्वयं कर लिया करें। वे अपनी पत्नी के प्रति एकनिष्ठ प्रेम रखते हैं तथा उसके साथ युवावस्था की तरह हल्की–फुल्की बातें करना, ऋतुओं का आनंद लेना, घूमना, बैठना समय बिताना चाहते हैं लेकिन उनकी पत्नी ठेठ परम्परागत गृहस्थ स्त्री बन चुकी है जो पति के पास केवल बेटे–बेटी, बहुओं की शिकायत करने या अभावों तथा खर्चों का रोना रोने बैठती है। उसमें पति के लिए सहानुभूति औरप्रेम का अभाव था। जिसे गजाधर बाबू समझ चुके थे आहत थे। वह जान चुके थे कि उनकी पत्नी उनकी आंतरिक अभिव्यक्ति को नहीं समझ सकती। उनका कहना था कि– 'अमर की माँ सिर्फ रुपये से इंसान अमीर नहीं बनता।' लेकिन इस गहन, गूढ़ बात को उनकी पत्नी नहीं समझ सकती। यह सोचकर उसके आस–पास होने पर भी वे अकेलापन अनुभव करते थे। उनकी पत्नी का शरीर बेडौल और कुरूप, श्रीहीन और रूखा हो गया था। सारा लावण्य समाप्त हो चुका था। वे गहरे दुःख में डूबकर सोचते थे कि 'क्या यह वही पत्नी है सिके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने जीवन काट दिया? गजाधर बाबू अपने बच्चों के साथ बच्चे बन जाना चाहते थे लेकिन बच्चे उनसे दूर भागते थे। उनके पास आते ही हंसना, बोलना, नाचना–गाना बंद करके धीरे से वहाँ से हट जाते थे। बच्चों की यह उपेक्षा गजाधर बाबू को आहत करती है। उन्हें अपना खुला हुआ रेलवे क्वार्टर, चीनीमिल में काम करने वाले साथी, गनेशी, रेल की आवाज जो उन्हें मधुर संगीत का–सा सुख देती है याद आती है। उन्हें लगता है उनका जीवन भी रेल की ही तरह है। यात्री उसमें बैठते हैं और अपने गंतव्य पर उतर जाते हैं। उन्हें रेल से कोई लगाव नहीं होता। उसी तरह उनकी पत्नी–बच्चों को भी उनके साथ कोई लगाव या सहानुभूति नहीं है। उनके आने या रहने या चले जाने से उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। उन्हें केवल उनकी कमाई से मतलब है। हर महीने एक निश्चित रकम उन्हें मिल जाया करे बस फिर पिता कहाँ है, कैसे हैं? आएंगे या नहीं, इस सबसे उन्हें कोई लेना–देना नहीं। गजाधर बाबू भावुक मनुष्य हैं। प्रेम गहरा हो तो चोट भी गहरी लगती है। गजाधर बाबू का अपनी पत्नी, बच्चों के साथ रहने और सुख भोगने का स्वप्न टूट गया, मोह भंग हो गया और वे वापस चल दिए फिर वहीं जहाँ से आए थे। एकाकी जीवन जीने के लिए। चीनी मिल में नौकरी करने और शेष जीवन को पूरा करने के लिए। गजाधर बाबू का आत्मसम्मान प्रबल था। वे अनचाहे, अवांछित व्यक्ति की तरह नहीं रह सकते थे। स्वयं दुख सहकर भी उन्होंने अपने परिवार के स्वाभाविक जीवन–प्रवाह में बाधा नहीं डाली और वापस दूसरी नौकरी करने के लिए निकल पड़े। गजाधर बाबू अभागे व्यक्ति इस अर्थ में थे कि परिवार को वे जीवन भर देते ही रहे लेकिन परिवार से उन्हें वैसा स्नेह, सम्मान और सेवा नहीं मिली। गजाधर बाबू आधुनिक, यांत्रिक युग की स्वार्थी युवा पीढ़ी का शिकार, उपेक्षित पिता हैं।

5.4.2 अमर

गजाधर बाबू का बेटा है। जो विवाहित है। नौकरी करता है। स्वार्थी, उच्छृंखल और पत्नी का गुलाम है। वह अमर्यादित आचरण करता है। यह बात दो घटनाओं से सिद्ध होती है।

1. घर में अविवाहित युवा बहन, माँ और पत्नी के होते हुए घर में दोस्तों को बुलाकर पार्टी करता है जिसमें सभी शामिल होते हैं। कोई परदा या अनुशासन नहीं मानता। मां उन सबको बनाती–खिलाती है। उसे उन पर कोई दया नहीं आती।

2. पिता के आते ही पत्नी को साथ लेकर अलग रहने की बात करता है। पिता के लिए कहता है 'बूढ़े आदमी हैं। चुपचाप पड़े रहें, हर चीज में दखल क्यों देते हैं? पिता वापस दूसरी नौकरी पर जाने लगते हैं तो अमर या घर का कोई भी सदस्य उन्हें नहीं रोकता, न यह कहता कि इस वृद्धावस्था में उन्हें आराम की आवश्यकता है। अमर अपनी पत्नी से भी कभी यह नहीं कहता कि रसोई में जाकर मां की सहायता करे बल्कि खाली समय में घूमना, पिक्चर देखना और सैर–सपाटा करने में ही उसे आनंद आता है। अपने भाई और बहन को भी वह अपने जैसा अमर्यादित बनाकर रखता है, उन्हें किसी भी बात पर डांटता या टोकता नहीं है।

5.5 आलोचना

तात्विक विवेचन : उषा प्रियंवदा यथार्थवादी आधुनिक लेखिका है। इनके अधिकांश पात्र समाज के उच्च वर्ग के हैं किन्तु उच्च मध्य वर्ग के जीवन की उलझनों, द्वंद्व, तनाव को भी वे सफलतापूर्वक अंकित कर सकी हैं। उषा प्रियंवदा के साहित्य में प्राचीन मूल्यों का टूटना, नये मूल्यों का निर्माण दोनों ही दिखाई देते हैं। 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', 'फिर बसंत आया', 'एक कोई दूसरा', 'कितना बड़ा झूठ' उषा जी के चर्चित कहानी संग्रह हैं। वैसे तो उषा प्रियंवदा स्त्री के मन और जीवन की सफल जानकार मानी जाती हैं। इनका मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन जीवन के अंतरंग रंगों को उभार देता है। लेकिन ऐसा नहीं है कि ये पुरुषों के मन या जीवन का चित्रण करने में कहीं चूक गई हों। 'वापसी' एक ऐसी कहानी है जो उषा प्रियंवदा को श्रेष्ठ कहानीकारों एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण करने वाले लेखकों की पंक्ति में अग्रणी बनाती है। मध्य वर्ग की व्यापक पड़ताल करते हुए मध्यवर्गीय जीवन के विविध पहलुओं को मर्मस्पर्शी शैली में अभिव्यक्त करने में उषा जी ने सफलता पाई है। मध्यवर्ग का गृहस्थ जीवन किस तरह समन्वय बनाकर संतुलन स्थापित कर चलता है। एक भी कोना हिला नहीं कि जीवन अस्त–व्यस्त होने लगता है। गजाधर बाबू इस कहानी की धुरी हैं, नायक हैं। जो जीवन भर कमाकर भेजते रहे ताकि बच्चे अच्छी शिक्षा प्राप्त कर जीवन में स्थायित्व प्राप्त कर सकें, सुखी रहें। इस तपस्या में वे अपनी पत्नी, बच्चों के साथ रहने का सुख नहीं भोग पाते। रेलवे क्वार्टर में अकेले जीवन बिताते हुए सपने देखते हैं कि रिटायर होने पर फिर बच्चों के साथ सुख–शांति से रहेंगे। बच्चे उनकी सेवा करेंगे लेकिन जब लौटते हैं तो पाते हैं कि वे अपने ही घर में पराए और फालतू हो गए हैं। वे जिस पीड़ा को लेकर वापस नई नौकरी के लिए निकलते हैं वह पाठकों को हिलाकर रख देती है। आधुनिक युवा पीढ़ी के स्वार्थी चरित्र को इस कहानी में बखूबी दिखाया गा है। डॉ0 लक्ष्मी पांडेय लिखती हैं कि ''उषा प्रियंवदा की कहानियों में शिल्प की सजगता और विषयवस्तु की व्यापकता है। आज के परिवेश में जहाँ मनुष्य सदैव तनावग्रस्त रहता है, वे करुणा और अभिशापित त्रास का पुट देते हुए लेखन करती हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण रचनाकार की शैली और दृष्टि को नया आयाम देता है। उषा प्रियंवदा की भाषा में सपाट–सीधी अभिव्यक्ति उतनी नहीं मिलती जितनी संकेतात्मक, व्यंजननाप्रधान। लेखिका में कलात्मक संयम है। हिन्दी के साथ अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग सहजता से करती हैं। भाषा, पात्र, परिवेश एवं कथा के अनुकूल होती है। उदासी, निराशा और एकाकीपन कहानियों का मूल स्वर होने के कारण इनकी कहानियों में मौन ध्वनित होता है।'' 'वापसी' कहानी का हर दृश्य पाठक के मन को झकझोर देता है। गजाधर बाबू की मूक वेदना चीखों की तरह सुनाई देती है। वर्तमान इस तरह के दृश्यों से भरा है। युवा पीढ़ी और बुजुर्गों के त्याग, प्रेम, सपनों और आवश्यकताओं को न समझकर अपने जीवन को ही सुखी, समृद्ध बनाने में डूबा रहता है। भौतिक सुख–सुविधाओं के आगे उसे नैतिकता, मर्यादा, परम्पराएं बंधन की तरह प्रतीत होती हैं जैसे गजाधर बाबू की बेटी, बहू और बेटे को पिक्चर देखना, घूमने जाना, पार्टी करना इन सब गतिविधियों में पिता की उपस्थिति बाधा की तरह खटकती है और उनके जाने के निर्णय पर कोई उनकी वृद्धावस्था के सुख और आराम के संबंध में नहीं सोचता बल्कि सभी स्वतंत्रता का अनुभव करते हैं।

उषा प्रियंवदा इस कहानी में आधुनिक युवा पीढ़ी के चरित्र को उजागर करती है। इसमें दो पीढ़ियों के अंतर को दर्शाया गया है, जिसमें गजाधर बाबू की पत्नी भी बच्चों के साथ शामिल हो जाती हैं और पति की सुख–सुविधाओं का ध्यान नहीं रख पातीं। उनके साथ नहीं जातीं। यह कहानी मनुष्य जीवन के एक ऐसे पक्ष को उभारती हैं जिसको देखकर मोह भंग होता है। बच्चों की, अपनों की मोह–माया से मन दूर भागता है। आंतरिक पीड़ा सांसारिक विरक्ति को जन्म देती है। अपने–पराए का भेद पता चलता है। कुल मिलकर यह कहा जा सकता है कि 'वापसी' नयी कहानियों के सागर का नगीना है। उषा प्रियंवदा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और संसार को समझने, अभिव्यक्त करने का कौशल अद्‌भुत है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. गजाधर बाबू कहाँ नौकरी करते थे?
2. गजाधर बाबू की नौकरी के दौरान देखभाल किसने की?
3. घर लौटने पर गजाधर बाबू के प्रति उनकी पत्नी का व्यवहार कैसा था?
4. वापसी कहानी का परिवेश कैसा है?

5.6 सारांश

'वापसी' कहानी के नायक गजाधर बाबू हैं जो बुजुर्ग हैं, अवकाश प्राप्त करके अपने घर लौट रहे हैं। पूरी कहानी गजाधर बाबू के इर्द–गिर्द घूमती है। वे रेलवे में नौकरी करते हुए पैंतीस वर्ष अपने परिवार से, पत्नी बच्चों से दूर, अकेले छोटे–मोटे स्टेशनों पर रहे। बच्चों की पढ़ाई की समस्या को देखते हुए पत्नी बच्चों के साथ शहर में रहने लगीं। गजाधर बाबू अपने परिवार से बहुत प्रेम करते थे और प्रेम पाना भी चाहते थे लेकिन बच्चों का भविष्य इन भावनाओं से ऊपर था इसलिए उन्होंने यह एकाकी जीवन स्वीकार कर लिया। लेकिन जब भी वे फुर्सत के क्षणों में होते तो परिवार के बीच रहने के सपने देखा करते। उन्हें अपनी पत्नी का प्रेम और आदर याद आता। उनका नौकर गनेशी भला और ईमानदार व्यक्ति था। गनेशी और उसकी पत्नी समय पर उनके मन पसंद चाय–नाश्ते खाने का प्रबंध करते थे। गनेशी हर समय उनकी सेवा के लिए तत्पर रहता था। लेकिन जब भी वे ड्यूटी से लौटते उन्हें सूनापन अनुभव होता। वे याद करते कि कैसे पहले ड्यूटी से लौटने पर बच्चों के साथ खेलते उन्हें लाड़–प्यार करते थे। पत्नी से हंसते–बोलते थे। पत्नी उनकी आहट पाते ही चौके के बाहर आकर सलज्ज आंखों से मुस्कुराती हुई खड़ी हो जाती थी। दोपहर में दो बजे भी पहुंचते तो गरम रोटियाँ सेंककर खिलाती, मना करने पर भी एकाध रोटी ज्यादा परोसकर खाने का अनुरोध करती। गजाधर बाबू के एकाकी जीवन में गृहस्थ जीवन का सुख ठहर गया है, उन्हें लगता है अब भी सब कुछ वैसा ही है बच्चे वैसे ही उनकी प्रतीक्षा में आतुर और भावुक, पत्नी वैसी ही भावुक प्रिया होगी। वे रिटायर होते ही लौटकर घर जाएंगे और फिर उन्हीं दिनों जैसा सुख भोगेंगे। बच्चे बड़े हो गए तो क्या, हैं तो बच्चे ही। गजाधर बाबू हर महीने अधिकाधिक रुपया अपने परिवार के एिल भेज देते हैं। उनके चार बच्चों में से बड़े बेटे अमर और बेटी कांति का विवाह हो गया। दो बच्चे ऊंची कक्षाओं में पढ़ रहे हैं। उन्होंने शहर में मकान बनवा लिया है। इस दृष्टि से उनका जीवन सफल है ऐसा वे मानते हैं। इस सफल जीवन में सुख भोगने की कल्पना में ही अवकाश प्राप्त करना उन्हें अच्छा लगा। उनके क्वार्टर के सारे पौधे पड़ोसी ले जाते हैं, लेनि वे अपने घर लौटने की खुशी में उन्हें कुछ नहीं कहते, गनेशी सारा सामान बांध देता है। उसकी पत्नी एक डिब्बे में बेसन के लड्डू बनाकर रख देती है और दोनों पति–पत्नी गजाधर बाबू को रोते–रोते विदा करते हैं। गजाधर बाबू ने इस बिछोह के दुख को घर लौटने की खुशी के नीचे दबा दिया।

गजाधर बाबू का शहर का मकान छोटा था। उसमें ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उनके रहने के लिए अलग से कोई कमरा खाली नहीं था। घर में उनकी उपस्थिति केवल मनीऑर्डर पाने तक ही अनुभव की जाती थी।

बच्चों की अपनी जीवन शैली थी। अमर अपने काम पर जाता, उनकी पत्नी दिनभर कमरे में आराम करती। कोई रोक–टोक नहीं थी। प्रायः अमर के दोस्तों का अड्डा वहीं जमा रहता था। सभी पिक्चर देखने के शौकीन थे। कहीं कोई अवरोध नहीं था। गजाधर बाबू की पत्नी सुबह से रात तक रसोई में रहतीं। बच्चों और उनके मित्रों को बनाती–खिलाती और खुश रहती थी। गजाधर बाबू के पहुंचते ही बच्चों को लगा उनकी स्वतंत्रता बाधित हो गई है। घूमने, पिक्चर देखने, पार्टी करने में बाधा उत्पन्न हो गई है। अतः वातावरण तनावग्रस्त हो गया।

गजाधर बाबू के रहने की व्यवस्था बैठक में थी जैसे किसी मेहमान के लिए अस्थायी प्रबंध किया गया हो। उन्हें अपनी स्थिति देखकर उन ट्रेनों की याद आती जो स्टेशन पर रुकती हैं और कुछ देर ठहरकर कहीं चल देती हैं। बच्चों की हंसी–मजाक सुनकर अगर गजाधर बाबू उसमें शामिल होना चाहते तो बच्चे उन्हें आया देख चुप हो जाते और एक–एक कर वहाँ से चल देते। गजाधर बाबू का मन आहत हो जाता कि इन्हीं बच्चों के साथ खेलने–बोलने का सुख पाने के लिए वे आतुर थे। पत्नी जब भी बैठती अभावों का रोना रोती या बच्चों की शिकायत करती। अतीत के जो भावुक, प्रेमिल क्षण जिनके लिए गजाधर बाबू तरस रहे थे, वक्त की आंधी की चपेट में आकर खो गए थे। बेटी को भी पिता की हिदायतें बुरी लगती हैं, वह नाराज और चुप सी रहती है। पिता के सामने आने से बचती है।

एक दिन गजाधर बाबू सुबह घूमकर लौटे तो उन्होंने पाया कि उनका बिस्तर भी उसी भण्डार कक्ष में लगा दिया गया जहाँ पापड़, अचार, गेहूं, चावल, कपड़ों के बीच उनकी पत्नी का पलंग था, क्योंकि बैठक में उनकी उपस्थिति से बेटे–बहू को आने–जाने में परेशानी होती थी और वे अलग मकान लेकर रहने की बात सोच रहे थे। परिवार की उपेक्षा के कारण गजाधर बाबू का मन और सपने टूट गए। आहत होकर उन्होंने चुप्पी साध ली और किसी को टोकना या कुछ भी पूछना बंद कर दिया। एक दिन शाम को थकान होने के कारण वे अपने निर्धारित समय पर घूमने नहीं गए, अंधेरे कमरे में पड़े सोचते रहे 'वह खुला हुआ रेलवे क्वार्टर जिसमें उनका एक छत्र राज्य था। हर समय उनका ध्यान रखने वाला गनेशी, समय पर खाना–पीना।' और यहाँ वे परिवार के बीच कितना, अकेलापन और उपेक्षा अनुभव कर रहे हैं। अंततः एक दिन गजाधर बाबू ने बच्चों की शिकायतें स्वयं सुन ली। उन लोगों को लगा वे उस समय घूमने गए हैं। अतः बेटा, बेटी, माँ सभी अपनी–अपनी भड़ास निकाल रहे थे। नरेन्द्र बोला ''अम्मा, तुम बाबूजी से कुछ कहती क्यों नहीं? बैठे–बिठाए और कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर वे समझते हैं कि मैं साइकिल पर गेहूं रखकर आटा पिसाने जाऊंगा तो यह मुझसे नहीं होगा।'' बसंती बोली हां अम्मा मैं कॉलेज मभी जाऊं और लौटकर घर में झाड़ू भी लगाऊं यह मेरे बस की बात नहीं है। 'बूढ़े आदमी हैं' अमर भुनभुनाया 'चुपचाप पड़े रहें, 'हर चीज में दखल क्यों देते हैं?' बच्चों की मां ने भी व्यंग्य से कहा 'और कुछ नहीं सूझा तो तुम्हारी बहू को ही चौके में भेज दिया। वह गई तो पंद्रह दिन का राशन पाँच दिन में खतम।' गजाधर बाबू इस सारे वार्तालाप को सुनकर उसमें अपनी पत्नी की भी भागीदारी से आहत और बेचैन हो उठे। उन्होंने वापस नौकरी पर जाने का निर्णय कर लिया। रामजीमल की चीनी मिल में उन्हें बुलाया जा रहा था लेकिन परिवार के साथ रहने की आकांक्षा में उन्होंने मना कर दिया था, लेकिन अब उन्होंने हामी भर दी और पत्नी से पूछा कि क्या तुम साथ चलोगी। वह बोली अविवाहित बेटी और बच्चों को छोड़कर कैसे चल सकती हूँ। गजाधर बाबू निर्विकार भाव से सामान लेकर रिक्शे पर बैठे जिसे उनका बेटा ले आया था और चल दिए। उनके जाते ही उनका पलंग कमरे से हटा दिया गया, पत्नी रसोई में काम करने लगी और बेटे–बहू सिनेमा जाने का कार्यक्रम बनाने लगे।

गजाधर बाबू की वापसी मन को उदासियों और पीड़ा से भरी कर देती है। रक्त संबंधों में घुले स्वार्थ द्वारा की गई यह उपेक्षा और तिरस्कार पुरानी पीढ़ी को निरर्थकता के बोध से भर देता है। जब तक वे कमाते रहे और रुपया भेजते रहे तब तक बच्चों के लिए पिता ठीक थे लेकिन जब रिटायर होकर सेवा, आदन और स्नेह पाने का अवसर आया, सुविधा भोगी बच्चों को वे फालतू सामान लगने लगे। मां की उन बच्चों के जीवन में इतनी ही भूमिका

थी कि वे दिन भर उनकी सेवा–टहल करती थीं, दखलअंदाजी नहीं करती थीं। उनमें और कर्त्तव्यनिष्ठ नौकरानी में कोई अंतर नहीं था। पत्नी भी छोटे स्टेशनों पर अकेले पति के साथ रहने के बदले शहर में सर्व सुविधायुक्त जीवन बिताना पसंद कती है इसलिए बच्चों की सेवा–टहल में ही अपना समय बिता देती है। गजाधर बाबू की 'वापसी' के कारण कहानी मर्मस्पर्शी और दुखांत हो गई है। यह कहानी वर्तमान आधुनिक यांत्रिक युग के मध्यवर्गीय गृहस्थ जीवन का यथार्थ चित्रण है।

5.7 मुख्य शब्दावली

- **गहन** – गहास
- **वाजिब** – उचित
- **निर्वीकार** – बिना बिगड़े/अपरिवर्तित
- **तिरस्कार** – उपेक्षा
- **दखलंदाली** – हस्तक्षेप

5.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. गजाधर बाबू रानीपुर स्टेशन पर स्टेशन मास्टर थे। वे पैंतीस वर्षों तक नौकरी के बाद रिटायर होकर घर जा रहे थे।
2. गनेशी नाम का नौकर तथा उसकी पत्नी गजाधर बाबू की देखभाल करते थे। समय पर नाश्ते–खाने का इंतजाम करते थे।
3. पैंतीस साल बाद घर लौटने पर पत्नी का व्यवहार बदला हुआ मिला। वह बच्चों के रंग में रंगी हुई, सुविधा भोगी स्त्री बन गई थी। पति की उपस्थिति उसे भी बंधन की तरह प्रतीत हुई।
4. वापसी कहानी शहर के मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है, जहाँ आर्थिक तंगी और अभाव के साथ महत्वाकांक्षाओं की जंग चलती रहती है। वापसी कहानी आधुनिकता और परंपरा के बीच द्वंद्व की कहानी है। पिता की करुणा और बच्चों की स्वच्छंदता के बीच हारती और टूटती पुरानी पीढ़ी की कहानी है।

5.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. 'वापसी' कहानी का सारांश लिखिए।
2. 'वापसी' कहानी का तात्विक विवेचन कीजिए।
3. 'वापसी' कहानी में उषा प्रियंवदा की भाषा–शैली पर प्रकाश डालिए।
4. 'वापसी' कहानी के माध्यम से लेखिका कौन–सा उद्देश्य पूरा करना चाहती हैं?
5. गजाधर बाबू का चरित्र चित्रण कीजिए?
6. गजाधर बाबू को पत्नी और पुत्रों का कौन–सा व्यवहार आहत करता है?
7. 'गजाधर बाबू' के जीवन से हमें कौन–सी शिक्षा मिलती है?
8. गजाधर बाबू की पत्नी के व्यवहार का विश्लेषण करते हुए बताइए कि क्या एक पत्नी को अपने पति के साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए?
9. गजाधर बाबू की पत्नी के व्यवहार के पक्ष और विपक्ष में तर्क दीजिए?

5.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. उषा प्रियंवदा – मेरी प्रिय कहानियाँ, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली–1974
2. जैनेंद्र – अभागे लोग तथा अन्य कहानियाँ, भाग–8, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली–1985
3. कमलेश्वर – कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ, पराग प्रकाशन दिल्ली–1976
4. निर्मल वर्मा – प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली–1988
5. सं. शक्तिधर गुलेरी – गुलेरी जी की अमर कहानियाँ, सरस्वती प्रेस, बनारस–1945

इकाई–6 गैंग्रीन (अज्ञेय)

इकाई की रूपरेखा :

6.0 परिचय

6.1 इकाई के उद्देश्य

6.2 कहानी गैंग्रीन यथावत

6.3 व्याख्या

6.4 चरित्र चित्रण

- 6.4.1 मालती
- 6.4.2 महेश्वर

6.5 आलोचना

6.6 सारांश

6.7 मुख्य शब्दावली

6.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

6.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

6.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

6.0 परिचय

अज्ञेय की कहानी 'गैंग्रीन' बेहद प्रतीकात्मक कहानी है जिसकी अंतर्धारा में छिपी व्यंग्यात्मकता कहानी में निबद्ध जड़ता और एकरसता को अनेक अर्थ व्यंजनाओं के साथ सतह पर लाती है। कहानी का केन्द्र मालती की रोज–रोज वही नीरस, ऊबाऊ, अनुपात्दक दिनचर्या पर है जहाँ हर गुजरता पल उसे एक तल्ख सुकून देता है। मालती महेश्वर की ठहरी हुई जिन्दगी को लेखक इसलिए उतने ही ठहरे और ऊबे ढ़ंग से चित्रित करते हैं ताकि पाठक अपनी अतिपरिचित दिनचर्या को एक नई निगाह से देखकर स्वयं पूछ सके कि निरर्थकताबोध से उबरने के लिए क्या उसने कुछ किया?

6.2 गैंग्रीन–यथावत

दोपहर में उसे सूने आँगन में पैर रखते ही मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो उस पर किसी शाप की छाया मँडरा रही हो, उसके वातावरण में कुछ ऐसा अकथ्य, अस्पृश्य, किन्तु फिर भी बोझल और प्रकम्पमय और घना–सा सन्नाटा फैल रहा था....

मेरी आहट सुनते ही मालती बाहर निकली। मुझे देखकर, पहचान कर उसकी मुरझाई हुई मुख–मुद्रा तनिक से मीठे विस्मय से जागी–सी और फिर पूर्ववत् हो गई। उसके कहा, ''आओ जाओ।'' और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए भीतर की ओर चली। मैं भी उसके पीछे हो लिया।

भीतर पहुँचकर मैंने पूछा, ''वे यहाँ नहीं हैं?''

''अभी आए नहीं, दफ्तर में हैं। थोड़ी देर में आ जाएँगे। कोई डेढ़–दो बजे आया करते हैं।''

''कब के गए हुए हैं?''

''सवेरे उठते ही चले जाते हैं।''

मैं 'हूँ' कर पूछने को हुआ, 'और तुम इतनी देर क्या करती हो?' पर फिर सोचा, आते ही एकाएक प्रश्न ठीक नहीं हैं। मैं कमरे के चारों ओर देखने लगा।

मालती एक पंखा उठा लाई और मुझे हवा करने लगी। मैंने आपत्ति करते हुए कहा, ''नहीं, मुझे नहीं चाहिए।'' पर वह नहीं मानी, बोली, ''वाह! चहिए कैसी नहीं?'' इतनी धूप में तो आए हो! यहाँ तो।''

मैंने कहा, ''अच्छा, लाओ मुझे दे दो।''

वह शायद 'न' करने वाली थी, पर तभी दूसरे कमरे से शिशु के रोने की आवाज सुनकर उसने चुपचाप पंखा मुझे दे दिया और घुटने पर हाथ टेककर एक थकी हुई 'हुँह' करके उठी और भीतर चली गई।

मैं उसके जाते हुए, दुबले शरीर को देखकर सोचता रहा–यह क्या है....यह कैसी छाया–सी इस घर में छाई हुई है?....

मालती मेरी दूर के रिश्ते की बहन है, किन्तु उसे सखी कहना ही उचित है क्योंकि हमारा परस्पर सम्बन्ध सख्य का ही रहा है। हम बचपन से इकट्ठे खेले हैं, इकट्ठे लड़े और पिटे हैं, और पढ़ाई भी बहुत–सी इकट्ठे ही हुई थी और हमारे व्यवहार में सदा सख्य की स्वेच्छा और स्वच्छन्दता रही है, वह कभी भ्रातृत्व के या बड़े–छोटेपन के बन्धनों में नहीं घिरा....

मैं आज कोई चार वर्ष बाद उसे देखने आया हूँ। जब मैंने उसे इससे पूर्व देखा था, त बवह लड़की ही थी, अ बवह विवाहिता है, एक बच्चे की माँ भी है। इससे कोई परिवर्तन उसमें आया होगा और यदि आया होता तो क्या,

यह मैंने अभी तक सोचा नहीं था, किन्तु अब उसकी पीठ की ओर देखता हुआ मैं सोच रहा था, यह कैसी छाया इस घर पर छाई हुई है....और विशेषतया मालती पर.....

मालती बच्चे को लेकर लौट आई और फिर मुझसे कुछ दूर नीचे बिछी हुई दरी पर बैठ गई। मैंने अपनी कुर्सी घुमाकर कुछ उसकी ओर उन्मुख होकर पूछा, 'इसका नाम क्या है?'

मालती ने बच्चे की ओर देखते हुए उत्तर दिया, 'नाम तो कोई निश्चित नहीं किया, वैसे 'टिटी' कहते हैं।

मैंने उसे बुलाया, ''टिटी, टिटी, आ जा,'' पर वह अपनी बड़ी–बड़ी आँखों से मेरी ओर देखता हुआ अपनी माँ से चिपट गया और रुआँसा–सा होकर कहने लगा, 'उहूँ–उहूँ–उहूँ–ऊँ....'

मालती ने फिर उसकी ओर एक नज़र देखा और फिर बाहर आँगन की ओर देखने लगी....

काफी देर मौन हा। थोड़ी देर तक तो वह मौन आकस्मिक ही था जिसमें मैं प्रतीक्षा में था कि मालती कुछ पूछे, किन्तु उसके बाद एकाएक मुझे ध्यान हुआ, मालती ने कोई बात नहीं की....यह भी नहीं पूछा कि मैं कैसा हूँ, कैसे आया हूँ....चुप बैठी है, क्या विवाह के दो वर्ष में ही वह बीते दिन भूल गई? या अब मुझे दूर–इस विशेष अन्तर पर–रखना चाहती है? क्योंकि वह निर्बाध स्वच्छन्दता अब तो नहीं हो सकती.....पर फिर भी, मौन, जैसा अजनबी से भी नहीं होना चाहिए...

मैंने कुछ खिन्न–सा होकर, दूसरी ओर देखते हुए कहा, ''जान पड़ता है, तुम्हें मेरे आने से विशेष प्रसन्नता नहीं हुई–''

उसने एकाएक चौंककर कहा, हूँ

यह 'हूँ' प्रश्न–सूचक था, किन्तु इसलिए नहीं कि मालती ने मेरी बात सुनी नहीं थी, केवल विस्मय के कारण। इसलिए मैंने अपनी बात दुहराई नहीं, चुप बैठा रहा। मालती कुछ बोली ही नहीं, तब थोड़ी देर बाद मैंने उसकी ओर देखा। वह एकटक मेरी ओर देख रही थी, किन्तु मेरे उधर उन्मुख होते ही उसने आँखें नीची कर लीं। फिर भी मैंने देखा, उन आँखों में कुछ विचित्र सा भाव था, मानो मालती के भीतर कहीं कुछ चेष्टा कर रहा हो, किसी बीती हुई बात को याद करने की, किसी टूटे हुए व्यवहार–तन्तु को पुनरुज्जीवित करने की और चेष्टा में सफल न हो रहा हो...वैसे–वैसे बहुत देर से प्रयोग में न लाए हुए अंग को व्यक्ति एकाएक उठाने लगे और पाए कि वह उठता ही नहीं है, चिर–विस्मृति में मानो मर गया है, उतने क्षीण बल से (यद्यपि वह सारा प्राप्य बल है) उठ नहीं सकता...मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो किसी जीवित प्राणी के गले में किसी मृत जन्तु का तौक डाल दिया गया हो, वह उसे उतारकर फेंकना चाहे, पर उतार न पाए....

तभी किसी ने किवाड़ खटखटाए। मैंने मालती की ओर देखा, पर वह हिली नहीं। जब किवाड़ दूसरी बार खटखटाए गए, त बवह शिशु को अलग करके उठी और किवाड़ खोलने गई।

ये यानि मालती के पति आए। मैंने उन्हें पहली बार देखा था यद्यपि फोटो से उन्हें पहचानता था। परिचय हुआ। मालती खाना तैयार करने आँगन में चली गई, और हम दोनों भीतर बैठकर बातचीत करने लगे, उनकी नौकरी के बारे में, उनके जीवन के बारे में, उस स्थान के बारे में और ऐसे अन्य विषयों के बारे में जो पहले परिचय पर उठा करते हैं, एक तरह का स्वरक्षात्मक क्वच बनकर...

मलती के पति का नाम है–महेश्वर। वह एक पहाड़ी गाँव में सरकारी डिस्पेंसरी के डॉक्टर हैं, उसी हैसियत से इन क्वार्टरों में रहते हैं। प्रातःकाल सात बजे डिस्पेंसरी चले जाते हैं और डेढ़ या दो बजे लौटते हैं, उसके बाद दोपहर–भर छुट्टी रहती है, केवल शाम को एक–दो घण्टे फिर चक्कर लगाने के लिए जाते हैं, डिस्पेंसरी के साथ के छोटे–से अस्पताल में पड़े हुए रोगियों को देखने और अन्य जरूरी हिदायतें करने से उनका जीवन भी बिल्कुल एक

निर्दिष्ट ढर्रे पर चलता है, नित्य वही काम, उसी प्रकार के मरीज, वही हिदायतें, वही नुस्खे, वही दवाइयाँ। वह स्वयं उकताए हुए हैं और इसलिए और साथ ही इस भयंकर गर्मी के कारण वह अपने फुरसत के समय में भी सुस्त ही रहते हैं...

मालती हम दोनों के लिए खाना ले आई। मैंने पूछा, ''तुम नहीं खाओगी? या खा चुकीं?''

महेश्वर बोले, कुछ हँसकर, 'वह पीछे खाया करती है....'

पति ढाई बजे खाना खाने आते हैं, इसलिए पत्नी तीन बजे तक भूखी बैठी रहेगी!

महेश्वर खाना आरम्भ करते हुए मेरी ओर देखकर बोले, 'आपको तो खाने का मजा क्या ही आएगा, ऐसे बेवक्त खा रहे हैं?

मैंने उत्तर दिया, ''वाह! देर से खाने पर तो और भी अच्छा लगता है, भूख बढ़ी हुई है, पर शायद मालती बहन को कष्ट होगा।''

मालती टोककर बोली, 'ऊँ हूँ, मेरे लिए तो यह नई बात नहीं है...रोज ही ऐसा होता है....'

मालती बच्चे को गोद में लिए हुए थी। बच्चा रो रहा था, पर उसकी ओर कोई भी ध्यान नहीं दे रहा था।

मैंने कहा, 'यह रोता क्यों है?'

मालती बोली, 'हो ही गा है चिड़चिड़ा–सा, हमेशा ही ऐसा रहता है, फिर बच्चे को डाँटकर कहा, 'चुप कर।'' जिससे वह और भी रोने लगा। मालती ने भूमि पर बैठा दिया और बोली, 'अच्छा ले, रो ले।' और रोटी लेने आँगन की ओर चली गई।

जब हमने भोजन समाप्त किया तब तक तीन बनजे वाले थे, महेश्वर ने बताया कि उन्हें आज जल्दी अस्पताल जाना है, वहाँ एक–दो चिन्ताजनक केस आए हुए हैं जिनका ऑपरेशन करना पड़ेगा...दो की शायद टाँग काटनी पड़े, गैंग्रीन हो गया है...थोड़ी देर में वह चले गए। मालती किवाड़ बन्द कर आई और मेरे पास बैठने ही लगी थी कि मैंने कहा, 'अब खाना तो खा लो, मैं उतनी देर टिटी से खेलता हूँ।''

वह बोली, 'खा लूँगी, मेरे खाने की कौन बात है,'' किन्तु चली गई। मैं टिटी को हाथ में लेकर झुलाने लगा सिसे वह कुछ देर के लिए शांत हो गया।

दूर...शायद अस्पताल में ही, तीन खड़के। एकाएक मैं चौंका, मैंने सुना, मालती वहीं आँगन में बैठी अपने–आप ही एक लम्बी–सी थकी हुई साँस के साथ कह रही है, ''तीन बज गए...' मानो बड़ी तपस्या के बाद कोई कार्य सम्पन्न हो गया हो...

थोड़ी देर में मालती फिर आ गई। मैंने पूछा, 'तुम्हारे लिए कुछ बचा भी था? सब–कुछ तो...'

''बहुत था।''

''हाँ, बहुत था, भाजी तो सारी मैं ही खा गया था, वहाँ बचा कुछ होगा नहीं, यों ही रोब तो न जमाओ कि बहुत था।'' मैंने हँसकर कहा।

मलती मानो किसी और विषय की बात कहती हुई बोली, 'यहाँ सब्जी–वब्जी तो कुछ होती ही नहीं; कोई आता–जाता है तो नीचे से मँगा लेते हैं। मुझे आए पन्द्रह दिन हुए हैं, जो सब्जी साथ लाए थे वही अभी बरती जा रही है....

मैंने पूछा, ''नौकर कोई नहीं है?''

''कोई ठीक मिला नहीं, शायद दो–एक दिन में हो जाए।''

''बरतन भी तुम्ही माँजती हो?''

''और कौन?'' कहाँ गई थी?''

''आज पानी ही नहीं है, बरतन कैसे माँजेंगे?''

''क्यों, पानी को क्या हुआ?''

''रोज ही होता है....कभी वक्त पर तो आता नहीं, आज शाम को सात बजे आएगा, तब बरतन मँजेंगे।''

'चलो, तुम्हें सात बजे तक तो छुट्टी हुई,'' कहते हुए मैं मन–ही–मन सोचने लगा, 'अब इसे रात के ग्यारह बजे तक काम करना पड़ेगा, छुट्टी क्या खाक हुई?''

यही उसने कहा। मेरे पास कोई उत्तर नहीं था, पर मेरी सहायता टिटी ने की एकाएक फिर रोने लगा और मालती के पास जाने की चेष्टा करने लगा। मैंने उसे दे दिया।

थोड़ी देर फिर मौन रहा। मैंने जेब से अपनी नोटबुक निकाली और पिछले दिनों के लिखे हुए नोट देखने लगा, तब मालती को याद आया कि उसने मेरे आने का कारण तो पूछा नहीं, और बोली, ''यहाँ आए कैसे?''

मैंने कहा ही तो, 'अच्छा, अब याद आया? तुमसे मिलने आया था, और क्या करने?''

''तो दो–एक दिन रहोगे न?''

''नहीं कल चला जाऊँगा, जरूरी जाना है।''

मालती कुछ नहीं बोली, कुछ खिन्न–सी हो गई। मैं फिर नोटबुक की तरफ देखने लगा।

थोड़ी देर बाद मुझे भी ध्यान हुआ, मैं आया तो हूँ मालती से मिलने, किन्तु यहाँ वह बात करने को बैठी है और मैं पढ़ रहा हूँ, पर बात भी क्या की जाए? मुझे ऐसा लग रहा था कि इस घर पर जो छाया घिरी हुई है, वह अज्ञात रहकर भी मानो मुझे भी वश में कर

रही है, मैं भी वैसा ही नीरस निर्जीव–सा हो रहा हूँ, जैसे–हाँ, जैसे यह घर, जैसे मालतीकृ

मैंने पूछा, ''तुम कुछ पढ़ती–लिखती नहीं?'' मैं चारों ओर देखने लगा कि कहीं किताबें दिख पड़ें।

''यहाँ!'' कहकर मालती थोड़ा–सा हँस दी। वह हँसी कह रही थी, यहाँ पढ़ने को है क्या?''

मैंने कहा, 'अच्छा, मैं वापस जाकर जरूर कुछ पुस्तकें भेजूँगा...'' और वार्तालाप फिर समाप्त हो गई....

थोड़ी देर बाद मालती ने फिर पूछा 'आए कैसे हो, लारी में?''

''पैदल।''

''इतनी दूर? बड़ी हिम्मत की।''

''आखिर तुझसे मिलने आया हूँ?''

''ऐसे ही आए जो?''

''नहीं, कुली पीछे आ रहा है, सामान लेकर। मैंने सोचा, बिस्तरा ले ही चलूँ।''

''अच्छा किया, यहाँ तो बस....'' कहकर मालती चुप रह गई, फिर बोली, ''तब तुम थके होंगे, लेट जाओ।''

''नहीं, बिलकुल नहीं थका।''

''रहने भी दो, थके नहीं, भला थके हैं?''

''और तुम क्या करोगी?''

''मैं बरतन माँज रखती हूँ, पानी आएगा तो धुल जाएँगे।''

मैंने कहा, ''वाह!'' क्योंकि और कोई बात मुझे सूझी नहीं.....

मैं भी लेट गया और छत की ओर देखने लगा...मेरे विचारों के साथ आँगन से आती हुई बरतनों के घिसने की खन–खन ध्वनि मिलकर एक विचित्र स्वर उत्पन्न करने लगी जिसके कारण मेरे अंग धीरे–धीरे ढीले पड़ने लगे, मैं ऊँघने लगा....।

एकाएक वह एक स्वर टूट गया–मौन हो गया। इससे मेरी तन्द्रा भी टूटी, मैं उस मौन में सुनने लगा....

चार खड़क रहे थे और इसी का पहला घंटा सुनकर मालती रुक गई थी...।

वही तीन बजे वाली बात मैंने फिर देखी, अबकी बार और उग्र रूप में। मैंने सुना, मालती एक बिलकुल अनैच्छिक, अनुभूतिहीन, नीरस, यन्त्रवत्–वह भी थके हुए यन्त्र के–से स्वर में कह रही है, ''चार बज गए'' मानो इस अनैच्छिक समय गिनने–गिनने में ही उसका मशीन–तुल्य जीवन बीतता हो, वैसे ही, जैसे मोटर का स्पीडोमीटर यन्त्रवत् फासला नापता जाता है, और यन्त्रवत् विश्रांत स्वर में कहता है (किससे) कि मैंने अपने अमित शून्यपथ का इतना अंश तय कर लिया....न जाने कब, कैसे मुझे नींद आ गई।

तब छह कभी के बज चुके थे, जब किसी के आने की आहट से मेरी नींद खुली, और मैंने देखा कि महेश्वर लौट आए हैं और उनके साथ ही बिस्तर लिए हुए मेरा कुली। मैं मुँह धोने को पानी माँगने को ही था कि मुझे याद आया, पानी नहीं होगा। मैंने हाथों से मुँह पोंछते–पोंछते महेश्वर से पूछा, ''आपने बड़ी देर की?''

उन्होंने किंचित् ग्लानि–भरे स्वर में कहा, 'हाँ, आज वह गैंग्रीन का ऑपरेशन करना ही पड़ा, एक कर आया हूँ, दूसरे को एम्बुलेंस में बड़े अस्पताल भिजवा दिया है।''

मैंने पूछा, ''गैंग्रीन कैसे हो गया?''

''एक काँटा चुभा था, उसी से हो गया, बड़े लापरवाह लोग होते हैं यहाँ के....

मैंने पूछा, ''यहाँ आपको केस अच्छे मिल जाते हैं? आय के लिहाज से नहीं, डॉक्टरी के अभ्यास के लिए?''

बोले, 'हाँ, मिल ही जाते हैं, यही गैंग्रीन, हर दूसरे–चौथे दिन एक केस आ जाता है, नीचे बड़े अस्पतालों में भी....''

मालती आँगन से ही सुन रही थी, अब आ गई, बोली, ''हाँ, केस बनाते देर क्या लगती है? काँटा चुभा था, इस पर टाँग काटनी पड़े यह भी कोई डॉक्टरी है? हर दूसरे दिन किसी की टाँग, किसी की बाँह काट आते हैं, इसी का नाम है अच्छा अभ्यास!''

महेश्वर हँसे, ''न काटें तो उसकी जान गँवाएँ?''

''हाँ, पहले तो दुनिया में कांटे ही नहीं होते होंगे? आज क तो सुना नहीं था कि काँटों के चुभने से मर जाते हैं....'

महेश्वर ने उत्तर नहीं दिया, मुस्करा दिए। मालती मेरी ओर देखकर बोली, ''ऐसे ही होते हैं डॉक्टर, सरकारी अस्पताल है न, क्या परवाह है। मैं तो रोज ही ऐसी बातें सुनती हूँ! अब कोई मर–मुर जाए तो ख्याल ही नहीं होता। पहले तो रात–रात भर नींद नहीं आया करती थी।''

तभी आँगन में खुले हुए नल ने कहा– टिप्–टिप्–टिप्–टिप्–टिप्–टिप्...

मालती ने कह, ''पानी!'' और उठकर चली गई। खनखनाहट से हमने जाना, बरतन धोए जाने लगे हैं....

टिटी महेश्वर की टाँगों के सहारे खड़ा मेरी ओर देख रहा था, अब एकाएक उन्हें छोड़कर मालती की ओर खिसकता हुआ चला। महेश्वर ने कहा, ''उधर मत जा!'' और उसे गोद में उठा लिया, वह मचलने और चिल्ला–चिल्ला कर रोने लगा।

महेश्वर बोले, ''अब रो–रोकर सो जाएगा, तभी घर में चैन होगी।''

मैंने पूछा, ''आप लोग भीतर ही सोते हैं? गर्मी तो बहुत होती है?''

''होने को तो मच्छर भी बहुत होते हैं, पर यह लोहे का पलंग उठाकर बाहर कौन ले जाए?'' अब के नीचे जाएँगे तो चारपाइयाँ ले आएँगे।'' फिर कुछ रूककर बोले, ''आज तो बाहर ही सोएँगे। आपके आने का इतना लाभ ही होगा।''

टिटी अभी तक रोता ही जा रहा था। महेश्वर ने उसे एक पलंग पर बिठा दिया और पलंग बाहर खींचने लगे। मैंने कहा, ''मैं मदद करता हूँ'' और दूसरी ओर से पलंग उठाकर निकलवा दिए।

अब हम तीनों–महेश्वर, टिटी और मैं– दो पलंगों पर बैठ गए और वार्तालाप के लिए उपयुक्त विषय न पाकर उस कमी को छुपाने के लिए टिटी से खेलने लगे। बाहर आकर वह कुछ चुप हो गया था, किंतु बीच–बीच में जैसे एकाएक कोई भूला हुआ कर्त्तव्य याद करके रो उठता था, और एकदम चुप हो जाता था.. और कभी कभी हम हँस पड़ते थे, या महेश्वर उसके बारे में कुछ बात कह देते थे....

मालती बरतन धो चुकी थी। जब वह उन्हें लेकर आँगन के एक ओर रसोई के छप्पर की ओर चली, तब महेश्वर ने कहा, ''थोड़े से आम लाया हूँ, वह भी धो लेना।''

''कहाँ हैं?''

''अँगीठी पर रखे हैं, कागज में लिपटे हुए।''

मालती ने भीतर जाकर आम उठाए और अपने आँचल में डाल लिए। जिस कागज में वे लिपटे हुए थे, वह किसी पुराने अखबार का टुकड़ा था। मालती चलती–चलती संध्या के उस क्षीण प्रकाश में उसी को पढ़ती जा रही थी...वह नल के पास जाकर खड़ी उसे पढ़ती रही। जब दोनों ओर पढ़ चुकी, तब एक लम्बी साँस लेकर उसे फेंककर आम धोने लगी।

मुझे एकाएक याद आया...बहुत दिनों की बात थी...जब हम आर्मी स्कूल में भरती हुए ही थे। जब हमारा सबसे बड़ा सुख, सबसे बड़ी विजय थी हाज़िरी हो चुकने के बाद चोरी से क्लास से निकल भागना और स्कूल से कुछ दूरी पर आम के बगीचे में पेड़ों पर चढ़कर कच्ची आमियाँ तोड़–तोड़ खाना। मुझे याद आता...कभी जब मैं भाग जाता और मालती नहीं आ पाती थी तब मैं भी खिन्न–मन लौट आया करता था।

मालती कुछ नहीं पड़ती थी, उसके माता–पिता तंग थे, एक दिन उसके पिता ने उसे एक पुस्तक लाकर दी और कहा कि इसके बीस पेज रोज पढ़ा करो, हफ्ते–भर बाद मैं देखूँ कि इसे समाप्त कर चुकी हो, नही तो मार–मार की चमड़ी उधेड़ दूंगा। मालती ने चुपचाप किताब ले ली, पर क्या उसने पढ़ी? वह नित्य ही उसके दस पन्ने, बीस पेज, फाड़कर फेंक देती, अपने खेल में किसी भाँति फर्क न पड़ने देती। जब आठवें दिन उसके पिता ने

पूछा ''लाओ, मैं प्रश्न पूछूँगा'', तो चुप खड़ी रही। पिता ने फिर कहा, तो उद्धत स्वर में बोली, ''किताब मैंने फाड़कर फेंक दी है, मैं नहीं पढ़ूँगी।''

उसके बाद वह बहुत पिटी, पर वह अलग बात है। इस समय मैं यही सोच रहा था कि वही उद्धत और चंचल मालती आज कितनी सीधी हो गई है, कितनी शांत, और एक अखबार के टुकड़े को तरसती है...

यह क्या, यह.....

तभी महेश्वर ने पूछा, ''रोटी कब बनेगी?''

''बस, अभी बनाती हूँ।''

पर अबकी बार जब मालती रसोई की ओर चली, तब टिटी की कर्त्तव्य–भावना बहुत विस्तीर्ण हो गई। वह मालती की ओर हाथ बढ़ाकर रोने लगा और नहीं माना। मालती उसे भी गोद में लेकर चली गई। रसोई में बैठकर एक हाथ से उसे थपकने और दूसरे से कई एक छोटे–छोटे डिब्बे उठाकर अपने सामने रखने लगी....

और हम दोनों चुपचाप रात्रि की, और भोजन की, और एक–दूसरे से कुछ कहने की, और न जाने किस–किस न्यूवता की पूर्ति की प्रतीक्षा करने लगे।

हम भोजन कर चुके थे और बिस्तरों पर लेट गए थे और टिटी सो गया था। मालती पलंग के एक ओर मोमजामा बिछाकर उसे उस पर लिटा गई थी। वह सो गया था, पर नींद में कभी–कभी चौंक उठता था। एक बार तो उठकर बैठ भी गया था, पर तुरंत ही लेट गया।

मैंने महेश्वर से पूछा–''आप तो थके होंगे, सो जाइए।''

वह बोले, ''थके तो आप अधिक होंगे....अठारह मील पैदल चलकर आए हैं।''

किन्तु उनके स्वर ने मानो जोड़ दिया, ''थका तो मैं भी हूँ।''

मैं चुप रहा, थोड़ी देर में किसी अपर संज्ञा ने मुझे बताया, वह ऊँघ रहे हैं।

तब लगभग साढ़े दस बजे थे, मालती भोजन कर रही थी।

मैं थोड़ी देर मालती की ओर देखता रहा, वह किसी विचार में–यपि बहुत गहरे विचार में नहीं, लीन हुई धीरे–धीरे खाना खा रही थी, फिर मैं इधर–उधर खिसककर, पर आराम से होकर, आकाश की ओर देखने लगा।

पूर्णिमा थी, आकाश अनभ्र था।

मैंने देखा...उस सरकारी क्वार्टर की दिन में अत्यंत शुष्क और नीरस लगने वाली स्लेट की छत भी चाँदनी में चमक रही है, अत्यंत शीतलता और स्निग्धता से छलक रही है, मानो चन्द्रिका उस पर से बहती हुई आ रही हो, झर रही हो.....

मैंने देखा,पवन में चीड़ के वृक्ष....गर्मी से सूखकर मटमैले हुए चीड़ के वृक्ष....धीरे–धीरे गा रहे हों....कोई राग जो कोमल है, किंतु करुण नहीं, अशान्तिमय है, किन्तु उद्वेगमय नहींकृमैंने देखा, प्रकाश से धुँधले नीले आकाश के तट पर जो चमगादड़ नीरव उड़ान से चक्कर काट रहे हैं, वे भी सुन्दर दिखते हैं....

मैंने देखा..., दिन–भर की तपन, अशान्ति, थकान, दाह, पहाड़ों में से भाप–से उठकर वातावरण में खोए जा रहे हैं जिसे ग्रहण करने के लिए पर्वत–शिशुओं ने अपनी चीड़–वृक्षरूपी भुजाएँ आकाश की ओर बढ़ा रखी हैं...

पर यह सब मैंने ही देखा, अकेले मैंने...महेश्वर ऊँघ रहे थे और मालती उस समय भोजन से निवृत्त होकर दही जमाने के लिए मिट्टी का बर्तन गरम पानी से धो रही थी, और कह रही थी, ''अभी छुट्टी हुई जाती है।'' और मेरे कहने पर ही कि ''ग्यारह बनजे वाले हैं,'' धीरे से सिर हिलाकर जता रही थी कि रोज ही इतने बजे जाते हैं...

मालती ने वह सब कुछ नहीं देखा, मालती का जीवन अपनी रोज़ की नियत गति से बहा जा रहा था और एक चन्द्रमा की चन्द्रिका के लिए, एक संसार के लिए रुकने को तैयार नहीं था...

चाँदनी में शिशु कैसा लगता है, इस अलस जिज्ञासा में मैंने टिटी की ओर देखा और वह एकाएक मानो किसी शैशवोचित वामता से उठा और खिसककर पलंग से नीचे गिर पड़ा और चिल्ला–चिल्ला कर रोने लगा। महेश्वर ने चौंककर कहा...''क्या हुआ?'' मैं झपटकर उसे उठाने दौड़ा, मालती रसोई से बाहर निकल आई, मैंने उस 'खट्' शब्द को याद करके धीरे से करुणा–भरे स्वर में कहा, ''चोट बहुत लग गई है बेचारे के।''

यह सब मानो एक ही क्षण में, एक ही क्रिया की गति में हो गया।

मालती ने रोते हुए शिशु को मुझसे लेने के लिए हाथ बढ़ाते हुए कहा, ''इसके चोटें लगती ही रहती हैं, रोज ही गिर पड़ता है।''

एक छोटे क्षण–भर के लिए मैं स्तब्ध हो गया, फिर मन के भीतर ही, बाहर एक शब्द भी नहीं निकाला–'माँ, युवती माँ, यह तुम्हारे हृदय को क्या हो गया है जो तुम अपने एकमात्र बच्चे के गिरने पर ऐसी बात कह सकती हो–और यह अभी, जब तुम्हारा सारा जीवन तुम्हारे आगे है!'

और तब एकाएक मैंने जाना कि वह भावना मिथ्या नहीं है, मैंने देखा कि सचमुच उस कुटुम्ब में कोई गहरी भयंकर छाया घर कर गई है, उनके जीवन के इस पहले ही यौवन में घुन की तरह लग गई है, उसका इतना अभिन्न अंग हो गई है कि वे उसे पहचानते ही नहीं, उसी की परिधि में घिरे हुए चले जा रहे हैं। इतना ही नहीं, मैंने उस छाया को देख भी लिया...

इतनी देर में, पूर्ववत् शांति हो गई थी। महेश्वर फिर लेटकर ऊँघ रहे थे। टिटी मालती के लेटे हुए शरीर से चिपटकर चुप हो गया था, यद्यपि कभी एक आध सिसकी उसके छोटे–से शरीर को हिला देती थी। मैं भी अनुभव करने लगा था कि बिस्तर अच्छा–सा लग रहा है। मालती चुपचाप ऊपर आकाश में देख रही थी, किन्तु क्या चन्द्रिका को या तारों को?

तभी ग्यारह का घंटा बजा, मैंने अपनी भारी हो रही पलकें उठाकर अकस्मात् किसी अस्पष्ट प्रतीक्षा से मालती की ओर देखा। ग्यारह के पहले घंटे की खड़कन के साथ मालती की छाती एकाएक फफोले की भाँति उठी और धीरे–धीरे बैठने लगी, और घंटा–ध्वनि के कम्पन के साथ ही मूक हो जाने वाली आवाज़ में उसने कहा, ''ग्यारह बज गए....''

6.3 गैंग्रीन–व्याख्या खण्ड :

- ''प्रातः काल सात.....उकताए हुए हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश अज्ञेय द्वारा रचित 'गैंग्रीन' कहानी से अवतरित है। इन पंक्तियों में लेखक महेश्वर के काम एवं कार्य शैली पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या – लेखक कहता है कि मालती का पति सुबह सात बजे डिस्पेंसरी चला जाता है वहाँ से डेढ़ या दो बजे भोजन के लिए लौट कर आता है। इसके पश्चात् वह दोपहर में घर पर आराम करता है तथा शाम के समय वह एक–दो घण्टे के लिए पुनः अस्पताल चला जाता है ताकि अस्पताल में भर्ती हुए मरीजों को देख ले तथा उन्हें आवश्यकतानुसार निर्देश दे सके। लेखक कहता है कि महेश्वर का जीवन एक बने बनाए मार्ग पर चलता है अर्थात् उसमें तनिक भी परिवर्तन, रोमांच, उत्साह या नवीनता नहीं है। हर रोज उठकर अस्पताल जाना, एक ही प्रकार के मरीजों को देखना, उन्हें एक–से निर्देश देना, उन्हें एक–सा उपचार बताना, एक–सी दवाइयाँ देना, फिर घर आना, शाम को पुनः अस्पताल जाना आदि महेश्वर की दिनचर्या के नियमित अंग बन गए हैं। यही कारण है कि वह स्वयं को इस वातावरण में ऊबा हुआ पाते हैं। अर्थात् उन्हें इस कार्य में कोई भी आनन्द नहीं आता है।

विशेष :

1. लेखक ने महेश्वर जैसे डॉक्टरों की उबाऊ जीवन–शैली पर प्रकाश डाला है।
2. 'वही' शब्द के बार–बार प्रयोग करने से महेश्वर की दिनचर्या के निर्दिष्ट ढर्रे पर चलने व उसके ऊबाउपन का आभास होता है।
3. प्रचलित विदेशजशब्दों – डिस्पेंसरी, हिदायत, नुस्खा आदि का सार्थक प्रयोग हुआ।
4. अभिधा शब्द–शक्ति का प्रयोग हुआ है।
5. प्रसाद गुण का समावेश है।
6. भाषा विष्यानुकूल, सरल व सहज खड़ी बोली है।
7. विवरणात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- ''एक छोटे क्षण–भर.....तुम्हारे आगे है।''

प्रसंग –पूर्ववत।

व्याख्या – तरुण व इकलौते बच्चे की माता से ऐसे उदासीन वचन सुनकर लेखक क्षण–भर के लिए हक्का–बक्का रह गया। अर्थात् उसे विश्वास ही न हुआ कि कोई माता नन्हें शिशु के लिए ऐसा भी कह सकती है। लेखक कहता है कि उसके न केवल मन बल्कि उसके पूरे अस्तित्व अर्थात् बुद्धि ने भी मन ही मन में मालती के इस व्यवहार के प्रति विद्रोही स्वर में कहा कि तुम तो माँ हो और वह भी अभी युवती माँ हो। कहने का अभिप्राय यह है कि माता को अपनी पहली संतान अधिक प्रिय होती है, क्योंकि उस समय माता के प्रेम का केन्द्र वह बच्चा होता है तथा वह अपनी युवावस्था के कारण अपने बच्चे के लिए सभी कष्ट सहने को तत्पर हो जाती है जबकि प्रौढ़ माँ बच्चों के प्रति उतनी सजग नहीं रहती है। लेखक का मन विद्रोही स्वर में कहता है कि मालती तुम युवती माँ हो और तुम इस प्रकार का निष्ठुर व्यवहार अपने बच्चे के साथ कर रही हो, निश्चय ही तुम्हारा हृदय कठोर हो गया है। तभी तुम अपने एक मात्र बच्चे के नीचे गिर जाने पर दुखी या उसकी पीड़ा से व्यथित होने के स्थान पर कह रही हो कि यह ऐसे रोज ही गिर पड़ता है। लेखक कहता है कि उसके मन के ये विद्रोही स्वर उसके भीतर ही रहे प्रत्यक्ष रूप से उसने मालती को कुछ भी न कहा।

विशेष :

1. लेखक माँ के रूप में नारी से विशेष ममता व मृदुल व्यवहार की अपेक्षा करता है।
2. अभिधा के साथ व्यंजना शब्द–शक्ति का प्रयोग हुआ है।
3. तत्सम् शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. परिमार्जित व परिनिष्ठित खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है।
6. आत्मकथात्मक शैली के अनंतर भावात्मक शैली का प्रयोग है।

इकाई–7 लालपान की बेगम (फणीश्वरनाथ रेणू)

इकाई की रूपरेखा

7.0 परिचय

7.1 कहानी लालपान की बेगम यथावत

7.2 व्याख्या

7.0 परिचय :

लालपान की बेगम श्री फणीश्वर नाथ रेणु द्वारा रचित आंचलिक कहानी है। कहानी में अंचल विशेष के जीवन की पूरी झाँकी रची–बसी है। इस कहानी में परिवेश और मानवीय संवेदनशीलता के गहे रागात्मक संस्पर्श हैं। कहानी का शिल्प अपने आप में बड़ा ही अनूठा और भावपूर्ण है। कहानी का कथानक एक दिन के समय का तथा अति संक्षिप्त है। कथानक में कोई खास समस्या भी नहीं है, सिवा इसके कि कथानायिका बिरजू की माँ को बलरामपुर का नाच बैलगाडी में बैठकर देखने जाना है। इसी एक इच्छा की मानसिक हलचल को केन्द्र में रखकर कथानक का ताना–बाना बुना गया है।

7.1 कहनी यथावतः

''लाल पान की बेगम'' (फणीश्वरनाथ 'रेणु')

''क्यों बिरजू की माँ, नाच देखने नहीं जाएगी क्या?''

बिरजू की माँ शकरकंद उबाल कर बैठी मन–ही–मन कुढ़ रही थी अपने आँगन में। सात साल का लड़का बिरजू शकरकंद के बदले तमाचे खा कर आंगन में लोट–पोट कर सारी देह में मिट्टी मल रहा था। चंपिया के सिर भी चुड़ैल मँडरा रही है...आधे आँगन धूप रहते जो गई है सहुआन की दुकान छोवा–गुड़ लाने, सो अभी तक नहीं लोटी, दीया–बाती की बेला हो गई। आए आज लौटके जरा। बागड़ बरे की देह में कुकुरमाछी लगी थी, इसलिए बेचारा बागड़ रह–रह कर कूद–फाँद कर रहा था। बिरजू की माँ बरगड़ पर मन का गुस्सा उतारने का बहाना ढूँढ कर निकाल चुकी थी...पिछाड़े की मिर्च की फुली गाछा बागड़ के सिवा और किसने कलेवा किया होगा। बागड़ को मारने के लिए वह मिट्टी का छोटा ढेला उठा चुकी थी, कि पड़ोसिन मखनी फुआ की पुकार सुनाई पड़ी–'क्यों बिरजू की माँ, नाच देखने नहीं जाएगी क्या?'

'बिरजू की माँ के आगे नाच और पीछे पगहिया न हो तब न, फुआ''

गरम गुससे से बुझी नुकीली बात फुआ की देह में धँस गई और बिरजू की माँ ने हाथ के ढेले को पास ही फेंक दिया– 'बेचारे बागड़ को कुकुरमाछी परेशान कर रही है। आ–हा, आ...आय! हर्र–र–रा आय–आय!'

बिरजू ने लेटे–लेटे बागड़ को एक डंडा लगा दिया। बिरजू की माँ की इच्छा हुई कि जा कर उसी डंडे से बिरजू का भूत भगदा दे, किंतु नीम के पास खड़ी पनभरनियों की खिलखिलाहट सुनकर रूक गई। बोली, ठहर, तेरे बप्पा ने बड़ा हथछुट्टा बना दिया है तुझे। बड़ा हाथ चलता है लोगों पर ठहर।''

मखनी फुआ नीम के पास झुकी कमर से घड़ा उतार कर पानी भर कर लौटती पनभरनियों में बिरजू की माँ की बहकी हुई बात का इंसाफ करा रही थी – 'जरा देखो तो इस बिरजू की माँ को। चार मन पाट (जूट) का पैसा क्या हुआ है, धरती पर पाँव नहीं पड़ते। निसाफ करो! खुद अपने मुँह से आठ दिन पहले से ही गाँव की गली–गली में बोलती फिरी है, हाँ, इस बार बिरजू के बप्पा ने कहा है, बैलगाड़ी पर बिठा कर बलरामपुर का नाच दिखा लाऊँगा। बैल अब अपने घर हैं, तो हजार गाड़ी मँगनी मिल जाएँगी। सो मैंने अभी टोक दिया, नाच देखने वाली सब तो औन–पौन कर तैयार हो रही हैं, रसोई–पानी कर रहे हैं। मेरे मुँह में आग लगे, क्यों मैं टोकने गई। सुनी हो, क्या जवाब दिया बिरजू की माँ ने।

मखनी फुआ ने अपने पोपले मुँह के होंठों को एक ओर मोड़ कर ऐंठती हुई बोली निकाली–'अर्–रेंं–हाँ–हाँ! बिर–र–र–जू की मैं....या के नाथ औ–रेंं पीछे पगहिया ना हो, तब ना–आ–आ!'

जंगी की पुतोहू बिरजू की माँ से नहीं डरती। वह जरा गला खोल कर ही कहती है, 'फुआ–आ! स्रबे सितलर्मिटी (सर्वे सैटलमैंट) के हाकिम के बासा पर फूलछाप किनारी वाली साड़ी पहन के तू भी भटा की भेंटी चढ़ाती तो तुम्हारे नाम से भी दु–तीन बीघा धरहर जमीन का पर्चा कट जाता। फिर तुम्हारे घर भी आज दस मन सोनाबंग पाट होता, जोड़ा बैल खरीदता। फिर आगे नाम और पीछे सैंकड़ों पगहिया झूलती।''

जंगी की पुतोहू मुँहजोर है। रेलवे स्टेशन के पास की लड़की है। तीन ही महीने हुए, गौने की नई बहू हो कर आई है और सारे कुर्माटोनी की सभी झगड़ालू सासों से एकाध मोरचा ले चुकी है। उसका ससुर जंगी दागी चोर है, सी–किलासी है। उसका खसम रंगी कुर्माटोली का नामी लड़ैत। इसीलिए हमेशा सींग खुजाती फिरती जंगी की पुतोहू।

बिरजू की माँ के आँगन में जंगी की पुतोहू की गला–खोल बोली गुलेल की गोलियों की तरह दनदनाती हुई आई थी। बिरजू के माँ ने एक तीखा जवाब खोज कर निकाला, लेकिन मन मसोस कर रह गई....गोबर की डेरी में कौन ढेला फेंके।

जीभ के झाल को गले में उतार कर बिरजू की माँ ने अपनी बेटी चंपिया को आवाज दी–'अरी चंपिया–या–या, आज लौटे तो तेरी मुंडी मरोड़ कर चूल्हे में झोंकती हूँ। दिन–दिन बेचाल होती जाती है....गाँव में तो अब ठेठर बैसकोप का गीत गानेवाली पतुरिया–पुतोहू सब आने लगी हैं। कहीं बैठके 'बाजे न मुरलिया' सीख रही होगी ह–र–जा–ई–ई! टरी चंपिया–या–या।''

अंगी की पुतोहू ने बिरजू की माँ की बोली का स्वाद लेकर कमर पर घड़े को संभाला और मटक कर बोली, चल! इस मुहल्ले में लाल पान की बेगम बसती है। नहीं जानती, दोपहर–दिन और चौपहर रात बिजली की बत्ती भक्–भक् कर जलती है।''

भक्–भक् बिजली बत्ती की बात सुनकर न जानें क्यों सभी खिलखिला कर हँस पड़ी। फुआ की टूटी हुई दांत पंक्तियों के बीच से एक मीठी गाली निकली– ''शैतान् की नानी!''

बिरजू की माँ की आंखों पर मानो किसी ने तेज टार्च की रोशनी डाल कर चौंधिया दिया....भक्–भक् बिजली–बत्ती तीन साल पहले सर्वे कैंप के बाद गाँव की जलनडाही औरतों ने एक कहानी गढ़ के फैलाई थी, चंपिया की माँ के आँगन में रात–भर बिजली–बत्ती भुकभुकाती थी। चंपिया की माँ के आंगन में नाकवाले जूते की छाप घोड़े की टाप की तरह .....जलो, जलो! और जलो। चंपिया की माँ के आंगन में चाँदी–जैसे पाट सूखते देख कर जलनेवाली सब औरतें खलिहान पर सोनोली धान के बोझों को देख कर बैंगन का भुर्ता हो जाएंगी।

मिट्टी के बरतन से टपके हुए छोवा–गुड़ को उंगलियों से चाटते हुए चंपिया आई और माँ के तमाचे खा कर चीख पड़ी...मुझे क्यों मारती है ए–ए–ए! स्हुआइन जल्दी से सौदा नहीं देती है–ऐं–ऐं–ऐं–ऐं।

सहुआइन जल्दी सौदा नहीं देती की नानी! एक सहुआइन की दुकान पर मोती झरते हैं, जो जड़ गाड़ कर बैठी हुई थी। बोल, गले पर लात दे कर कल्ला तोड़ दूँगी हरजाई, जो फिर कभी 'बाजे न मुरलिया' गाते सुना चाल सीखने जाती है टीशन की छोकरियों से!''

बिरजू के माँ ने चुप हो कर अपनी आवाज अंदाजी के उसकी बात जंगी के झोंपड़े तक साफ–साफ पहुँच गई होगी।

बिरजू बीती हुई बातों को भूल कर उठ खड़ा हुआ था और धूल झाड़ते हुए बरतन से टपकते गुड़ को ललचाई निगाह से देखने लगा.....दीदी के साथ वह भी दुकान जाता तो दीदी उसे भी गुड़ चटाती, जरूर! वह शकरकंद के लोभ में रहा...और मांगने पर माँ ने शकरकंद के बदले.....

'ए मैया, एक अंगुली गुड़ दे दे बिरजू ने तलहथी फैलाई–दे ना मैया, एक रत्ती भर।''

''एक रत्ती क्यों उठाकर बरतन को फेंक आती हूँ पिछवाड़े में, जाके चाटना नहीं बनेगी मीठी रोटी।....मीठी रोटी खाने का मुँह होता है बिरजू की माँ ने उबले शकरकंद का सूप रोती हुई चंपिया के सामने रखते हुए कहा, बैठके छिलके उतार, नही ंतो अभी...।''

दस साल की चंपिया जानती है, शकरकंद छीते समय कम–से–कम बारह बार माँ उसे बाल पकड़ कर झकझोरेगी, छोटी–छोटी खोट निकाल कर गालियाँ देगी–''पाँव फैलाके क्यों बैठी है उस तरह, बेलल्जी!'' चंपिया माँ के गुस्से को जानती है।

बिरजू ने इस मौके पर थोड़ी सी खुसामद करके देखा–'मैा, मैं भी बैठ कर शकरकंद छीलूँ''

नहीं?'' माँ ने झिड़की दी, ''एक शकरकंद छीलेगा ओर तीन पेट में! जाके सिद्धू की बहू से कहो एक घंटे के लिए कढ़ाही मांग कर ले गई तो फिर लौटाने का नाम नहीं। जा जल्दी।

मुँह लटका कर आंगन से निकलते–निकलते बिरज ने शकरकंद और गुड़ पर निगाहें दौड़ाई। चंपिया ने अपने झबरे केस की ओट से माँ की ओर देखा और नजर बचा कर चुपके से बिरजू की ओर एक शकरकंद फेंक दिया।...बिरजू भागा।

'सूरज भगवान दूब गए...दीया–बत्ती की बेला हो गई अभी तक गाड़ी....

'चंपिया बीच में ही बोल उठी–'कोयरीटोले में किसी ने गाड़ी नहीं दी मैया! बप्पा बोले, माँ से कहना सब ठीक ठाक करके तैयार रहें। मलदहियाटोली के मियाँजान की गाड़ी लाने जा रहा हूँ।

सुनते ही बिरजू की माँ का चेहरा उतर गा। लगा, छाते की कमानी उतर गई घोड़े से अचानक। कोयरीटोले में गाड़ी किसी ने मंगनी नहीं दी, तब मिल चुकी गाड़ी। जब अपने गाँव के लोगों की आँख में पानी नही ंतो मलदहियाटोली के मियाँजान की गाड़ी का क्या भरोसा न तीन में न तेरह में। क्या होगा शकरकंद छील कर। रख दे उठा के।....वह मर्द नाच दिखाएगा। बैलगाडी पर चढ़ कर नाच दिखाने ले जाएगा। चढ़ चुकी बैलगाड़ी पर, देख चुकी जी–भर नाचकृपैदल जानेवाली सब पहुँच कर पुरानी हो चुकी होंगी।

बिरजू छोटी कढ़ाही सिर पर औंधा कर वापिस आया– देख दिदिया, मलेटरी टोपी। इस पर दस लाठी मारने पर भी कुछ नहीं होता।

चंपिया चुपचाप बैठी रही, कुछ बोली नहीं, जरा सी मुस्कराई भी नहीं, बिरजू ने समझ लिया, मैया का गुस्सा उतरा नहीं है अभी पूरे तौर से।

मढ़ैया के अंदर से बागड़ को भगाती हुई बिरजू का माँ बड़बड़ाई–'कल ही पंचकौड़ी कसाई के हवाले करती हूँ राकस तुझे। हर चीज में मुँह लगाएगा। चंपिया बाँध दे बागड़ को। खोल दे गले की घंटी हमेशा! टुनुर–टुनुर मुझे जरा नहीं सुहाता है।

'टुनुर–टुनुर' सुनते ही बिरजू को सड़क से जाती हई बैलगाड़ी की याद हो आई – 'अभी बबुआनटोले की गाड़ियाँ नाच देखने जा रही थी....टुनुर–टुनुर बैलों की झुमकी तुमने सु....'

'बेसी बक–बक मत करो।' बागड़ के गले से झूमकी खोलती बोली चंपिया।

'चंपिया, डाल दे चूल्हे में पानी। बप्पा आवे तो कहना कि अपने उड़नजहाज पर चढ़ कर नाच देख आएँ। मुझे नाच देखने का सौख नहीं.....मुझे जगैया`मत कोई। मेरा माथा दुख रहा है।'

मढ़ैया के ओसारे पर बिरजू ने फिसफिसा कके पूछा, 'क्यो दिदिया, नाच में उड़नजहाज भी उड़ेगा?'

चटाई पर कथरी ओढ़ कर बैठती हुई चंपिया ने बिरजू को चुपचाप अपने पास बैठने का इशारा किया, मुफ्त में मार खाएगा बेचारा।

बिरजू ने बहन की कथरी में हिससा बांटते हुए चुकी–मुक्की लगाई। जाड़े के समय इस तरह घुटने पर ठुड्डी रख कर चुक्की–मिक्की लगाना सीख चुहा है वह। उसने चंपिया के कान के पास मुँह ले जाकर कहा, 'हम लोग नाच देखने नहीं जाएंगे?....गाँव में एक पंछी भी नहीं है। सब चले गए।'

चंपिया को तिल भर भी भरोसा नहीं, संझा तारा डूब रहा है। बप्पा गाड़ी ले कर नहीं लौटे। एक महीना पहले से ही मैया कहती थी, बलरामपुर के नाच के दिन मीठी रोटी बनेगी, चंपिया छींट की साड़ी पहनेगी, बिरजू पेंट पहनेगा, बैलगाड़ी पर चढ़ कर...

चंपिया की भीगी पलकों पर एक बूँद आँसू आ गया।

बिरजू का भी दिल भर आया। उसने मन–ही–मन में इमली पर रहनेवाले जिनबाबा को एक बैंगन कबूला, गाछ का सबसे पहला बैंगन, उसने खुद जिस पौधे को रोपा है....जल्दी से गाड़ी ले कर बप्पा को भेज दो, जिनबाबा।

मढ़ैया के अंदर बिरजू की माँ चटाई पर पड़ी करवटें ले रही थी। उँह, पहले से किसी बात का मनसूबा नहीं बाँधना चाहिए किसी को। भगवान ने मनसूबा तोड़ दिया। उसको सबसे पहले भगवान से पूछना है, यह किस चूक का फल दे रहे हो भोला बाबा। अपने जानते उसने किसी देवता–पितर की मान–मनौती बाकी नहीं रखी। सर्वे के समय जमीन के लिए जितनी मनौतियाँ की थी....ठीक ही तो। महाबीर जी का रोट तो बाकी है। हाय रे दैव!..... भूल–चूक माफ करो महाबीर बाबा। मनौती दूनी करके चढ़ाएगी बिरजू की माँ.....

बिरजू की माँ के मन में रह–रह कर जंगी की पुतोहू की बातें भक्–भक् बिजली–बत्ती.....चोरी चमारी करने वाली की बेटी पुतोहू जलेगी नहीं। पांच बीघा जमीन क्या हासिल की है बिरजू के बप्पा ने, गाँ की भाईखोकियों की आँखों में किरकिरी पड़ गई। खेत में पाट लगा देखकर गाँव के लोगों की छाती फटने लगी, धरती फोड़ कर पाट लगा है, बैसाखी बादलों की तरह उमड़ते आ रहे हैं, पाट के पौधे! तो अलान, तो फलान! इतनी आँखों की धार भला फसल सहे, जहाँ पन्द्रह मन पाट होना चाहिए, सिर्फ दस मन काँटा तोल के ओजन हुआ भगत के यहाँ।

इसमें जलने की क्या बात है भला.....बिरजू के बप्पा ने तो पहले ही कुर्माटोली के एक–एक आदमी को समझा के कहा, 'जिन्दगी भर मजदूरी करते रह जाओगे'। सर्वे का समय हो गया है। लाठी कड़ी करो तो दो–चार बीघा जमीन हासिल कर सकते हो, तो गाँव की किसी पुतखौकी का भतार बाबुसाहेब के खिलाफ खांसा भी नहीं।.... बिरजू के बप्पा को कम सहना पड़ा। बाबुसाहेब गुस्से से सरकश नाच के बाघ की तरह हुमड़ते रहे गए। उनका बड़ा बेटा घर में आग लगाने की धमकी देकर गया। आखिर में बाबूसाहेब ने अपने छोटे लड़के को भेजा। बिरजू की माँ को मॉसी कहके पुकारा। 'यह जमीन बाबू जी ने मेरे नाम से खरीदी थी। मेरी पढ़ाई–लिखाई उसी जमीन की उपज से चलती है..... और भी कितनी बातें! खूब मोहना जानता है। उत्ता जरा सा लड़का.....जमींदार का बेटा है कि...

'चंपिया बिरजू सो गया क्या? यहाँ आ जा बिरजू, अंदर तू भी आ जा चंपिया'...भला आदमी आए तो एक बार आज... ।'

बिरजू के साथ चंपिया अंदर चली गई।

'ढिबरी बुझा दे, बप्पा बुलाएं तो जवाब मत देना! खपड्डी गिरा दे।

भला आदमी रे....भला आदमी! मुँह देखो जरा इस मर्द का। बिरजू की माँ दिन–रात मांझा न देती तो ले चुके थे जमीना रोज आ कर माथा पकड़ के बैठ जाएं, मुझे जमीन नहीं लेनी है बिरजू की माँ। मजदूरी ही अच्छी।.... ..जवाब देती थी बिरजू की माँ खूब सोच समझ के, छोड़ दो जब तुम्हारा कलेजा ही स्थिर नहीं होता है तो क्या होगा? जोर जमीन जोर के नहीं तो किसी ओर के.....

बिरजू के बाप पर बहुत तेजी से गुस्सा चढ़ता है. चढ़ता ही जाता है....बिरजू की माँ का भाग ही खराब है, जो ऐसा गोबरगणेश घरवाला उसे मिला, कौनसा सौख मौज दिया है उसके मर्द ने? काल्हू के बैल की तरह खट कर सारी उमर काढ़ दी इसके यहाँ कभी एक पैसे की जलेबी भी लाकर दी है उसके खसम ने।....पाट का दाम भगत के यहाँ से लेकर बाहर की बाहर बैल हट्टा चले गए। बिरजू की माँ को एक बार नमरी लोट देखने भी नहीं दिया आँख से।....बैल खरीद लाए। उसी दिन से गाँव में ढिंढोरा पीटने लगे, बिरजू की माँ इस बार बैलगाड़ी पर चढ़कर जाएगी नाच देखने.....दूसरे की गाड़ी के भरोसे नाच दिखाएगा.....।

अंत में उसे अपने आप पर क्रोध हो आया। वह खुद भी कुछ कम नहीं। उसकी जीभ में आग लगे! बैलगाड़ी पर चढ़ कर नाच देखने की लालसा किसी कुसमय में उसके मुँह से निकली थी, भगवान जाने फिर आज सुबह से दोपहर तक, किसी न किसी बहाने उसने अठारह बार बैलगाड़ी पर नाच देखने की चर्चा छेड़ी है....लो, खूब देखो नाच ! कथरी के नीचे दुशाले का सपना'....कल भोरे पानी भरने के लिए जब जाएगी, पतली जीभवाली पतुरिया सब हँसती आएँगी, हँसती जाएँगी। सभी जलते हैं उससे, हाँ भगवान, दाढ़ीजार भी! छो बच्चों की माँ होकर भी वह जस–की–तस है। उसका घरवाला उनकी बात में रहता है। वह बालों में गरी का तेल डालती है। उसकी अपनी जमीन है। है किसी के पास एक घूर जमीन भी अपने इस गांव में। जलेंगे नहीं, तीन बीघे में धान लगा हुआ है, अगहनी। लोगों की बिखदीठ से बचे, तब तो।

बाहर बैलों की घंटियाँ सुनाई पड़ी, तीनों सतर्क हो गए। उत्कर्ण होकर सुनते रहे।

'अपने ही बैलों की घंटी है, क्यों री चंपिया?'

'पिया और बिरजू ने प्रायः एक ही साथ कहा, हूँ–ऊँ–ऊँ।

'चुप बिरजू की माँ ने फिसफिसा कर कहा, शायद गाड़ी भी है, धड़धड़ाती है न?''

हूँ–ऊँ–ऊँ! छोनों ने फिर हुँकार भरी।

'चुप गाड़ी नहीं है। तू चुपके से टट्टी में छेद से झांक कर देख तो आ चंपी। भागके आ, चुपके–चुपके।

चंपिया बिल्ली की तरहहौले हौले पाँव से टट्टी के छेद से झांक आई–हाँ मैया, गाड़ी भी है।

बिरजू हड़बड़ा कर उठ बैठा। उसकी माँ ने उसका हाथ पकड़ कर सुला दिया– 'बोले मत!'

चंपिया भी गुदड़ी की नीचे घुस गई।

बाहर बैलगाड़ी खोलने की आवाज हुई। बिरजू के बाप ने बैलों को जोर से डाँटा– हाँ हाँ! आ गए घर। घर आने के लिए छाती फटी जाती थी।

बिरजू की माँ ताड़ गई। जरूर मलदहियाटोली में गाँजे की चिलम चढ़ रही थी, आवाज तो बड़ी खनखनाती हुई निकल रही है।

चंपिया–हाँ बाहर से पुकार कर कहा उसके बाप ने, बैलों को घास दे दे, चंपिया–हूँ।

अंदर से कोई जवाब नहीं आया! चंपिया के बाप ने आंगन में आ कर देखा तो न रोशनी, न चिराग, न चूल्हे में आग।....बात क्या है! नच देखने, उतावली हो कर, पैदल ही चली गई क्या....।

बिरजू के गले में खसखसाहट हुई और उसने रोकने की पूरी कोशिश भी की, लेकिन खाँसी जब शुरु तो पूरे पाँच मिनट तक वह खांसता रहा।

'बिरजू! बेटा बिरजमोहन उसके बाप ने पुचकार कर बुलाया, मैया गुस्से के मारे सो गई क्या?...अरे अभी तो लोग जाग ही रहे हैं।'

बिरजू की माँ के मन में आया कि कसकर जवाब दे, नहीं देखना नाच! लौटा दो गाड़ी।

'चंपिया हाँ उठती क्यों नहीं? ले, धान की पंचसीस रख दे। धान की बालियों का छोटा झब्बा झोंपडे के ओसरे पर रख कर उसने कहा, 'दीया बालो।'

बिरजू की माँ उठकर ओसरे पर आई–'डेढ़ पहर रात को गाड़ी लाने की क्या जरूरत थी? नाच तो अब खत्म हो रहा होगा।

ढिबरी की रोशनी में धान की बालियों का रंग देखते ही बिरजू की माँ के मन का सब मैल दूर हो गया।... धानी रंग उसकी आंखों से उतर कर रोम–रोम में घुल गया।

नाच अभी शुरु भी नहीं हुआ होगा। अभी–अभी बलरामपुर के बाबू की संपनी गाडी मोहनपुर होटिल–बंगला से हाकिम साहब को लाने गई है। इस साल आखिरी नाच है....पँचसीस टट्टी में खोंस दे अपने खेत का है।

अपने खेत का, हुलसती हुई बिरजू की माँ ने पूछा, पक गये धान?''

नहीं दस दिन में अगहन चढ़ते–चढ़ते लाल होकर झुक जाएंगे। सारे खेत की बालियाँ.....मलदहियाटोली पर जा रहा था, अपने खेत में धान देख कर आँखें ुड़ा गई। सच कहता हूँ, पंचसीस तोड़ते समय उंगलियाँ काँप रही थीं मेरी।''

बिरजू ने धान की एक बाली में एक धान ले कर मुँह में डाल लिया और उसकी माँ ने एक हल्की डाँट दी–''कैसा लुक्कड़ है तू रे!....इन दुश्मनों के मारे कोई नेम–धरम बचे!'

'क्या हुआ डाँटती क्यों है'

'नावान्न के पहले ही नया धान झुठा दिया, देखते नहीं''

'अरे इन लोगों का सब कुछ माफ है। चिरई–चुरमुन हैं वह लोग! छोनों के मुँह में नवान्न के पहले नवा अन्न न पड़े।''

इसके बाद चंपिया ने भी धान की बाली से दो धान लेकर दाँतों तले दबाए–'ओ मैया' इतना मीठा चावल।'

''और गमकता भी है न दिदिया?' बिरजू ने फिर मुँह में धान लिया।

'रोटी–वोटी' तैयार कर चुकी क्या? बिरजू के बाप ने मुस्कराकर पूछा।

'नहीं! मान–भरे सुर में बोली बिरजू की माँ। 'जाने का ठीक–ठिकाना नहीं और रोटी बनाती।'

'वाह! खूब हो तुम लोग! थ्जसके पास बैल है, उसे गाडी मँगनी उसे गाड़ी मंगनी नहीं मिलेगा भला? गाड़ी वालों को भी कभी बैल की जरूरत होगी.....पूछूँगा तब कोयरीटोलावालों से .....ले, जल्दी से रोटी बना ले।'

'देर नहीं होगी।'

'अरे, टोकरी भर रोटी तो तू पलक मारते बना देती है, पाँच रोटियाँ बनाने में कितनी देर लगेगी।''

अब बिरजू की माँ के होठों पर मुस्कराहट खुल कर गिखने लगी। उसने नजर बचा कर देखा, बिरजू का बप्पा उसकी ओर एकटक निहार रहा है।....चंपिया और बिरजू न होते तो मन की बात हँस कर खोलने में देर न लगाती। चंपिया और बिरजू ने एक–दूसरे को देखा और खुशी से उनके चहरे जगमगा उठे–'मैया बेकार गुस्सा हो रही थी न।''

चंपी धैलसार में खड़ी हो कर जरा मखनी फुआ को आवाज दे तो!

'ऐ फु–आ–आ सुनती हो फूआ–आं मैया बुला रही है।''

फुआ ने कोई जवाब नहीं दिया, किंतु उसकी बड़बड़ाहट स्पष्ट सुनाई पड़ी–'हाँ अब फुआ को क्यों गुहारती हैं? सारे टोले में बस एक फुआ ही तो बिना नाथ–पगहियावाली है।'

'अरी फुआ बिरजू की माँ ने हँस कर जवाब दिय, 'उस समय बुरा मान गई थी क्या' नाथ–पगहियावाले को आकर देखो, दोपहर रात में गाड़ी लेकर आया है। आ जाओ फुआ, मैं मीठी रोटी पकाना नहीं जानती।'

फुआ खाँसती–खाँसती आई– 'इसी के घड़ी–पहर दिन रहते ही पूछ रही थी कि नाच देखने जाएगी क्या? कहती, तो मैं पहले से ही अपनी अंगीठी यहाँ सुलगा जाती।'

बिरजू की माँ ने फुआ को अंगीठी दिखला दी और कहा–'घर में अनाज दाना बगैरह तो कुछ है नहीं, एक बागड़ है और कुछ बरतन–बासन, सो रात भर के लिए यहाँ तंबाकू रख जाती हूँ। अपना हुक्का ले आई हो न फुआ?

फुआ को तंबाकू मिल जाए तो रात–भर क्या, पाँच रात बैठकर जाग सकती है। फुआ ने अंधेरे में टटोल कर तंबाकू का अंदाज किया....ओ–हो! हाथ खोल कर तंबाकू रखा है बिरजू की माँ ने। और एक वह है सहुआइन! राम कहो! डस रात को अफीम की गोली की तरह एक मटर भर तंबाकू रख कर चली गई गुलाब बाग मेले और कह गई कि डिब्बी भर तंबाकू है।

बिरजू की माँ चूल्हा सुलगाने लगी। चंपिया ने शकरकंद को मसल कर गोले बनाए और बिरजू सिर पर कढ़ाही औंधा कर अपने बाप को दिखलाने लगा– 'मलेटरी टोपी। इस पर दस लाठी मारने पर भी कुछ नहीं होगा।'

सभी ठठाकर हँस पड़े। बिरजू की माँ हँस कर बोली, 'ताखे पर तीन–चार मोटे शकरकंद हैं, दे दे बिरजू को चंपिया, बेचारा शाम से ही....

'बेचारा मत कहो मैया, खूब सचारा है' अब चंपिया चहकने लगी, 'तुम क्या जानो, कथरी के नीचे मुँह क्यों चल रहा था बाबू साहब का।'

'ही–ही–ही!'

बिरजू के टूटे दूध के दाँतों की फाँक से बोली निकली, 'बिलैक–मारटिन में पाँच शकरकंद खा लिया! हा–हा–हा!

सभी फिर हँस पड़े, बिरजू की माँ ने फुआ का मन रखने के लिए पूछा, 'एक कनवाँ गुड़ है। आधा दूँ फुआ?'

फुआ ने गदगद हो कर कहा, अरी शकरकंद तो खुद मीठा होता है, उतना क्यों डालेगी?'

जब तक दोनों बैल दाना–घास खा कर एक–दूसरे की देह को जीभ से चाटें, बिरजू की माँ तैयार हो गई। चंपिया ने छींट की साड़ी पहनी और बिरजू बटन के अभाव में पैंट पर पटसन की डोरी बँधवाने लगा।

बिरजू क माँ ने आँगन से निकल गाँव की ओर कान लगा कर सुनने की चेष्टा की– 'उँहू, इतनी देर तक भला पैदल जानेवाले रुके रहेंगे?

पूर्णिमा का चाँद सिर पर आ गया है।....बिरजू की माँ ने असली रूपा का मंगटीका पहना है, आज पहली बार। बिरजू के बप्पा को हो क्या गया है, गाड़ी जोतता क्यों नहीं?, मुँह की ओर एकटक देख रहा है, मनो नाच की लाल पान की.....

गाड़ी पर ैठते ही बिरजू की माँ की देह में एक अजीब गुदगुदी लगने लगी। उसने बाँस की बल्ली को पकड़ कर कहा, 'गाड़ी पर अभी बहोत जगह है।....जरा दाहिनी सड़क से गाड़ी हाँकना।

बैल जब दौड़ने लगे, और पहिया जब चूँ–चूँ करके घरघराने लगा तो बिरजू से नहीं रहा गया–'उड़नजहाज की तरह उड़ाओ बप्पा।'

गाड़ी जंगी के पिछवाड़े पहुँची। बिरजू की माँ ने कहा, 'जरा जंगी से पूछो न, उसकी पुतोहू नाच देखने चली गई क्या?

गाड़ी के रुकते ही जंगी के झोंपड़े से आती हुई रोने की आवाज स्पष्ट हो गई। बिरजू के बप्पा ने पूछा, 'अरे जंगी भाई काहे कन्न–रोहट हो रहा है आँगन में?'

जंगी घूर ताप रहा था, बोला, क्या पूछते हो रंगी, बलरामपुर से लौटा नहीं, पुतोहिया नाच देखने कैसे जाए। आसरा देखते–देखते उधर गाँव की सभी औरतें चली गई।

'अरी टीशनवाली, तो रोती है काहे।' बिरजू की माँ ने पुकार कर कहा, आ जा झट से कपड़ा पहनकर। सारी गाड़ी पड़ी हुई है। बेचारी।....आ जा जल्दी।...

बाँस की झाड़ी के उस पार लरेना खबास का घर है। उसकी बहू भी नहीं गई है। गिलट का झुमकी कड़ा पहन कर झमकती आ रही है।

'आ जा।' जो बाकी रह गई हैं, सब आ जाएँ जल्दी।

जंगी की पुतोहू, लरेना की बीबी और राधे की बेटी सुनरी, तीनों गाड़ी के पास आई। बैल ने पिछला पैर फेंका। बिरजू के बाप ने एक भद्दी गाली दी– 'साला' लताड़ मार कर लँगड़ी बनाएगा पुतोहू को।'

सभी ठठा कर हँस पड़े। बिरजू के बाप ने घूँघट में झुकी दोनों पुतोहूओं को देखा। उसे अपने खेत की झुकी हुई बालियों की याद आ गई।

जंगी की पुतोहू का गोना तीन ही मास पहले हुआ है। गौने की रंगीन साड़ी से कड़वे तेल और लठवा–सिंदूर की गंध आ रही है। बिरजू की माँ को अपने गौने की याद आई। उसने कपड़े की गठरी से तीन मीठी रोटियाँ निकाल कर कहा, 'खा ले एक–एक करके। सिमराह के सरकारी कूप में पानी पी लेना।

गाड़ी गाँव से बाहर हो कर धान के खेतों के बगल से जाने लगी। चाँदनी, कातिक की....खेतों से धान के झरते फूलों की गंध आती है। बाँस की झाड़ी में कहीं दुद्धी की लता फूली है। जंगी की पुतोहू ने एक बीड़ी सुलगा कर बिरजू की माँ की ओर बढ़ाई। बिरजू की माँ को अचानक याद आई चंपिया, सुनरी, लरेना की बीबी और जंगी की पुतोहू, ये चारों ही गाँव में बैसकोप का गीत गाना जानती हैं....खूब।

गाड़ी की लीक धनखेतों के बीच हो कर गई। चारों ओर गौने की साड़ी की खसखसाहट–जैसी आवाज होती है....बिरजू की माँ के माथे के मँगटिके पर चाँदनी छिटकती है।

'अच्छा, अब एक बैसकोप का गीत गा तो चंपिया।...डरती है क्यों? जहाँ भूल जाओगी, बगल में मासटरनी बैठी ही है।'

छोनों पुतोहूओं ने तो नहीं, किंतु चंपिया और सुनरी ने खँखार कर गला साफ किया।

बिरजू के बाप ने बैलों को ललकारा– 'चल भैया। और जरा जोर से।...गा रे चंपिया, नही ंतो मैं बैलों को धीरे–धीरे चलने को कहूँगा।'

'जंगी की पुतोहू ने चंपिया के कान के पास घूँघट ले जा कर कुछ कहा और चंपिया ने धीमे से शुरु किया– 'चंदा की चाँदनी....'

बिरजू को गोद में ले कर बैठी उसकी माँ की इच्छा हुई कि बहू भी साथ–साथ गीत गाए। बिरजू की माँ ने जंगी की पुतोहू को देखा, धीरे–धीरे गुनगुना रही है वह भी। कितनी प्यारी पुतोहू है। गौने की साड़ी से एक खास किस्म की गंध निकलती है। ठीक ही तो कहा है उसने। बिरजू की माँ बेगम है, लाल पान की बेगम। यह तो कोई बुरी बात नहीं, हाँ, वह सचमुच लाल पान की बेगम है।

बिरजू की माँ ने अपनी नाक पर दोनों आँखों को केंद्रित करने की चेष्टा करके अपने रूप की झाँकी ली, लाल साड़ी की झिलमिल किनारी, मँगटिक्का पर चाँद। ...बिरजू की माँ के मन में अब और कोई लालसा नहीं। उसे नीद आ रही है।

7.2 लाल पान की बेगम व्याख्या खण्ड

- ''बिरजू की माँ .....जलो और जलो।''

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियाँ कहानीकार 'फणीश्वरनाथ रेणु' कृत 'लालपान की बेगम' नामक कहानी से अवतरित है। गाँव की मखनी फुआ बिरजू की माँ से नाच देखने जाने के बारे में पूछती है तो वह उसे रूखा–सा उत्तर दे देती है। अवतरित पंक्तियों में इसी संदर्भ में भक्–भक् बत्ती की बात में प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या –जंगी की पुतोहू के मुख में 'भक्–भक् बिजली बत्ती' सुनते ही बिरजू की माँ को ऐसा लगा मानो किसी ने

उसकी आँखों पर तेज टार्च की रोशनी डाल कर उसे चौंधिया दिया हो। कहने का अभिप्राय यह है कि बिरजू की माँ को इस बात का तनिक भी अंदेशा न था कि जंगी की पुतोहू इतनी हिम्मत करके उसे ऐसी बात सुना सकती है। लेखक बताता है कि गाँव में तीन साल पहले सर्वे सेटलमेंट हुआ था। यद्यपि बिरजू के बप्पा ने सभी मजदूरों को समझाया था कि यहद वे एक–जुट हो जाएँ तो उन्हें जमीन मिल सकती है, परन्तु कोई भी संघर्ष के लिए तैयार न हुआ। बिरजू के बप्पा ने अकेले ही संघर्ष किया तो उसे पाँच बीघे जमीन मिल गई। गाँव की सभी औरतें बिरजू की माँ से ईर्ष्या करने लगी तथा कुछ अधिक ही ईर्ष्या व डाह करने वाली स्त्रियों ने गाँव भर में एक मनगढ़ंत कहानी का प्रचार कर दिया कि चंपिया की माँ (बिरजू की माँ) के आँगन में तो रात–भर बिजली भक्भक् कर जलती रही और उसके आँगन में नोक वाले जूते पहने अनेक सरकारी कर्मचारी घोड़े की टाप की तरह कूदते रहे। कहने का आशय यह है कि उन औरतों ने यह भ्रम फैला दिया कि चंपिया की माँ ने सर्वे सेटलमेंट के अफसरों, कर्मचारियों को अपने तन से खुश करके यह जमीन पाई है। चंपिया की माँ को पता है कि यह कहानी तथा अभी–अभी जो ताना सुनाया गया था वह सब उसकी खेती को देखकर हुई ईर्ष्या का ही परिणाम है। वह म नही मन कहती है कि यदि तुम्हें मेरे खेत देखकर जलन होती है तो ठीक है, तुम यूँ ही ईर्ष्या की आग में जलती रहो।

विशेष :

1. नारी–सुलभ ईर्ष्या का चित्रण हुआ है।
2. भाषा सरल, सहज व भावानुकूल खड़ी बोली है।
3. भाषा आँचलिकता का स्पर्श लिए हुए है।
4. व्यंजना शब्द–शक्ति का प्रयोग हुआ है।
5. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
6. तद्भव, देशज (भुकभुकाना, डाही) व विदेशज शब्दों (टॉर्च, सर्वे, कम्प) का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

- 'पहले से किसी .....महावीर बाबा'

प्रसंग – पूर्वोतर।

व्याख्या – बिरजू की माँ सोचती है कि किसी भी आदमी को किसी भी बात को सोचकर पहले ही मन में धारण या पक्का विचार नहीं बना लेना चाहिए। उसने भी घर में बैल देखकर व बिरजू के बप्पा की बात सुनकर यह दृढ़ धारणा बना ली थी कि अबकी बा रवह बैलगाड़ी पर सवार होकर बलरामपुर नाच देखने जाएगी, परन्तु भगवान ने उसकी यह दढ़ धारणा तोड़ दी, उसकी कल्पना खंडित कर दी। अ बवह सबसे पहले भगवान से ही प्रश्न करेगी कि मुझसे ऐसी क्या गलती हुई थी कि जिसका दण्ड तुम मुझे इस रूप में दे रहे हो। मैंने अपने विचार से तो किसी भी देवता या पित्तर की जो मनौती मान रखी थी, उन्हें पूरा कर दिया है। जब गाँव में भूमि का सर्वे सेटलमेंट हो रहा था तब भी खेती पाने के लिए मैंने जितनी भी मनौतियाँ की थीं....। वह सोच ही रही थी कि उसे ध्यान आ जाता है कि उसने सर्वे सेटलमेंट के समय महाबीर भगवान का रोट करने की मनौती की थी। अर्थात् उसने भगवान महावीर के सामने यह वचन लिया था कि यदि उसे सर्वे सेटलमेंट में भूमि मिल गई तो वह उसका रोट करेगी। अब उसे खेत तो मिल चुके हैं, परन्तु उसने उस मनौती को पूरा नहीं किया है अर्थात् महावीर जी का रोट नहीं किया है। वह मन–ही–मन भगवान महावीर से भूल–चूक की माफी माँगती है।

विशेष :

1. बिरजू की माँ भाग्यवादिता है तथा उसकी आस्तिकता का स्पष्ट चित्रण हुआ है।
2. भाषा सरल, सहज व भावानुकूल खड़ी बोली है।
3. भाषा आँचलिकता का स्पर्श लिए हुए है।
4. तद्भव व विदेशज शब्दों का प्रयोग हुआ है।
5. अभिधा शब्द–शक्ति का प्रयोग हुआ है।
6. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
7. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग है।

- 'अंत में उसे .....चर्चा छेड़ी है'

प्रसंग –पूर्वोतर।

व्याख्या – यद्यपि बिरजू की माँ को सबसे पहले बिरजू के बप्पा पर क्रोध आया था, परन्तु अब उसे अपने आप पर ही क्रोध आ रहा था। उसे लगा कि इस परिस्थिति को खड़ा करने में उसका भी कम दोष नहीं है। यह उसकी जीभ की चपलता का ही परिणाम है। उसे लगा कि उसने किसी बुरे समय में ही अपने पति के सामने बैलगाड़ी पर चढ़कर बलरामपुर का नाच देखने जाने की लालसा प्रकट की थी। कहने का अभिप्राय यह है कि किसी अशुभ घड़ी में उसने अपनी लालसा पति के सामने प्रकट की थी। इतना ही नहीं, उसने आज सुबह से लेकर दोपहर तक अपने पास–पड़ोस की स्त्रियों के सामने किसी न किसी बहाने से अठारह बार यह बात बताई थी कि वह आज शाम को अपने पति व बच्चों के साथ बैलगाड़ी पर बैठकर बलरामपुर नाच देखने जाएगी। निःसंदेह उसे इस बात को इतनी बार नहीं कहना चाहिए था।

विशेष :

1. बिरजू की माँ की चारित्रिक विशेषताओं का पता चलता है।
2. भाषा सरल, सहज व भावानुकूल खड़ी बोली है।
3. तद्भव व प्रचलित विदेशज शब्दों का प्रयोग हुआ है।
4. व्यंजना शब्द–शक्ति की प्रधानता है।
5. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
6. वर्णनात्मक शैली है।

- ''पूर्णिमा का चाँद .....लगने लगी।''

प्रसंग – पूर्वोतर।

व्याख्या – लेखक कहता है कि आसमान में निकला पूर्णिमा का चाँद अब सिर पर आ गया था और बिरजू की माँ ने अपने सिर पर पहली बार असली रूपा का मँगटिक्का पहना था, जो उतना ही सुन्दर दिखाई दे रहा था जितना कि आकाश में पूर्णिमा का चाँद सुन्दर दिखाई दे रहा था। बिरजू का बप्पा अपनी पत्नी के इस सुंदर रूप से अत्यधिक प्रभावित हो गया था और वह पत्नी की ओर एकटक अर्थात् बिना पलक झपकाए देख रहा था। अपने पति

को अपनी ओर इस तरह देखते हुए पाकर बिरजू की माँ सोचने लगती है कि उसे आज क्या हो गया है, वह बाहर जाकर गाड़ी में बैलों को जोतता क्यों नहीं ताकि जल्दी से बलरामपुर पहुँच कर नाच देख सकें। उसे लगा कि उसका पति उसकी ओर ऐसे देख रहा है मानो वह नाचने वाली लाल पान की बेगम हो। कहने का अभिप्राय यह है कि गाँव के लोग जिस प्रकार पान खाकर लाल ओठों वाली नाचने–गाने वाली तवायफ़ों की ओर आकर्षित हो जाते हैं, आज बिरजू का बप्पा उसी प्रकार अपनी पत्नी की ओर आकर्षित हो रहा था। जब बिरजू की माँ बैलगाड़ी में बैठी तो उसके शरीर में एक विशेष प्रकार का रोमांच–सा हुआ क्योंकि वह अपने बैलों की गाड़ी पर बैठ कर पति के संग बलरामपुर का नाच देखने जा रही थी।

विशेष :

1. बिरजू की माँ के आकर्षक व्यक्तित्व का चित्रण हुआ है।
2. भाषा सरल, सहज व भावानुकूल खड़ी बोली है।
3. देशज व विदेशज शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है।
4. माधुर्य गुण का प्रयोग हुआ है।
5. अभिधा व व्यंजना शब्द–शक्तियों का प्रयोग है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।